सोवियत साहित्य पुस्तक-माला

म० गोर्की

जनता के बीच

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह
मास्को

अनुवादक: नरोत्तम नागर
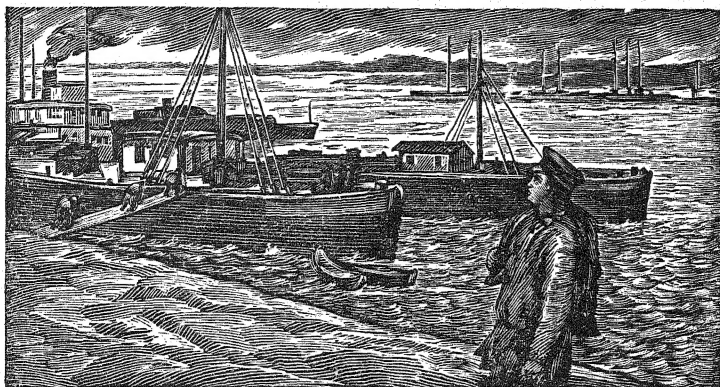
१

यह लीजिये, मैं अब यहां हूं। नगर के बड़े बाज़ार की एक दुकान "फ़ैन्सी जूता" स्टोर में काम सीखने के लिए मुझे एक जगह मिल गई है।

मेरा मालिक गांठ-गोभी-सा एक गोल-मटोल जीव है—गोबर-पथा सा थूल-पथूल चेहरा जिसके आदि-अन्त का कुछ पता नहीं चलता, काई-जमे हरे दांत और कीच-भरी पनीली आंखें। मुझे लगा कि वह अन्धा है, और इस बात की जांच करने के लिए मैंने मुँह बिचकाया।

तभी निश्चल और दृढ़ लहजे में उसने कहा:

"तोबड़ा न बनाओ!"

बड़ी घिन मालूम हुई यह सोचकर कि अपनी कीच-भरी आंखों से वह मेरी टोह ले रहा है। मुझे एकाएक विश्वास नहीं हुआ। हो

सकता है कि अन्दाज़ से ही उसने यह भांप लिया हो कि मैं मुँह चिढ़ा रहा हूँ?

"मैंने कहा न कि अपनी थूथनी को काबू में रखो!" उसने अपने मोटे होठों को जुम्बिश तक न दी, और पहले से भी अधिक निश्चल अन्दाज़ में कहा।

"और तुम्हारे ये हाथ,—इन्हें तुम क्यों नोचते रहते हो?" मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो उसकी रूखी फुसफुसाहट मेरी ओर रेंगती हुई बढ़ रही हो।—"याद रखो, नगर के बड़े बाज़ार की बड़ी दुकान के तुम दरबान हो। दरवाज़े पर प्रतिमा की भांति सीधे-सतर खड़े रहना तुम्हारा काम है!"

अब मुझे क्या मालूम कि प्रतिमा की भांति सीधे-सतर खड़े होना क्या होता है, और अपनी बांहों और हाथों को न खुजलाना भी मेरे वश की बात नहीं है। खुजली ने बुरी तरह मेरे शरीर में प्रवेश कर लिया है और मेरे हाथ, कोहनी तक, लाल चकत्तों और रिसते हुए घावों से भरे हैं।

मेरे हाथों को मालिक ने एक नज़र देखा, फिर पूछा:

"घर पर तुम क्या काम करते थे?"

मैंने बता दिया। मटकी ऐसी उसकी खोपड़ी हिल उठी जिस पर उसके खिचड़ी बाल ऐसे लगते थे मानो लेही से चिपके हुए हों।

उसने डंक सा मारा:

"क्या कहा, चिथड़े बटोरते थे—यह तो भीख मांगने से भी बुरा है, चोरी करने से भी बदतर!"

"जी, मैं कभी-कभी चोरी भी करता था," कुछ गर्व के साथ मैंने उसकी जानकारी बढ़ाई।

उसने यह सुना और अपनी हथेलियों के बल आगे की ओर झुक गया—ठीक वैसे ही जैसे कि झपटने से पहले बिलाव पँजों पर अपना बदन तौलता है। खोहनुमा सूनी आंखों से उसने मेरी ओर ताका और फिर काउण्टर पर से फुंकार उठा:

"क्या-आ-आ? क्या कहा तुमने—चोरी भी करते थे?"

मैंने उसे बता दिया कि किस चीज़ की और कैसे मैंने चोरी की थी।

"अच्छा, अच्छा, जाने दो उन बातों को। लेकिन अगर तुमने मेरे जूतों पर या मेरे पैसों पर हाथ साफ़ किया तो समझ लेना, पुरखे तुम्हारे नाम को रोएंगे और तुम जेल में पड़े-पड़े चक्की पीसोगे।"

बड़े ही शान्त और निश्चल स्वर में उसने यह कहा। लेकिन मेरे हृदय में उसका डर बैठ गया, और मैं उससे और भी अधिक घृणा करने लगा।

मालिक के अलावा दुकान में दो आदमी और काम करते हैं। एक तो मेरा ममेरा भाई साशा—याकोव का बेटा, और दूसरा लाल चेहरेवाला बड़ा बाबू, बहुत ही चलता-पुर्ज़ा और चिकना-चुपड़ा। साशा खूब ठाठदार मालूम होता—खाकी रंग का फ्राकनुमा कोट, बाकायदा कलफ़-चढ़ी कमीज़, और टाई। गर्व के मारे वह मेरी ओर देखता तक नहीं।

इस दिन जब नाना मुझे अपने साथ लेकर पहली बार मालिक के पास आए और साशा से उन्होंने मुझे मदद देने के लिए कहा तो साशा का बदन तन गया और भौंहें चढ़ा कर बोला:

"लेकिन एक शर्त है। जो मैं कहूँ, वही इसे करना होगा।"

नाना ने मेरे सिर पर अपना हाथ रखा और उसे आगे की ओर झुकाते हुए बोले:

"सुना तुमने, जो यह कहे वही करना। यह तुम से बड़ा है—उम्र में भी, और ओहदे में भी।"

रोब के साथ साशा ने अपनी आंखों को टेरा। फिर बोला:

"नाना की सीख याद रखना, समझे!"

और उसने, पहले दिन से ही, पूरी बेरहमी से अपने बड़प्पन का रोब जताना शुरू कर दिया।

लेकिन मालिक उसे भी डांटता। एक दिन बोला:

"काशीरिन, यह आंखें टेरना बन्द करो।"

"नहीं तो....मैं....मैं कहां....?" साशा का मुँह लटक गया।

मालिक आसानी से पीछा छोड़ने वाला नहीं था। बोला:

"और यह थूथनी लटकाना किससे सीखा है? ऐसा न हो कि ग्राहक तुम्हें बकरी समझने लगें।"

बड़े बाबू का चेहरा खुशामद से खिल गया। मालिक के मोटे होंठ भी कानों तक फैल गये और साशा, शर्म से बुरी तरह लाल हुआ, काउण्टर की ओट में छिप गया।

मुझे इस तरह का हंसी-मज़ाक अच्छा नहीं लगता था। ऐसे अजीब-अजीब शब्दों का वे प्रयोग करते कि मालूम होता, मानो किसी गैर ज़ुबान में बातें कर रहे हों।

जब कोई महिला दुकान में आती तो मालिक का हाथ जेब से बाहर निकल आता, अपनी मूंछों को वह सहलाते और चेहरे पर एक मीठी मुस्कान चस्पाँ हो जाती, कपोलों पर झुर्रियों की बन्दनवार सज जाती, लेकिन उनकी खोहनुमा आंखें पहले की भांति ही भाव-शून्य बनी रहतीं। बड़े बाबू तन कर सीधे हो जाते, उनकी कोहनियां दोनों बाजू शरीर से सट जातीं और उनके हाथ, मानो कुरबान होने के लिए फड़फड़ा उठते। नज़र का टेरना छिपाने के

लिए साशा अपनी आंखों को मिच-मिचाने लगता और मैं, दरवाज़े से चिपका हुआ लुक-छिप कर अपने हाथों को खुजलाता और ग्राहक का हृदय जीतने के उनके कौशल को देखता रहता।

पांव में जूता पहनाने के लिए जब बड़े बाबू किसी महिला के सामने झुकते तो अपने हाथों की उंगलियों को अदबदाकर पंखे की भांति आश्चर्यजनक ढंग से फैला लेते। उनके हाथों का पोर-पोर थिरकने लगता और वह कुछ इस अन्दाज़ से पांव का स्पर्श करते मानो डरते हों कि कहीं वह टूट न जाये, हालांकि पांव बहुधा मोटा और बेडौल होता था — झुके कंधों वाली उस बोतल के समान जो उलट कर गरदन के बल खड़ी कर दी गई हो।

एक बार इन्हीं महिलाओं में से एक सहसा बल खाकर दोहरी हो गई, और झटके से अपना पांव छुड़ाते हुए बोली:

"हाय राम, तुम तो बुरी तरह गुदगुदाते हो।"

बड़े बाबू कब चूकने वाले थे। तुरन्त जवाब दिया:

"शायद आपको गुदगुदी अच्छी लगती है।"

महिला के चारों ओर वे कुछ इस तरह मंडराते कि हंसी रोकने के लिए मैं अपना मुँह फेर लेता। लेकिन बड़े बाबू के तौर-तरीके कुछ इतने मज़ेदार होते थे कि मुझसे रहा न जाता और मैं मुड़-मुड़ कर देखता। और मुझे लगता कि लाख कोशिश करने पर भी मैं अपनी उंगलियों को इतनी नफ़ासत के साथ कभी नहीं फैला सकूंगा, न ही दूसरे लोगों के पांवों में जूते पहनाने की कला में कभी इतनी दक्षता प्राप्त कर सकूंगा।

दुकान के पिछले भाग में एक छोटा-सा कमरा था। मालिक बहुधा इस कमरे में चले जाते और साशा को भी वहीं बुला लेते। अब दुकान में बड़े बाबू होते और जूता खरीदने के लिए आई महिला। मुझे याद है कि एक बार सुनहरे बालों वाली किसी स्त्री

का पांव सहलाते-सहलाते उसने अपनी उंगलियां सिकोड़ीं और होठों से सटा कर उन्हें चूम लिया।

"ओह, बड़े शैतान हो तुम!" स्त्री खिलखिला उठी।

बड़े बाबू ने चटकारा लेते हुए अपने होठों पर जीभ फेरी और आह-ऊह के सिवा उसके मुंह से और कुछ न निकला।

बड़े बाबू की मुद्रा देखते ही बनती थी। मुझे इतनी ज़ोरों से हंसी छूटी कि मेरे पांव डगमगा गए। संभलने के लिए मैंने दरवाज़े का लट्टू पकड़ा। वह मेरा बोझ क्या संभालता। झटके से दरवाज़ा खुला और मेरा सिर कांच से जा टकराया। कांच टूटकर ज़मीन पर आ गिरा। बड़े बाबू ने यह देखा तो गुस्से में खूब हाथ-पांव पटके, मालिक ने सोने की भारी अंगूठी से मेरे सिर में प्रहार किया। साशा ने भी मेरे कान ऐंठने की कोशिश की और घर लौटते समय मुझे डांटते हुए कड़े स्वर में बोला:

"अगर इसी तरह की हरकतें करते रहे तो निकाल दिये जाओगे! आखिर इतना हंसने की क्या बात थी?"

फिर उसने बताया कि यह भी एक गुर है। स्त्रियों को जो दुकानदार खुश नहीं रख सकता, वह क्या खाक बिक्री करेगा।

"ऐसे दुकानदार के पास स्त्रियां अपने-आप खिंची चली आती हैं और, जरूरत हो चाहे न हो, एकाध जोड़ा जूता खरीद ले जाती हैं। क्या तुम इतनी सी बात भी नहीं समझते? तुम्हें कुछ सिखाना तो नाहक दिमाग खपाना है!"

साशा के ये शब्द मेरे हृदय में खुब गये। दुकान में एक भी माई का लाल ऐसा नहीं था जिसने, आज दिन तक, मुझे कुछ सिखाने के लिए भूलकर भी कोई कष्ट किया हो, साशा की तो बात करना ही बेकार है।

हर रोज़, सबेरा होते ही, महाराजिन मुझे अपने ममेरे भाई

से एक घंटा पहले ही जगा देती। वह एक बीमार और चिड़चिड़े स्वभाव की स्त्री थी। उठते ही मैं समोवर गर्म करता, जितने भी चूल्हे थे सब के लिए लकड़ी लाता, जूठे बरतनों को मांजता, कपड़ों को ब्रुश से झाड़ता और अपने मालिक, बड़े बाबू तथा साशा के जूतों पर पालिश करता। दुकान में झाड़ू देता, गर्द साफ़ करता, चाय बनाता, जूतों के बण्डल लोगों के घरों पर पहुंचाता, और उसके बाद भोजन लाने घर जाता। जब तक मैं इन कामों को करता, द्वार पर मेरी जगह साशा संभालता और इस काम को अपनी शान के खिलाफ़ समझ मुझ पर बरस पड़ता:

"कद्दू की दुम, तुम्हारे बदले मुझे यहां चाकरी बजानी पड़ती है!"

मैं आज़ाद जीवन बिताने का आदी था,—खेतों और जंगलों में, मटमैली नदी ओका के तट पर, या कुनाविनो के रेत-भरे बाज़ारों में। अपना वर्तमान जीवन मुझे उबा देने वाला और कष्टप्रद मालूम होता। मुझे अपनी नानी की याद आती, अपने मित्रों का अभाव अखरता। यहां कोई ऐसा न था जिससे दो घड़ी बातें कर मैं अपना जी बहलाता। कुत्सित तथा कृत्रिम जीवन का जो रूप यहां मुझे घेरे था, उससे मेरा दम घुटने लगता।

बहुधा ऐसा होता कि महिलाएं आतीं और बिना कुछ खरीदे ही दुकान से विदा हो जातीं; और तब मेरा मालिक और उसके दोनों सहायक अपने जी की जलन मिटाते।

"काशीरिन, जूतों को उठाकर एक ओर रख दो!" मालिक आदेश देता और चाशनी में पगी अपनी मुसकान को तहा कर जेब में रख लेता।

"उसे भी यहीं आकर अपनी थूथनी दिखानी थी,—सुअरियां कहीं की! घर बैठे-बैठे जब मन नहीं लगा तो खूसट ने बाज़ार की

धूल छानने का निश्चय किया। सच कहता हूँ, अगर वह मेरी जोरू होती तो मैं उसका मिज़ाज दुरुस्त कर देता!"

उसकी पत्नी एक दुबली-पतली, काली आंखों और लम्बी नाक वाली स्त्री थी। वह उस पर चिल्लाती थी, खूब हाथ-पांव पटकती थी, मानो पति न होकर उसका चाकर हो।

बहुधा, सभ्य ढंग से गरदन झुका-झुका कर और चिकने-चुपड़े वचनों की बौछार करते हुए वे किसी महिला को विदा करते और जब वह चली जाती तो मालिक और उसके सहायक उसके बारे में गंदी और शर्मनाक बातें बघारते। तब मेरे मन में होता कि मैं भाग कर जाऊं, बाज़ार में उस महिला को पकडूं और उसे वह सब बताऊं जो कि उन्होंने उसके बारे में अपने मुँह से उगला था।

स्वभावतः, यह तो मैं जानता था कि लोग पीठ-पीछे बुरी बात कहने के आदी होते हैं, लेकिन इन तीनों के मुँह से हर किसी के बारे में इस तरह की बातें सुनकर ख़ास तौर से झुंझलाहट होती, मानो इस धरती पर वे ही सब से अच्छे हों और अन्य सब पर फबती कसने के लिए ही उन्हें इस दुनिया में भेजा गया हो। वे अधिकांश लोगों से ईर्ष्या करते, उनके मुँह से किसी की प्रशंसा नहीं निकलती और अपने ज़खीरे में, हरेक के बारे में वे कुछ न कुछ कुत्सित बातें जमा रखते।

एक दिन दुकान में एक युवती स्त्री आई: चमकदार आंखें, गुलाबी कपोल, बदन पर मखमल का चोगा जिस में काले फ़र का कालर लगा था। काले फ़र से घिरा उसका चेहरा किसी दैवी फूल की भांति खिला हुआ था। और उस समय जब उसने अपना चोगा उतार कर साशा की बांह पर डाला, उसका सौन्दर्य और भी जगमगा उठा। उसके कानों में हीरों के बुंदे चमक रहे थे, और नीले-भूरे रंग के खूब चुस्त गाउन में उसके शरीर की

कमनीय रेखाएं और भी उभर आई थीं। उसे देखकर मुझे सौन्दर्य की देवी वसिलीसा की याद हो आई, और मुझे लगा कि अगर और भी कुछ नहीं तो यह किसी गवर्नर की पत्नी निश्चय ही होगी। उसके स्वागत-अभिवादन में वे फ़र्श चूमने लगे, अग्नि-पूजकों की भांति वे उसके सामने दोहरे हो गए, मधु में डूबे शब्दों की उन्होंने झड़ी लगा दी। तीनों के तीनों, उतावले होकर, पागलों की भांति दुकान में इधर-से-उधर मंडराने लगे। शोकेसों के कांच में उनके अक्स झलकते और ऐसा मालूम होता मानो प्रत्येक चीज़ लपटों से घिरी है, पिघल कर एकाकार हो रही है और जैसे अभी, देखते न देखते, वह एक नया रूप और नया आकार-प्रकार ग्रहण कर लेगी।

जल्दी से जूतों का एक कीमती जोड़ा खरीदने के बाद जब वह चली गई तो मालिक ने अपनी जीभ से चटकारा लिया और फुंकारते हुए बोला:

"कुतिया है, कुतिया!"

"एक शब्द में — नाटक में कूल्हे मटकाने वाली!" बड़े बाबू ने भी नाक-भौंह चढ़ाते हुए भुनभुनाकर कहा।

और वे, आपस में, उस महिला के यारों तथा रंगीन जीवन के किस्से बयान करने लगे।

दोपहर का भोजन करने के बाद मालिक झपकी लेने दुकान के पीछे वाले छोटे कमरे में चले गये। मौका देख मैंने उनकी सोने की घड़ी उठाई उसका ढक्कन खोला और उसके पुर्जों में कुछ सिरका चुआ दिया। मालिक की जब आंखें खुलीं और घड़ी हाथ में लिए जब वह दुकान में बड़बड़ाते हुए आए तो मेरे आनन्द की सीमा न रही।

"यह एक नयी मुसीबत देखो — मेरी घड़ी एकाएक पसीने

में तर हो गई! इस तरह की बात पहले कभी नहीं हुई थी। घड़ी और पसीने में एकदम तर! कौन जाने क्या मुसीबत आनेवाली है!"

दुकान की इस हल-चल और घर के सारे काम के बावजूद सूनापन मुझे एक क्षण के लिए भी न छोड़ता और मैं बार-बार सोचता: क्या-कुछ मैं करूं जिससे परेशान होकर ये लोग मुझे दुकान से निकाल दें?

हिम कणों से आच्छादित लोग दुकान के दरवाज़े के सामने से तेज़ी से गुज़रते। ऐसा मालूम होता मानो उन्हें किसी की मुर्दनी में शामिल होना था, लेकिन देर हो गई और अब, अर्थी का साथ पकड़ने के लिए वे तेज़ी से कब्रिस्तान की ओर लपके जा रहे हैं। बोझा-गाड़ियों में जुते घोड़े बर्फ़ में फंसे पहियों को खींचने के लिए कांखते और ज़ोर लगाते। लैण्ट (व्रत-उपवासों) के दिन थे। दुकान के पीछे ही गिरजा था जिस की घंटियों की उदास ध्वनि प्रति दिन कानों से आकर टकराती। वे बराबर बजती ही रहती और ऐसा मालूम होता मानो कोई तकिये से सिर पर प्रहार कर रहा हो जिस से चोट तो नहीं लगती, मगर दिमाग़ भन्ना जाता है।

एक दिन, उस समय जबकि मैं दुकान के दरवाज़े के नज़दीक माल की एक नयी पेटी खोल रहा था, गिरजे का चौकीदार मेरे पास आया। बूढ़ा ठूंठ, कपड़े की गुड़िया की भांति लिजबिज, चिथड़े हुआ हुलिया, मानो कुत्तों ने घेर कर खूब नोंचा-खरोंचा हो।

"बेटा, क्या तुम एक जोड़ा गैलोश दुकान से तिड़ी करके मुझे नहीं दे सकते?" उसने पूछा।

मैंने कुछ नहीं कहा। वह एक खाली पेटी पर बैठ गया। उसने जमुहाई ली, मुँह के सामने क्रॉस का चिन्ह बनाया और अपनी बात को दोहराते हुए बोला:

"बोलो, मेरे लिए इतना करोगे न?"

"चोरी करना बुरी बात है," मैंने उसे बताया।

"फिर भी सब करते हैं। बोलो बेटा, क्या मेरे बुढ़ापे का खयाल नहीं करोगे?" वह मुझे अच्छा लगा। सब से बढ़ कर यह कि वह उन लोगों से भिन्न था जिन के बीच आजकल मेरा जीवन बीत रहा था। उसे इस बात का इतना पक्का विश्वास था कि मैं उसके लिए चोरी करूंगा ही, कि मैं एक जोड़ा गैलोश उठा कर खिड़की से चुपचाप उसे पकड़ा देने को राज़ी हो गया।

"बहुत खूब," उसने इत्मीनान के साथ कहा और सन्तोष का कोई ख़ास भाव प्रकट किये बिना बोला।—"कहीं मुझे चकमा तो नहीं दे रहे? ठीक है, ठीक है, तुम उनमें से नहीं हो जो लोगों को बेवकूफ़ बनाते हैं।"

एक या दो मिनट तक वह चुपचाप बैठा हुआ अपने बूट की एड़ी से नम और गंदी बर्फ़ को कुरेदता रहा। फिर उसने अपना मिट्टी का पाइप सुलगाया और एकाएक ऐसी बात उसने कही कि मैं चौंक उठा:

"और इस बात का ही क्या भरोसा कि मैं खुद तुम्हें बेवकूफ़ न बना रहा हूँ? अगर मैं उन्हीं जूतों को लेकर तुम्हारे मालिक के पास जाऊं और कहूं कि तुमने आधे रूबल में उन्हें मेरे हाथ बेच दिया है तो तुम क्या करोगे? उनकी लागत है दो रूबल से भी ज़्यादा, और तुमने बेच दिया उन्हें आधे रूबल में! केवल इसीलिये तो कि कुछ तुम्हारे जेब-ख़र्च के वास्ते भी हो जाये,—क्यों, ठीक है न?"

मुझे जैसे काठ मार गया। गूंगे की भांति मैंने उसकी ओर देखा, मानो उसने जो धमकी दी थी, उसे वह पूरा कर भी चुका हो। और वह अपनी आंखों को जूते पर टिकाए और पाइप

से नीला धुआं छोड़ते हुए जो उसके सिर के चारों ओर मंडरा रहा था, इत्मीनान के साथ गुनगुने स्वर में बोलता ही गया:

"और कौन जाने, खुद तुम्हारे मालिक ने ही मेरे पीछे पड़कर मुझे इस बात के लिए उकसाया हो कि 'जाओ, और मेरे उस छोकरे की जांच करके देखो कि कहीं वह चोरी तो नहीं करता'। बोलो, क्या करोगे तब तुम?"

"मैं तुम्हें जूते नहीं दूंगा," झुंझला कर मैंने कहा।

"नहीं, एक बार वचन देने के बाद तुम अब पीछे कैसे हट सकते हो?"

उसने मेरा हाथ थाम लिया और मुझे अपनी ओर खींचा। फिर अपनी ठंडी उंगली से मेरे माथे को ठकठकाते हुए बोला:

"तुम तैयार कैसे हो गये, मानो जूते भेंट करना तुम्हारे बाएं हाथ का खेल हो,—क्यों? क्या मानते हो?"

"खुद तुम्हींने तो इसके लिए कहा था, कहा था न?"

"कहने को तो मैं दुनिया भर की चीज़ों के लिए कह सकता हूं। अगर मैं कहूं कि गिरजे में चोरी करो, तो क्या तुम वहां चोरी करोगे? इस प्रकार तुम किस-किस के बहकावे में आते रहोगे, मेरे नन्हे भोंदू भट्ट!"

उसने मुझे धकेल कर अलग कर दिया और खड़ा हो गया।

"मुझे चोरी के जूते नहीं चाहियें। फिर मैं ऐसा जैण्टुलमैन भी नहीं हूं जो जूतों के बिना रह नहीं सकता। मैं तो मज़ाक कर रहा था। तुमने मेरा विश्वास किया, इसलिए मैं तुम्हें गिरजे के घंटेघर पर चढ़ने दूंगा, ईस्टर के दिन आना। तुम घंटा बजा सकोगे, और नगर का समूचा दृश्य तुम्हें वहां से दिखाई देगा।"

"नगर तो मेरा देखा-भाला है।"

"घंटेघर से और भी सुन्दर दिखाई देता है।"

धीमे डगों से, जूतों की नोक को बर्फ़ में गड़ाते हुए, वह वहां से चल दिया और अन्त में, गिरजे के एक कोने के पास से मुड़ कर, आंखों से ओझल हो गया। उसे जाता हुआ देखते समय मैं एक दुःखद बेचैनी से हैरान हो उठा — क्या सचमुच वह बूढ़ा मुझसे मज़ाक कर रहा था, अथवा मेरी जांच करने के लिए मालिक ने उसे भेजा था? दुकान पर वापिस लौटने का मुझे साहस नहीं हुआ।

तभी, साशा दौड़ता हुआ आंगन में आया और चिल्ला कर बोला:

"इतनी देर हो गई, न जाने यहां कौन से पापड़ बेल रहे हो!"

एकाएक गुस्से की लहर मेरे शरीर में दौड़ गई। संडसी हाथ में उठाते ही उसका चिल्लाना बन्द हो गया।

मैं जानता था कि वह और बड़े बाबू मालिक के यहां चोरी करते थे। बूट या जूतों का एक जोड़ा उठा कर वे स्टोव की चिमनी में छिपा देते और दुकान बन्द करते समय चोरी के जूतों को कोट की आस्तीन में छिपा कर घर ले जाते। मुझे यह अच्छा नहीं लगता, और इससे मुझे डर भी मालूम होता। मालिक की चेतावनी को मैं भूला नहीं था।

"क्या तुम चोरी करते हो?" मैंने साशा से पूछा।

"नहीं, मैं नहीं," उसने कठोरता से कहा। "चारी बड़े बाबू करते हैं। मैं तो केवल उनकी मदद करता हूँ। वह कहते हैं — मैं जैसा कहूं, वैसा करो। अगर मैं न करूं तो वह किसी समय भी अपनी गंदी चाल में मुझे फसा सकते हैं। और जहां तक मालिक की बात है, किसी ज़माने में वह खुद भी दुकान में बड़े बाबू का काम कर चुके हैं। वह सभी हथकण्डों से परिचित हैं। लेकिन तुम अपना मुँह बन्द रखना।"

बोलते समय वह बराबर आईने में अपना चेहरा देखता और

अपनी टाई-को ठीक करता रहा। उसकी उंगलियां बड़े बाबू की भांति अन्दाज़ में फैली थीं। वह हर घड़ी मुझ पर अपना रोब जमाने का प्रयत्न करता,—यह कि वह बड़ा है और इसलिए मुझसे चाहे जो काम ले सकता है। मुझे आदेश देते समय वह भारी आवाज़ में चिल्लाता और फ़ौजी अन्दाज़ में अंगसंचालन करता। यों कद में मैं उससे अधिक लम्बा और मज़बूत था, लेकिन दुबला-पतला और बेडौल था। इसके प्रतिकूल वह मांसल था, ठोस और चंचल। फ्राक कोट पहन कर वह मुझे बड़ा रौबीला, किन्तु कुछ हास्यास्पद मालूम होता। महाराजिन से वह चिढ़ता था। और सचमुच, वह थी भी अजीब स्त्री—चाहे लाख सिर मारो, फिर भी कभी यह निश्चय न कर सको कि वह अच्छी है या बुरी।

"मुझे तो लड़ाई-भिड़ाई में सब से ज़्यादा आनन्द आता है," अपनी दमकती हुई काली आंखों को बरबट्टा-सी खोल कर वह कहती।—"मुर्गे, कुत्ते, या दहकान—लड़ने वाले चाहे जो भी हों—मेरे लिए सब एक से हैं!"

अगर मुर्गों या कबूतरों के बीच आंगन में कभी लड़ाई शुरू हो जाती तो वह हाथ के काम को छोड़कर खिड़की पर जम जाती और, दीन-दुनियाँ से बेखबर, लड़ाई के ख़त्म होने तक वहीं खड़ी रहती। जब सांझ होती तो वह साशा और मुझसे कहती:

"यहां बैठे-बैठे क्या मक्खियां मार रहे हो, लड़को! बाहर निकलो, खूब लड़ो-झगड़ो, ज़ोर आज़माई करो!"

साशा झुंझला उठता।

"मैं लड़का नहीं हूँ, मूर्खों की नानी! मैं शाप असिस्टैन्ट हूँ!"

"बस-बस रहने दो। मैं नहीं मान सकती। मेरे लिए तो तुम लड़के ही रहोगे, जब तक कि तुम्हारा विवाह नहीं हो जाता!"

"मूर्खों की नानी, बोले मूर्खों की बानी!"

"हां मूर्खों की नानी—शैतान की खाला से तो अच्छी हूँ जिसकी चतुराई से भगवान भी डरता है!"

उसका बातें करने का ढंग साशा को ख़ासतौर से बुरा मालूम होता। जब वह उसे चिढ़ाता तो अपनी दृष्टि से उसे ध्वस्त करते हुए वह कहती:

"मुआ तिलचट्टा, मोरी का कीड़ा। भगवान भी कहता होगा कि बड़ी गलती हुई इसे दुनिया में भेज कर!"

एक से अधिक बार मुझे फुसलाकर साशा ने इस बात के लिए तैयार करने की कोशिश की कि मैं उसके तकिये में पिनें खोंस दूं, जब वह सोती हो तो उसके मुँह पर काली पालिश या काजल पोत दूं, या उसके साथ इसी तरह की अन्य कोई हरकत करूं। लेकिन मैं महाराजिन से डरता था और मुझे पक्का विश्वास था कि वह मुझे तुरन्त पकड़ लेगी। वह बहुत ही उचटी हुई सी नींद सोती थी। बहुधा ऐसा होता कि वह सोते-सोते जग जाती, लैम्प जलाती और किसी एक कोने में नज़र गड़ाए ताकती रहती। कभी-कभी वह उठकर स्टोव के पीछे मेरे बिस्तरे के पास चली आती, मुझे झंझोड़ती और बैठी हुई आवाज़ में फुसफुसाती:

"न जाने क्यों मुझे नींद नहीं आती, आल्योशा। डर-सा लगता है। कुछ बात ही करो।"

और मैं, अध-जगी हालत में, उसे कोई कहानी सुनाता और वह, अपने बदन को आगे-पीछे झुलाती, चुपचाप बैठी सुनती रहती। मुझे ऐसा मालूम होता मानो उसके गर्म बदन से मोम और लोबान की गंध आ रही हो, और यह कि वह जल्दी ही मर जायेगी, शायद इसी क्षण। डर के मारे मैं और भी ज़ोर से बोलने लगता, लेकिन वह हमेशा टोक देती:

"शिः, तुम उन हरामज़ादों को भी जगा दोगे और वे समझेंगे कि यहां प्रेमालाप हो रहा है।"

वह हमेशा एक ही मुद्रा में और उसी जगह पर बैठती—बदन को एक दम झुकाकर दोहरा लिए, हाथों को घुटनों के बीच खोंसे और हड्डियाँ भर रह गईं अपनी टांगों को कस कर एक-दूसरे से सटाए। घर के कते मोटे सूत का लबादा वह पहनती थी। लेकिन चपटी छातियों वाले उसके शरीर की पसलियां, पिचके हुए पीपे की सलवटों की भांति, उसमें से भी साफ़ उभरी हुई दिखाई देतीं। बड़ी देर तक वह इसी तरह चुपचाप बैठी रहती और फिर सहसा फुसफुसा उठती:

"मैं मर जाती तो इन सब दुःखों से छूट जाती।"

या शून्य में किसी को लक्ष्य कर वह कहती:

"माना कि मैंने अपने जीवन के दिन पूरे कर लिए, लेकिन इस से क्या?"

वह आव देखती न ताव, और कहानी के बीच में ही उसका कटु स्वर सुनाई देता:

"अब जाकर सोओ!"

फिर वह उठती और उसका शरीर, धीरे-धीरे धुंधला पड़ता हुआ, रसोई के अंधेरे में विलीन हो जाता।

साशा, उसकी पीठ पीछे, उसे बूढ़ी डायन कहता।

एक दिन मैंने उसे उकसाया:

"उसके मुँह पर कहो तो जानें!"

"मैं क्या उससे डरता हूँ?" उसने जवाब दिया।

फिर तुरन्त ही उसने अपने माथे को सिकोड़ा और बोला:

"नहीं, मैं उसके मुँह पर नहीं कहूँगा। कौन जाने, वह सचमुच में डायन हो।"

घृणा और चिड़चिड़ापन एक क्षण के लिए भी उसका साथ नहीं छोड़ता। अन्य सब की भांति वह मेरे साथ भी कोई रू-रियायत नहीं बरतती। सुबह के छै बजे ही वह मेरी टांग पकड़ कर खींचती और चिल्लाती :

"बहुत खर्राटे ले चुके! उठकर अब लकड़ी लाओ, समोवर गर्म करो, आलू छीलो!"

उसका चिल्लाना सुनकर साशा की भी आंखें खुल जातीं।

"क्या आसमान सिर पर उठा रखा है?" वह बड़बड़ाता। —"मैं मालिक से जाकर शिकायत करूंगा कि मुझे सोने तक नहीं देती।"

नींद न आने के कारण सूज कर लाल हुईं उसकी आंखें साशा की दिशा में कौंद जातीं और वह, हड्डियों के अपने ढांचे को लिए, द्रुत गति से रसोई में उठा-धरी करने लगती।

"मुआ कहीं का! भगवान भी पछताता होगा अपनी इस भारी भूल को देखकर। मेरे पाले पड़ता तो चमड़ी उधेड़ कर रख देती!"

"नासपीटी!" साशा उसे कोसता और फिर बाद में, दुकान जाते समय, मुझसे कहता:—"मैं इसका पत्ता कटा कर छोड़ूंगा। इसकी आंख बचा कर मैं खाने में नमक झोंक दूंगा। जब हर चीज़ ज़हर मालूम होगी तो वे इसे निकाल बाहर करेंगे। या फिर मिट्टी का तेल। यह काम तो तुम आसानी से कर सकते हो न?"

"तुम खुद क्यों नहीं करते?"

"डरपोक!" उसने भुनभुनाकर कहा।

और महाराजिन, हमारे देखते-देखते, मर गई। एक दिन समोवर को उठाने के लिए झुके-झुके ही वह सहसा ढेर हो गई, मानो किसी ने उसकी छाती पर आघात किया हो। वह बाज़ू के

बल लुढ़क गई, उसकी बांहों में ऐंठन हुई और मुँह के एक कोने से खून टपकने लगा।

हम दोनों तुरन्त ही भांप गए कि वह मर चुकी है, लेकिन भय से ग्रस्त हम वहीं खड़े-खड़े केवल उसे देखते रहे, मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। आखिर साशा भाग कर रसोई से बाहर गया और मैं, किंकर्तव्यविमूढ़, खिड़की के शीशे से बदन सटाए सड़क की रोशनी की दिशा में रुख किये खड़ा रहा। मालिक आए, चिन्ताग्रस्त भाव से झुके उसके चेहरे का स्पर्श किया, फिर बोले:

"अरे, यह तो एकदम मर चुकी है। भला सोचो तो, यह क्या हुआ?"

कोने में देवी-देवताओं का आला था। वहां चमत्कार के पुंज निकोला सन्त की एक छोटी-सी प्रतिमा रखी थी। उसकी ओर झुकते हुए मालिक ने तुरन्त क्रास का चिन्ह बनाया। फिर प्रार्थना पूरी करने के बाद दरवाज़े की ओर मुँह करके वह चिल्लाया:

"काशीरिन, भाग कर जाओ और पुलिस को खबर करो!"

पुलिसमैन आया, कुछ इधर-उधर खटरपटर करने के बाद उसने एक मुद्रा अपनी जेब के हवाले की और चला गया। इसके शीघ्र बाद ही मुर्दा ढोने वाले एक ठेले को अपने साथ लिए वह वापिस लौट आया। सिर और पांव पकड़ कर उन्होंने महाराजिन को उठाया और उसे बाहर ले गए। मालिक की पत्नी दरवाज़े से झांक कर यह सब देख रही थी।

"फ़र्श साफ़ करो!" चिल्लाकर उसने मुझ से कहा।

"यह भी अच्छा हुआ कि वह सांझ के समय ही मरी," मालिक ने कहा।

मेरी समझ में नहीं आया कि इसमें ऐसी अच्छा होने की क्या बात थी। रात को, उस समय जब हम सोने के लिए गए, साशा का भय से बुरा हाल था। बोला:

"बत्ती न बुझाना!"

"क्यों, डर लगता है?"

उसने अपना सिर कम्बल से ढँक लिया और बहुत देर तक चुपचाप पड़ा रहा। रात भी एकदम चुप और निस्तब्ध थी, मानो वह भी कान लगा कर कुछ सुनना चाहती हो। और मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो अगले ही क्षण घंटियाँ बजने लगेंगी और नगर के लोग भय से आक्रान्त होकर इधर-उधर भागना और चिल्लाना शुरू कर देंगे।

साशा ने कम्बल से बाहर अपनी थूथनी की एक झलक दिखाते हुए, धीमे स्वर में कहा:

"चलो, स्टोव पर चल कर दोनों एक साथ सोएं।"

"स्टोव के ऊपर तो बहुत गर्म होगा।"

उसे जैसे फिर सांप सूंघ गया।

"कितनी अचानक वह मर गई," अन्त में वह बोला,—"और मैं था कि उसे डायन समझ रहा था। मेरी आंखों से तो नींद गायब हो गई है।"

"यही मेरा भी हाल है।"

उसके बाद उसने बताना शुरू किया कि किस प्रकार मुर्दे अपनी कब्रों में से उठ कर आधी रात तक नगर का चक्कर लगाते और अपने सगे-सम्बंधियों तथा घरों की खोज करते हैं।

"मुर्दों को केवल अपने नगर की याद रहती है," उसने फुसफुसा कर कहा, मोहल्लों-टोलों और घरों की नहीं।"

निस्तब्धता अब और भी गहरी हो गई, और ऐसा मालूम

हुआ मानो अंधेरा भी अधिकाधिक घना होता जा रहा है। साशा ने अपना सिर उठाया।

"मेरी पेटी में बड़ी-बड़ी चीज़ें हैं, देखोगे?" उसने पूछा।

उसकी पेटी बहुत दिनों से मेरे अचरज का विषय बनी हुई थी कि न जाने उसने उसमें क्या-क्या छिपा रखा है। वह हमेशा उस पर ताला जड़े रखता। और उसे खोलते समय हद से ज़्यादा सावधानी बरतता। अगर मैं कभी झांक कर देखने की कोशिश करता तो वह कड़े स्वर में टोकता:

"दूर हट, क्या बिज्जू की भांति ताक रहा है!"

अब, खुद उसके कहने पर, जब मैंने देखने की इच्छा प्रकट की तो वह उठकर बिस्तरे पर बैठ गया और सदा की भांति मालिकाना अन्दाज़ में उसने आदेश दिया कि मैं पेटी को उठा कर उसके पांव के पास रखूं। कुंजी को एक ज़ंजीर में डालकर उसने गले में पहन रखा था और साथ में उसका बपतिस्मा क्रास भी लटका हुआ था। एक बार रसोई के अंधेरे की ओर देखने के बाद रौब के साथ उसने अपनी भौंहों को सिकोड़ा, फिर पेटी के ताले को खोला और अन्त में, ढक्कन पर इस तरह फूंक मार कर मानो वह गर्म हो, उसने पेटी को खोला। पेटी में कई जोड़े रखे थे। उसने उन्हें बाहर निकाल लिया।

पेटी का आधे से भी ज़्यादा हिस्सा गोलियों के बक्सों, चाय के पैकिटों के रंग-बिरंगे कागज़ों, सार्डीन मछली और काली पालिश के खाली डिब्बों से भरा था।

"यह सब क्या है?"

"अभी दिखाता हूँ।"

पेटी को अपनी टांगों के बीच लेकर उसे भींचते और ऊपर झुकते हुए उसने फुसफुसा कर एक मंत्र-सा पढ़ा:

"हे परम पिता, स्वर्ग में वास करनेवाले..."

मुझे उम्मीद थी कि पेटी में खिलौने देखने को मिलेंगे। मैं खिलौनों से सदा वंचित रहा था। यों कहने को मैं खिलौनों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाता था, किन्तु मन ही मन मैं उनसे ईर्ष्या करता था जिनके पास खिलौने होते थे। यह सोच कर मैं मन ही मन प्रसन्न होता कि साशा के पास, उसकी गम्भीरता और रूखेपन के बावजूद खिलौने होने चाहिए। निश्चय ही उसके पास खिलौने हैं जिन्हें शर्म के मारे उसने कहीं छिपा रखा है। उसकी यह लज्जा मुझे भली मालूम होती।

उसने पहले डिब्बे को खोला और उसमें से चश्मे का एक जोड़ा फ्रेम निकाला। उसने उन्हें अपनी नाक पर लगाया, मेरी ओर कड़ी नजर से देखा और फिर बोला:

"इन में शीशा नहीं है तो क्या हुआ। बिना शीशे के भी इनका वैसा ही रौब पड़ता है।"

"ज़रा मुझे दो। मैं भी लगा कर देखूं।"

"ये तुम्हारी आंखों से मेल नहीं खाते। ये काली आंखों के लिए हैं, और तुम्हारी आंखें कुछ भूरी हैं।" उसने मुझे समझाया, दो टूक अन्दाज़ में। उसका स्वर, अप्रत्याशित रूप में, कुछ इतना ऊंचा हो गया कि भयभीत दृष्टि से उसने कई बार रसोई की ओर देखा।

काली पालिश के एक टीन में तरह-तरह के बटनों का ज़खीरा मौजूद था।

"ये सब मुझे बाज़ार में पड़े हुए मिले!" उसने शेखी बघारते हुए कहा। "ये सब अकेले मैंने ही जमा किए हैं। पूरे सैंतीस हैं।"

तीसरे डिब्बे में पीतल की बड़ी-बड़ी पिनें थीं। ये भी सड़क पर पड़ी मिली थीं। कुछ मोचियों के काम की कीलें और कुछ

जूतों के बक्सुवे — घिसे-पिटे, तुड़े-मुड़े, सालिम बस एक-दो ही थे। एक हाथीदांत की मूंठ थी और एक पीतल की, दरवाज़ों में जैसी लगी रहती है। एक जनानी कंघी और एक पुस्तक — सपनों तथा भाग्य का भेद बताने वाली। इनके अलावा इसी कोटि की अन्य कितनी ही चीज़ें थीं।

चिथड़ों और हड्डियों की खोज करते समय अगर मैं चाहता तो एक महीने के भीतर इस से दस गुना कबाड़ जमा कर सकता था। साशा के इस ज़खीरे को देख कर मुझे बड़ी निराशा और झुंझलाहट हुई और उसके प्रति दया से मेरा मन भर गया। वह प्रत्येक चीज़ को बड़े ध्यान से देखता, बड़े चाव से अपनी उंगलियों से उसे सहलाता, उसके मोटे होंठ इस प्रकार भिंचे हुए थे मानो कर्तव्य-पालन में दत्त-चित्त हों, बड़ी-बड़ी पकौड़ा-सी आंखें, मानो अपना स्नेह उंडेलने के लिए, बाहर को निकली हुई थीं। लेकिन चश्मे के फ्रेम ने, उसके चेहरे की सारी सरलता और कौतुक भाव को, बड़ा ही अटपटा बना दिया था।

"इस सब का तुम क्या करोगे?"

चश्मे के भीतर से उसने मुझ पर एक उड़ती हुई नज़र डाली और अपनी आयु के अनुरूप फटी हुई सी आवाज़ में बोला:

"क्यों, तुम्हें कुछ चाहिये?"

"नहीं, धन्यवाद।"

एक क्षण तक वह कुछ नहीं बोला। मेरे इन्कार करने और उसके ज़खीरे में दिलचस्पी न दिखाने से, स्पष्ट ही, उसके हृदय में चोट लगी थी।

"एक तौलिया ले लो," आख़िर उसने कहा, "इन सब चीज़ों को चमकाएंगे। देखो न, इन पर कितनी धूल जमा हो गई है।"

सब चीज़ों को चमकाने और उन्हें पेटी में रखने के बाद

दीवार की ओर मुँह करके वह बगल के बल लेट गया। बाहर बारिश शुरू हो गई थी, पानी छत से टपक रहा था और वायु के थपेड़े खिड़की से टकरा रहे थे।

"ज़रा ज़मीन सूख जाने दो, बगीचे में तुम्हें एक ऐसी चीज़ दिखाऊंगा कि तुम्हारे होश फाख़्ता हो जाएंगे!" मेरी ओर मुँह किए बिना ही उसने कहा।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप बिस्तरे में घुस गया।

कुछ क्षण बाद वह सहसा उछल कर खड़ा हो गया, दीवार को अपने पँजों से नोचने लगा और ऐसी आवाज़ में बोला जो, बिना किसी सन्देह के उसके भय को प्रकट करती थी:

"मेरे रोम-रोम में डर समा गया है... हे भगवान, डर ने मुझे कितना घबरा दिया है! मुझ पर दया करो, भगवान!"

खुद मुझे भी भय के मारे पसीना छूटने लगा, शरीर ठंडा पड़ गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो महाराजिन, मेरी ओर पीठ किए, खिड़की के पास खड़ी हो, शीशे से माथा सटाए, ठीक उसी मुद्रा में जिस में कि वह मुर्गों का लड़ना देखा करती थी।

साशा ने सुबकी भरी और दीवार को उसी प्रकार नोचता रहा। मैं उठा और लपक कर रसोई के फ़र्श को इस प्रकार पार किया मानो उस पर दहकते हुए कोयले बिछे हों। उसके बिस्तर में घुस कर मैं उसकी बगल में लेट गया।

बहुत देर तक हम दोनों की आंखों से आंसू बहते रहे और अन्त में हम थक कर सो गये।

कुछ दिन बाद हमारी एक छुट्टी हुई। केवल दोपहर तक हमने काम किया। दोपहर का भोजन घर जाकर करना था। जब मालिक और उसकी पत्नी विश्राम करने के लिए चले गए तो साशा ने भेद-भरे ढंग से मुझ से कहा:

"आओ मेरे साथ!"

मैंने अन्दाज़ लगाया कि वह कोई ऐसी चीज़ दिखाना चाहता है जिसे देख कर मेरे होश फ़ाख्ता हो जायेंगे।

हम बगीचे में गए। दो घरों के बीच भूमि की एक संकरी पट्टी पर लैम के करीब दस-पन्द्रह पेड़ खड़े थे जिन के सबल तनों पर काई जमी थी और जिनकी नंगी-बूची, जीवन शून्य टहनियां आकाश का मुँह ताक रही थीं। उनमें किसी पक्षी ने एक घोंसला तक नहीं बनाया था। वृक्ष कब्रों के भीमाकार पत्थरों की भांति खड़े थे। लैम के इन पेड़ों के सिवा यहां और कुछ नहीं उगा था, न कहीं कोई झाड़ी दिखाई देती थी, न घास की एक पत्ती ही नज़र आती थी। पगडंडियों की ज़मीन लोहे की भांति कड़ी और काली पड़ गई थी, और आस-पास के उन भूखण्डों पर जिन्हें पिछले वर्ष के पत्तों ने गल-सड़ कर ढक नहीं दिया था, गंदे पानी में पैदा होने वाली काई की भांति मिट्टी की मोटी परत चढ़ी थी।

साशा घर के कोने के पास से मुड़ा और सड़क की ओर वाले बाड़े की दिशा में चल कर लैम के एक पेड़ के नीचे रुक गया। वहां एक मिनट तक खड़ा रह कर उसने पड़ोस के एक घर की धुंधली खिड़की की ओर ताक कर देखा। इसके बाद वह घुटनों के बल धरती पर बैठ गया, पत्तों को अपने हाथों से खोद कर उसने अलग कर दिया और पेड़ की गांठ-गठीली जड़ दिखाई देने लगीं। जड़ के पास ही दो ईंटें ज़मीन में धंसी हुई थीं। उसने ईंटों को खींच कर बाहर निकाल लिया। उनके नीचे छत के टीन का एक टुकड़ा रखा था। टीन के नीचे एक लकड़ी का चौकोर तख़्ता था। अन्त में मुझे एक बड़ा सा छेद दिखाई दिया जो जड़ के नीचे तक चला गया था।

साशा ने एक दियासलाई जलाई और मोमबत्ती के टुकड़े

को रोशन किया। फिर मोमबत्ती के टुकड़े को छेद के भीतर ले जाते हुए बोला:

"इधर देखो। बस, डरना नहीं।"

लेकिन डरा हुआ वह खुद था, यह बात प्रत्यक्ष थी। मोमबत्ती उसके हाथ में कांप रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। होंठ, बेहूदा ढंग से, लटक आए थे। आंखें नम थीं और उसका दूसरा छुट्टा हाथ, बार-बार फिसलकर, पीठ पीछे पहुँच जाता था। मुझे भी उसके डर ने ग्रस लिया। अत्यन्त सावधानी के साथ मैंने जड़ के नीचे देखा जो किसी लघु सुरंग की मेहराब के समान मालूम होती थी। साशा ने अब तीन मोमबत्तियां जला ली थीं जिनकी नीली रोशनी से सुरंग आलोकित थी। खोह एक साधारण बाल्टी जितनी गहरी और उससे अधिक चौड़ी थी। उसकी दीवारों पर रंगीन कांच और चीनी के टुकड़े जड़े थे। बीच में एक चबूतरा-सा था जिस पर एक छोटा-सा ताबूत रखा था। ताबूत पर टीन की कतरन लिपटी थी और उसका आधा भाग गोटे-ऐसी किसी चीज़ से ढंका था। इस आच्छादन के भीतर से भूरे पँजे और चिड़े की चोंच दिखाई पड़ रही थी। सिर की ओर एक नन्ही-सी टिक-टिकी थी जिस पर पीतल का एक छोटा सा बपतिस्मा क्रास रखा था और तीन ओर अंग्रेज़ी मिठाई की रुपहली और सुनहरी पन्नियों से बने चम-चमाते हाल्डरों में मोमबत्तियां जल रही थीं।

मोमबत्तियों की नुकीली लौ खोह के मुँह की ओर लपलपा रही थी। खोह के भीतरी भाग में बहुरंगी रोशनी के चकत्तों और चमक की हल्की चमचमाहट फैली थी। मिट्टी तथा पिघलते हुए मोम की गंध और सड़ावन के थपेड़े मेरे चेहरे से आकर टकरा रहे थे और खोह के भीतर की खण्डित इन्द्रधनुषी आभा मेरी आंखों में नाच तथा थिरक रही थी। इन सब की वजह से मेरा डर तो

विलीन हो गया, लेकिन उसका स्थान अचरज की एक बोझिल भावना ने ले लिया।

"सुन्दर है न?" साशा ने पूछा।

"यह सब किस लिये है?"

साशा ने बताया:

"यह एक समाधि है। क्या देखने से समाधि नहीं मालूम होता?"

"मैं नहीं जानता।"

"और ताबूत में चिड़े का शव है। कौन जाने कभी कोई ऐसा चमत्कार हो कि यह शव एक पवित्र स्मारक का रूप धारण कर ले। यह उन पक्षियों में से है जिसे बिना किसी कसूर के अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।"

"क्या तुम्हें यह मरा हुआ ही मिला था?"

"नहीं। यह उड़कर सायबान में आ गया था। अपनी टोपी फेंक कर मैंने इसे पकड़ लिया और दबोच कर मार डाला।"

"क्यों?"

"बस यों ही।"

उसने मेरी आंखों में देखा और फिर पूछा:

"क्या यह बढ़िया नहीं है?"

"नहीं!"

वह खोह के ऊपर झुका, जल्दी से उस पर लकड़ी का तख़्ता ढक दिया, फिर टीन रखा और ईंटों को जैसा का तैसा जमा दिया। इसके बाद वह खड़ा हो गया और घुटनों पर से धूल झाड़ते हुए कड़े स्वर में बोला:

"तुम्हें यह क्यों पसन्द नहीं आया?"

"इसलिए कि मुझे पक्षी पर दया आती है।"

उसने मुझे कुछ ऐसी सूनी दृष्टि से देखा कि लगता था जैसे वह एकाएक अन्धा हो गया है। फिर, मेरी छाती पर आघात करते हुए, वह चिल्ला उठा:

"काठ के उल्लू! तुम मुझसे जलते हो, बस और कुछ नहीं! इसीलिए तुम्हें यह पसन्द नहीं आया! शायद तुम्हें इस बात का भी घमंड है कि कनातनाया सड़क के अपने बग़ीचे में तुम्हारा कर-तब इससे कहीं अधिक सुन्दर था।"

"और नहीं तो क्या," मैंने बिना किसी दुविधा के जवाब दिया और मुझे उस कोने की याद हो आई जो कि मैंने अपने लिए सजाया था।

साशा ने अपना फ़ाककोट उतार कर दूर फेंक दिया। उसने अपनी आस्तीनें चढ़ा लीं, थूक कर अपनी हथेलियों को मला और बोला:

"अच्छा तो आओ, अभी तय हो जाएगा कि हम दोनों में से कौन जबर है।"

लड़ने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। इन सब चीज़ों से मैं पहले ही ऊब चुका था और अपने ममेरे भाई के क्रुद्ध चेहरे की ओर देखना भी मुझे भारी मालूम हो रहा था।

वह लपक कर मेरी ओर झपटा, छाती में सिर मार कर उसने मुझे गिरा दिया और वह मेरे ऊपर चढ़ बैठा।

"जीना चाहते हो या मरना?" वह चिल्लाया।

मैं उससे ज़्यादा मज़बूत था, और मेरा ख़ून पूरी तरह खौल उठा था। अगले ही क्षण, मुँह के बल धरती पर वह फनफना रहा था और उसने अपना सिर हाथों से ढक लिया था। उसकी यह हालत देख मैं पूर्णतया कांप गया, उसे उठाने की मैंने कोशिश की, लेकिन दुलत्तियां झाड़ कर उसने मुझे अलग कर दिया। इससे मैं

और भी आशंकित हो उठा। मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं। इसी असमंजस में पड़ कर मैं वहाँ से चल दिया। लेकिन उसने अपना सिर उठाया और कहा:

"अब तुम बचकर नहीं जा सकते। मैं यहाँ से टस-से-मस नहीं हूंगा। मालिक खोजता हुआ जब यहां आकर मुझे देखेगा तब मैं सारा भण्डा फोड़ दूंगा और वह तुझे निकाल बाहर करेगा।"

उसने कोसा और धमकियां दीं। मेरे सिर पर पागलपन सवार हुआ और मैं मुड़कर फिर खोह की ओर लपका। ईंटों को मैंने उखाड़ डाला, ताबूत और चिड़े को उठा कर दूर, बाड़े के उस पार, फेंक दिया और भीतर का सारा ताम-झाम खोद-खोद कर उसे पांव से रौंद डाला।

"लो, यह लो! और देखो, यह गई तुम्हारी समाधि!"

मेरे इस क्रोध का उसपर अजीब प्रभाव पड़ा। वह उठ कर बैठ गया। उसका मुँह कुछ खुला था। भौंहें सिकुड़ कर एक-दूसरे से सटी थीं। वह मेरी ओर निर्वाक ताक रहा था। और जब मैं तोड़-फोड़ कर चुका तो वह बिना किसी उतावली के उठा, उसने अपने को झाड़ा और फ़ाककोट पहन कर स्वर में शान्त आतंक भर कर बोला:

"अब देखना क्या होता है। तुम्हें ही इसका भुगतान करना पड़ेगा। ख़ास तौर से तुम्हारे लिए ही मैंने यह बनाया था। यह एक टोना था — समझे!"

मेरी तो जैसे जान निकल गई। उसके शब्दों के आघात ने मेरे घुटने ढीले कर दिये। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरे शरीर की हर चीज़ ठंडी पड़ गई हो। मुड़कर एक बार भी देखे बिना ही वह वहां से चल दिया। उसकी निस्तब्धता ने मुझे पूर्णतया पस्त कर दिया था।

मैंने निश्चय किया कि अगले ही दिन इस नगर को, मालिक को, साशा और उसके जादू-टोने को, इस समूचे बेमानी और भयावह जीवन को, छोड़ कर यहां से चल दूंगा।

अगले दिन, सुबह के समय, जब नयी महाराजिन ने मुझे जगाया तो वह चिल्ला उठी:

"है भगवान, तुम्हारे चेहरे को यह क्या हुआ है?"

मुझे ऐसा लगा कि मेरा हृदय जवाब दे रहा है। हो न हो, टोने ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है। अब कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

लेकिन महाराजिन पर हंसी का कुछ ऐसा दौरा सवार हुआ और वह इस तरह खिलखिला कर हंसी कि मैं खुद भी हंसे बिना नहीं रह सका। मैंने उसके आइने में झांक कर देखा। मेरे चेहरे पर काजल की एक मोटी परत चढ़ी थी।

"क्या यह साशा की करतूत है?" मैंने पूछा।

"और नहीं, तो क्या मैंने किया है?" महाराजिन ने हंसते हुए कहा।

मैंने जूतों पर पालिश करना शुरू किया। जैसे ही मैंने अपना हाथ एक जूते में डाला तो मेरे हाथ में एक पिन गड़ गई।

"यही है साशा के जादू-टोने का असर!" मैंने मन-ही-मन कहा।

पिनें और सुइयां सभी जूतों में छिपी थीं, और इस चतुराई से कि मेरे हाथों में गड़े बिना न रहें। मैंने ठंडे पानी की एक बाल्टी उठाई और उसे टोना-विशेषज्ञ के सिर पर उँडेल दिया जो अभी तक सो रहा था, या नींद का बहाना किए पड़ा था।

लेकिन मेरा मन अभी भी भारी था। ताबूत, चिड़ा, उसके भूरे और सिकुड़े हुए पँजे, उसकी छोटी-सी मोमयाई चोंच और उसके चारों ओर की चमचमाहट जो इन्द्रधनुषी आभा की समानता

का निष्फल प्रयास कर रही थी... यह सब मेरे दिमाग़ में इतना छा गया था कि उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल था। ताबूत ने मेरी कल्पना में भीमाकार रूप धारण कर लिया, पक्षी के पँजे बढ़ने और आकाश की ओर अधिकाधिक ऊँचे उठने लगे, एक दम सजीव और स्पन्दनशील!

मैंने उसी सांझ सब कुछ छोड़-छोड़ कर भागने की योजना बनाई। लेकिन दोपहर के भोजन से ठीक पहले उस समय जब कि मैं तेल के स्टोव पर शोरबा गर्म कर रहा था, मैं सपने देखने में रम गया और शोरबा उफन कर गिरने लगा। स्टोव बुझाने की उतावली में उसपर रखा बरतन उलट कर मेरे हाथों पर आ गिरा। नतीजा यह हुआ कि मुझे अस्पताल भेज दिया गया।

अस्पताल का वह दु:स्वप्न मुझे याद है। खाकी और सफ़ेद कफ़न लपेटे आकृतियों के दल थरथराते पीले शून्य में प्रकट होते, कराहते और भनभनाता एक लम्बा आदमी, जिसकी भौंहें मूँछों के समान थीं, बैसाखी लिए, अपनी काली लम्बी दाढ़ी को बराबर नचाता और चिल्लाता रहता:

"देख लेना, महापूजनीय धर्मपिता से मैं तुम्हारी रिपोर्ट करूंगा!"

अस्पताल के पलंगों को देखकर मुझे कब्रिस्तान की याद आ जाती। छत की सीध में नाक ताने उनपर लेटे हुए मरीज़ मुझे मृत चिड़ों की भांति मालूम होते। पीली दीवारें डोलने लगतीं, छत में बादबान की भांति लहरें उठतीं, फ़र्श उभारा लेता और पलंग आगे-पीछे झूमने लगते। प्रत्येक चीज़ आशाविहीन थी और हृदय में कंपकंपी पैदा करती थी। खिड़कियों से बाहर पेड़ों की नंगी-बूची टहनियां किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा फटकारे गए हण्टर की भांति मालूम होती थीं।

दरवाज़े में एक क्षीण, लाल सिर वाली, लाश नाचती। छोटे-छोटे हाथों से कफ़न को खींचकर वह अपने चारों ओर समेटती और चीखती:

"मैं कुछ नहीं जानता। अपने इन पागलों को अपने पास ही रखो!"

और बैसाखी वाला आदमी चिल्लाता:

"महापूजनीय धर्मपिता!..."

नानी और नाना तथा अन्य सब से हमेशा यही मैंने सुना था कि अस्पताल में लोगों को भूखा मारा जाता है। मेरे मन में यह बात बैठ गई कि मैं भी अब दो-चार दिन का ही मेहमान हूँ। चश्मा लगाए एक स्त्री जो कफ़न सा लपेटे थी, मेरे निकट आई और बिस्तर के सिरहाने लटकी सलेट पर उसने खड़िया से कुछ लिखा। खड़िया के कुछ कण चुरमुरा कर, मेरे बालों में भी आ गिरे।

"तुम्हारा नाम क्या है?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"तुम्हारा कोई नाम नहीं है?"

"नहीं।"

"देखो, बकवास न कर, मेरी बात का सीधे-सीधे जवाब दो, नहीं तो मार खाओगे।"

मार पड़ेगी, इस बात का तो मुझे पहले से ही विश्वास था। और ठीक इसी लिए मैंने जवाब देने से इन्कार भी किया था। बिल्ली की भांति सूँ-सूँ कर और बिल्ली ही की भांति चोर पांवों से वह विलीन हो गई।

दो लैम्प जला दिये गये जिनकी पीली चिमनियां बिछुड़ी हुई दो आंखों की भांति छत से लटकी थीं — झूलती और चकित

भाव से टिमटिमाती, मानो दोनों फिर एक-दूसरे के निकट आने का प्रयत्न कर रही हों।

"आओ, ताश की एक बाज़ी खेलें," किसीने कोने में से कहा।

"केवल एक ही बाँह से मैं कैसे खेल सकता हूँ?"

"ओह, तो उन्होंने तुम्हारी एक बाँह साफ़ कर दी, क्यों?"

मेरे मन में यह बात बैठते देर नहीं लगी कि ताश खेलने के कारण ही उसकी बाँह काटी गई है और मैं, हैरान हो, सोचने लगा कि मारने से पहले न जाने मेरी भी ये क्या-क्या दुर्गति करेंगे।

मेरे हाथों में जलन होती थी और वे बुरी तरह दुखते मानो कोई मेरी हड्डियों को नोच रहा हो। भय और दुःख से मैं मन ही मन कराहता और अपनी आंखों को बन्द कर लेता जिससे मेरे आँसू किसीको न दिखाई दें, लेकिन वे उमड़ आते और मेरी कनपटियों पर से बहकर कानों तक पहुँच जाते।

रात घिर आई। मरीज़ अपने-अपने बिस्तरों पर पहुँच गए, खाकी की कम्बलों के नीचे उन्होंने अपने-आप को छिपा लिया और निस्तब्धता प्रति क्षण गहरी होती गई। केवल एक आवाज़ थी जो कोने में से आकर इस निस्तब्धता को भंग करती थी:

"कोई नतीजा नहीं निकलेगा। दोनों ही पशु हैं—पुरुष भी और स्त्री भी..."

मैं नानी को पत्र लिखना चाहता था कि जल्दी से आकर मेरी जान बचाओ, नहीं तो ये लोग मुझे मार डालेंगे। लेकिन मैं लिखता कैसे... न तो मेरे हाथ काम करते थे, न ही मेरे पास कागज़ था। मैंने तय किया कि यहां से भाग चलना चाहिए।

ऐसा मालूम होता मानो रात ने कभी विदा न होने का निश्चय कर लिया है। पलंग से पैर धीरे से खिसका कर मैं नीचे उतर गया और दोहरे दरवाज़े की ओर चला। दरवाज़े का एक भाग

खुला था और वहाँ, कोरीडोर में रखी बेंच पर, तम्बाकू के धुएँ से घिरे सेही जैसे एक सिर पर मेरी नज़र पड़ी। बाल उसके सफ़ेद थे और उसकी धंसी हुई आंखें एकटक मुझपर जमी थीं। छिपने का समय नहीं था।

"यह कौन मटरगश्ती कर रहा है? यहां आओ।"

आवाज़ में मुलायमियत थी। धमकी का उसमें ज़रा भी पुट नहीं था। मैं उसके पास गया और दाढ़ी से भरे एक गोल चेहरे पर मेरी नज़र पड़ी। सिर के सफ़ेद बाल खूब बढ़े हुए थे और रुपहले आलोक की भांति चारों ओर फैले थे। उसकी पेटी में तालियों का एक गुच्छा लटका था। उसके बाल और दाढ़ी कुछ और बड़े होते तो वह सन्त पीतर के समान दिखाई देता।

"क्या तुम वही हो जिसके हाथ जल गए थे? रात के समय यहां क्यों घूम रहे हो? यह बात यहाँ के नियम-कायदों के खिलाफ़ है।"

उसने धुएँ का एक बादल मेरे मुँह की ओर छोड़ा, अपनी बाँह मेरी कमर में डाली, और अपनी ओर खींचते हुए बोला:

"डर लगता है?"

"हाँ।"

"शुरू-शुरू में यहाँ सभी को डर लगता है। लेकिन डरने की कोई बात नहीं है, ख़ास तौर से मुझसे। मैं किसीको नुक्सान नहीं पहुँचने दे सकता। तम्बाकू पियोगे? ठीक है—तम्बाकू से तुम्हारा वास्ता भी क्या? तुम बहुत छोटे हो, अभी दो-चार वर्ष और प्रतीक्षा करो। तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं? क्या कहते हो—न तुम्हारे माँ है, न पिता? बिल्कुल ठीक—उनकी तुम्हें ज़रूरत भी क्या है? उनके बिना भी तुम आगे बढ़ सकते हो। मतलब यह कि अगर तुम सफ़ेद झंडी न दिखाओ, दुम दबाकर भागो नहीं।"

उसके शब्द मुझे अच्छे लगे। इतने अच्छे कि कह नहीं सकता। बहुत दिनों से किसी ऐसे आदमी से मेरी भेंट नहीं हुई थी जो सीधे-सादे, मित्रतापूर्ण और समझ में आने वाले शब्दों में बात करता हो।

वह मुझे वापिस मेरे पलंग पर ले गया।

"कुछ देर मेरे पास बैठो," मैंने अनुरोध किया।

"ज़रूर बैठूँगा," उसने उत्तर दिया।

"तुम कौन हो?"

"मैं एक सैनिक हूं, सच्चा सैनिक, जो काकेशस के युद्ध में लड़ा था। असली लड़ाइयाँ और यह एकदम स्वाभाविक भी है। सैनिक लड़ाइयों के लिए ही तो जीता है। यही उसका जीवन है। मैं हंगेरियाइयों से लड़ा हूँ। चेर्केसों और पोलों से लड़ा हूँ। युद्ध, मेरे भाई, एक बहुत ही बड़ी शैतानी है!"

एक क्षण के लिए मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं, और जब मैंने उन्हें खोला तो उसी जगह जहाँ सैनिक बैठा था, मुझे अपनी नानी काली पोशाक पहने दिखाई दी। सैनिक अब मेरी नानी की बग़ल में खड़ा था। वह कह रहा था:

"सो तुम्हारी राय में कोई जीवित नहीं बचा, सब मर गए। क्यों, यही न?"

चमकता हुआ सूरज एक स्वच्छन्द बालक की भांति आया और चला गया—वार्ड की प्रत्येक चीज़ को तुर्तफुर्त अपनी लाली से रंगता और उसके बाद विलीन होता हुआ, प्रकाश की नयी निधि के साथ लौट कर फिर से फूट पड़ने के लिए।

नानी झुककर मेरे निकट आई और बोली:

"यह क्या हुआ, मेरे लोटन कबूतर? उन्होंने तुम्हारा अंगभंग तो नहीं किया? मैंने उस लाल सिर वाले लकड़बग्घे से कहा कि..."

"एक मिनट ठहरो। कानून-कायदे के अनुसार मैं अभी सब ठीक किए देता हूँ," सैनिक ने जाते हुए कहा।

"मुझे लगता है कि सैनिक बलखोन का रहने वाला है," अपने कपोलों से आँसू पोंछते हुए नानी ने कहा।

मुझे अभी भी ऐसा मालूम हो रहा था मानो मैं सपना देख रहा हूँ। मैं कुछ नहीं बोला। एक डाक्टर आया, उसने मेरे हाथों की मरहमपट्टी की और फिर नानी और मैं एक गाड़ी में शहर से चल दिये।

"और तुम्हारा वह नाना है न, उसका दिमाग़ तो एकदम सफ़ाचट हो गया है," नानी ने कहा,—"इतना कंजूस कि तुम्हारी आंतों में से भी अपनी चीज़ निकाल ले। ज़ीनसाज़ ख्लिस्त से अब तेरे नाना ने दोस्ती गांठी है। अभी हाल में नाना की प्रार्थना-पुस्तक में से उसने सौ रूबल का एक नोट तिड़ी कर लिया। इसके बाद वह कुहराम मचा कि कुछ न पूछो,—अरे बाप रे!"

सूरज तेज़ी से चमक रहा था और बादल सफ़ेद पक्षियों की भांति आकाश में तैर रहे थे। वोल्गा का पानी जम कर बर्फ़ हो गया था और उसके आर-पार तख़्ते बिछा कर एक मार्ग बना दिया गया था। तख़्तों के इस मार्ग को, उस जगह से हमने पार किया जहाँ बर्फ़ भनभना कर उभरती आ रही थी और पानी की एक पतली परत तख़्तों के नीचे सनसनाती बह रही थी। बाज़ार में स्थित गिरजे के लाल गुम्बदों के सुनहरी क्रास चमचमा रहे थे। रास्ते में चौड़े मुँह की स्त्री हमें दिखाई दी जो सिर पर रेशमी विलो का गट्ठा लिए आ रही थी। वसन्त आ रहा था, शीघ्र ही ईस्टर का उत्सव-काल शुरू हो जाएगा!

मेरा हृदय भारद्वाज पक्षी की भांति कूक उठा।

"नानी, तुम कितनी प्यारी हो!"

नानी को इससे ज़रा भी अचरज नहीं हुआ।

"यह स्वाभाविक ही है, तुम मेरे नाती जो हो।" नानी ने सीधे-स्वभाव से कहा। "लेकिन बड़बोली बने बिना मैं यह कह सकती हूँ कि जिनसे मेरा कोई नाता नहीं है, वे भी मुझे प्यार करते हैं। यह सब मां मरियम की बरकत है!"

फिर, मुसकराते हुए बोली:

"शीघ्र ही वह उत्सव मनाएगी — फिर से जीवित हो उठे अपने बेटे के साथ। लेकिन मेरी बेटी वार्यूशा..."

और वह चुप हो गई, फिर कुछ नहीं बोली।

२

नाना से आंगन में ही मेरी मुठभेड़ हो गई। घुटनों के बल बैठे वह कुल्हाड़ी से एक बाँस को नोकीला बना रहे थे। उन्होंने कुल्हाड़ी उठाई, मानो मेरे सिर पर फेंक कर मारना चाहते हों। फिर अपनी टोपी उतारते और तिरस्कारपूर्ण अन्दाज़ में चिकोटी-सी काटते हुए बोले:

"आ गए नवाब साहब, हमारे अत्यन्त माननीय महामहिम! आइए, स्वागत है आपका! नौकरी को भी धता बता आए? अच्छा है, अब करना जो मन में आए। बस, मेरे सिर न पड़ना, — समझे!"

"रहने दो, हमें सब मालूम है," नानी ने, हाथ झटकाते हुए, नाना का मुँह बंद कर दिया। हमने कमरे में पाँव रखा। समोवर को गर्म करते हुए नानी बोली:

"तुम्हारे नाना इस बार सब कुछ गंवा बैठे। उन्होंने अपनी सारी जमा-पूंजी अपने धर्मपुत्र निकोलाई को सौंप दी और रसीद तक न ली। निकोलाई ने झाँसा दिया कि वह उनके नाम से

व्यापार करेगा। पता नहीं कैसे क्या हुआ, लेकिन नाना एकदम सफ़ाचट रह गए। सारी पूंजी ग़ायब हो गई। और यह सब इसलिए हुआ कि हमने कभी गरीबों की मदद नहीं की, दुखियों के प्रति कभी दया-भाव नहीं निभाया। सो परमपिता परमात्मा ने मन में सोचा: काशीरिन परिवार के साथ मैं ही क्यों भलमनसाहत बरतूँ? सच कहती हूँ, भगवान के मन में ज़रूर यही बात आई होगी। और उसने सभी कुछ ले लिया।"

एक उड़ती नज़र से इधर-उधर देखने के बाद नानी ने फिर कहना शुरू किया:

"भगवान का हृदय कुछ पसीजे, बूढ़े को वह इतना कष्ट न दे, इसका मैं थोड़ा-बहुत उपाय कर रही हूँ। रात को मैं जाती हूँ और अपनी आय में से कुछ आस-पास के घरों के द्वार पर, चुपचाप, छोड़ आती हूँ। चाहो तो आज रात तुम भी मेरे साथ चलो। मेरे पास कुछ पूंजी है।"

नाना ने भुनभुनाते हुए भीतर पाँव रखा।

"क्या सब कुछ भकोसने की फ़िक्र में हो?"

"तुम्हारी कोई चीज़ हम नहीं हड़प कर रहे हैं," नानी ने कहा,—"चाहो तो तुम भी हमारे साथ शामिल हो सकते हो। सब को पूरा पड़ जाएगा।"

वह मेज़ पर बैठ गए।

"मुझे तो बस एक प्याला भर दो," उन्होंने दबे हुए स्वर में भुनभुनाते हुए कहा।

कमरे में कुछ भी नहीं बदला था, प्रत्येक चीज़ जैसी-की-तैसी थी, सिवा इसके कि माँ वाले कोने में उदास सूनापन छाया था, और नाना के बिस्तरे के पास वाली दीवार पर काग़ज़ का एक टुकड़ा लटका था जिसपर, छापे के बड़े-बड़े अक्षरों में, लिखा हुआ था:

"यीसू, मेरी आत्मा का उद्धार करना और मृत्यु की घड़ी तक जीवन के जितने भी दिन बाक़ी हैं, सब में अपनी दया बनाए रखना।"

"यह किसने लिखा है?"

नाना ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ रुक कर नानी ने मुसकराते हुए कहा:

"इस काग़ज़ का मूल्य सौ रूबल है।"

"तुम क्यों बीच में टाँग अड़ाती हो!" नाना ने चिल्ला कर कहा। "मेरा धन है, मैं चाहे गैरों में लुटाऊं!"

"लुटाने को अब रहा ही क्या है, और जब था तब एक-एक पाई दांत से पकड़ते थे।" नानी ने शान्त भाव से कहा।

"चुप रहो!" नाना चीख उठे।

हर चीज़ वैसी ही थी जैसी कि होनी चाहिए—ठीक पहले जैसी।

कोने में एक ट्रंक पर कपड़े रखने की टोकरी रखी थी। उसमें कोल्या सो रहा था। वह जाग उठा। भारी पलकों में छिपी उसकी आंखों की नीली चमक मुश्किल से ही दिखाई देती थी। वह अब और भी उदास, खोया-खोया-सा, एक छाया-मात्र रह गया था। उसने मुझे पहचाना तक नहीं और चुपचाप मुँह मोड़ कर अपनी आंखें बन्द कर लीं।

बाहर गली में भी दु:खद समाचार सुनने को मिले। व्याखिर मर चुका था—पैशन-सप्ताह के भीतर उसे चेचक माता उठा ले गई। खाबी अपना बधना-बोरिया उठा कर नगर चला गया था, जब कि याज़ की टाँगें मारी गई थीं और वह घर से बाहर तक नहीं निकल पाता था। यह सब बताते हुए काली आंखों वाले कोस्त्रोमा ने झुंझला कर कहा:

"देखते-देखते सब उठ गए!"

"सब कहाँ, ले-देकर एक व्याखिर ही तो मरा है?"

"एक ही बात है। हमारी गली में जो नहीं रहा, उसे एक तरह से मरा हुआ ही समझो। मिलना-जुलना और मित्रता सब बेकार है। किसीसे मित्रता करो, जान-पहचान बढ़ाओ, और तभी वे उसे कहीं काम पर भेज देते हैं या वह मर जाता है। तुम्हारे अहाते में, चेस्नोकोव परिवार में, कुछ नये लोग आए हैं—येवसे-येन्को परिवार के लोग। उनमें एक लड़का है। नुश्का उसका नाम है। लड़का बिल्कुल ठीक और खूब चुस्त है। उसके अलावा दो लड़कियाँ हैं। एक छोटी है और दूसरी लंगड़ी, बैसाखी लेकार चलती है। देखने में बड़ी सुन्दर।"

एक मिनट तक कुछ सोचने के बाद उसने फिर कहा:

"मैं और चुरका उससे प्रेम करते हैं, और हम हर घड़ी लड़ते-झगड़ते हैं।"

"क्या लड़की से?"

"अरे नहीं, लड़की से नहीं, बल्कि एक-दूसरे से। लड़की से तो ज़रा भी नहीं झगड़ते।"

यह तो मैं जानता था कि बड़े लड़के और यहाँ तक कि बड़े लोग भी प्रेम में फंस जाते हैं, और मैं यह भी जानता था कि उनका यह प्रेम, मोटे रूप में, कितना गंदा होता है। लेकिन इस समय मैं घबरा गया और कोस्त्रोमा के लिए मैंने दुःख का अनुभव किया। उसके बेडौल चौखटे और उसकी काली आंखें देख कर न जाने क्यों मैं अचकचा गया।

उसी दिन, सांझ के समय, मैंने उस लंगड़ी लड़की को देखा। सीढ़ियों से आंगन में उतरते समय उसकी बैसाखी नीचे गिर पड़ी और वह, मोम ऐसी उंगलियों से जंगले के ज़रिये को दबोचे वहीं खड़ी रह गई—असहाय, कमज़ोर और क्षीणकाय। मैंने बैसाखी को

15—2

उठाना चाहा, लेकिन मेरे हाथों में बंधी पट्टी ने बाधा दी। काफ़ी देर तक, निराशा और झुंझलाहट से भरा, मैं बैसाखी को उठाने की कोशिश करता रहा और वह मुझसे कुछ ऊँचाई पर खड़ी, धीरे-धीरे मुसकराती रही।

"तुम्हारे हाथों में क्या हुआ?" उसने पूछा।

"जल गए।"

"और मैं लंगड़ी हूँ। क्या तुम हमारे इसी अहाते में रहते हो? क्या तुम्हें अस्पताल में बहुत दिनों तक रहना पड़ा? मुझे तो बहुत दिन लगे — इतने कि रूह काँप उठती है!" उसने उसांस भरते हुए कहा।

वह एक पुरानी और ताज़ा कलफ़ की गई पोशाक पहने थी — सफ़ेद रंग की जिसपर घोड़े की नाल ऐसे नीले छापे छपे थे। बाल कंघी से सुलझे और एक घनी छोटी चोटी में गुंथे उसके वक्ष पर पड़े थे। उसकी आंखें बड़ी और गम्भीर थीं जिनकी शान्त गहराइयों में नीली अग्नि शिखाएं दमकतीं और उसके क्षीण पिचके हुए चेहरे को आलोकित करती थीं। उसकी मुसकराहट भी सुहावनी थी। लेकिन मुझे वह अच्छी नहीं लगी। रोगी-ऐसा उसका समूचा शरीर जैसे कहता प्रतीत होता था:

"कृपया मुझे न छूना!"

यह कैसे हुआ कि मेरे साथी इसके प्रेम में पड़ गए?

"मैं बहुत दिनों से बीमार हूँ," बिना विलम्ब के, यहाँ तक कि आवाज़ में कुछ गर्व का पुट भी भरते हुए, उसने मुझे बताया। "हमारी पड़ोसिन ने मुझपर टोना कर दिया। लड़ाई तो उसकी हुई मेरी माँ से और इसका बदला लेने के लिए उसने टोना कर दिया मुझपर। लेकिन तुम बताओ, क्या अस्पताल में तुम्हारे साथ बुरी बीती?"

"हाँ।"

उसकी उपस्थिति में मुझे बड़ा अटपटा लग रहा था और मैं भीतर अपने घर में चला आया।

आधी रात के क़रीब नानी ने धीरे से मुझे जगाया।

"चलोगे नहीं? अगर तुम दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारे हाथ जल्दी ठीक हो जाएंगे।"

उसने मेरी बाँह पकड़ी और मुझे पकड़े हुए अंधेरे में इस तरह ले चली मानो मैं अंधा हूँ। रात काली और नम थी, हवा तेज़ गति से बहने वाली नदी की भांति थमने का नाम नहीं लेती थी, और रेत इतना ठंडा था कि पांव सुन्न हुए जाते थे। नगर निवासियों के घरों की अंधेरी खिड़कियों के पास नानी चुपचाप सावधानी से जाती, तीन बार क्रास का चिन्ह बनाती, खिड़की की ओटक पर पांच कोपेक और तीन बिस्कुट रख एक बार फिर क्रास का चिन्ह बनाती और, तारों-रहित आकाश की ओर आंखें उठाए, फुसफुसा कर कहती:

"स्वर्ग की पवित्र रानी, सब पर दया करना—हम सभी तो पापी हैं तुम्हारी नज़रों में, देवी माँ!"

अपने घर से हम जितना ही दूर होते जाते अंधेरा उतना ही घना होता जाता, प्रत्येक चीज़ उतनी ही अधिक सुनसान मालूम होती। ऐसा मालूम होता मानो रात के आकाश की अतल गहराइयों ने चांद और तारों को सदा के लिए निगल लिया हो। एक कुत्ता भाग कर बाहर आया और मुँह बाए हमारे सामने खड़ा हो गया। अंधेरे में उसकी आंखें चमक रही थीं। भय के मारे मैं नानी से चिपक गया।

"डरो नहीं," नानी ने कहा, "यह एक कुत्ता ही तो है। भूत-प्रेत इस समय बाहर नहीं निकलते, मुर्गे बोल चुके हैं।"

नानी ने कुत्ते को पुचकारा और उसका सिर थपथपाते हुए कहा:

"देखो कुत्ते, मेरे नाती को अब और अधिक न डराओ, समझे।"

कुत्ते ने मेरी टांगों से अपना बदन रगड़ा और हम तीनों आगे बढ़े। नानी बारह बार खिड़कियों के पास गई और उनकी ओटक पर अपना 'गुपचुपदान' रख लौट आई। आकाश उजला हो चला। सलेटी घर अंधकार में से उभर आए, नापोलनाया गिरजे की बुर्जी चीनी मिट्टी की भांति सफ़ेद चमकने लगी और कब्रिस्तान की ईंट की दीवारें, जालदार बाड़े की भांति, अर्द्ध पारदर्शी हो उठीं।

"तुम्हारी यह बूढ़ी नानी तो थक गई," मेरी नानी ने कहा, "अब घर चलना चाहिए। गृहणियाँ जब सवेरे उठेंगी तो देखेंगी कि पवित्र मरियम ने बच्चों के लिए कुछ भेज दिया है। जब घर में पूरा नहीं पड़ता तो थोड़ा सहारा भी बहुत मालूम होता है। तुमसे क्या कहूँ आल्योशा कि लोग कितनी ग़रीबी में जीवन बिताते हैं और कोई ऐसा नहीं है जिसे उनका कुछ ध्यान हो।

"अमीर आदमी नहीं करता चिन्ता भगवान की,
क़यामत के दिन की और भगवान के न्याय की।
सोने की माया में वह है कुछ ऐसा फंसा,
ग़रीबों के प्रति दिल में न उपजे दया।
मरने पर जाएगा सीधा नरक,
सोने की माया में होगा गरक!

"दुःख की बात तो यही है। हम एक-दूसरे का ध्यान रखते हुए जीवन बिताएँ तो भगवान भी हम सबका ध्यान रखें। मुझे इस बात की खुशी है कि तुम अब फिर मेरे पास आ गए!"

ख़ुश तो मैं भी था, लेकिन ख़ामोश तरीक़े से। मुझे कुछ ऐसा अस्पष्ट सा अनुभव हो रहा था मानो मैंने किसी ऐसी चीज़ का सम्पर्क प्राप्त किया हो जिसे कभी नहीं भूला जा सकता। मेरे बराबर में वह कुत्ता चल रहा था जिसका रंग खाकी, लोमड़ी ऐसा चेहरा और सदय तथा क्षमा-याचना-सी करती आंखें थीं।

"क्या यह अब हमारे साथ ही रहेगा?"

"क्यों नहीं, अगर इसका मन करता है तो हमारे साथ ही रहे। यह देखो, मैं इसे बिस्कुट दूंगी, मेरे पास दो बच रहे हैं। आओ, कुछ देर बेंच पर बैठ कर सुस्ता लें। न जाने क्यों, मुझे बड़ी थकान मालूम हो रही है।"

हम बेंच पर बैठ गए जो एक फाटक के पास थी। कुत्ता हमारे पांव के पास पसर कर सूखे बिस्कुट को चिचोड़ने लगा।

"यहाँ, इस घर में एक यहूदिन रहती है। उसके नौ बच्चे हैं, सब तरा-ऊपर के। 'कहो कैसे चल रहा है',—एक दिन मैंने उससे पूछा। उसने कहा:—'चलना क्या है, बस भगवान का ही भरोसा है'।"

नानी के गरम बदन से चिपक कर मेरी आंखें लग गई थीं।

जीवन एक बार फिर तेज़ गति से बह चला—छलछलाता और हिलोरें लेता। प्रत्येक नये दिन की प्रशस्त धारा अनगिनती घटनाओं की छाप से मेरा हृदय भर देती जो कभी मुझे विस्मय-विमुग्ध या आतंकित करतीं, कभी दुःख पहुंचातीं या मेरे विचारों को उत्तजित करतीं।

लंगड़ी लड़की से यथासम्भव बार-बार मिलने, उससे बातें करने, या दरवाज़े के पास पड़ी बेंच पर उसके साथ केवल चुपचाप बैठे रहने की इच्छा मेरे हृदय में भी शीघ्र ही प्रबल हो उठी। उसके संग चुपचाप बैठने में भी सुख मिलता। वह पक्षी की भांति साफ़-सुथरी रहती और दोन प्रदेश के कज़्ज़ाकों के जीवन का आश्चर्यजनक वर्णन करती। अपने चाचा के साथ, जो मलाई बनाने के किसी कारख़ाने में मिकेनिक थे, एक लम्बे अर्से तक वह दोन प्रदेश में रह चुकी थी। इसके बाद उसके पिता, जो फिटर का काम करते थे, निजनी नोवगोरोद चले आए।

"मेरे एक चाचा और हैं जो ख़ुद ज़ार के यहाँ काम करते हैं।"

छुट्टी की सांझ गली के सब लोग अपने घरों से बाहर आ जाते। किशोर लड़के और लड़कियाँ कब्रिस्तान की ओर निकल जाते जहाँ वे दल बांध कर गाते-बजाते, बड़े लोग शराबख़ानों में पहुँचते, गली में केवल स्त्रियाँ और बच्चे ही रह जाते। स्त्रियाँ बेंचों या घरों के पास खाली रेत पर ही बैठ जातीं और लड़ाई-झगड़ों तथा इधर-उधर की अपनी बातों से आकाश सिर पर उठा लेतीं। बच्चे गेंद, लकड़ी-बेड़ी और 'शरमाज़लो' के खेल खेलते और उनकी माताएँ खेल में दक्षता दिखाने पर उनकी प्रशंसा करतीं या औघड़पन का परिचय देने पर उन्हें दुतकारतीं। शोर इतना होता कि कान सुन्न हो जाते और दिन की बातें भुलाए न भूलतीं। बड़ों की उपस्थिति और उनकी दिलचस्पी से हम बच्चों में और भी हलचल मच जाती और हम भयानक तेज़ी तथा होड़ के साथ खेल में डूब जाते। लेकिन, खेल में हम चाहे कितना भी क्यों न डूबे हों, कोस्त्रोमा, चुरका और मैं लंगड़ी लड़की के पास जाने और अपनी हिम्मत का बखान करने का समय निकाल ही लेते।

"तुमने देखा नहीं लुदमिला, कि किस तरह एक ही चोट में मैंने सभी निशानों को गिरा दिया!"

वह एक मीठी हंसी हंस कर अपना सिर झटका देती।

पहले हमारा समूचा दल हमेशा खेल में एक ही ओर रहने की कोशिश करता था, लेकिन अब मैंने देखा कि चुरका और कोस्त्रोमा विरोधी पक्षों में रहना पसंद करते हैं, और एक-दूसरे के ख़िलाफ़ अपनी समूची शक्ति तथा चतुराई लगा देते हैं, यहाँ तक कि मारपीट और रोने-धोने की नौबत आ जाती है। एक दिन दोनों को अलग करने के लिए बड़ों को हस्तक्षेप करना पड़ा और उन पर पानी उँडेला गया मानो, आदमी न होकर वे कुत्ते हों!

लुदमिला उस समय बेंच पर बैठी थी। अपना सही-सालिम पांव वह धरती पर पटकती और जब लड़नेवाले गुत्थम-गुत्था होकर लुढ़कते हुए उसके निकट आते तो वह उन्हें अपनी बैसाखी से दूर धकेल देती और भय से चीख़ कर कहती:

"बन्द करो यह लड़ाई!"

उसका चेहरा पीला पड़ जाता, मानो बेजान हो। आंखें धुंधली और फटी-फटी-सी हो जातीं। ऐसा मालूम होता मानो उसे दौरा आनेवाला हो।

एक अन्य बार लकड़ी-बेड़ी के खेल में चुरका से बुरी तरह हार खाने के बाद कोस्त्रोमा गल्ले की एक दुकान में जई की पेटी के पीछे मुँह दुबका कर पड़ गया और उसने, सुबक-सुबक कर, निःशब्द रोना शुरू कर दिया। भयानक दृश्य था। उसने अपनी बत्तीसी इतने ज़ोरों से भींच ली थी कि उसके जबड़े के पुट्ठे ख़ूब उभर आए थे और उसका क्षीण चेहरा ऐसा मालूम होता था मानो पथरा गया हो। नीचे को झुकी उसकी काली आंखों से बड़े-बड़े

आँसू गिर रहे थे। मेरे दम-दिलासा देने पर उसने अपने आँसुओं को पी लिया और हाँफते हुए बोला:

"देख लेना, उसके सिर पर ऐसा पत्थर मारूंगा कि खील-खील हो जाएगा!"

चुरका उद्धत मुद्रा धारण किए था। गली के बीचोंबीच इस तरह चलता मानो स्वयंवर में जा रहा हो—टोपी को सिर के एक ओर तिर्छी किए, जेबों में हाथ डाले।

"मैं शीघ्र ही धूम्रपान शुरू करने वाला हूँ," दांतों के बीच से थूकने की अपनी नवीनतम उपलब्धि का प्रदर्शन करते हुए उसने कहा। "दो बार तो मैं धूम्रपान कर भी चुका हूँ, लेकिन अभी कुछ पटरी नहीं बैठी, चक्कर आने लगता है।

मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं देखता कि मेरे साथी मुझसे दूर होते जा रहे हैं, और अनुभव करता कि लुदमिला के कारण ही ऐसा हो रहा है।

एक दिन, सांझ के समय, अपने बटोरे हुए चिथड़ों और हड्डियों की मैं छान-बीन कर रहा था। तभी लुदमिला आई और अपनी बैसाखी पर झूलते तथा अपना दाहिना हाथ हिलाते हुए खड़ी हो गई।

"हल्लो!" तीन बार अपने सिर को हल्के से हिलाते हुए उसने कहा। "क्या उस दिन कोस्त्रोमा तुम्हारे साथ गया था?"

"हाँ।"

"और चुरका?"

"चुरका अब हमारे साथ नहीं खेलता। और यह सब तुम्हारा ही दोष है। वे तुम से प्रेम करते हैं और इसीलिए आपस में लड़ते हैं।"

उसका चेहरा लाल हो उठा, किन्तु उद्धत स्वर में बोली:

"यह क्या कहते हो? इसमें मेरा दोष क्या है?"

"क्यों नहीं, तुमने उन्हें अपने से प्रेम क्यों करने दिया?"

"मैं क्या उनसे कहने गई थी कि तुम मुझसे प्रेम करो?" उसने गुस्से में जवाब दिया और यह कहते हुए बिदा हो गई—"क्या बकवास है! मैं उनसे बड़ी हूँ। चौदह वर्ष की मेरी आयु है। अपने से बड़ी लड़कियों से भी क्या कोई प्रेम करता है?"

"बस रहने दो।" उसके हृदय को आहत करने के लक्ष्य से मैंने चिल्ला कर कहा। "दुकानदार ख्लिस्त की बहन को ही देख लो न? वह सचमुच में बड़ी है। लेकिन इससे क्या? ढेर सारे लड़के उससे छेड़खानी करते रहते हैं!"

लुदमिला ने तेज़ी से घूम कर मेरी ओर मुँह किया और ऐसा करने में उसकी बैसाखी रेत में गहरी गड़ गई।

"तुम कुछ नहीं जानते, अभी निरे बच्चे हो!" उसने आँसुओं से भीगी आवाज़ में कहा। उसकी सुंदर आंखों में बिजली कौंध रही थी।—"दुकानदार की बहन तो एक चरित्रहीन स्त्री है, लेकिन मैं — क्या तुम मुझे भी वैसा ही समझते हो? मैं अभी छोटी हूँ। मुझे उस तरह से न कोई छू सकता है, न चिकोटी काट सकता है। नहीं, मेरे साथ वह सब नहीं किया जा सकता। अगर तुमने 'कामचदाल्का' का उत्तरार्द्ध पढ़ा होता तो तुम इस तरह की बात नहीं करते!"

वह भुनभुनाती चली गई। उस पर मुझे दुःख हुआ। उसके शब्दों में कुछ ऐसी सचाई थी जिससे मैं परिचित नहीं था। मेरे साथी क्यों उसे तंग करते हैं? तिसपर उनका दावा यह है कि वे उससे प्रेम करते हैं।

अगले दिन, अपनी ज़्यादती की भरा-पूर्ति करने के लिए, मैंने दो कोपेक की 'जौ की चीनी' खरीदी। मैं जानता था कि लुदमिला की वह एक प्रिय चीज़ है।

"कुछ लोगी?"

"चले जाओ यहाँ से! मैं तुमसे मित्रता रखना नहीं चाहती।" उसने ज़बर्दस्ती ग़ुस्से में भर कर कहा। लेकिन मिठाई उसने ले ली, यह कहते हुए:

"भलेमानस, इसे काग़ज़ में तो लपेट लिया होता। ज़रा अपने हाथ तो देखो, कितने गंदे हैं।"

"मैंने तो बहुतेरा धोया, लेकिन मैल छुट कर न दिया।"

उसने मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया। उसके हाथ सूखे और गर्म थे। उसने मेरा हाथ उलट-पलट कर देखा। फिर बोली:

"तुमने अपने हाथ नष्ट कर लिए हैं।"

"तुम्हारी उँगलियां भी तो एकदम छिदी हुई हैं।"

"यह सुई से हुआ है। मैं बहुत सीती हूँ।"

कुछ मिनट रुककर, इधर-उधर ताकने के बाद, बोली:

"चलो, कहीं निराले में चल कर बैठें और 'कामचदाल्का' पढ़ें। बोलो, पढ़ना पसन्द करोगे?"

मनचीती जगह खोजने में कुछ समय लग गया। अन्त में हमने निश्चय किया कि स्नानगृह का दरवाज़ा ठीक है। अंधेरा हो गया था, लेकिन हम खिड़की के पास बैठ सकते थे जो सायबान और कसाईख़ाने के बीच छितरे मैले मैदान की ओर खुलती थी। लोग बिरले ही उधर आते थे।

सो वह वहाँ, खिड़की के पास, बैठ गई। उसकी लंगड़ी टांग बेंच पर फैली थी और दूसरी अच्छी टांग फ़र्श पर। चिथड़ा हुई एक पुस्तक उसकी आंखों के सामने थी और नीरस तथा समझ में न आनेवाले शब्दों की धारा उसके मुँह से प्रवाहित हो रही थी। लेकिन मुझे उसने अभिभूत कर लिया। फ़र्श पर मैं बैठा था और अपनी उस जगह से मैं उसकी गम्भीर आंखों से निकलती दो

नीली लपटों को पुस्तक के पन्नों पर तिरते हुए देख सकता था — कभी वे आँसुओं के कारण धुंधली हो जातीं और वह थरथराती आवाज़ में, समझ में न आनेवाले अनजाने शब्द-समूहों का उच्चारण करती। मैं इन शब्दों को पकड़ता और विभिन्न प्रकार से जोड़-तोड़ बैठाकर उन्हें एक छंद में बांधने की कोशिश करता। इस काम में मैं इतना उलझ जाता कि पुस्तक के बारे में कुछ समझने का अवसर ही न मिलता।

मेरा कुत्ता घुटनों पर सिर रखे सो रहा था। मैंने उसका नाम 'आंधी' रख छोड़ा था। कारण कि वह लम्बी टांगों वाला, झबरा और बहुत ही तेज़ कुत्ता था, और जब वह भौंकता था तो ऐसा मालूम होता मानो धुआँ निकलने की चिमनी में पतझड़ की तेज़ वायु सनसना रही हो।

"सुन रहे हो न?" लड़की ने पूछा।

मैंने सिर हिला दिया। शब्दों का आलजाल, प्रति क्षण, मुझे अधिकाधिक विचलित करता और मैं अधिकाधिक बेचैनी और व्यग्रता के साथ, शब्दों को एक नए क्रम में गूंथ कर उन्हें किसी गीत के शब्दों की भांति सजाना चाहता — मानो प्रत्येक शब्द एक उज्ज्वल और दमकता हुआ तारा हो।

जब अंधेरा हो जाता तो लुदमिला अपना कृश हाथ नीचे गिरा लेती जिसमें वह पुस्तक थामे थी।

"बढ़िया है न?" वह पूछती। "मैंने तो पहले ही कहा था कि पुस्तक बढ़िया है।"

इसके बाद, स्नानगृह के दरवाज़े पर, बहुधा हमारी बैठक जमती। और सबसे बड़े सन्तोष की बात तो यह थी कि लुदमिला ने 'कामचदाल्का' का पीछा शीघ्र ही छोड़ दिया। उसकी अन्तहीन कहानी का एक शब्द भी मेरे पल्ले नहीं पड़ा था। अन्तहीन इसलिए

कि दूसरे भाग के बाद (जिसे हमने पढ़ना शुरू किया ही था) एक तीसरा भाग और था, और लुदमिला ने बताया कि इसके अलावा एक चौथा भाग भी है।

उन दिनों जब वर्षा होती तो वहाँ बैठने में विशेष आनन्द आता, केवल शनिवारों को छोड़ कर क्योंकि शनिवार के दिन स्नानघर गर्म किया जाता था।

वर्षा झमाझम बरसती और किसी को घर से बाहर न निकलने देती। फलत: हमारी अंधेरी खिड़की के पास किसी के फटकने का कोई खटका नहीं रहता। लुदमिला की जान इस बात से बेहद सूखती थी कि कहीं हम पकड़े न जाएँ।

"क्या तुम्हें पता है कि हमें इस तरह बैठा देखकर वे क्या सोचेंगे?"

यह मैं जानता था, और इसलिए पकड़े जाने से मैं भी डरता था। वहाँ हम घण्टों बैठे बातें करते। कभी मैं उसे नानी की कहानियाँ सुनाता, और कभी लुदमिला मेदवेदित्सा नदी के तटवर्ती कज़्ज़ाकों के जीवन का वर्णन करती।

"वहाँ के क्या कहने!" उसांस भर कर वह कहती। "यहाँ की भांति नहीं। यहाँ तो केवल भिखारी ही रह सकते हैं।"

मैंने निश्चय किया कि बड़ा होने पर मैं मेदवेदित्सा नदी की ज़रूर सैर करूंगा।

इसके शीघ्र बाद ही स्नानघर के द्वार पर हमारी बैठकों का सिलसिला ख़त्म हो गया। लुदमिला की माँ को एक फर-विक्रेता के यहाँ काम मिल गया और वह सुबह सवेरे घर से चली जाती, उसकी बहन स्कूल चली गई और उसका भाई एक टाइल-फ़ैक्टरी में काम करता था। जब मौसम ख़राब होता तो खाना बनाने, कमरे और रसोई को ठीक-ठाक करने में मैं उसका हाथ बंटाता।

"तुम और मैं ऐसे ही रहते हैं जैसे पति और पत्नी," वह हँस कर कहती। "केवल हम एकसाथ नहीं सोते। सच पूछो तो हमारा जीवन उनसे भी अच्छा है—पति तो कभी अपनी पत्नियों की मदद नहीं करते।"

जब भी मेरे पास कुछ पैसे होते तो मैं कोई मीठी चीज़ खरीदता और हम दोनों चाय बनाते-पीते और बाद में ठंडा पानी डाल कर समोवर को ठंडा कर देते जिससे लुदमिला की चिड़चिड़ी मां यह न ताड़ सके कि हमने समोवर को गर्म किया था। कभी-कभी नानी भी आकर हमारे साथ बैठ जातीं, बेल बुनतीं या कसीदा काढ़तीं और हमें बहुत ही बढ़िया कहानियां सुनातीं और जब नाना बाहर चला जाता लुदमिला हमारे यहां आती और दीन-दुनिया की चिन्ता से मुक्त हम खूब खाते-पीते। नानी कहती:

"कितना ठाठदार जीवन है हमारा, क्यों है न? पैसा अपने पास हो तो कोई चूं नहीं कर सकता, चाहे जो खाओ-पियो!"

वह हमारे मिलने-जुलने को बढ़ावा देती।

"यह अच्छा है कि लड़के और लड़की एक-दूसरे से मिलें-जुलें, केवल उन्हें कोई पागलपन की हरकत नहीं करनी चाहिए।"

और अत्यन्त सीधे-सादे ढंग से नानी हमें बतातीं कि 'पागलपन की हरकत' से उनका क्या मतलब है। उनके शब्दों में सुन्दरता होती, प्रेरणा होती और मैं सहज ही समझ लेता कि फूलों को उस समय तक नहीं छेड़ना चाहिए जब तक कि वे पूरी तरह से खिल न जाएं, अन्यथा न तो वे सुगंध देंगे, न ही उनमें फल आएंगे।

'पागलपन की हरकत' करने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि लुदमिला और मैं उन चीज़ों के बारे में बातें नहीं करते थे जिनका ज़िक्र आने पर साधारणतया

चुप्पी साध ली जाती है। लेकिन इन चीज़ों के बारे में हम तभी बातें करते जब ऐसा करना हमारे लिए ज़रूरी हो जाता। कारण, स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों के भोंडे चित्र तो वैसे ही इतनी बार और इतने अनचाहे रूप में हमारी आँखों के सामने उछल कर आते थे कि हम दोनों विक्षुब्ध हो उठते थे।

लुदमिला के पिता येवसेयेन्को की उम्र चालीस से कम न होगी। लेकिन था वह छैलछबीला: घुंघराले बाल और चेहरे पर मूँछ घनी और भारी भौंहें जो एक अजीब गर्वीले अन्दाज़ में नाचती रहती थीं। स्वभाव का इतना चुप्पा कि देखकर अचरज होता। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उसे कभी बोलते सुना हो। जब वह अपने बच्चों को प्यार करता तो गूंगे-बहरों की भांति आवाज़ करके रह जाता, और अपनी पत्नी को पीटते समय भी उसके मुँह से एक शब्द न निकलता।

छुट्टी के दिनों में, सांझ के समय, नीले रंग की कमीज़, चौड़ी मोरियों की मखमली पतलून और चमकदार बूट जूतों से वह लैस होता, कंधे से बड़ा-सा हथबाजा लटकाता और घर से निकल कर दरवाज़े पर आ खड़ा होता — चुस्त और दुरुस्त, परेड के लिए तैयार सैनिक की भांति। शीघ्र ही दरवाज़े के सामने चहल-पहल शुरू हो जाती। लड़कियों और स्त्रियों के दल, बत्तखों के झुंड की भांति, सामने से गुज़रते। कभी वे कनखियों से देखतीं — कुछ छिप कर पलकों की ओट में से। कभी वे खुलकर नज़रें लड़ातीं — मानो भूखी आंखों से उसे चट कर जाना चाहती हैं। उधर वह, अपनी काली आँखों से, उनके एक-एक अंग को टटोल कर देखता, उनका जायज़ा लेता। आँखों का यह कुत्सित आदान-प्रदान जिस में वाणी का कोई स्थान नहीं था, और पुरुष के सामने स्त्रियों का यह जड़ प्रदर्शन — मानो इसके सिवा उनकी और कोई गति न हो, मानो

स्त्री-पुरुषों और कुत्ते-कुतियों में कोई भेद न रह गया हो। जिसको भी वह चाहेगा, जिस किसी की ओर भी वह अपनी पुरुष दृष्टि से इशारा करेगा, मानो वही उसके सामने आकर बिछ जाएगी, सड़क की धूल चाटने लगेगी।

लुदमिला की माँ बड़बड़ाई:

"क्या बकरे की भांति आँखें नचा रहा है — निर्लज्ज सूअर!"

क़द में ऊँची और सींक-सी पतली, लम्बा और नोंचा-खरोंचा-सा चेहरा, छोटे-छोटे छंटे हुए बाल जो उस समय काट दिये गए थे जब मियादी बुखार उसके गले पड़ गया था। देखने में वह ऐसी मालूम होती मानो कोई पुरानी घिसी-पिटी झाड़ हो।

बग़ल में ही लुदमिला बैठी होती और इधर-उधर की बातें करके अपनी माँ का ध्यान बंटाने का निष्फल प्रयत्न करती।

"मेरी जान न खा, लंगड़ी चुड़ैल!" बेचैनी से अपनी आँखें मिचमिचाते हुए उसकी माँ बुदबुदा कर कहती। उसकी छोटी-छोटी मंगोल आँखों में एक अजीब सूनापन और थिरता दिखाई देती — मानो उन्होंने किसी चीज़ को छुआ हो और फिर उसीसे चिपक कर, वहीं-की-वहीं थिर रह गई हों।

"ग़ुस्सा न करो माँ, उससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा," लुदमिला कहती। "ज़रा उस चटाई बनाने वाले की विधवा को तो देखो, उसने क्या सिंगार किया है!"

माँ उस बृहदाकार विधवा की ओर देखती। फिर आँसुओं में भीगे निर्मम स्वर में कहती:

"मैं क्या सिंगार करना और बनना-संवरना नहीं जानती? लेकिन तुम तीनों मेरी जान बख्शो तब न? भीतर और बाहर, तुम लोगों ने कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा, मुझे पूरी तरह से नोंच खाया!"

चटाई बनाने वाले की विधवा क्या थी मानो कोई छोटा-मोटा-सा घर थी। उसका वक्ष छज्जे की भांति आगे को निकला हुआ था। कस कर बांधे हुए हरे रूमाल से घिरा उसका लाल चेहरा ऐसा मालूम होता था मानो वह एक झरोखा है जिसे सांझ के सूरज की लाली ने रंग दिया है।

येवसेयेन्को ने फिरा कर अपना हथबाजा संभाला और वक्ष से सटा कर उसे बजाने लगा। वाद्य-यंत्र से समृद्ध स्वरलहरियाँ निकलीं और दूर-दूर तक एक जादू-सा छा गया। इस छोर से उस छोर तक समूची गली के लड़के, आपा भूल कर, वहाँ जमा हो गए और सुध-बुध बिसरा कर सुनने लगे।

येवसेयेन्को की पत्नी फुंकार छोड़ती:

"जिस दिन किसी के हत्थे चढ़ जाओगे, वह मार पड़ेगी कि सारा रास रंग भूल जाएगा!"

आड़ी नज़र से वह एक बार अपनी पत्नी की ओर देखता और उसकी बात को मानो इस एक नज़र से ही उड़ा देता।

चटाई बनाने वाले की विधवा ख्लिस्त की दुकान के सामने वाली बेंच पर तन्मय-सी बैठी रहती। उसका सिर एक ओर को झुका था और वक्ष धौंकनी की भांति गहरी उसांसें भरता।

क़ब्रिस्तान के उस पार का मैदान छिपते हुए सूरज की लाली से सिन्दूरी हो उठता और गली एक तेज़ नदी का रूप धारण कर लेती जिस में रंग-बिरंगे शोख कपड़ों में लिपटे मांस के लोथड़े तैरते और बच्चे बगूलों की भांति चक्कर लगाते। वायुमण्डल मादक हो उठता। धूप में तपे रेत से पंचमेल गंध उठती जिसमें बूचड़खाने से आनेवाली चर्बीमायल गंध—रक्त की लपक—सबसे तेज़ होती। ज़ीनसाज़ों के अहाते से खालों की नमकीन तेजाबी गंध आती। स्त्रियों की चखचख और चुचुआहट, नशे में धुत्त पुरुषों का शोर, बच्चों की तेज़

चिल्लाहट और हथबाजे के मीठे स्वर मिल कर एक ऐसे संगीत का रूप धारण कर लेते जिसकी धड़कन दूर-दूर तक सुनाई देती—मानो प्रसवमान धरती गहरी उसांसें ले रही हो। सभी कुछ अनगढ़, नंगा और उधड़ा था, और इस कुत्सित जीवन के प्रति जो इस हद तक निर्लज्ज पाशविकता में डूबा था और इतनी उत्कट व्यग्रता के साथ अपनी गर्वीली शक्ति की निकासी के लिए मार्ग खोज रहा था, व्यापक तथा सबल विश्वास का संचार करता।

और इस सामूहिक शोर-शराबे में से कभी-कभी कुछ ऐसे जानदार शब्द उड़कर आते जो हृदय में खूब जाते और स्मृति में जम कर बैठ जाते।

"एक साथ उस पर टूट पड़ने से किसी के कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। बारी-बारी से अपना भाग्य आज़माओ!"

"जब हम खुद अपने पर तरस नहीं खाते तो फिर दूसरे ही हम पर क्यों तरस खाएं?"

"मालूम होता है, परमात्मा ने यों ही मज़ाक में नारी का निर्माण कर दिया है!"

रात घिरने लगती। वायु में और भी ताज़गी आ जाती। शोर-शराबा शान्त हो चलता। लकड़ी के घर मानो बढ़ और फैल कर छायाओं का बाना धारण कर लेते। सोने का समय हो जाता। कुछ बच्चों को ज़बर्दस्ती घरों में खदेड़ दिया जाता, कुछ वहीं बाड़ों के नीचे, अपनी माताओं के पांवों पर या गोद में, सो जाते। बड़े बच्चे भी अब चुप हो जाते, एकदम शान्त, मानो शैतानी करना जानते ही न हों। येवसेयेन्को, न जाने कब, विलीन हो जाता—मानो वह छाया बन कर उड़ गया हो। चटाई बनाने वाले की विधवा भी गायब हो जाती और हथबाजे की गहरी ध्वनि अब क़ब्रिस्तान के उस पार कहीं बहुत दूर से आती मालूम होती।

लुदमिला की माँ, शरीर को दोहरा किए, वहीं बेंच पर बैठी रहती। उसकी कमर बिल्ली की कमर की भांति कमान-सी झुकी होती। नानी अपनी पड़ोसिन के साथ जो बच्चे जनाने और शादी-ब्याह का जोड़ बैठाने का काम करती थी, चाय पीने चली जाती। यह पड़ोसिन एक लम्बी-चौड़ी और मज़बूत पुट्ठोंवाली स्त्री थी। उसके चेहरे पर बत्तख की चोंच ऐसी नाक चिपकी थी। उसके मर्दाने वक्ष पर सोने का एक तमग़ा लटका था जो उसे सांसत में पड़े कुछ लोगों की जान बचाने के उपलक्ष्य में मिला था। हमारी गली में सभी उससे डरते। वे उसे डायन, जादू-टोने करने वाली समझते। प्रसिद्ध था कि एक बार, लपटों की पर्वाह न कर, वह किसी जलते हुए घर में घुस गई थी और तीन बच्चों तथा कर्नल की बीमार पत्नी को अकेली लाद कर बाहर निकाल लाई थी।

नानी और उसमें मित्रता थी। गली में आते-जाते जब भी वे एक-दूसरे को देखतीं तो उनके चेहरों पर, दूर से ही, एक ख़ास हार्दिकतापूर्ण मुसकराहट खेल जाती।

लुदमिला हमारे फाटक के पास बेंच पर बैठी होती। कोस्त्रोमा और मैं भी उसके पास पहुँचते। चुरका ने लुदमिला के भाई को लड़ने के लिए ललकारा था और इस समय एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हुए, दोनों धूल में हाथ-पांव पटक रहे थे।

लुदमिला भय से चीख उठी:

"बन्द करो यह लड़ाई!"

कोस्त्रोमा की काली आँखें लुदमिला पर जम जातीं। कनखियों से वह उसे देखता और शिकारी कालीनिन का किस्सा सुनाता। कालीनिन एक बूढ़ा खुर्राट था। उसकी आँखों से मक्कारी टपकती थी और समूची बस्ती में वह बदनाम था। हाल ही में वह मरा था और कोस्त्रोमा का कहना था कि उसका ताबूत क़ब्रिस्तान में दफनाया

नहीं गया, बल्कि अन्य क़ब्रों से अलग धरती पर ही उसे छोड़ दिया गया। उसके ताबूत का रंग काला था और लोहे के ढांचे पर जड़ा था। उसके ढक्कन पर, सफ़ेद रंग में एक क्रास का चिन्ह, एक बर्छी, एक डंडा और दो हड्डियों के चित्र बने थे।

लोगों का कहना था कि बूढ़ा हर रात अपने ताबूत से उठता है और किसी चीज़ की खोज में, पहले मुर्गे के बांग देने तक, क़ब्रिस्तान में इधर-उधर भटकता रहता है।

"ऐसी डरावनी बातें क्यों करते हो!" लुदमिला अनुरोधपूर्ण स्वर में कहती।

"मुझे जाने दो!" लुदमिला के भाई के चंगुल से अपने को छुड़ाते हुए चुरका कहता। फिर कोस्त्रोमा की ओर मुड़ कर उद्धत स्वर में कहता:—"क्यों झूठ बोल रहे हो? मैंने ख़ुद अपनी आँखों से उन्हें ताबूत को दफ़नाते और क़ब्र के पत्थर के लिए एक खाला ताबूत रखते हुए देखा है। और जहाँ तक उसके भूत बन कर रात को क़ब्रिस्तान में भटकने की बात है, तो इसे नशे में धुत्त लोहार ने ख़ुद अपने मन से ही गढ़ लिया है!"

"हम तो तब जानें जब तुम एक रात क़ब्रिस्तान में जाकर बिताओ!" उड़ती हुई नज़र से भी उसकी ओर देखने का कष्ट न कर कोस्त्रोमा जवाब देता।

दोनों में विवाद छिड़ गया। उदासी से अपना सिर झटकाते हुए लुदमिला माँ की ओर रुख़ करते हुए पूछती:

"क्यों माँ, क्या रात को मृतात्माएँ चक्कर लगाती हैं?"

ऐसा मालूम होता मानो उसकी माँ किसी दूर स्थित लोक की सैर कर रही थी। चौंक कर कहती:

"हाँ, लगाती हैं।"

दुकानदार का बीस वर्षीय लड़का वाल्योक, मोटा-थलथल, लाल गालों वाला, टहलता हुआ आता और हमारी बातें सुनता।

"ताबूत पर सुबह तक सोनेवाले को मैं बीस कोपेक और दस सिगरेट देने के लिए तैयार हूँ, लेकिन अगर तुम डर कर भागे तो मुझे ख़ूब जी भर कर तुम्हारे कान खींचने का अधिकार होगा। बोलो, क्या कहते हो?"

सभी चुप हो एक-दूसरे का मुँह देखने लगते। लुदमिला की माँ इस ख़ामोशी को तोड़ती।

"मूर्खता की बातें न करो!" वह बोली। — "लड़कों को इस तरह के काम करने के लिए क्यों उकसा रहे हो?"

"मुझे एक रूबल दो तो मैं यह काम करने को तैयार हूँ," चुरका बुदबुदाता।

"बीस कोपेक में जाते नानी मरती है, क्यों?" स्वर में घृणा का पुट भरते हुए कोस्त्रोमा कहता। — "देख लेना वाल्योक, इसे तुम एक रूबल दोगे तब भी यह नहीं जाएगा। यह व्यर्थ की डींग मार रहा है।"

"अच्छी बात है। मैं एक रूबल ही दूँगा!"

यह सुनकर चुरका उठता और बाड़े के साथ बदन को सटाए चुपचाप वहाँ से खिसक जाता। कोस्त्रोमा मुँह में अपनी उँगलियाँ डाल कर सीटी की तेज़ आवाज़ उसके पीछे छोड़ता और लुदमिला व्यग्र स्वर में कहती:

"हाय राम, आख़िर इतना बढ़कर बोलने की आवश्यकता ही क्या थी?"

"कायर हो तुम सब!" वाल्योक कोंचते हुए कहता। — "और अपने को गली के सब से बढ़िया लड़ैत समझते हो। ऊँह, तुम्हें तो पिल्ले कहना चाहिए — कुतिया के पिल्ले!"

उसका इस तरह कोंचना अखर गया। मोटा गावदुम वाल्योक हमें कभी अच्छा नहीं लगता। वह हमेशा बच्चों को कोई न कोई शैतानी करने के लिए उकसाता, लड़कियों और स्त्रियों के बारे में गंदे किस्से सुनाता और उन्हें उनकी खिल्ली उड़ाना सिखाता। बच्चे उसके कहने में आ जाते और बाद में इसका बुरी तरह फल भुगतते। न जाने क्यों, मेरे कुत्ते से उसे ख़ास चिढ़ थी। वह हमेशा उसपर पत्थर फेंकता, और एक दिन तो उसने रोटी के टुकड़े में सूई रखकर उसे खिला दी।

लेकिन चुरका का इस तरह से मुँह की खाकर खिसक जाना मुझे उससे भी ज़्यादा अखरा। वाल्योक से मैंने कहा:

"मुझे एक रूबल दो, मैं जाने के लिये तैयार हूँ।"

मुझे चिढ़ाने के लिए उसने मुँह फुलाकर मेरी ओर देखा, और रूबल लुदमिला की माँ के हाथ में देने लगा।

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए, मैं नहीं रखूंगी तुम्हारा रूबल!" लुदमिला की माँ ने कहा और ग़ुस्से में भर कर चली गई। लुदमिला ने भी रूबल लेने से इन्कार कर दिया। वाल्योक अब और भी शेर हो गया, और लगा हमें चिढ़ाने। मैं बिना रूबल लिए ही जाने को तैयार था कि तभी नानी आ गई। उसने सारा हाल सुना, रूबल अपने हाथ ले लिया और शान्त स्वर में मुझसे कहा:

"अपना कोट कंधों पर डाल लो, और एक कम्बल भी ले लेना, सुबह होते ठंड हो जाती है।"

नानी के शब्दों ने मुझमें हिम्मत का संचार किया कि डरने की ऐसी कोई बात नहीं है।

वाल्योक ने शर्त रखी कि सुबह होने तक सारी रात मैं ताबूत पर ही या तो बैठा रहूँ या सो जाऊँ, जो भी हो मैं वहाँ से न हटूँ, — चाहे ताबूत हिले-डुले या उस समय डगमगाए जब

कालीनिन उससे बाहर निकलना शुरू करे। अगर मैं उछल कर खड़ा हो गया तो बाज़ी हाथ से जाती रहेगी।

"खूब अच्छी तरह से समझ लो," वाल्योक ने कहा, — "मैं सारी रात तुम्हें ताकता रहूँगा।"

जब मैं क़ब्रिस्तान के लिए रवाना हुआ तो नानी ने मुझ पर क्रास का चिन्ह बनाया और मुझे चेताते हुए कहा:

"अगर तुम्हें कुछ दिखाई भी दे तो अपनी जगह से हिलना नहीं। बस, मरियम का नाम लेना, सब ठीक हो जाएगा।"

मैं तेज़ डगों से चल दिया। एक ही चिन्ता मुझे थी। वह यह कि जिस किस्से को मैंने उठाया है, वह जल्दी-से-जल्दी पूरा हो जाए। वाल्योक, कोस्त्रोमा तथा अन्य कुछ लड़के भी मेरे साथ हो लिए। ईंटों की दीवार को पार करते समय मेरी टाँग कम्बल में फंस गई और मैं गिर पड़ा। लेकिन मैं फुर्ती से उछल कर खड़ा हो गया मानो खुद धरती ने पीछे से लात मार कर मुझे फिर से खड़ा कर दिया हो। दीवार के दूसरी ओर मुझे खिलखिलाने की आवाज़ सुनाई दी। मेरे हृदय में जैसे एक झटका सा लगा, और सारे बदन में शीत की एक कंपकंपी सी दौड़ गई।

गिरता-पड़ता मैं काले ताबूत के पास पहुँचा। एक ओर से वह रेत में धंसा था, दूसरी ओर उसके छोटे-छोटे पांव दिखाई देते थे। ऐसा मालूम होता था मानो किसी ने उसे उठाने की कोशिश की हो, मगर सफल न हो सका हो। मैं ताबूत के एक किनारे पर बैठ गया और अपने आस-पास एक नज़र डाल कर देखा: ढूहों से भरा क़ब्रिस्तान भूरे क्रासों का घना जंगल मालूम होता था। क्रासों की लपलपाती हुई छायाएं क्षीण हाथों की भांति क़ब्रों के कसमसाते ढूहों का आलिंगन करती प्रतीत होती थीं। जहाँ-तहाँ, क़ब्रों के बीच, दुबले-पतले और सूखा रोग ग्रस्त बर्च वृक्ष उगे थे जिनकी

डालें एक दूसरे से पृथक क़ब्रों के बीच सम्पर्क स्थापित कर रही थीं। उनकी परछाइयों की कसीदाकारी को वेध, सरकंडे आदि उग आए थे। क़ब्रिस्तान का उदासीभरा ऊबड़-खाबड़पन सबसे भयानक मालूम होता था। बर्फ़ के एक भीमाकार बगुले की भांति क़ब्रिस्तान का गिरजा खड़ा था और हरकत शून्य बादलों में क्षीणकाय चांद चमक रहा था।

याज़ के पिता ने जो एक "जंगखाया देहकान" था, बड़ी अलसाहट के साथ गिरजे का घंटा बजाया। हर बार, जब भी वह घंटे की रस्सी खींचता, छत की चादर के एक टूटे हुए हिस्से में उलझ कर पहले तो वह चूं-चरर की आवाज़ करती और उसके बाद घंटे की सोग में डूबी लघु आवाज़ सुनाई देती।

मुझे चौकीदार की बात याद हो आई। वह अक्सर कहा करता:

"भगवान और चाहे जो करे, पर किसीकी सुख की नींद न छीने!"

सभी कुछ भयानक और दमघोट था। रात ठंडी थी, फिर भी मैं पसीने में तर हो गया। अगर बूढ़े कालीनिन ने अपने ताबूत में से निकलना शुरू किया तो कौन जाने, मैं भाग कर चौकीदार की कोठरी तक भी पहुँच सकूँगा या नहीं?

मैं क़ब्रिस्तान के कोने-कोने से परिचित था। याज़ और अपने अन्य साथियों के साथ यहाँ आकर बीसियों बार हम धमाचौकड़ी मचा चुके थे। और वहाँ, गिरजे के पास, मेरी माँ की क़ब्र थी।

अभी पूरी तरह सोता नहीं पड़ा था। बस्ती की ओर से कहकहों की आवाज़ और गीतों के टुकड़े अभी भी रह-रहकर सुनाई देते थे। पहाड़ियों के उधर कहीं दूर से, या रेल्वे के उन खड्डों से जहाँ मज़दूर रेत खोदकर निकालते थे, या पड़ोस के कातीज़ोवका

गाँव से, हथबाजे के चीखने और सुबकियाँ-सी लेने की आवाज़ आ रही थी। सदा नशे में धुत्त रहनेवाला लोहार मियाचोव क़ब्रिस्तान की दीवार के उस पार लड़खड़ाता हुआ आया। गीत सुनकर मैं उसे पहचान गया। वह गा रहा था:

मेरी माँ है बड़ी शैतान
करती वही जो लेती मन में ठान
सब को देती वह दुत्कार
करती बस नाना से प्यार!

जीवन और चहल-पहल की इन आख़िरी सांसों को सुनकर कुछ हिम्मत बंधी, लेकिन घंटे की प्रत्येक ठनठन के साथ सन्नाटा गहरा होता गया, और निस्तब्धता नदी की भांति उमड़ती-घुमड़ती चरागाहों पर छा गई, अपने सिवा अन्य हर चीज़ का अस्तित्व उसने मिटा दिया, अपने में उसे समा लिया। मेरी आत्मा सीमाहीन, अथाह शून्य में डूबकर बुझ गई—शून्य के एक ऐसे सागर में वह पूर्णतया विलीन हो गई जिसमें केवल पकड़ाई न देने वाले तारे जीवित रहते और जगमगाते हैं, उनके सिवा अन्य हर चीज़ नष्ट हो जाती है, मुर्दा और अवांछनीय।

अपने कम्बल को चहुंओर बदन से लपेट कर और पाँव सिकोड़ कर मैं बैठ गया। मेरा मुँह गिरजे की ओर था, और हर बार जब भी मैं हिलता-डुलता, ताबूत चरमर करता और रेत किरकिरा उठता।

मेरे पीछे ही ज़मीन से किसी चीज के टकराने की ठक से आवाज़ हुई—पहले एक बार, फिर दूसरी बार; और इसके बाद ईंट का एक ढेला ताबूत के पास आ गिरा। यह भयावह था, लेकिन मैंने तुरत भांप लिया कि वाल्योक और उसके हमजोली

मुझे डराने के लिए दीवार के उस पार से ये सब फेंक रहे हैं। यह सोचकर कि दीवार के उस पार लोग मौजूद हैं, मैंने दिलजमई का अनुभव किया।

मैं अपनी माँ के बारे में सोचने लगा। एक बार मेरे सिगरेट पीने की बात जान कर जैसे ही माँ ने मुझे मारना शुरू किया तभी मैंने कहा:

"मुझे हाथ न लगाना। बिना मारे ही मेरा बुरा हाल है। मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

मार के बाद मैं तन्दूर के पीछे जा छिपा। माँ की आवाज़ कानों में आई, वह नानी से कह रही थीं:

"कितना हृदयहीन लड़का है। इसके मन में किसी के लिए ममता नहीं है।"

माँ की यह बात सुनकर मुझे बड़ा दु:ख हुआ। जब कभी भी माँ मुझे मारती-पीटती तो मुझे उस पर तरस आता, और उसके लिए मैं लज्जा का अनुभव करता था। ऐसा बिरले ही होता जब वह मुझे बिना कसूर मारती हो।

दु:ख पहुँचानेवाली चीज़ों की जीवन में कोई कमी नहीं थी। अब इन लोगों को ही लो जो दीवार के उस पार मौजूद थे। उन्हें अच्छी तरह से मालूम था कि यहाँ, इस क़ब्रिस्तान में, अकेले बैठे रहना ही कुछ कम भयानक नहीं था। लेकिन वे थे कि मेरी रूह को और भी अधिक कब्ज़ करने पर तुले थे। आख़िर क्यों?

मेरे मन में हुआ कि उनसे चिल्ला कर कहूँ:

"शैतान तुम्हें जहन्नुम रसीद करे!"

लेकिन क़ब्रिस्तान में शैतान का नाम लेना ख़तरनाक था। निश्चय ही वह यहीं कहीं, आस-पास में छिपा होगा। मेरी बात सुन कर अगर वह नाराज़ हो गया तो...

रेत में अबरक के कणों की बहुतायत थी और वे चाँद की रोशनी में धुंधले-धुंधले से चमक रहे थे। उन्हें देख कर मुझे याद आया कि एक दिन उस समय जब किसी डोंगी में लेटे-लेटे मैं ओका नदी के पानी में देख रहा था, ठीक मेरी आंखों के सामने सहसा एक नन्ही सी मछली प्रकट हुई, बग़ल के बल लोट-पोट कर उसने मानवीय चेहरे का रूप धारण कर लिया, पक्षियों जैसी छोटी-छोटी गोल आँखों से उसने मेरी ओर ताका और फिर पेड़ से गिरे शहतूत के पत्ते की भांति फरफराती, डुबकी लगा कर पानी की गहराइयों में गायब हो गई।

मेरी स्मृति अत्यन्त क्रियाशील हो उठी और जीवन की कतिपय घटनाओं को बटोर कर वह एक ऐसी बैरीकेड खड़ी कर रही थी जिससे उन तमाम डरावनी चीज़ों से अपनी रक्षा कर सके जिनकी रचना करने पर मेरी कल्पना ने उस समय कमर कस ली थी।

उदाहरण के लिए अपने छोटे-छोटे मज़बूत पांवों से रेत में खड़बड़ करती एक सेही मेरी ओर आई। उसे देख कर मुझे घर के ओने-कोने में छिपे भूत का ध्यान हो आया। निश्चय ही वह भी इतना ही छोटा और इतना ही भोंड़ा होता होगा।

इसके तुरंत बाद ही मुझे अपनी नानी का ध्यान आया जो तन्दूर के सामने पसर कर यह मन्त्र पढ़ा करती थी:

"मेरे नन्हे भूत, मुवे तिलचट्टों को हज़म कर जा!"

नगर की सीमाओं से दूर, बहुत दूर, मेरे दृष्टि-क्षेत्र से परे, आकाश में उजाला फैलने लगा। प्रात:काल की ठंडी हवा मेरे कपोलों में सुइयाँ सी चुभाने लगी। नीद के मारे मेरी पलकें भारी हो गईं। अपने शरीर को समेट कर मैंने गुड़मुड़ी सी बना

ली और सिर कम्बल से ढंक लिया। आए, जिस बला को भी अब आना हो!

नानी ने आकर मुझे जगाया। वह मेरे बग़ल में खड़ी कम्बल को खींच रही थी और कह रही थी:

"उठ अब! तुझे पाला तो नहीं मार गया? बहुत डर तो नहीं लगा?"

"डर तो लगा, लेकिन किसीसे कहना नहीं। यह किसी को नहीं मालूम होना चाहिए।"

"इसमें छिपाने की क्या बात है?" नानी ने कुछ अचरज से पूछा। "अगर वहाँ डर की कोई बात न होती तो एक तुम्हीं क्या, कोई भी इस काम को कर सकता था!"

हम दोनों घर की ओर चले। रास्ते में नानी ने नरमी से कहा:

"मेरे लोटन कबूतर, दुनिया में हर चीज़ का खुद तजुर्बा करके देखना होता है। जो खुद सीखने से कन्नी काटता है, उसे दूसरे भी नहीं सिखाते।"

सांझ तक मैं अपनी गली का 'हीरो' बन गया। जो भी मिलता, मुझसे पूछता:

"क्या डर नहीं लगा?"

और मैं जवाब देता:

"डर क्यों नहीं लगता?"

सिर हिला कर वे जवाब देते:

"हम तो पहले ही कहते थे!"

दुकानदार की पत्नी ने, भरे-पूरे विश्वास के साथ, ज़ोरों से घोषणा की:

"इसका मतलब यह कि कालीनिन का क़ब्रिस्तान से निकल कर चक्कर लगाना एकदम झूठी बात है। अगर यह बात सच

होती तो क्या वह इस लड़के से डर कर क़ब्र में ही दुबका रहता? नहीं, टाँग पकड़ कर वह इसे क़ब्रिस्तान से बाहर इतने ज़ोरों से फेंकता कि खुदा जाने यह कहाँ जाकर गिरता!"

लुदमिला ने मुझे चाव-भरे अचरज से देखा, और मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो नाना भी मुझसे खुश हैं—उनकी बत्तीसी बाकायदा खिली हुई थी। केवल चुरका ऐसा था जो जल कर बोला:

"इसे कौन खटका? इसकी नानी दुनिया-भर के जादू-टोने जानती है न?"

३

मेरा भाई कोल्या सुबह के सितारे की भांति योंही चुपचाप ओझल हो गया। वह, नानी और मैं बाहर सायबान में जमा तख़्तों के ढेर पर सोते थे जिनपर पुराने चिथड़े और गूदड़ फैले थे। एक भोंडी सी दीवार के पीछे मकान-मालिक का मुर्ग़ीघर था। अलसाई और पेट में दाना पड़ी मुर्ग़ियों की कुटकुट और उनके परों की फड़फड़ाहट हम हर सांझ सुनते और स्वर्णिम मुर्ग़ा जब हर सुबह भर-पूर गले से बांग देता तो हमारी नींद उचट जाती।

एक दिन नानी जब सुबह ही सुबह उठीं तो झुंझला कर बोलीं:

"मेरे हाथ पड़ जाए तो एक ही झटके में इसकी गरदन मरोड़ दूँ!"

मैं पहले ही जग गया था और दीवार की दराज़ों में से आने वाली सूरज की किरनों और उनमें तैरते रेत के रुपहले कणों को देख रहा था जो परियों की कहानी के शब्दों की भांति चमचमा रहे थे। तख़्तों के ढेर में चूहे खड़बड़ कर रहे थे और छोटे-छोटे लाल तिलचट्टे जिनके परों पर काली चित्तियाँ थीं, घूम-फिर रहे थे।

मुर्ग़ियों की बींट और कूड़े-कचरे की गंध से घबरा कर कभी-कभी मैं सायबान से रेंग कर बाहर निकल आता और छत पर चढ़ कर वहाँ से पड़ोसियों को जागते हुए देखता—डीलडौल में लम्बे-चौड़े, नींद से बोझिल और मुँदी हुई सी आँखें!

एक खिड़की में से फेरमानोव का चटाईनुमा सिर प्रकट होता। वह नाव चलाता था और नशे में धुत्त रहता था। अपनी गुम्मा सी आँखों को मिचमिचा कर उसने सूरज की ओर देखा और मुँह से सूअर की भांति आवाज़ निकाली। फिर नाना की शक्ल दिखाई देती—तेज़ी से अहाते में आते अपने सिर के गिने-चुने लाल बालों को दोनों हाथों से खुजलाते हुए। ठंडे पानी से हाथ-मुँह धोने की जल्दी में वह ग़ुसलखाने की ओर लपके जा रहे थे। मकान-मालिक की महाराजिन नज़र आती जिसकी ज़ुबान कैंची की भांति चलती थी। उसका भूरे धब्बों वाला चेहरा और नोकनुकीली नाक कोको पक्षी की भांति मालूम होती। ख़ुद उसका मालिक भी किसी बूढ़े और मोटे कबूतर से कम नहीं था, और अहाते के अन्य सब लोग भी मुझे किसी न किसी पशु या जंगली जन्तु की याद दिलाते थे।

सुहावनी और साफ़-सुथरी सुबह थी, लेकिन न जाने क्यों मेरा हृदय भारी था और कहीं दूर खेतों की ओर जाने को जी चाहता था, जहाँ मेरे सिवा और कोई न हो। मैं जानता था कि चाहे कितना भी रुपहला दिन क्यों न हो, लोगों के हाथ में पड़ कर वह मटियामेट हो जाएगा।

एक दिन जब कि मैं छत से चिपका हुआ था, नानी ने मुझे बुलाया और हिला कर बिस्तरे की ओर इशारा करते हुए धीमे से बोलीं:

"कोल्या मर गया।"

उसका नन्हा शरीर लाल मलमल के तकिये से लुढ़क कर फैल्ट की चटाई पर आ गया था। उसका नीला बदन उघड़ा हुआ था। कमीज़ सिकुड़-सिमट कर गरदन से लिपट गई थी और उसका फूला हुआ पेट तथा घावों से बदनुमा टाँगें दिखाई दे रही थीं। उसके हाथ कमर के नीचे धंसे हुए थे। ऐसा मालूम होता था मानो उसने उठने का प्रयत्न किया हो, लेकिन उठ न सका हो। उसका सिर कुछ एक ओर को लटक गया था।

कंघे से अपने बालों को सुलझाते हुए नानी बोलीं:

"भगवान ने अच्छा किया जो इसे अपने पास बुला लिया। भला, इस मरियल शरीर को लेकर यह जीता भी किस तरह?"

नाना भी आ गए और शरीर के पास झूमने-झूलने के बाद बहुत ही हल्के हाथ से उन्होंने बच्चे की मुँदी हुई आँखों को छुआ।

नानी ने तेज़ स्वर में कहा:

"बिना धुले हाथों से इसे क्यों छू रहे हो?"

नाना बुदबुदाए:

"दुनिया में पैदा हुआ, दो-चार दिन सांस ली, दाना-पानी चुगा—और सब फुर्र!"

नानी ने बीच में टोका:

"यह क्या बड़बड़ा रहे हो?"

नाना ने सूने अन्दाज़ से नानी की ओर देखा और बाहर अहाते में चले गए। जाते हुए बोले:

"मेरे पास एक दमड़ी नहीं है। इसे दफ़नाने के लिए तुम से जो बने, करना।"

"कमीना, मक्खीचूस!"

मैं भी बाहर खिसक गया और सांझ होने के बाद ही घर की ओर मुँह किया।

कोल्या को अगले दिन सवेरे दफ़ना दिया गया। मैं गिरजे में नहीं गया और जब तक सारा कार्य समाप्त नहीं हो गया, अपनी माँ की क़ब्र के पास बैठा रहा। माँ की क़ब्र खोद कर खोल दी गई थी जिससे मेरा छोटा भाई उसीमें दफ़नाया जा सके। मेरा कुत्ता और याज़ का बाप भी मेरे साथ बैठे थे। याज़ के बाप ने क़रीब-क़रीब मुफ़्त में ही क़ब्र खोद दी थी और मेरे पास बैठा अपनी इस उदारता पर शेखी बघार रहा था।

"तुम मेरे मित्र हो, इसलिए मैं इतना ग़म खा गया। नहीं तो एक रूबल से कभी कम नहीं लेता।"

मिट्टी का पीला गढ़ा बुरी तरह गंधा रहा था। मैंने उसमें झांक कर देखा और काले मिट्टी-चढ़े तख़्तों पर मेरी नज़र पड़ी। मैं ज़रा सा भी हिलता और रेत की धारा सरसरा कर गढ़े की तलहटी में गिरने लगती। और इसीलिए, जान-बूझ कर, मैं अपने बदन को हिलाता जिससे रेत की धारा उन तख़्तों पर गिरे और वे ढंक जाए।

याज़ के बाप ने पाइप मुँह से लगाया और धुएँ का कश खींचते हुए कहा:

"शैतानी न करो, लड़के।"

नानी अपने हाथों में एक छोटा सा सफ़ेद ताबूत लिए आई। याज़ का बाप—वह "जंगखाया दहकान"—गढ़े में कूद गया, नानी के हाथों से उसने ताबूत लिया और उसे वहीं काई-चढ़े तख़्तों के पास, जमा दिया। फिर वह उछल कर गढ़े से बाहर आ गया और रेत को अपनी टाँगों तथा फ़ावड़े से सरका कर गढ़े में भरने लगा। उसका पाइप लोबान की भांति धुआँ छोड़ रहा था। नानी और नाना ने भी, बिना कुछ बोले, उसका हाथ बंटाया। न वहाँ कोई पादरी था, न भिखारियों का जमघट था। क्रासों के इस जंगल

में हम चार लोगों के सिवा वहाँ और कोई नहीं दिखाई देता था।

चौकीदार को—याज़ के बाप को—मज़दूरी देते समय नानी ने उसे आड़े हाथों लिया:

"लेकिन तुमने मेरी बेटी का ताबूत भी झंझोड़ डाला, क्यों?"

"मैं क्या करता? उसे बचाने के लिए मैंने कुछ मिट्टी तो पड़ोस की क़ब्र तक की खोद डाली। निश्चिन्त रहो। तुम्हारी लड़की का ताबूत जैसा का तैसा है।"

नानी ने माथा झुका कर क़ब्र की मिट्टी के प्रति सम्मान प्रकट किया, अपनी नाक बिसूरी और सुबकियाँ भरते हुए क़ब्र से विदा ली। नाना भी पीछे-पीछे हो लिए। अपने फ़्राकनुमा कोट को जो चिथड़े-चिथड़े हो गया था, खींच कर उन्होंने बदन से सटा लिया और अपनी आँखों को टोपी के नीचे छिपा लिया।

सहसा नाना ने कहा:

"अनजोती भूमि में हमने अपना बीज डाला था।" और मेड़ पर से उड़ने वाले कौवे की भांति लपक कर नाना हम सब से आगे निकल गए।

मैंने नानी से पूछा:

"नाना ने यह क्या कहा?"

नानी ने जवाब दिया:

"भगवान जाने। उसे भी निराली ही सूझती है।"

बड़ी उमस थी। नानी धीमे डगों से आगे-आगे चल रही थीं। गर्म रेत में उनके पांव धंस जाते थे। रह-रह कर वह रुक जातीं और रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछतीं।

आख़िर, बड़ी कोशिश के बाद, मैंने नानी से पूछा:

"कब्र के भीतर जो वह काला-काला दिखाई देता था, क्या वह माँ का ताबूत था?"

"हाँ," नानी ने तीखे स्वर में कहा। — "वह बूढ़ा खूसट न जाने कैसी कब्र खोदता है! एक साल होने नहीं आया और वार्या गंधाने भी लगी। यह सब रेत की करामात है। पानी रिस-रिस कर भीतर पहुँच जाता है। उससे तो मिट्टी कहीं अच्छी होती है।"

"कब्र में क्या सभी गंधाने लगते हैं?"

"हाँ, सभी। केवल सन्तों को छोड़ कर।"

"लेकिन तुम कभी नहीं गंधाओगी!"

नानी ठिठक कर खड़ी हो गईं। मेरे सिर की टोपी को सीधा किया। फिर गम्भीर स्वर में बोलीं:

"ऐसी बातें सोचना ग़लत है। नहीं, तुम्हें ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिएँ — कभी भी नहीं!"

मैंने मन ही मन में कहा:

"कितनी बुरी और कितनी कुत्सित होती है मृत्यु! कितनी घिनौनी!"

मेरा जी गिरता जा रहा था।

जब हम घर पहुँचे तो देखा कि नाना ने समोवर गर्म कर रखा है और मेज़ सजी है। नाना ने कहा:

"चाय तैयार है। आज मैं अपनी ही पत्तियाँ डालूँगा—सब के लिए। ओह आज कितनी उमस है!"

फिर वह नानी के पास गए और उनके कंधों को थपथपाते हुए बोले:

"तुम चुप क्यों हो, मालकिन?"

नानी ने हाथ हिलाया और बोलीं:

"तुम्हीं बताओ, मैं क्या कहूँ?"

"यही तो! भगवान की मार इसीको कहते हैं। धीरे-धीरे सभी कुछ तीन-तेरह होता जा रहा है। अगर परिवार मिल कर रहें, एक-दूसरे से कभी अलग न हों, हाथ की उँगलियों की भांति..."

नाना ने एक मुद्दत से इस अन्दाज़ में बातें नहीं की थीं—इतने कोमल ढंग और इतने शान्तिपूर्ण अन्दाज़ में। मुझे लगा कि उनकी बातें सुन कर मैं अपने हृदय के दुःख और उस पीले गढ़े को भूल जाऊँगा जिसमें वे काले-काले धब्बे दिखाई दिए थे। मैंने नाना की ओर कान लगा दिए।

तभी तेज़ आवाज़ में नानी बोल उठीं:

"चुप भी रहो। इन शब्दों को रटते तुम्हारा जीवन बीत गया, लेकिन क्या कभी उनसे किसीका भला हुआ? होता भी कैसे, सारी उम्र तुम लोगों को नोचते-खाते ही रहे, वैसे ही जैसे जंग लोहे को खाता है।"

नाना ने भिनभिना कर नानी की ओर देखा और फिर चुप हो गए।

सांझ के समय फाटक पर लुदमिला से भेंट हुई। मैंने उसे सुबह का सारा हाल बताया। लेकिन मेरी बातों का उसपर कोई असर नहीं पड़ा।

"बे माँ-बाप का अनाथ होना अच्छा है। अगर मेरे माँ-बाप मर जाएँ तो अपनी बहिन को अपने भाई के पास छोड़ मैं जीवन भर के लिए साधुनी बन जाऊँ। इसके सिवा मैं और कर भी क्या सकती हूँ? लंगड़ी होने की वजह से मेरा विवाह कभी होगा नहीं—मैं काम कर नहीं सकती। और अगर विवाह हो भी गया तो लंगड़े बच्चों को ही मैं जन्म दूँगी।"

मोहल्ले की अन्य सभी सयानी स्त्रियों की भांति बड़ी समझदारी से उसने बातें कीं, लेकिन उस सांझ के बाद न जाने क्यों उसमें

मेरी दिलचस्पी का अन्त हो गया। सच तो यह है कि उस दिन के बाद मेरा जीवन ही कुछ ऐसे ढर्रे पर चल पड़ा कि उससे मिलने का मौका तक न मिलता।

भाई की मृत्यु के कुछ दिन बाद नाना ने मुझसे कहा:

"आज जल्दी सो जाना। कल सूरज निकलते ही मैं तुम्हें जगा दूँगा और दोनों लकड़ियाँ बटोरने जंगल चलेंगे।"

नानी ने कहा:

"और मैं जड़ी-बूटियाँ बटोर कर लाऊँगी।"

हमारी बस्ती से डेढ़-दो कोस दूर, दलदली भूमि में, बर्च और चीड़ वृक्षों का जंगल था। झाड़ियों और टूटी हुई टहनियों की वहाँ भरमार थी। एक बाज़ू वह ओका नदी तक और दूसरे बाज़ू मास्को जाने वाली सड़क से भी परे तक फैला था। नर्म झाड़ियों झुरमुटों से परे, काले रंग के एक ऊँचे तम्बू की भांति, देवदार वृक्षों का एक झुण्ड था जो "सावेलोव की अयाल" कहलाता था।

काउण्ट शुवालोव इस सारे जंगल का मालिक था और इसकी कोई ख़ास देख-भाल नहीं करता था। कुनाविनो के निवासी इसे अपनी बपौती समझते थे और जलाने के लिए झाड़ियाँ बटोर ले जाते थे, ईंधन के लिए बेजान और कभी-कभी तो जानदार वृक्षों तक को काट डालते थे। पतझड़ शुरू होते ही हाथों में कुल्हाड़ियाँ और कमर में रस्सी बांधे दस-दस और बीस-बीस के दलों में लोग आते और जाड़ों-भर के लिए ईंधन बटोर कर ले जाते।

पौ फटते ही हम तीनों चल दिए और ओस में भीगे रुपहले-हरे खेतों को हमने पार किया। धीरे-धीरे, गम्भीर और उदास मुद्रा में, ओका नदी और दियातलोवी की भभूका पहाड़ियों तथा सफ़ेदीमायल निजनी नोवगोरोद के हरे-भरे बाग-बगीचों, गुम्बदों और मीनारों के ऊपर किसी बड़े दार्शनिक की भांति रूसी सूरज का उदय हो

रहा था। शान्त और गंदली ओका नदी की ओर से हवा के शान्त और नींद में मदमाते झोंके आ रहे थे। सुनहरी रंग के बटरकप फूल ओस के बोझ से झुके सिर हिला-हिला कर झूम रहे थे, नीले रंग के घंटीनुमा फूल मूक दृष्टि से धरती की ओर देख रहे थे, रंग-बिरंगे बारह-मासी फूल मानो निर्मम धरती का सीना फोड़ गर्व से सिर उठाए थे और गुलाबी रंग की वे कलियाँ—रात की शोभा—लाल सितारों की भांति चटक रही थीं।

सामने ही जंगल था। दूर से ऐसा मालूम होता था मानो अपनी अनजान और रहस्यपूर्ण शक्तियों को बटोरे वह हमारी ओर बढ़ा आ रहा हो। पांख निकले चीढ़ वृक्ष भीमाकार पक्षियों की भांति मालूम होते थे और बर्च वृक्षों को देख कर परियों का धोखा होता था। खेतों के उस पार से दलदली भूमि की तेज़ाबी गंध आ रही थी। मेरा कुत्ता जो अपनी लाल जीभ निकाले मेरे साथ-साथ चल रहा था, एकाएक रुक गया, नाक सिकोड़ कर उसने कुछ सूंघा और लोमड़ी जैसे अपने सिर को उसने इस ढंग से हिलाया मानो कुछ निश्चय न कर पा रहा हो।

नाना के बदन पर नानी की ऊनी जाकेट और एक पुरानी पिचकी हुई सी टोपी सजी थी। मन ही मन मुसकराते, तकले ऐसी अपनी टांगों को चुपचाप उठाते, वह इतने दबे पांव आगे बढ़ रहे थे मानो अभी किसीपर झपट्टा मारनेवाले हों। नानी नीले रंग का सलूका और काले रंग का घाघरा पहने थीं। सिर पर एक सफ़ेद रूमाल बंधा था। वह इतनी तेज़ी से लुढ़कती-मुढ़कती चल रही थीं कि साथ देना मुश्किल था।

जंगल के हम जितना ही नज़दीक पहुँचते जाते, नाना की चेतनता भी उतना ही अधिक बढ़ती जाती। वह कुनमुनाए, गहरी सांस खींच कर फेफड़ों में ख़ूब वायु भरी और फिर बोलना शुरू

किया—पहले कुछ अटक-अटक कर और अटपटे अन्दाज़ में, फिर चुहचुहाते हुए और सुघर-सुन्दर रूप में, ऐसा मालूम होता था मानो उन पर नशा-सा छाता जा रहा हो।

"जंगल भगवान के लगाए हुए बाग़-बग़ीचे हैं। अन्य किसी ने नहीं बल्कि हवा ने—भगवान के मुँह से निकली दैवी सांस ने—इन्हें लगाया है। जिगुली की बात है, बहुत पहले की जब मैं जवान था और नाव चलाने का काम करता था—आह, अलेक्सी, तुम्हें वह सब देखना भला कहाँ नसीब होगा जो मैं देख चुका हूँ! ओका के किनारे-किनारे, कासीमोवो से लेकर मुरोम तक, बस जंगल ही जंगल। या फिर वोल्गा के उस पार—ठेठ उराल तक—जंगलों के सिवा और कुछ नहीं! मानो एक अन्तहीन और अद्भुत सौन्दर्य हिलोरें ले रहा हो!"

नानी ने भौंहों के नीचे से मेरी ओर देखा और आँख से नाना की ओर इशारा किया, और नाना थे कि अपनी धुन में चले जा रहे थे—टीलों और ठूंठों से ठोकर खाते, लड़खड़ाते और संभलते, और मानो अंजुलि भर-भर कर हल्के-फुलके शब्दों को बिखेरते जो मेरी स्मृति में जम कर बैठ जाते।

"जहाज़ सूरजमुखी के तेल के पीपों से लदा था और हम उसे खींच रहे थे। मकर के दिन मेला होता है न, उसी में हमें पहुँचा था। हमारा एक फोरमैन था। नाम किरिल्लो, पुरेख का निवासी। और हमारे साथ एक तातार सारंग था, कासीमोवो का रहनेवाला—और अगर मैं भूलता नहीं तो आसफ़ उसका नाम था। हाँ तो, जब हम जिगुली पहुँचे, बहाव के रुख ऐसी आंधी आई कि उसके थपेड़ों ने हमारी जान ही निकाल ली, पांव वहीं के वहीं रुक गए, दम फूल गया और हम बस हाँफते ही रह गए। सो हम तट पर आ गए और सोचा कि कुछ

दलिया ही उबाल लें। मई का महीना था और धरती पर वसंत छाया था। वोलगा अच्छा-खासा सागर बनी हुई थी और हंसों के झुंड की भांति, हज़ारों की संख्या में झागदार लहरें कास्पियन सागर की ओर अभियान कर रही थीं। और वसंत का हरियाला बाना धारण किए जिगुली की पहाड़ियाँ आसमान छूती थीं, सफ़ेद बादल उन पर विचरण करते थे और सूरज धरती पर सोना बरसाता था। सो हम सुस्ताने बैठ गए, जी भर कर प्रकृति के इस समूचे सौन्दर्य का हमने पान किया और हमारे हृदयों में तरलता छा गई। नीचे नदी के किनारे उत्तरी ठण्ड थी, लेकिन यहाँ तट पर बड़ा सुहावना मालूम होता था और भीनी-भीनी सुगंध आ रही थी। सांझ के ढलते ही हमारा किरिल्लो जो बड़ी उम्र और गम्भीर स्वभाव का किसान था, उठकर खड़ा हो गया और अपने सिर से टोपी उतारते हुए बोला: 'हाँ तो लड़को,अब न मैं तुम्हारा मालिक हूँ और न नौकर। तुम अब अकेले ही अपना काम संभालना। मुझे जंगल बुला रहे हैं; सो मैं चला!' हम सब जहाँ-के-तहाँ मुँह बाये बैठे रहे। भला ऐसा भी कभी हुआ है? अकेले अपने बूते पर हम आगे कैसे जा सकते थे, जब तक कि हमारे साथ कोई ऐसा आदमी न हो जो मालिक के सामने हम सब की जवाबदारी ले सके—जब आँखें ही न होंगी तो कोई चले-फिरेगा कैसे? माना कि यह हमारी जानी-पहचानी वोलगा ही है, लेकिन इस से क्या, हम फिर भी भटक सकते हैं। और मानव सब से अधिक निरंकुश, सबसे अधिक बनैला जन्तु होता है—भगवान भी चाहें तो उसे नहीं रोक सकते। सो डर ने हमें घेर लिया। लेकिन वह था कि अपनी ज़िद्द पर अड़ा रहा: "बस रहने दो! मैं बाज़ आया इस जीवन से। गड़रिये की भांति तुम्हें हाँकते रहना मुझे पसन्द नहीं। मैं जंगल का राजा हूँ। सो मैं चला!" हम में से कुछ थे जो उसकी मरम्मत करने और उसे रस्सियों से बांध

कर जकड़ने के लिए उतावले हो उठे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो उसके पक्ष में थे। वे चिल्लाए: 'ठहरो!' और तातार सारंग बोला: 'मैं भी उसके साथ नौ दो ग्यारह होता हूँ!' ऐसा मालूम होता था, मानो सारंग का दिमाग फिर गया हो। मालिक पर उसकी दो फेरों की मज़दूरी चढ़ी थी, और यह तीसरा फेरा भी आधा पूरा हो चुका था—उन दिनों को देखते एक भारी रकम उसे मिलती। रात होने तक हम इसी प्रकार जूझते-चिल्लाते रहे। लेकिन जब अंधेरा घना हो आया तो एकदम सात जने चले गए—हमें वहाँ अकेला छोड़ कर! अब हम पन्द्रह या सोलह ही रह गए। जंगल के जादू को क्या तुम मामूली चीज़ समझते हो?"

"क्या वे डाकुओं से जा मिले?"

"कौन जाने, डाकुओं से जा मिले या जप-तप करने लगे। उन दिनों लोग आज की भांति बाल की खाल नहीं निकालते थे।"

क्रास का चिन्ह लगाते हुए नानी ने कहा:

"आह माँ मरियम, क्या हाल हो गया है तेरी सन्तानों का... देख कर हृदय कराह उठता है।"

"शैतान के चंगुल में न फंसें, इसीलिये तो भगवान ने हम सब को बुद्धि प्रदान की थी।"

जगह-जगह कूब-सी निकली दलदली भूमि और चीड़ वृक्षों के मरियल झुरमुटों के बीच से एक गीली पगडंडी जाती थी। उसके सहारे हमने जंगल में प्रवेश किया। मुझे लगा कि पुरेख निवासी किरिल्लो की भांति अगर हमेशा जंगल में ही रहा जाए तो कितना बढ़िया हो। जंगल में न लड़ाई-झगड़ा था, न नशे में धुत लोगों की चीख-पुकार थी, न कोई छीना-झपटी थी। वहाँ न नाना की कंजूसी की याद आती थी, न माँ की रेतीली कब्र की। हृदय को दुखाने

और जी को भारी बनाने वाली प्रत्येक चीज़ मानो जंगल का स्पर्श पाकर विदा हो गई थी।

जब हम एक सूखे स्थल पर पहुँचे तो नानी ने कहा:

"यह जगह ठीक है। बैठ कर अब कुछ पेट में भी डाल लें।"

अपनी टोकरी में से नानी ने राय की रोटी, हरी प्याज़, खीरे, नमक और कपड़े में लिपटा घर का पनीर निकाला। नाना ने बेचैनी से आँखें मिचमिचा कर इन सब चीज़ों की ओर देखा।

"और मुझे देखो—अपने लिए कुछ लाना मैं एकदम भूल गया!"

"कोई बात नहीं। हम सब इसी में निबट जाएंगे।"

देवदार के एक ऊँचे वृक्ष के तांबे से तने से पीठ लगा कर हम बैठ गए। वायु में बिरोजे की गंध फैली थी, घास की पत्तियां झूम रही थीं और खेतों की ओर से हल्की बयार बह रही थी। गट्ठे पड़े अपने हाथों से नानी तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ तोड़ती जातीं और मुझे बताती जातीं कि अमुक पौधे में यह गुण है, सन्तजौन घास अमुक रोग को दूर करती है, कंटीली झाड़ी में जादू का असर भरा पड़ा है और चिपचिपा दलदली गुलाब भी गुणों में किसी से कम नहीं है।

नाना ईंधन के लिए झाड़-झंखाड़ काट रहे थे और मेरा काम था कि उसे बटोर कर एक जगह जमा करते जाना। लेकिन मैं चुपचाप खिसक कर नानी के पास झुरमुटों में पहुँच गया। वृक्षों के सबल और सशक्त तनों के बीच ऐसा मालूम होता मानो नानी तैर रही हों और रह रह कर जब वह नम, सींकों से ढकी धरती की ओर झुकतीं तो ऐसा मालूम होता जैसे पानी में डुबकी लगा रही हों। धरती इतनी मुलायम थी कि चाहो तो उसे सुई से खोद डालो।

और नानी, मानो अपने-आप से, बराबर बातें करती जाती थीं:

"अब इन कुकुरमुत्तों को देखो, कितनी जल्दी निकल आए—

यानी इस बरस ज़्यादा नहीं होंगे। हे भगवान, गरीबों का ध्यान रखने में तुम भी चूक जाते हो। जिनके घर में चूहे दण्ड पेलते हैं, उनके लिए तो ये कुकुरमुत्ते भी बहुत बड़ी न्यामत हैं।"

मैं चुपचाप, बिना कोई आवाज़ किए, नानी के पीछे लगा था। मैं नहीं चाहता था कि वह मुझे देखे, और नानी की नज़रों से बचने के लिए मैं भारी कोशिश कर रहा था। नानी कभी भगवान से बातें करतीं थीं, कभी मेंढ़कों से और कभी घास-पात से। मैं चाहता था कि नानी की इस बातचीत का तार कभी न टूटे, वह बराबर चलता रहे।

लेकिन नानी ने मुझे देख ही लिया।

"नाना के पास जी नहीं लगा, क्यों?"

काली धरती हरे बेल-बूटों से सजी थी और नानी झुक कर दोहरी हो गई थीं। झुके-झुके ही नानी ने मुझे बताया कि एक बार भगवान का पारा बुरी तरह चढ़ गया। मानवजाति से वह इतने नाराज़ हो गए कि उन्होंने समूची धरती को बाढ़ से प्लावित कर दिया, जितने भी जीवधारी थे, सभी डूब गए!

"लेकिन माँ मरियम ने, समय रहते, अपनी टोकरी उठाई, सभी बीजों को बटोर कर उसमें रखा और कहीं दूर ले जाकर बोलीं: 'बड़ा भला हो जो तुम समूची धरती को, इस छोर से उस छोर तक, अपनी किरनों से सुखा दो। दुनिया में अच्छे लोगों की कमी नहीं है। वे तुम्हारा सदा गुण गाएंगे।' सो सूरज ने धरती को सुखा दिया, और माँ मरियम ने छिपाकर रखे हुए बीजों को बो दिया। भगवान ने अब धरती की ओर देखा: वह फिर पहले की भांति हरी-भरी और आबाद थी—ढोर-डंगर, पेड़-पौधे और आदमी, सभी वहाँ मौजूद थे। भगवान के तेवर चढ़ गए। बोले: 'वह कौन है जिसने यह दुस्साहस किया है?' तब माँ मरियम ने

सारी बात बता दी। लेकिन खुद भगवान को भी कुछ कम दुःख न था — धरती को उजड़ा-उजड़ा और सूनसान देखकर उनका हृदय भी मसोस उठता था। सो वह बोले: 'तुमने यह अच्छा किया जो धरती को आबाद कर दिया, माँ मरियम!'"

नानी की यह कहानी मुझे पसंद आई। लेकिन इसे सुनकर मुझे अचरज भी हुआ। पूरी गम्भीरता के साथ मैंने पूछा:

"क्या सचमुच में ऐसा ही हुआ था? माँ मरियम तो बाढ़ के बहुत बाद पैदा हुई थी न?"

अब नानी के चकित होने की बारी थी।

"तुम्हें यह बात कहां मालूम हुई?"

"स्कूल में — किताबों में लिखी है।"

यह सुन नानी का जी कुछ हल्का हुआ। बोलीं:

"स्कूलों में ऐसी ही बातें सिखाते हैं, क्यों? और किताबें — उनके चक्कर में कभी न पड़ना। दुनिया भर की झूठी बातों के सिवा उनमें और लिखा ही क्या है?"

और एक हल्की और छोटी हंसी उनके चेहरे पर खेल गई।

"बेवक़ूफ़ों की बात तो देखो। कहते हैं, भगवान पहले से मौजूद थे, माँ बाद में आई। भला, जब माँ ही नहीं थी तो भगवान को जन्म किसने दिया?"

"मुझे क्या मालूम?"

"मुझे क्या मालूम — स्कूल में यही तो पढ़ाया जाता है — मुझे क्या मालूम!"

"पादरी ने बताया था कि मरियम ने याकिम और अन्ना के यहाँ जन्म लिया था।"

"इसका मतलब यह है कि वह मरिया याकिमोवना थीं।"

नानी का पारा एकदम गरम हो गया। कड़ी नज़र से मेरी आँखों में देखा। बोलीं:

"अगर फिर भी कभी ऐसी बात मुँह से निकाली तो देख लेना, मुझसे बुरा कोई न होगा—चमड़ी उधेड़ कर रख दूँगी!"

कुछ देर बाद नानी ने समझाया:

"माँ मरियम सदा से हैं—अन्य सबसे भी बहुत पहले से। भगवान ने उनके गर्भ से जन्म लिया और फिर..."

"और ईसा मसीह?"

नानी ने उलझन में पड़कर आँखें मूँद लीं।

"ईसा मसीह... ईसा... अरे हाँ...?"

मैंने देखा कि नानी से जवाब देते नहीं बन रहा है। यह मेरी जीत थी। नानी को मैंने 'सृष्टि' के रहस्यों में उलझा लिया था, और यह मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

हम जंगल में बढ़ते ही गए और ऐसी जगह पहुँचे जहाँ सूरज की सुनहरी किरनें नीले धुंधलके को बींध रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो हम दूसरी ही दुनियाँ में पहुँच गए हों। सुहावना और सुखद जंगल अपनी निजी और निराली आवाज़ से गूँज रहा था—सपने में डूबी उनींदी आवाज़, जो खुद हमें भी स्वप्निल बना रही थी, अपने साथ-साथ जो ख़ुद हमें भी सपनों की दुनिया में खींच रही थी। कहीं क्रासबिल पक्षी टिटिया रहे थे, कहीं टिटमाइस चहचहा रहे थे, कहीं कुकू के खिलखिला कर हंसने की आवाज़ आ रही थी, कहीं ओरियोल सीटी बजा रहे थे, ईर्ष्या से भरे गोल्डफिंच निरन्तर गीत गाने में मगन थे और वे विचित्र पक्षी — देवदार फिंच — दार्शनिकों की भांति अपना एक अलग शब्द-जाल बुन रहे थे। हरे कंच मेंढक हमारी टांगों के बीच उछल रहे थे, और घास में रहनेवाला एक साँप जड़ों की ओट में से, जो कि

उसके छिपने की जगह थी, अपना सुनहरी फन निकाले झांक रहा था। नन्हे दांतों से चटर-पटर करती एक गिलहरी, अपनी दुम फुलाए, देवदार वृक्ष की टहनियों में से कौंद गई। इतनी चीज़ें थीं कि बस देखते ही रहो। और मन फिर भी यही कहे कि अभी और देखो, बस देखते ही जाओ।

देवदार वृक्षों के तनों के बीच भीमाकार आकृतियों की एक छाया-सी दिखाई देती और अगले ही क्षण हरी गहराइयों में जहाँ नीला और रुपहला आकाश झलक रहा था विलीन हो जातीं। धरती पर गहरी काई का शानदार कालीन बिछा था जिस पर नीले और लाल बेरों के गुच्छों की कसीदाकारी बनी हुई थी। हरी घास के बीच लाल बेर रक्त की बूंदों की भांति चमकते थे और कुकुरमुत्तों की भीनी गंध जी को ललचा रही थी।

नानी ने उसांस लेते हुए माँ मरियम का नाम लिया:

"दुनिया की जोत, माँ मरियम।"

ऐसा मालूम होता था मानो जंगल उसका हो, और वह जंगल की। भारी-भरकम भालू की भांति झूमती वह चल रही थी, हर चीज़ को देखती, हर चीज़ पर मुग्ध होती और कृतज्ञता के शब्द गुनगुनाती। ऐसा लगता मानो सहृदयता उसके शरीर से प्रवाहित होकर जंगल में मिल रही हो। नानी का पांव पड़ने पर जब काई दब कर सिमटती-सिकुड़ती और पांव उठ जाने पर जब वह फिर से उभरती-फैलती तो मैं एक ख़ास आनन्द का अनुभव करता।

जंगल में घूमते-घूमते मुझे डाकुओं का ध्यान हो आया और मैं रह-रह कर सोचने लगा कि कितना अच्छा हो अगर मैं भी डाकू बन जाऊँ, अमीरों को लूट कर गरीबों का घर भरूँ। कितना अच्छा हो अगर इस दुनिया में सभी खुशहाल और खाते-पीते हों, न वे एक-दूसरे से जलें, न कुत्सित कुत्तों की भांति एक-दूसरे पर गुर्राएं!

और कितना अच्छा हो कि नानी के भगवान और माँ मरियम के पास जाकर मैं उनसे भेंट करूँ और उन्हें बताऊँ—सम्पूर्ण सत्य उनके सामने खोल कर रख दूँ कि लोग कितना दुःखद और कितना भयानक जीवन बिताते थे और मरने के बाद भी कितनी बुरी तरह एक-दूसरे को रेत में दफ़नाते थे। और यह कि किस अनावश्यक तथा गैरज़रूरी दुःखों ने धरती को दबा रखा था। और जब मैं यह देखता कि माँ मरियम पर मेरी बात का असर हुआ है, मेरी बात का वह यक़ीन करती है, तो मैं उनसे कुछ ऐसी समझ मांगता जिससे दुनिया की चीज़ों को बदला जा सके, उन्हें पहले से बेहतर बनाया जा सके। मैं उनसे, माँ मरियम से, कहता कि मुझे कुछ ऐसा बनाओ जो लोग मेरा विश्वास करें, और मैं निश्चय ही उनके लिए अच्छे जीवन का रास्ता खोज निकालता। माना कि मैं अभी छोटा ही था, लेकिन इस से क्या? ईसा मसीह मुझ से एक ही साल तो बड़े थे और उनकी बातों को सुनने के लिए एक से एक बुद्धिमान मन्दिर में आते थे!

मैं अपने विचारों में इतना डूबा था कि मुझे कुछ ध्यान न रहा और एक गहरे, खोहनुमा, गढ़े में मैं जा गिरा। एक ठूंठ की डाल से रगड़ खाकर मेरी पसलियाँ चरमरा गईं और सिर की चमड़ी उधड़ गई। गढ़े की तलहटी में ठंडे और चिपचिपे कीचड़ में मैं लिपटा पड़ा था। बाहर निकलने की मैंने कोशिश की, पर निकल न सका। मन ही मन खीज और शर्म से मैं गड़ा जा रहा था। चिल्ला कर नानी को पुकारते डर लगता था, लेकिन इसके सिवा और चारा भी क्या था।

नानी ने पलक मारते मुझे बाहर निकाल लिया और क्रास का चिन्ह बनाते हुए बोलीं:

"शुक्र है परमात्मा का! गढ़ा नहीं, यह भालू की मांद था।

गनीमत समझो कि वह इस समय मांद में नहीं था। लेकिन अगर वह मौजूद होता तो...?"

और नानी के चेहरे पर, आँसुओं के बीच, हंसी खेलने लगी। इसके बाद एक झरने पर ले जाकर नानी ने मेरे घाव धोए, दर्द दूर करने के लिए घावों पर कुछ पत्ते रखे, उन्हें अपने सलूके से बांधा और मुझे पकड़ कर किसी रेल्वे-गार्ड की झोंपड़ी में ले गई। सारा शरीर इस बुरी तरह दुःख रहा था कि मैं अपने पांवों घर नहीं पहुँच सकता था।

फिर भी आए दिन, बिला नागा, मैं नानी से कहता:

"चलो, जंगल चलें।"

और नानी बड़ी खुशी से इसके लिए तैयार हो जातीं। हम रोज़ जंगल जाते, जड़ीबूटियाँ और बेर बटोरते, कुकुरमुत्ते और जंगली बादाम जमा करते। इन सब चीज़ों को नानी बाज़ार में ले जा कर बेचतीं और इससे जो पैसा मिलता, उससे हम गुज़र करते।

इस प्रकार, पतझड़ बीतने तक, यही सिलसिला चलता रहा।

नाना का वही हाल था। उनकी खाने की चीज़ों को हम कभी हाथ से छूते तक नहीं थे। फिर भी वह चीख़ कर कहते:

"हरामखोर!"

जंगल मुझमें शान्ति और ख़ुशहाली की भावना जाग्रत करता, और यह भावना मुझे अपने हृदय के दुःख और मन खट्टा करने वाली अन्य सभी बातों को भूलने में मदद देती। इसके अलावा जंगल में देखने-परखने की मेरी शक्ति का भी अद्‌भुत विकास हुआ, मेरी दृष्टि पैनी हो गई, मेरे कान आवाज़ों को और भी तेज़ी से पकड़ने लगे। याद रखने की मेरी शक्ति बढ़ी और दिमाग़ का वह खाना जिस में देखी-सुनी चीज़ें जमा रहती हैं, और भी बड़ा हो गया।

और नानी — उनकी कुछ न पूछो। जितना ही मैं उन्हें देखता, उतना ही चकित होता। नानी की सूझ-बूझ मुझे अधिकाधिक चकित, और अधिकाधिक कायल करती जाती। यों तो मैं नानी को हमेशा ही अन्य सबसे अलग, और अन्य सबसे ऊँचा समझता था — धरती के जीवों में सबसे अधिक सहृदय, सबसे अधिक समझदार। और मेरे इस विश्वास को नानी ने हर घड़ी पुष्ट ही किया। एक दिन की बात है। सांझ का समय था। कुकुरमुत्ते बटोरने के बाद हम घर लौट रहे थे। जंगल के छोर पर पहुँच कर नानी सुस्ताने के लिए बैठ गईं और मैं, कुछ और कुकुरमुत्ते बटोरने की आशा से, चल दिया।

सहसा नानी की आवाज़ सुन मैंने मुड़ कर देखा। नानी रास्ते के बीचों बीच निर्द्वन्द्व भाव से बैठी थीं और हमारे बटोरे हुए कुकुरमुत्तों की जड़ें काट काट कर अलग कर रही थीं। नानी के पास में ही भूरे रंग और पतले बदन का एक कुत्ता खड़ा था। कुत्ते की जीभ बाहर निकली हुई थी।

नानी कह रही थीं:

"देखो, अब जाओ। अपना रास्ता नापो। कह दिया न, बहुत नटखटपन न दिखाओ। जाओ, भगवान तुम्हारा भला करें!"

कुछ ही दिन पहले वाल्योक ने मेरे कुत्ते को ज़हर देकर मार डाला था। मेरे मन में हुआ कि इस नये कुत्ते को ही क्यों न पाल लिया जाए। मैं पथ की ओर लपका। कुत्ते ने अपने सिर को मोड़े बिना ही कमान की भांति एक विचित्र ढंग से अपना बदन तान लिया, और हरे रंग की अपनी सर्द सूखी आंखों से मेरी ओर देखा। फिर एक छलांग मार कर और अपनी दुम को टांगों के बीच दबाए जंगल में गायब हो गया। उसकी चाल-ढाल और तेवर कुत्तों ऐसे नहीं थे, और सीटी बजा कर जब मैंने उसे बुलाना चाहा तो वह जंगली जन्तु की भांति तेजी से झाड़ियों में घुस गया।

नानी ने मुसकरा कर कहा:

"देखा तुमने? धोखे में पहले मैंने उसे कुत्ता समझ लिया। फिर कुछ ध्यान से देखा—भेड़िये जैसे जबड़े, और ठीक वैसी ही गरदन। एक बार तो डर के मारे मेरी घिग्घी-सी बंध गई। लेकिन फिर मैंने कहा—अच्छा बाबा, अगर तुम भेड़िया हो तो भेड़िया ही सही। तुम्हारे दर्शन मैं कर चुकी, अब जाओ। गनीमत यही है कि गर्मियों के दिनों में भेड़िये ज़्यादा उत्पात नहीं करते।"

जंगल में भटकना तो नानी जैसे जानती ही नहीं थीं। चाहे जो हो, घर का पथ पकड़ने में वह कभी नहीं चूकती थीं। घास-पात की गंध से ही वह पता लगा लेतीं कि अमुक स्थान पर किस किस्म के कुकुरमुत्ते होते हैं और अमुक स्थान पर किस किस्म के। बहुधा नानी मेरी जानकारी की भी परीक्षा लेतीं:

"लाल कुकुरमुत्ते किस पेड़ के नीचे उगते हैं? अच्छे और विषैले सिरोयेजका की क्या पहचान है? झाड़ियों की ओट में किस प्रकार के कुकुरमुत्ते उगते हैं?"

किसी पेड़ के बक्कल पर खरोंच का नन्हा सा निशान देखकर नानी गिलहरी के बिल का पता लगा लेती। मैं पेड़ पर चढ़ता और गिलहरी के बिल में जाड़े के लिए जमा सारी गिरी निकाल लेता। इस तरह, कभी-कभी, पूरी एक पसेरी तक गिरी हाथ लग जाती।

एक बार, उस समय जब कि मैं पेड़ पर चढ़ा गिलहरी की जमा-पूंजी निकालने में व्यस्त था, किसी शिकारी ने बन्दूक छोड़ी और एक साथ सत्ताइस छर्रे मेरे बदन में घुस गए। नानी ने ग्यारह छर्रे तो सुई से खोद-खोद कर निकाले, बाकी कई साल तक मेरे बदन में ही घुसे रहे और धीरे-धीरे, एक-एक करके, अपने आप बाहर निकलते रहे।

नानी ने जब छर्रे निकाले तो मैंने उफ़ तक न की। नानी इससे खुश हुई। बोलीं:

"अच्छे लड़के ऐसे ही होते हैं। जिसने दर्द पर क़ाबू पा लिया उसने मानो मोर्चा ही सर कर लिया!"

कुकुरमुत्तों और गिरियों की बिक्री से जब कभी कुछ फालतू पैसा मिल जाता तो वह रात को पास-पड़ोस के घरों का चक्कर लगाती और खिड़कियों की ओटक पर अपना 'गुपचुप दान' रख आतीं। लेकिन खुद चिथड़ों और पैबन्द लगे कपड़ों में ही लिपटी रहतीं। चाहे कोई त्यौहार हो या उत्सव, नानी की इस वेशभूषा में कभी कोई अन्तर न पड़ता।

नाना कुढ़कर बड़बड़ाते:

"इसने तो भिखमंगों को भी मात कर दिया। देख कर शर्म मालूम होती है!"

"शर्म की इसमें क्या बात है? न तो मैं तुम्हारी लड़की हूँ, और न कोई कुंवारी छोकरी ही जिसे अभी तक पति नहीं मिला।"

घर में अब नित्य ही खटपट होती।

"मैंने क्या औरों से ज़्यादा पाप किए हैं?" चोट खाए स्वर में नाना चिल्लाते।—"लेकिन भगवान है कि सारी सज़ा मुझे ही देने पर तुला है!"

नानी उन्हें और भी चिढ़ातीं:

"शैतान को कोई भी धोखा नहीं दे सकता।"

फिर, अकेले में, मुझे समझाती:

"देखो न, बूढ़े के सिर पर शैतान का भय किस बुरी तरह सवार है। डर ने उसे एकदम जर्जर बना दिया है। हाय मेरे राम, देख कर दया आती है!"

गर्मी के उन दिनों में जंगल में घूमने से मेरा शरीर तो तगड़ा बन गया लेकिन मेरी मिलनसारी ख़त्म हो गई। अपने संगी-

साथियों और लुदमिला के जीवन में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रही। उसके सयानेपन से मैं ऊब चला।

एक दिन जब नाना नगर से लौटे तो वह बुरी तरह भींग गए थे। शरद के दिन थे और बारिश हो रही थी। नाना ने दरवाज़े पर खड़े होकर चिड़िया की भांति पर फड़फड़ाए और गर्व से तनते हुए बोले:

"बहुत दिन मज़े कर लिए, काहिल की औलाद! अब कल से तुम्हारी गरदन पर काम का जुवा रखा जाएगा।"

नानी ने झुंझला कर पूछा:

"कहाँ रखा जाएगा काम का यह जुवा?"

"तुम्हारी बहन मात्रियोना के यहाँ— उसके लड़के के पास।"

"लेकिन मालिक, तुमने यह अच्छा नहीं किया।"

"तू तो सठिया गई है। जब देखो, बेकार की बातें ही करती है। वहाँ रह कर यह नक़्शानवीस बन जाएगा।"

बिना कुछ कहे नानी ने अपना सिर झुका लिया।

उसी साँझ मैंने लुदमिला को बताया कि मैं नगर जा रहा हूँ। भारी आवाज़ में वह बोली:

"मेरा बिस्तरा-बोरिया भी नगर के लिए जल्दी ही गोल होगा। पिता जी मेरी टांग कटवा देना चाहते हैं। उनकी राय है कि टांग कटने से मैं अच्छी हो जाऊँगी।"

गर्मियों में वह सूख कर और भी दुबली हो गई थी। उसके चेहरे पर नीलापन छा गया था और आँखें अब खूब बड़ी बरबट्टा सी दिखाई देती थीं।

मैंने पूछा:

"क्या तुम्हें डर लगता है?"

"हाँ", उसने जवाब दिया और बिना आवाज़ किए चुपचाप रोने लगी।

उसे उदास देखकर ढाढ़स बंधाने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नहीं था। नगर के जीवन से उसकी ही नहीं, खुद मेरी भी रूह कांपती थी। बहुत देर तक हम दोनों भारी उदासी में डूबे, चुपचाप, एक-दूसरे से चिपके बैठे रहे।

अगर गर्मियों के दिन होते तो मैं नानी के सिर पड़ता और कहता कि चलो, भीख मांगने चलें! नानी बचपन में यह काम भी कर चुकी थीं और इसके लिए अब फिर तैयार हो जातीं। लुदमिला को भी हम अपने साथ ले लेते। वह एक छोटे से ठेले में बैठ जाती और मैं उसे खींचता।

लेकिन यह तो शरद के दिन थे। सड़कों पर सीली हवा सनसनाती थी और आकाश अनगिनती बादलों से घिरा रहता था। धरती के चेहरे पर मानो पानी फिरा था, कीचड़ ने उसे गंदा बना दिया था और उसका मुँह गुस्से से फूल कर कुप्पा हो गया था।

४

मैं अब फिर नगर में जाकर रहने लगा। सफ़ेद रंग का, मानो कफ़न-लपेटे, एक दो-मंजिला मकान था जिसके पेट में अनगिनती लोग समाए थे। घर यों तो नया था, लेकिन मालूम ऐसा होता था मानो वह किसी रोग का शिकार हो, मानो वह कोई सात जन्म का भूखा भिखारी हो जिसे एकाएक धनवान बन जाने के बाद पहली बार पेट भरने का मौका मिला हो और अल्लम-गल्लम सभी कुछ खा लेने के कारण जिसका पेट अफर गया हो। उसका मुख सड़क की ओर न था। दोनों मंज़िलों में आठ-आठ खिड़कियाँ थीं और

सड़क के रुख, जिधर मकान का सामना होना चाहिए था, हर मंज़िल में चार-चार। नीचे की खिड़कियाँ अहाते में एक तंग गलियारे की ओर खुलती थीं, और ऊपर की खिड़कियों से बाड़े के उस पार गंदा नाला और धोबिन का छोटा-सा घर दिखाई देता था।

असल में गली-ऐसी वहाँ कोई चीज़ नहीं थी। मकान के सामने यही गंदा नाला फैला था जिस पर दो जगह संकरे बाँध बने हुए थे। उसका बायाँ छोर जेलखाने को छूता था। पास ही, नाले के किनारे, बस्ती का कूड़ा-करकट और मैला जमा होता था और नाले की तलहटी में काई की एक मोटी हरी तह जम गई थी जो बराबर रिसती और उफनती रहती थी। दाहिना सिरा गंदे ज़्वेज़्दिन जोहड़ में जाकर खत्म होता था। नाले का मध्य भाग ठीक हमारे घर के सामने था जिसके आधे हिस्से में कूड़ा-कचरा भरा था और कंटीली झाड़ियाँ, घास-पात तथा सरकंडे उगे थे। बाक़ी आधे हिस्से में पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोवस्की ने अपना बग़ीचा लगा रखा था। बग़ीचे के बीच में एक ग्रीष्म घर था जिसकी हरी खपच्चियाँ पत्थर मारने पर छिन्न-भिन्न होकर हवा में झूलने लगती थीं।

दुनिया-भर की गन्दगी मानो इसी एक जगह पर आकर जमा हो गई थी। देख कर दम घुटता था। शरद ऋतु के कारण यहाँ की कूड़ा-कचरा मिली लाल रंग की मिट्टी कोलतार की भांति चिपचिपी हो गई थी। पाँवों में वह इस बुरी तरह चिमट जाती कि छुड़ाए न छूटती। छोटी-सी जगह में गन्दगी की इतनी भरमार मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। खेतों और जंगलों की स्वच्छता में रमने के बाद नगर के इस कुत्सित कोने में रहना इतना अखरता कि कह नहीं सकता।

नाले के उस पार टूटे-फूटे मटमैले बाड़ों की पांत दिखाई देती थी। उनमें खाकी रंग का वह मकान भी था जिसमें मैं उन दिनों रहता था जब जूतों की दूकान में छोकरे के रूप में काम करता था। इस मकान को अपने इतना निकट देख मुझे और भी बुरा मालूम होता। मेरे भाग्य में क्या इसी बस्ती में रहना बदा था?

अपने नये मालिक से मैं पहले से परिचित था। वह और उसका भाई कभी मेरी माँ से मिलने आया करते थे, और उसका भाई बड़े ही मज़ेदार ढंग से पिनपिना कर कहता था:

"आन्द्रेई पापा! आन्द्रेई पापा!"

दोनों के दोनों अब भी बिल्कुल वैसे ही थे। बड़े भाई की तोते ऐसी नाक और लम्बे बाल थे। वह अच्छे दिल का आदमी मालूम होता था। छोटा भाई वीक्तर पहले की भांति अब भी वैस ही घुड़मुंहा था, और उसके चेहरे पर भूरे धब्बे पड़े थे। उनकी माँ मेरी नानी की बहिन थी, लेकिन उसका स्वभाव नानी से बिल्कुल भिन्न था—चिड़चिड़ा और झगड़ालू। बड़े लड़के का विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी काली आँखों वाली, मैदे के आटे की डबल रोटी की भांति सफ़ेद और मोटी-ताज़ी थी।

शुरू के कुछ दिनों में ही उसने मुझे दो बार जताया:

"तुम्हारी माँ को मैंने काले चमकदार मोती जड़ा एक रेशमी लबादा दिया था।"

लेकिन न जाने क्यों, उसकी यह बात मुझे कुछ जंची नहीं कि उसने माँ को रेशमी लबादा भेंट किया था, और यह कि मां ने उसे स्वीकार कर लिया था। अगली बार जब फिर उसने लबादे का ज़िक्र छेड़ा तो मैंने कहा:

"लबादा न हुआ एक मुसीबत हो गई। अगर दिया भी था तो कौन बड़ी बात हो गई।"

यह सुन वह सुन्न रह गई।

"क्या-आ-आ-आ? तूने मुझे समझ क्या रखा है?"

गुस्से के मारे उसका चेहरा लाल चकोतरा बन गया, उसने अपने दीदों को घुमाया और पति को आवाज़ दी।

कान में पैन्सिल खोंसे और हाथ में परकाल लिए पति ने रसोईघर में पाँव रखा। अपनी पत्नी की शिकायत सुनने के बाद उसने मुझसे कहा:

"समझे, यहाँ मुँहफट बनने से काम नहीं चलेगा!"

फिर वह बेसब्री से अपनी पत्नी की तरफ़ घूम गया:

"इस तरह की बकवास से मेरा दिमाग़ न चाटा करो!"

"बकवास... तुम इसे बकवास कहते हो! जब तुम्हारे अपने घर के आदमी ही..."

"भाड़ में जाएँ अपने घर के आदमी!" उसने कहा, और फिर लपक कर बाहर चला गया।

नानी के ऐसे भी सम्बन्धी हो सकते हैं, यह बात मेरे गले में अटक कर रह जाती। नित्य ही मैं देखता कि सगे-सम्बन्धी एक-दूसरे से जितना बुरा व्यवहार करते हैं, उतना अजनबी भी नहीं कर पाते। एक-दूसरे की कमज़ोरियों और बेहूदगियों को जितना अधिक वे जानते थे, उतना कोई बाहरी आदमी कैसे जान सकता था। सो वे जम कर एक-दूसरे के बारे में कुत्सा फैलाते, बात-बे-बात आपस में लड़ते और झगड़ते।

मुझे अपना मालिक पसंद आया। वह कुछ इतने मन-भावने ढंग से अपने बालों को पीछे की ओर झटका देता, और उन्हें कानों की ओट में कर लेता कि बहुत ही भला मालूम होता। उसे देखकर न जाने क्यों मुझे "वाह भाई खूब!" की याद हो आती।

वह अक्सर खूब खुल कर हँसता। हँसते समय उसकी भूरी आँखें प्रसन्नता से चमकने लगतीं और उसकी तोते ऐसी नाक के दोनों ओर बहुत ही लुभावनी झुर्रियाँ पड़ जातीं।

"यह चोंचें लड़ाना बन्द करो! घर न हुआ, मुर्गीखाना हो गया!" मुसकराते हुए वह अपनी माँ और पत्नी से कहता, उसके छोटे-छोटे और खूब सटकर जमे हुए दाँत मोती से झलकने लगते।

दोनों की दोनों आए दिन लड़ती और झगड़ती थीं। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज होता कि कितनी जल्दी और कितनी आसानी से ये एक-दूसरे का मुँह नोंचने पर उतर आती हैं। सुबह तड़के ही वे उठतीं और आंधी की भांति उखाड़-पछाड़ करतीं कमरों में इस प्रकार घूमतीं मानो घर में आग लगी हो। दिन-भर वे इसी प्रकार तोबा-तिल्ला मचाए रहतीं और केवल दोपहर के भोजन, चाय और सांझ के खाने के समय जब वे मेज़ पर बैठतीं तो घर में कुछ शान्ति दिखाई देती।

खाने पर वे बुरी तरह टूटतीं। भोजन की खूब नुक्ताचीनी करतीं और अलस भाव से ऐसे बोल बोलतीं जो फूस में चिंगारी का काम करते। सास चाहे जो भी पकाती, बहू ताना कसे बिना नहीं चूकती:

"मेरी माँ इस चीज़ को दूसरे ही ढंग से बनाती थीं!"

"ऊँह, दूसरे ढंग से बनाती थीं! यह क्यों नहीं कहती कि गुड़-गोबर एक करके रख देती थीं!"

"गुड़-गोबर तो तुम एक करती हो। माँ की बनाई चीज़ खाओ तो उँगलियाँ चाटती रह जाओ!"

"तब तुम यहाँ क्यों पड़ी हो? अपनी माँ के पास जाकर क्यों नहीं रहती?"

"मैं इस घर की मालकिन जो हूँ!"

"और मैं तुम्हारी बाँदी हूँ,—क्यों?"

"तुमने फिर चोंचें लड़ाना शुरू कर दिया, मुर्गियो!" पति बीच में ही टोकते। — "आखिर कोई बात भी हो! जब देखो तब बिल्लियों की तरह पंजे चलाने को तैयार!"

घर में हर चीज़ इतनी बेढंगी, बेडौल और अटपटी थी कि कहते नहीं बनता। रसोईघर से अगर भोजन के कमरे में जाना हो तो एक छोटे-से तंग और संकरे पाख़ाने में से गुज़रना पड़ता था। ले-देकर समूचे घर में एक ही पाख़ाना था। खाने की चीज़ें और समोवर सब इधर से ही ले जाकर मेज़ पर सजाए जाते थे। इस पर नित्य ही मज़ाक होता और कोई-न-कोई मज़ेदार घटना घटती रहती। मेरे कामों में एक काम यह भी था कि हाथ-मुँह धोने की टंकी कभी खाली न होने पाए। मैं पाख़ाने के दरवाज़े के ठीक सामने और वराण्डे की ओर जाने वाले दरवाज़े की बगल में रसोईघर में सोता था। मेरा सिर रसोईघर के स्टोव की गर्मी से भन्नाने लगता और पाँव वराण्डे वाले दरवाज़े से आनेवाली ठंडी हवा से सुन्न हो जाते। रात को जब मैं सोता तो फ़र्श पर बिछी तमाम चटाइयों को बटोर कर अपने पाँवों पर डाल लेता।

ड्राइंगरूम बहुत ही उदास और सूना-सूना-सा लगता जिसमें खिड़कियों के बीच दीवार पर दो लम्बे आईने लटके थे, फ़र्श पर ताश खेलने की दो छोटी मेज़ें और बारह सीधी पीठवाली कुर्सियाँ पड़ी थीं, और 'नीवा' पत्रिका का ग्राहक होने के नाते पुरस्कार में मिली और रुपहले चौखटों में जड़ी तस्वीरें दीवारों के सूनेपन को तोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थीं। इसी के साथ एक छोटा-सा कमरा और था जो सस्ती बाज़ारू किस्म की गद्देदार मेज़-कुर्सियों और अल्मारियों से अटा था जिनके खानों में चांदी के बरतनों और चाय पीने के सेटों की नुमाइश-सी सजी थी। ये सब चीज़ें शादी में मिली थीं। रही-सही कसर पूरी करने के लिए छत से तीन

लैम्प लटके थे जो आकार-प्रकार में एक-दूसरे से होड़ लेते मालूम होते थे। सोने के कमरे में खिड़की एक भी नहीं थी। उसमें एक भीमाकार पलंग, ट्रंक और कपड़े रखने की अलमारियों की भरमार थी जिनसे पत्ती के तम्बाकू और मेहंदी-कमीले की बू आती थी। ये तीनों कमरे हमेशा खाली पड़े रहते थे और समूचा परिवार भोजन करने के छोटे-से कमरे में ही कसमसाता और हर घड़ी एक-दूसरे से टकराता रहता था। सुबह आठ बजे नाश्ता करने के तुरंत बाद पति और उसके भाई अपनी मेज़ को फैला लेते, सफेद कागज़ की पड़त से उसे ढक देते और ड्राइंग के औज़ार, पेन्सिलें और रोशनाई से भरी प्यालियाँ लाकर काम में जुट जाते। एक मेज़ के दूसरे छोर पर रहता, और दूसरा ठीक उसके सामने। मेज़ के अंजर-पंजर ढीले हो चुके थे। वह हिलती थी और समूचे कमरे को घेरे थी। जब कभी छोटी मालकिन और बच्चे को खिलाने वाली दाई भीतर से बाहर आतीं तो मेज़ से टकराए बिना न रहतीं। तभी वीक्तर चिल्ला कर कहता:

"देखकर नहीं चला जाता!"

मालकिन आहत चेहरे से अपने पति की ओर देखती और कहती:

"वास्या, इसे मना कर दो कि मुझपर इस तरह न चिल्लाया करे।"

पति शान्त स्वर में समझाता:

"ज़रा संभल कर चला करो जिससे मेज़ न हिले।"

"तुम क्या जानते नहीं कि मेरे पेट में बालक है, और यहाँ इतनी घिचपिच है कि बचकर निकलना मुश्किल है।"

"अच्छी बात है। हम अपना ताम-झाम उठा कर ड्राइंगरूम में चले जाएंगे।"

"हाय राम, तुम भी कैसी बातें करते हो? ड्राइंगरूम मेहमानों को बैठाने की जगह है या काम करने की?"

पाख़ाने के दरवाज़े में मेरी बूढ़ी मालकिन मात्रियोना ईवानोवना का चेहरा दिखाई देता—चूल्हे में से निकली चुकन्दर की भांति लाल!

"उसकी बात तो सुनो, वास्या!" उसने चिल्ला कर कहा।—"एक तुम हो कि काम करते-करते मरे जाते हो और एक यह है कि बच्चे-कच्चे जनने के लिए इसे चार कमरे भी छोटे पड़ते हैं! अच्छी राजकुमारी से शादी की है तुमने, जिसके भेजे में सिवा गोबर के और कुछ नहीं है!"

वीक्तर उपेक्षा से खिलखिला उठा। पति चिल्ला कर कहता:

"बस-बस, अब ज़्यादा कान न खाओ!"

लेकिन उसकी पत्नी, अपनी सास पर तीखे बाणों की बौछार करते और जी भर कर कोसते हुए मेज़ पर औंधी गिर पड़ी और लगी सिसकने:

"मैं यहां नहीं रह सकती! मैं गले में रस्सी बांध कर लटक जाऊँगी!"

"मुझे काम भी करने देगी या नहीं, कम्बख़्त!" गुस्से से सफ़ेद पति चिल्लाया।—"घर न हुआ पागलखाना हो गया! आख़िर तुम लोगों का दोज़ख भरने के लिए ही तो मैं यहाँ खड़े होकर अपनी कमर तोड़ता हूँ, मुर्गी की बच्चियो!"

पहले-पहल ये झगड़े मुझे ख़ूब भयभीत करते थे। एक बार तो मेरी जान ही सूख गई। पत्नी ने गुस्से में डबल रोटी काटने का चाकू उठाया, पाख़ाने में घुसकर भीतर से चटखनी चढ़ा ली, और लगी वहशियों की भांति चीख़ने-चिल्लाने। एक क्षण के लिए सारे

घर में सन्नाटा-सा छा गया। फिर पति भाग कर दरवाज़े के पास पहुँचा, और झुक कर एकदम दोहरा हो गया।

"मेरी कमर पर चढ़ जाओ, और खिड़की तोड़ कर दरवाज़े की चटखनी खोल डालो!" उसने चिल्ला कर मुझसे कहा।

लपक कर मैं उसकी पीठ पर चढ़ गया और मैंने दरवाज़े का शीशा तोड़ डाला। लेकिन चटखनी खोलने के लिए जैसे ही मैं नीचे की ओर झुका कि पत्नी ने चाकू की मूठ से मेरे सिर पर प्रहार किया। जो हो, दरवाज़ा मैंने खोल दिया। इसके बाद पति अपनी पत्नी पर बुरी तरह झपटा, उसे खींचता हुआ भोजन करने के कमरे में ले गया, और उसने उसके हाथ से चाकू छीन लिया। मैं रसोईघर में बैठा अपना चोट खाया सिर सहला रहा था और मन-ही-मन सोच रहा था कि व्यर्थ ही मैंने इतनी मुसीबत मोल ली। चाकू इतना खुट्टल था कि गरदन तो दूर, उससे मक्खन तक नहीं काटा जा सकता था। न ही मालिक की पीठ पर चढ़ने की कोई ख़ास ज़रूरत थी। शीशा तोड़ने के लिए मैं कुर्सी पर भी खड़ा हो सकता था। फिर अच्छा होता अगर कोई बड़ा आदमी चटख़नी खोलता—लम्बी बाँहें होने पर यह काम सहज ही हो जाता।

इस दिन के बाद मैंने इस घर की घटनाओं से भयभीत होना छोड़ दिया।

दोनों भाई गिरजे में गाते थे। कभी-कभी काम करते समय भी वे धीमे स्वरों में गुनगुनाया करते। बड़ा भाई पुरुष कण्ठ से गुनगुनाता:

उछलती लहरों में खोई,
प्रिय की प्रेम निशानी!

और छोटा भाई कोमल स्वर में साथ देता:

सुख-शान्ति हुई बिरानी
हुई सूनी ज़िन्दगानी!

भीतर के कमरे से छोटी मालकिन दबी हुई आवाज़ में कहती:

"तुम्हें हो क्या गया है? बेबी को सोने भी दोगे या नहीं?"

या फिर:

"वास्या, तुम घर-बीबी वाले आदमी हो। प्रेम की निशानियों के गीत गाते समय तुम शर्म से गड़ नहीं जाते! इसके अलावा गिरजे में प्रार्थना की घंटी भी बजती ही होगी।"

"अच्छा तो यह लो, हम अभी गिरजे के गीत गाना शुरू करते हैं।"

मालकिन ज़ोर देकर कहतीं कि गिरजे के गीत हर कहीं नहीं गाए जा सकते—ख़ास तौर से यहाँ। और पाख़ाने की ओर इशारा करके मालकिन 'यहां' का अर्थ ज़रूरत से ज़्यादा स्पष्ट कर देती।

"हद है!" गुर्राते हुए मालिक कहते।—"अब तो मकान बदलना ही पड़ेगा!"

मकान बदलने की भांति मालिक नयी मेज़ लाने का भी बहुधा राग अलापते थे। लेकिन तीन साल हो गए थे और मेज़ का अभी कहीं पता तक न था।

अपने पड़ोसियों के बारे में जब भी ये लोग बातें करते तो मुझे जूतों की दुकान वाले कुत्सित वातावरण की याद ताज़ा हो आती। साफ़ मालूम होता कि मेरे ये मालिक भी अपने आप को नगर में सब से अच्छा, एकदम दूध का धुला, समझते हैं। बेदाग नैतिकता और सदाचार के मानो ये पूरे चौधरी थे, हालांकि मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ता था कि आख़िर उनका यह सदाचार है क्या।

वे किसी को न बख़्शते, और सभी को सदाचार की अपनी कसौटी पर बड़ी बेरहमी से कसते। उनकी इस आदत को देखकर उनके प्रति और उनके सदाचार के प्रति मेरे मन में तीखा रोष घर करता और उनके इस सदाचार को पाँव तले रौंदने में मुझे अब बेहद आनन्द आता।

मुझे भारी मेहनत करनी पड़ती। घर की महरी का सारा काम मैं ही करता — रसोईघर में झाड़ू-बुहारी देता, बुध के दिन समोवर और पीतल के दूसरे बरतनों को रगड़-रगड़ कर चमकाता, और शनिवार के दिन समूचे घर तथा दोनों जीनों को साफ़ करता। चूल्हों के लिए लकड़ी काटता और अपने सिर पर लाद कर लाता, जूठे बरतन मांजता, साग-भाजी सुधारता, टोकरी हाथ में लेकर अपनी मालकिन के साथ बाज़ार जाता, सौदा-सुलफ़े और दवाइयों के लिए किराने तथा दवाफ़रोश की दूकानों के चक्कर लगाता।

मेरी बड़ी मालकिन, मेरी नानी की चिड़चिड़ी और झगड़ालू बहन, रोज़ सुबह ही छै बजे उठ जाती। जल्दी से हाथ-मुँह धोती, बदन पर दूसरा लबादा डाल देव-मूर्ति के सामने घुटने टेक कर बैठ जाती, और बड़ी देर तक अपने जीवन, अपने बेटों और बहू के बारे में भगवान से शिकायतें करती।

"हे भगवान!" अपनी उँगलियों के छोर बटोर कर वह एक चोंच सी बनाती और उससे अपने माथे को छूते हुए रूआँसी आवाज़ में झींकना शुरू करती। — "हे भगवान, मैं तुम से और कुछ नहीं चाहती — बस, थोड़ी सी शान्ति चाहती हूं, इतनी कि मेरी आत्मा को कुछ चैन, थोड़ी-सी राहत, मिल सके!"

उसके इस रोने-झींकने से मेरी आँखें खुल जातीं और कम्बल के नीचे लेटा मैं उसकी ओर देखता रहता, सहमे हृदय से भगवान के सामने उसका बिलखना-बिसूरना सुनता। बारिश से धुली रसोईघर

की खिड़की में से शरद की सुबह उदासी से भीतर झांकती, और सूरज की ठंडी किरनों में उसकी भूरी आकृति अंधाधुंध तेज़ी से फर्श पर झुकती और क्रास के चिन्ह बनाती रहती। उसके छोटे से सिर पर बंधा रूमाल खिसक कर उतर जाता और उसके रंग-उड़े महीन बाल उसके कंधों से उलझने लगते। उसका बायां हाथ तेज़ी से हरकत करता और अपने रूमाल को फिर से सिर पर खिसकाते हुए वह बड़बड़ा उठती:

"यह चिथड़ा भी चैन नहीं लेने देता!"

क्रास का चिन्ह बनाते समय वह अपने माथे, कंधों और पेट पर ज़ोरों से हाथ मारती और भगवान के दरबार में अपनी फरियाद की फुंकार छोड़ती:

"हे भगवान, अगर तुम्हें मेरा ज़रा-सा भी ख़्याल हो तो मेरी इस बहू को कसकर सज़ा देना। जिस तरह वह मेरा अपमान करती है और मुझे सताती है, वैसे ही तुम भी उसे आड़े हाथों लेना। और मेरे बेटे की आँखें खोलना, उसे इतना समझ देना जिससे वह बहू की असलियत पहचाने, और वीक्तर को सही नज़र से देख सके, और वीक्तर पर दया रखना, उसे अपने हाथ का सहारा देना, भगवान!"

वीक्तर भी यहाँ, रसोईघर में ही, एक ऊँचे तख़्ते पर सोया था। माँ का रोना-झींकना सुन उसकी भी नींद उचट गई और उनींदे स्वर में चिल्लाया:

"सबेरे ही सबेरे तुमने फिर रोना-कोसना शुरू कर दिया! तुम पर भी जैसे खुदा की मार है, माँ!"

"बस-बस, तू सोता रह। बहुत बातें न बना," माँ फुसफुसाकर दबे हुए स्वर में कहती। इसके बाद, एक या दो मिनट तक, वह

चुपचाप आगे-पीछे की ओर झूमती और फिर बदले की भावना से फनफना कर चीख उठती:

"भगवान करे उनकी हड्डियां तक जम कर बर्फ हो जाएं, और उनका सारा खून सूख जाए!"

मेरे नाना भी कभी इतनी कुत्सित प्रार्थनाएं नहीं करते थे।

प्रार्थना करने के बाद वह मुझे जगाती।

"उठ खड़ा हो! क्या नवाब की भांति ऐंड रहा है, मानो इसीलिए हमने तुझे यहां रखा हो? उठ, समोवर तैयार कर और लकड़ियाँ भीतर लाकर रख। अहा, रात फिर छेपटियाँ चीरना भूल गया, क्यों?"

उसकी फनफनाहट-भरी बड़बड़ से बचने के लिए मैं खूब फुर्ती से काम करता, लेकिन उसे खुश करना असम्भव था। आंधी की भांति सनसनाती वह रसोईघर में आती और फुंकार उठती:

"शि-शि-शि, शैतान की औलाद! अगर वीक्तर को जगा दिया तो फिर देखना, कैसे कान उमेठती हूँ! अच्छा जा, भाग कर दूकान से सामान ले आ।"

नाश्ते के लिए मैं हर रोज़ छोटी मालकिन के वास्ते दो पौंड पाव रोटी और कुछ टिकियाँ खरीद कर लाता था। जब मैं रोटी लेकर घर लौटता तो दोनों सन्देह-भरी नज़र से उसे उलट-पलट कर देखतीं, हथेलियों पर रख कर उसका वज़न जांचतीं और पूछतीं:

"यह कम तो नहीं है? इसके साथ क्या एक टुकड़ा और नहीं था? अच्छा, ज़रा इधर आकर अपना मुँह तो खोल!"

इसके बाद वे इस तरह चिल्लातीं मानो मैदान मार लिया हो:

"देखा, दूसरा टुकड़ा यह खुद चट कर गया—साफ़ निगल गया! इसके दांतों में रोटी के कण चिपके हैं!"

काम करना मुझे अखरता नहीं था। बड़े मज़े से मैं घर की धूल झाड़ता-बुहारता, फर्श को रगड़ता, पीतल के बरतनों को चमकाता, दरवाज़ों की मूठों और दस्तों को साफ़ करता, और तश्तरियों को धोता। जब घर में शान्ति होती तो स्त्रियाँ अक्सर कहतीं:

"काम तो यह मेहनत से करता है।"

"और साफ़-सुथरा भी रहता है।"

"लेकिन बहुत सरकश है।"

"ज़रा यह भी तो सोचो कि किन हालतों में इसका लालन-पालन हुआ है!"

दोनों ही चाहतीं कि मैं उनका मान करूँ, उनके साथ अदब से पेश आऊँ। लेकिन मैं उन्हें आधा पागल समझता। उनके किसी काम न आता, उनका कहना नहीं मानता और हमेशा मुँह-दर-मुँह जवाब देता। छोटी मालकिन से जब यह छिपा न रहा कि उसकी बातों का मुझ पर उलटा ही असर होता है तो उसने बार-बार कहना शुरू किया:

"अच्छा होता अगर कंगलों के अपने उसी परिवार में पड़ा रहता। यहाँ आकर अपनी औकात भूल गया। मालूम है, तेरी माँ तक को मैंने एक बार काले मोती जड़ा रेशमी लबादा पहनाया था!"

जब मुझसे नहीं रहा गया तो एक दिन मैंने उससे कहा:

"तो क्या अपने उस लबादे के बदले में अब तुम मेरी खाल उतरवाना चाहती हो!"

घबराकर वह चिल्लाई:

"हाय भगवान, यह भी क्या लड़का है। इसका बस चले तो घर में आग ही लगा दे!"

यह सुन मैं सकपका गया—आख़िर मैं घर में आग क्यों लगाऊँगा?

मेरे बारे में दोनों हर घड़ी मालिक के कान खातीं और वह मुझे सख़्ती से डांटता:

"बस बहुत हो चुका। अगर अपनी हरकत से बाज़ न आए तो...!"

लेकिन एक दिन तंग आकर उसने अपनी पत्नी और माँ को भी आड़े हाथों लिया:

"तुम दोनों की अकल भी न जाने कहाँ चरने गई है! जब देखो तब उस लड़के की गरदन पर सवार, मानो वह कोई घोड़ा हो! और कोई होता तो सब छोड़-छाड़ कभी का भाग गया होता, या काम करते-करते उसका अब तक कचूमर निकल गया होता!"

यह सुन स्त्रियाँ बुरी तरह झुंझला उठीं और उनकी आँखों में आँसू चमकने लगे। गुस्से में पाँव पटकते हुए उसकी पत्नी चिल्लाई:

"और तुम्हारी बुद्धि क्या तुम्हारे इन झौवा-भर लम्बे बालों में खो गई है जो खुद इसके सामने इस तरह की बातें करते हो? तुम्हारी बातें सुनने के बाद यह और भी सरकश हो जाएगा। तुम्हें इतना भी खयाल नहीं कि मेरे पेट में बालक है। आँखें मूंद, जो मन में आता है, उगल डालते हो!"

उसकी माँ ने भी शिकायत के स्वर में रोना-बिसूरना शुरू किया:

"भगवान बुरा न करे, लेकिन मेरी बात गांठ-बांध लो कि तुम लड़के को इस तरह सिर पर चढ़ा कर ख़राब कर डालोगे।"

और दोनों तोबड़ा चढ़ाए वहाँ से खिसक गईं। मालिक अब मेरी ओर मुड़ा और सख़्ती से बोला:

"यह सब तुम्हारी करतूत का ही नतीजा है। मैं तो चाहता था कि तुम आदमी बनो। इसीलिए तुम्हारे नाना के पास से मैं तुम्हें ले आया। लेकिन तुम्हारे भाग्य में चिथड़े बटोरना लिखा है। सो तुम्हें फिर वापिस भेज देता हूँ। मज़े से चिथड़े बटोरते फिरना!"

अपमान की यह कड़वी घूंट मेरे गले में अटक गई। पलट कर मैंने जवाब दिया:

"तुम्हारे पास रहने से तो चिथड़े बटोरना कहीं अच्छा है। तुम मुझे यहाँ काम सिखाने के लिए लाए थे। लेकिन तुम ने मुझे सिखाया क्या है—गधे की भांति केवल घरका बोझा ढोना!"

मालिक ने हल्के हाथ से मेरे बाल पकड़ लिए और धीरे से सिर हिला कर मेरी आँखों में देखते हुए अचरज के साथ कहा:

"तुम्हारे शैतान होने में कोई कसर नहीं है। लेकिन भाई मेरे, शैतानी यहाँ नहीं चलेगी... नहीं, बि-ल-कु-ल न-हीं!"

मुझे पूरा यक़ीन था कि वह मेरा बंधना-बोरिया गोल कर देगा। लेकिन दो दिन बाद अपने हाथों में पेन्सिल, रूलर, टी-स्क्वेयर और कागज़ का एक पुलिन्दा लिए उसने रसोईघर में पांव रखा।

"चाकुओं पर पालिश करने के बाद इसकी नकल उतार देना," उसने कहा।

यह किसी दो-मंजिला मकान के अग्रभाग का नक्शा था जिसमें अनगिनती खिड़कियाँ और पलास्तर की सजावट का काम बना था।

"लो, परकाल का यह ज़ोड़ा संभालो। इससे सभी रेखाओं को पहले नापना और उसके बाद नुक्ते डाल कर निशान बनाते

जाना। फिर, रूलर की मदद से, नुक्तों को मिलाते हुए रेखाएँ खींचना। पहले लम्बान के रुख में रेखाएँ खींचना — ये पड़ी रेखाएँ होंगी, फिर ऊपर-नीचे वाली रेखाएँ खींचना — ये खड़ी रेखाएँ होंगी। बस, इस तरह पूरी नकल उतार लेना!"

साफ़-सुथरा और सलीके का काम तथा कुछ सीखने का यह अवसर पाकर मुझे खुशी हुई, लेकिन कागज़ और परकाल आदि की ओर सहमी नज़र से मैंने देखा, वे मुझे अच्छा-खासा आल-जाल मालूम हुए।

लेकिन मैं पीछे नहीं हटा। अगले ही क्षण हाथ धोकर मैं काम में जुट गया। मैंने तमाम पड़ी रेखाओं के नुक्ते लगाए और रूलर से लकीरें खींचकर उन्हें जोड़ दिया। यह सब तो बड़े मज़े में हो गया। बस, एक ही बात ज़रा गड़बड़ थी। न जाने कैसे, तीन लकीरें फालतू खिंच गई थीं। इसके बाद मैंने तमाम खड़ी लकीरों के निशान बनाए और उन्हें भी मिला दिया। और मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि यह तो कुछ और ही बन गया है। इस घर की शक्ल-सूरत एकदम बदली हुई थी। खिड़कियाँ ऊपर खिसक कर दीवारों के बीच की खाली जगह में पहुँच गई थीं, और उनमें से एक तो घर की छत को पार कर हवा में ही लटक रही थी। घर का मुख्य फाटक खिसक कर दूसरी मंज़िल पर पहुँच गया था, कोर्निस छत से भी ऊंची उठ गई थी, और रोशनदान की खिड़की चिमनी के छोर से जा लगी थी।

सकपकाया-सा बड़ी देर तक मैं इस अजूबे की ओर देखता रहा। कोशिश करने पर भी मेरी समझ में न आया कि यह सब कैसे हो गया। मेरी आँखें गीली हो आईं। आखिर अपनी कल्पना के सहारे मैंने स्थिति को संभालने का निश्चय किया। सभी कोर्निसों और छत की मुंडेरों पर मैंने चिड़े-चिड़ियों, कौवों और कबूतरों

की तस्वीरें बना दीं, और खिड़कियों के सामने की खुली जगहों को मैंने टेढ़ी-मेढ़ी टांगों वाले आदमियों से भर दिया। उनके हाथों में मैंने एक-एक छतरी भी थमा दी, लेकिन उनके टेढ़े-मेढ़े-पन में इससे भी कोई ख़ास कमी नहीं आई। इसके बाद समूचे कागज़ पर तिर्छी लकीरें डाल मैं अपने मालिक के पास पहुँचा।

मालिक की भौंहें तन गईं, बालों की एक लट को अपनी उँगली में लपेट कर उसने बटा, और मुँह फुला कर पूछा:

"यह सब क्या हरकत है?"

"यह बारिश हो रही है", मैंने कहा,—"बारिश में सभी घर उल्टांग हो जाते हैं, क्योंकि खुद बारिश भी उल्टी-सीधी गिरती है। और पक्षी — ये सब पक्षी हैं — कोर्निसों पर सिकुड़े-सिमटे बैठे हैं। जब बारिश होती है तो सभी पक्षी इसी प्रकार घुग्घू से हो जाते हैं। और ये लोग अपने-अपने घर पहुँचने की जल्दी में हैं। उस लड़की को देखिए जो रपट कर गिर पड़ी है, और वह आदमी जो नींबू बेच रहा है।"

"तुम्हारे पाँव चूमने चाहिए मुझे।" मालिक ने मेज़ पर झुकते हुए कहा, यहाँ तक कि उसके लम्बे बाल कागज़ पर खर-खराने लगे। उसका समूचा बदन हँसी से हिल रहा था।

"तुम...तुम पूरे चोंच हो...तुम्हारा तो इस दुनिया से ही सफाया कर देना चाहिए!"

तभी छोटी मालकिन भी मटका-सा अपना पेट लिए आ मौजूद हुई, और मेरी करतूत पर नज़र डाल कर देखा।

"मार खाकर ही यह ठीक होगा।" उसने अपने पति को उकसाया।

पति पर इसका असर नहीं हुआ। बिना किसी झुंझलाहट के बोला:

"ओह नहीं, शुरू-शुरू में खुद मेरा भी यही हाल था।"

लाल पेन्सिल से उसने मेरी गलतियों पर निशान बना दिये और मुझे एक दूसरा कागज़ देते हुए बोला:

"फिर कोशिश करो। एक बार, दूसरी बार, तीसरी बार — जब तक ठीक न बने, इसे बनाते ही रहना!"

मेरा दूसरा प्रयत्न पहले से अच्छा था। केवल एक खिड़की अपने स्थान से खिसक कर बाहर बरसाती के फाटक पर आ गई थी। लेकिन घर सूना-सूना-सा रहे। यह मुझे कुछ अच्छा नहीं मालूम हुआ। सो सभी काट-छोट के लोगों से मैंने उसे आबाद कर दिया। खिड़कियों पर युवतियाँ बैठी पंखा झल रही थीं। युवक सिगरेट का धुआं उड़ा रहे थे और एक युवक जो सिगरेट नहीं पीता था, अपनी नाक के सुर बंद किये अन्य सब की ओर देख रहा था। बाहर बरसाती में एक गाड़ी खड़ी थी और उसकी ओट में एक कुत्ता लेटा था।

मालिक ने गुस्से से पूछा:

"तुम फिर यह गड़बड़ क्यों कर लाए?"

मैंने बताया कि आदमियों के बिना घर बड़ा सूना-सूना-सा लग रहा था। लेकिन उसने मुझे डांटना शुरू किया:

"यह क्या खुराफ़ात है! अगर कुछ सीखना चाहते हो तो कायदे से काम करो! व्यर्थ की ऊल-जलूल बातों से बाज़ आओ!"

और अन्त में मूल से मिलता-जुलता दूसरा चित्र बना कर जब मैं उसके पास ले गया तो वह बहुत खुश हुआ।

"देखो। अब ठीक बन गया न? अगर इसी तरह कोशिश करते रहोगे तो बड़ी जल्दी तरक़्क़ी करोगे!"

और उसने मुझे एक नया काम सौंपा:

"हमारे अपने घर का एक नक्शा तैयार करो, जिसमें सब

चीज़ें कायदे से दिखाना — कितने कमरे हैं और किस-किस जगह बने हैं। दरवाज़े और खिड़कियाँ कहाँ-कहाँ हैं। हर चीज़ अपनी ठीक जगह पर होनी चाहिए। मैं तुम्हें कुछ नहीं बताऊंगा, सारा काम खुद तुम्हें ही करना होगा।"

मैं रसोईघर में आकर मन-ही-मन जोड़-तोड़ बैठाने लगा कि कैसे क्या किया जाए।

लेकिन नक्शानवीसी का मेरा यह काम आगे नहीं बढ़ सका, तभी उसका अन्त हो गया।

बूढ़ी मालकिन मेरे पास आई और जले-भुने स्वर में बोली:

"सो तुम अब नक्शानवीस बनना चाहते हो, क्यों?"

उसने मेरे बाल पकड़े और मेरा सिर इतने ज़ोरों से मेज़ से टकराया कि मेरी नाक और होंठ लहूलुहान हो गए। उसने हाथ-पाँव पटके, खूब उछली और कूदी, मेरे नक्शे को उठा कर फाड़ डाला, औज़ारों को फ़र्श पर फ़ेंक दिया और फिर, कूल्हों पर हाथ रख, विजेता के अन्दाज़ में चिल्लाई:

"और बनोगे नक्शानवीस? हड्डी-पसलियाँ एक कर के रख दूँगी! और उस मरदूद को देखो। गैरों को तो वह नक्शानवीसी सिखाता है, मानो वही उसकी गद्दी संभालेंगे, लेकिन खुद उसके भाई — एकदम सगे और माँ-जाये भाई — मारे-मारे फिरते हैं! उनकी बात तक नहीं पूछता!"

मेरा मालिक और उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी भी आ धमकी। इसके बाद वह वावैला मचा कि भगवान ही बचाए। तीनों के तीनों, चीखते और चिल्लाते, टूट पड़े। अन्त में स्त्रियाँ रोतीं-कलपतीं विदा हो गईं और मालिक ने मुझसे कहा:

"फिलहाल बस करो। यहाँ कुछ नहीं हो सकेगा। खुद तुम्हीं देखो, क्या तूफ़ान खड़ा कर दिया इन लोगों ने।"

उसकी यह हालत देख मुझे दुःख हुआ—कितना दबा-पिसा और कितना निरीह। एक घड़ी के लिए भी स्त्रियों की चिल्ल-पों उसका पीछा नहीं छोड़ती थी।

यह बात तो मैंने इससे पहले ही भांप ली थी कि बूढ़ी मालकिन को मेरा काम सीखना पसन्द नहीं है और रोड़े अटकाने में भी वह अपनी शक्ति-भर कोई कसर नहीं छोड़ती थी। इसलिए, काम में जुटने से पहले, मैं उससे यह पूछना कभी नहीं भूलता था:

"अब और कोई काम तो नहीं है, मालकिन?"

खीजकर वह जवाब देती:

"जब होगा तब अपने-आप बता दूंगी। मेज़ पर बैठ कर मक्खियाँ मारने के सिवा तुझे और क्या काम आता है?"

और कुछ मिनट बाद ही, किसी-न-किसी काम के लिए, वह मुझे अदबदाकर भेजती या कहती:

"ज़ीना साफ़ क्या किया है, निरी बेगार काटी है। ओने-कोने धूल से अटे पड़े हैं। जाओ, झाड़ू लेकर दोबारा साफ़ करो।"

लेकिन वहाँ पहुंचने पर मुझे कहीं कोई धूल नहीं दिखाई देती।

"इसका मतलब यह कि मैं झूठ बोल रही थी, क्यों?" वह चिल्ला कर मेरा मुँह बन्द करना चाहती।

एक बार कागज़ों पर क्वास उलट कर उसने मेरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। दूसरी बार उसने पूजा के दीये का सारा तेल उंडेल दिया—पूरी बोतल ही उलट दी। बच्चों की भांति वह इस तरह की हरकतें करती, बच्चों की भांति अपनी इन हरकतों को वह छिपा नहीं पाती और आसानी से पकड़ में आ जाती। इतनी जल्दी और इतनी आसानी से नाराज़ होते या हर चीज़ और हर व्यक्ति के बारे में इतने जोश के साथ शिकायतें करते मैंने

अन्य किसीको नहीं देखा। चुगली खाना, एक-दूसरे की बुराई या शिकायत करना यों तो सभी को अच्छा लगता है, लेकिन उसकी तन्मयता देखते बनती थी, ऐसा मालूम होता था मानो कोई गायक, सुध-बुध भूल कर, गीत गा रहा हो!

अपने बेटे से उसका प्रेम किसी पागलपन से कम नहीं था। उसके प्रेम का ज़ोर कुछ इतना अधिक था कि देखकर मैं हँसना चाहता और डर भी लगता। ऐसा मालूम होता मानो कोई मदांध शक्ति उमड़-घुमड़ रही हो। सुबह की पूजा-प्रार्थना के बाद वह तन्दूर पर चढ़ जाती, और उसके ऊपरी तख़्ते पर अपनी कोहनियां टिका कर पूरी तन्मयता से फुसफुसाती:

"मेरे भाग्य का सहारा, मेरे रक्त और मांस का टुकड़ा, हीरे की भांति खरा और फरिश्ते के परों की भांति हल्का-फुल्का! तू सो रहा है। सो, मेरे जिगर के टुकड़े, सो! मीठे सपनों की चादर अपने हृदय पर डाल कर सो। और वह देख, सपनों में तेरी दुलहिन तेरे लिए पलक-पांवड़े बिछाए है। कितनी सुन्दर—एकदम गोरी-चिट्टी, मानो राजकुमारी या किसी धनी सौदागर की बेटी हो! तेरे दुश्मनों को काल चट कर जाए, माँ के गर्भ में ही उन्हें लक़वा मार जाए! और तेरे मित्र सैंकड़ों वर्ष जिएँ, और झुंड की झुंड कुंवारी लड़कियाँ सदा तुझपर न्योछावर हों, बत्तख़ों के दल की भांति तेरे पीछे फिरती रहें!"

यह सुन मेरे पेट में बल पड़ जाते। औघड़ और काहिल वीक्तर देखने में बिल्कुल खुटकबढ़ई ऐसा था—लम्बी नाक और शोख रंग के बेल-बूटेदार कपड़े, ज़िद्दी और मूर्ख!

माँ की फुसफुसाहट से कभी-कभी उसकी नींद उचट जाती और उनींदे स्वर में वह बड़बड़ाता:

"तुम्हें शैतान भी तो नहीं उठा ले जाता, माँ! यहाँ खड़ी-

खड़ी मुँह से थूक उड़ा रही हो! तुम्हारे साथ तो दो घड़ी टिकना भी एक मुसीबत है!"

इसके बाद, बहुत कर, वह चुपचाप नीचे उतर जाती और हंसते हुए कहती:

"अच्छा तो मैं चली। नवाब साहब की नींद में खलल पड़ गया, क्यों?"

लेकिन कभी-कभी उसकी टांगें ढीली पड़ जातीं, और तन्दूर के किनारे वह धम्म से ढह जाती, मुँह खोले और इस तरह हांफते हुए, मानो कोई गर्म चीज़ खाने से उसकी जीभ जल गई हो। तीखे शब्दों की फिर बौछार होती:

"क्या कहा कलमुंहे, तेरी अपनी माँ को शैतान उठा ले जाए! कपूत, मेरी कोख में आते ही तू मर क्यों नहीं गया? तूने जन्म ही क्यों लिया, शैतान की दुम! मेरे माथे के कलंक!"

ताड़ीखाने के गंदे और बाज़ारू शब्द उसके मुँह से निकलते—भयानक और घिनौने!

वह बहुत कम सोती थी। नींद में भी जैसे उसे चैन नहीं मिलता था। कभी-कभी रात के दौरान में वह कई बार तन्दूर से नीचे उतरती, काउच के पास उस जगह पहुँचती जहाँ मैं सो रहा था, और मुझे जगा देती।

"क्यों, क्या बात है?"

"शोर न करो", क्रास का चिन्ह बनाकर और अंधेरे में किसी चीज़ की ओर देखते हुए वह फुसफुसाती,—"ओह भगवान ... मेरे मसीहा आलीजाह... सन्त वारवारा... अकाल मृत्यु से हम सब की रक्षा करना...!"

फिर कांपते हाथों से वह मोमबत्ती जलाती। उसकी धुंधली रोशनी में चीज़ें और भी अटपटा तथा विकृत रूप धारण कर लेतीं और

वह, घबराहट म, अपनी भूरी आंखों को मिचमिचाते हुए इन चीजों की ओर देखने लगती। उसका चेहरा गोल था, और भीमाकार कुप्पा-सी नाक जो तनाव के कारण इस समय और भी फूल जाती थी। रसोई काफ़ी बड़ी थी, लेकिन ट्रंकों और अल्मारियों की फालतू भरमार ने उसे घिचपिच बना दिया था। चांद की रोशनी यहाँ आकर थिर और शान्त हो गई थी, और देवमूर्तियों पर सदा चेतन आग की परछाइयाँ थिरक रही थीं। दीवारों से सटे रसोई के छुरे काँटे हिमकणों की भांति चमक रहे थे और शैल्फ के सहारे लटकी काली कड़ाहियाँ बेडौल और बदनुमा अंधे चेहरों की भांति दिखाई देती थीं।

बूढ़ी मालकिन हमेशा टटोल-टटोल कर, मानो नदी के पानी की थाह लेते हुए, तन्दूर से नीचे उतरती। फिर, अपने नंगे पांवों को सावधानी से उठाती हुई वह उस कोने में पहुँचती जहाँ कटे हुए सिर की भांति पानी भरने का एक डिब्बा लटका था। डिब्बे के इधर-उधर कान की भांति दो कुन्दे लगे थे। इसके नीचे गंदा पानी जमा करने की एक बाल्टी और पास में ही साफ़ पानी से भरा एक टब रखा था।

गट-गट आवाज़ करते हुए वह पानी डकारती और फिर खिड़की के शीशे पर जमी धुंध की नीली परत के बीच से झांक कर देखती।

होठों-ही-होठों में फिर फुसफुसाती:

"ओ भगवान, मुझ पर दया करना, मेरी आत्मा पर तरस खाना!"

कभी-कभी वह मोमबत्ती बुझा देती और घुटनों के बल गिर कर तीखे स्वर में बुदबुदाती:

"किसीके हृदय में मेरे लिए प्यार-ममता नहीं है, मुझे कोई नहीं चाहता!"

अन्त में तन्दूर से वापिस लौटने के बाद वह धुआं निकलने की चिमनी के सामने क्रास का चिन्ह बनाती और फिर उसके भीतर हाथ डाल कर देखती कि खटका ठीक जगह पर लगा है या नहीं। उसका हाथ कालिख से काला हो जाता, वह एक बार फिर गालियों का गोला दागती और इसके बाद तुरंत सो जाती मानो किसी ने उसे जादू के ज़ोर से सुला दिया हो। जब कभी वह मुझ-पर बरसती तो मैं कसक के साथ सोचता, इसकी तो नाना से जोड़ बैठनी चाहिए थी। नाना इससे विवाह करते तो यह उनके होश ठीक रखती, और खुद इसे भी ठीक अपने जैसा ही एक जोड़ीदार मिल जाता। वह अक्सर अपना गुस्सा मुझपर उतारती, लेकिन कभी-कभी ऐसे दिन भी आते जब रूई के गाले सा फूला उसका चेहरा कुम्हला जाता। उसकी आँखों में आँसू तैरने लगते, और वह कहती:

"तुम नहीं जानते, मेरे हृदय में कितना दुःख भरा है। मैंने बच्चे जने, पाल-पोस कर उन्हें बड़ा किया और अपने पांव पर खड़ा होने योग्य बनाया, लेकिन मुझे क्या मिला? रसोई में महा-राजिन की भांति दिन-रात खटना और उनका दोज़ख भरना। क्या तुम इसे जीवन का सुख कहोगे? और मेरा बेटा न जाने कहाँ से एक कलमुंही को व्याह लाया है और मेरी जगह अब उसी को घर की मालकिन बनाना चाहता है! जिसने उसे जन्म दिया, अपनी छाती का रक्त पिला कर उसे बड़ा किया, वह अब कुछ नहीं रही! क्या यह ठीक है?"

"नहीं यह तो ठीक नहीं है," मैं सच्चे हृदय से कहता।

"अब, तुम्हीं देखो...!"

और वह, पूरी बेशर्मी के साथ, अपनी बहू की चादर उतारना शुरू करती:

"गुसलख़ाने में मैंने उसे नहाते देखा है। उसके शरीर का पोर-पोर मेरा देखा और परखा हुआ है। पता नहीं, उसकी किस चीज़ पर वह इतना लट्टू है? क्या दुनिया में और स्त्रियाँ नहीं रहीं जो पुरुष अब ऐसी चुचमुँहियों पर मुग्ध होने लगे हैं?"

पुरुष और स्त्रियों के सम्बंधों का जिक्र करते समय वह चुन-चुनकर गंदे-से-गंदे शब्दों का इस्तेमाल करती। शुरू-शुरू में जब भी मैं उसकी बातें सुनता तो बड़ी घिन मालूम होती, लेकिन शीघ्र ही बड़े ध्यान और गहरी दिलचस्पी से मैं उसकी बातें सुनने लगा, मानो उसके शब्दों के पीछे कोई कटु सत्य प्रकट होने के लिए कसमसा रहा हो।

"स्त्री की शक्ति महान है," हथेली को मेज़ पर पटक कर वह ज़ोरों से कहती।—"खुदा तक को उसने नहीं बख़्शा। क्या तुम भूल गए कि हौवा की वजह से सभी लोगों को दोज़ख का मुँह देखना पड़ता है?"

स्त्री की ताक़त का बखान करने से वह कभी नहीं थकती, और हर बार मुझे ऐसा मालूम होता मानो इस तरह की बातें करके वह किसी को डरा रही है। उसकी यह बात मुझे कभी नहीं भूली कि हौवा ने खुदा को भी नहीं बख्शा।

हमारे अहाते में एक और घर था जो उतना ही बड़ा था जितना कि हमारा। इस घर के आठ खनों में से चार में फौजी अफ़-सर रहते थे। फ़ौज का पादरी एक अन्य खन में रहता था। साईस-अर्दलियों और खाना बनानेवालियों, धोबिनों और घर की नौकरा-नियों की बमचख से अहाता हर घड़ी गूंजता रहता। रसोईघरों में नित्य ही नये गुल खिलते, प्रेम और आशनाई के शिगूफे छूटते, आँसुओं और मारपीट तक की नौबत आती। सिपाही आपस में लड़ते, खाई खोदने और घरों में काम करनेवाले मज़दूरों तक से

भिड़ जाते। और स्त्रियाँ — वे तो मानो मार खाने के लिए बनी ही थीं। अहाता क्या था, मानो भले-चंगे युवकों की पाशविक और बेलगाम भूख का, नंगी कामुकता और वासना का सागर हिलोरें ले रहा था। मेरे मालिक और मालकिन जब दोपहर का खाना खाने चाय पीने या सांझ का भोजन करने बैठते तो कोरी कामुकता और बेमानी बर्बरता में डूबे इस जीवन और उसकी उखाड़-पछाड़ के गंदे किस्सों का पूरी बारीकी और बेशर्मी से चटखारे ले-लेकर बयान करते, और खुद भी उसी गंदगी में डूबते-उतारते। बूढ़ी मालकिन अहाते की एक-एक बात की ख़बर रखती और रस ले-लेकर उसे दोहराती।

छोटी मालकिन चुपचाप इन किस्सों को सुनती और उसके गदराए हुए होठों पर मुसकराहट थिरकने लगती। वीक्तर हँसी से दोहरा हो जाता, लेकिन मालिक नाक-भौंह सिकोड़ कर कहता:

"बस भी करो, माँ!"

"हाय राम, तुम्हें तो मेरा बोलना भी नहीं सुहाता!" माँ शिकायत करती।

वीक्तर शह देता:

"कोई बात नहीं, माँ। तुम्हें भला कौन रोक सकता है। यह घर ही कुछ ऐसा है...!"

बड़े लड़के के हृदय में माँ के प्रति दया का भाव था, लेकिन कुछ सहमा-सा। वह हमेशा माँ के साथ अकेला रहने से बचता, और अगर संयोगवश कभी ऐसा हो भी जाता तो माँ उसकी पत्नी को लेकर शिकायतों का अम्बार लगा देती और अन्त में धन की मांग करने से कभी न चूकती। दो-तीन रूबल और कुछ रेज़गारा निकाल कर वह झट से उसके हाथ पर रख देता और जैसे-तैसे उससे अपना पीछा छुड़ाता।

"तुम्हें धन की भला अब क्या ज़रूरत है, माँ? यह नहीं कि मुझे देते दुःख होता है, लेकिन सवाल यह है कि लेकर करोगी क्या?"

"यही थोड़ा-बहुत भिखारियों को खैरात करती हूँ, और देव-मूर्त्ति के लिए मोमबत्तियों भी मंगानी होती हैं।"

"भिखारियों की बात न करो, माँ! सब से बड़ा भिखारी तो तुमने अपने घर में पाल रखा है। वीक्तर का तुम सत्यानास करके छोड़ोगी, माँ!"

"कितना ओछा हृदय है तुम्हारा। तुम्हें अपना भाई भी फूटी आँखों नहीं सुहाता!"

बेचैनी से हाथ हिला कर वह माँ के पास से चल देता।

वीक्तर मुँहफट था और माँ का ज़रा भी लिहाज़ नहीं करता था। खाने की चीज़ों पर वह बुरी तरह टूटता, और उसका मन कभी नहीं भरता। रविवार के दिन बड़ी मालकिन मालपुवे बनाती और उसके लिए एक अतिरिक्त हिस्सा निकाल कर अलग रखना कभी नहीं भूलती। इस हिस्से को मर्तबान में छिपाकर वह काउच के नीचे रख देती जिसपर मैं सोता था। गिरजे से लौटते ही वह सीधे मर्तबान पर झपट्टा मारता और बड़बड़ा कर कहता:

ऊंट की दाढ़ में ज़ीरा! थोड़े मालपुवे और रख देती तो क्या तेरा कुछ बिगड़ जाता। बूढ़ी चमरखट्टो!"

"ज़्यादा बोलो नहीं। चुपचाप निगल जाओ। अगर किसी ने देख लिया तो..."

"तो क्या? मैं साफ़ कह दूंगा कि शैतान की मौसी खुद इस बूढ़ी खूसट ने मेरे लिए ये मालपुवे चुरा कर रखे थे!"

एक दिन मैंने मर्तबान निकाला और दो-एक मालपुवे खुद चट कर गया। वीक्तर ने मेरी खूब मरम्मत की। वह मुझसे उतना ही

घृणा करता था जितना कि मैं उससे। वह मुझे चिढ़ाता, दिन में तीन बार अपने जूतों पर मुझसे पालिश कराता, अपने तख्ते पर लेटने के बाद लकड़ी की पट्टियाँ खिसका कर मेरे सिर का निशाना साधता और दराज़ के बीच से ज़ोरों से थूकता।

अपने बड़े भाई की भांति जिन्हें बात-बात में 'चोंच न लड़ाओ,' या इसी तरह के दूसरे फिकरे कसने की आदत थी, वह भी कुछ खास ढले-ढलाए फिकरे दोहराने की कोशिश करता। लेकिन उसके फिकरे हद से ज़्यादा बेहूदा और बेतुके होते थे।

"मां, अटैन्शन! मेरे मोजे कहां हैं?"

बेमानी सवालों से वह मेरी जान खाता। जैसे:

"अलेक्सेई, क्या तुम बता सकते हो कि 'बुलबुल' लिख कर हम उसे 'गुलगुल' क्यों पढ़ते हैं? जिस तरह कुछ लोग 'चाकू' को 'काचू' कहते हैं वैसे ही 'चाबुक' को 'बाचुक' क्यों न कहा जाए। और यह 'कुच' शब्द क्या 'कूची' से बना है? अगर ऐसा है तो..."

उनकी बोलचाल और बातचीत करने का ढंग मुझे बहुत बुरा लगता। जन्म से ही नाना और नानी की साफ़-सुथरी और सुघर भाषा की घुट्टी पीकर मैं बड़ा हुआ था। बेमेल शब्दों का गठबन्धन कर जब वे प्रयोग करते तो शुरू-शुरू में मुझे बड़ा अजीब लगता। मेरी समझ में न आता कि यह क्या गोरखधंधा है। "भयानक रूप में मज़ेदार", "खाने मरना", "भीषण प्रसन्नता", या इसी तरह के अन्य टुकड़े वे इस्तेमाल करते। और मैं सोचता कि जो 'मज़ेदार' है वह 'भयानक' कैसे हो सकता है, भोजन या खाने के साथ मरने का भला क्या सम्बंध हो सकता है, और 'प्रसन्नता' के साथ 'भीषण' शब्द की जोड़ कैसे बैठ सकती है?

और मैं उनसे सवाल करता:

"इस तरह बोलना क्या ठीक है?"

झुंझला कर वे जवाब देते:

"बस-बस, ज़्यादा उस्तादी झाड़ने की कोशिश न करो! नहीं तो तुम्हारे कानों को तोड़ कर गुलदस्ता बना दिया जाएगा!"

मुझे यह भी गलत मालूम हुआ। कान भी क्या कोई पेड़-पौधा या फूल-पत्तियां हैं जिन्हें तोड़ कर गुलदस्ते में सजा दिया जाएगा?

यह दिखाने के लिए कि मेरे कानों को तोड़ कर सचमुच गुलदस्ता बनाया जा सकता है, उन्होंने मेरे कान खींचे। लेकिन मैं निश्चल खड़ा रहा और अन्त में विजय के स्वर में चिल्ला कर बोला:

"अहा, कान खींचने को तुम कान तोड़ना कहते हो! मेरे कान तो अभी भी वहीं हैं, जहाँ पहले थे!"

चारों ओर जिधर भी नज़र उठा कर देखता, पूरी हृदयहीनता से लोग एक-दूसरे को सताते, दुनिया-भर की चालें चलते और घिनौने नंगपन का प्रदर्शन करते। यहाँ की गंदगी और नंगपन ने कुनाविनो के काठ बाज़ार और चकलाखाने को भी मात कर दिया था जहाँ क़दम-क़दम पर बेसवा घर थे और हरजाई औरतों की सड़कों पर भरमार दिखाई देती थी। कुनाविनो की गंदगी और हृदयहीनता के पीछे तो फिर भी किसी ऐसी चीज़ का आभास मिलता था जिसने इस गंदगी और हृदयहीनता को अनिवार्य बना दिया था: जानलेवा ग़रीबी, भुखमरी और श्रम जिसने उबा देने वाली घिसघिस का रूप धारण कर लिया था। यहाँ लोग आराम से रहते थे, चैन से जीवन बिताते थे, और श्रम के बदले खुराफ़ाती हलचल में डूबते-उतारते थे। ऐसा मालूम होता था मानो, छूत के रोग की भांति, झुंझलाहट-भरी अलसाहट और ऊब की काली छाया मंडरा रही हो, मानो हर चीज़ को उसने अपने जाल में जकड़ लिया हो, घुन की भांति उसे खोखला बना दिया हो।

मैं बेहद उदास रहता। हृदय में जैसे सौ-सौ बिच्छू डंक मारते। और जब कभी नानी मुझसे मिलने आती तब तो मानो मेरी जान पर ही बन आती। वह हमेशा पीछे के दरवाज़े से रसोई में दाखिल होती। पहले वह देवमूर्त्तियों के सामने क्रास का चिन्ह बनाती, इसके बाद अपनी छोटी बहन के सामने झुकते समय वह एकदम दोहरी हो जाती। उसका इस तरह झुकना मुझे पूर्णतया कुचल देता, ऐसा मालूम होता मानो ढाई मन का बोझ मेरे ऊपर आ गिरा हो।

एकदम ठंडे, उपेक्षापूर्ण अन्दाज़ में मालकिन कहती:

"अरे, तुम यहाँ कहाँ से टपक पड़ी, अकुलीना?"

मैं नानी को देख कर भी नहीं देखता। इस अन्दाज़ में वह अपने होंठों को काटती कि उसके चेहरे का भाव एकदम बदल जाता। ऐसा मालूम होता मानो वह नानी का चेहरा नहीं है। वह वहीं, डोल के पास, दरवाज़े के साथ लगी बेंच पर चुपचाप बैठ जाती और मुँह से एक शब्द भी न निकालती—एकदम गुमसुम, मानो उसने कोई अपराध किया हो। अपनी बहन के सवालों के जवाब भी वह दबे और सहमे हुए से स्वर में देती।

मुझसे यह सहन न होता। झुंझला कर कहता:

"हाँ क्या पापड़ बेलने के लिए बैठी हो?"

दुलार-भरी कनखियों से वह मेरी ओर देखती, और प्रभावपूर्ण ढंग से कहती:

"बहुत ज़बान न चला। तू क्या इस घर का मालिक है?"

"इसके तो ढंग ही निराले हैं," बूढ़ी मालकिन कहती,—"चाहे जितना इसे मारो या डांटो, पर यह हर बात में अपनी टांग अड़ाने से बाज़ नहीं आता!" और इसके बाद शिकायतों का सिलसिला शुरू हो जाता।

कभी-कभी, बड़े ही कुत्सित ढंग से, वह अपनी बहन को कोचती:

"तो तुम अब मांग-तांग कर गुज़र करती हो, अकुलीना?"

"यह तो फिर भी ग़नीमत है!"

"लेकिन किसी के सामने हाथ फैलाना... जब लाज ही बाक़ी न रही तो फिर क्या रहा!"

"ईसा मसीह भी तो मांग-तांग कर ही गुज़र करते थे।"

"ईसा मसीह की इस तरह मिट्टी पलीद न करो। हराम की खाने और धर्म को पांव-तले रौंदने वाले ही ऐसी बातें करते हैं। बुढ़ापे में तुम्हें यह क्या सूझी? ईसा मसीह क्या भिखारी था? वह भगवान का बेटा था। वह भीख क्यों मांगता? बाइबल में लिखा है कि एक दिन वह आएगा और सभी के भले-बुरे कर्मों का जायज़ा लेगा—जो ज़िन्दा हैं उनके भी और जो मर गए हैं उनके भी—यह न समझो कि जो मर गए हैं, वे बच जाएंगे। तुम गल-सड़ कर चाहे धूल में क्यों न मिल जाओ, उसकी नज़रों से फिर भी न छिप सकोगे। तुम और वसीली, दोनों अपनी करनी का फल भोग रहे हो, और अभी और भोगोगे। बापरे, कितना घमंड था तुम्हें। क्या वे दिन याद नहीं जब अपना धनी रिश्तेदार समझ कर मैंने तुम्हारे आगे हाथ फैलाया था और तुमने मुझे ठुकरा दिया था?"

नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया:

"मुझसे जो बना, तुम्हारे लिए सदा करती रही। फिर भी अगर भगवान की यही मर्ज़ी है तो..."

"उसी का तो तुम्हें यह फल मिल रहा है, और अभी तो यह शुरुआत ही है!"

उसकी जुबान रुकने का नाम नहीं लेती, और उसके शब्द

नानी के हृदय पर कोड़े बन कर बरसते। मुझे बड़ा अटपटा मालूम होता और समझ में न आता कि नानी यह सब कैसे बरदाश्त करती है। नानी का यह रूप मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता, और वह मेरी नज़रों से नीचे गिर जाती।

तभी छोटी मालकिन कमरे में आती और अहसान-सा जताते हुए कहती:

"चलो, खाने के कमरे में चलो। हाँ-हाँ, सब ठीक है। बस, चली आओ!"

नानी को उठता देख बड़ी मालकिन फिर तीर छोड़ती:

"अपने पांव तो साफ़ कर लिए होते, चर्र-मर्र चरखे की माल!"

मेरे मालिक का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठता। नानी को देखते ही वह कहते:

"ओह, भोली-भाली सन्त अकुलीना! कहो, कैसी हो? बूढ़ा काशीरिन तो अभी ज़िन्दा है न?"

नानी के चेहरे पर अत्यन्त स्नेहपूर्ण मुसकराहट खेलने लगती।

"और तुम्हारा क्या हाल है? क्या अब भी उसी तरह काम में जुटे रहते हो? कुछ तो आराम कर लिया करो!"

"आराम कैसा? यहाँ तो भगवान ने जन्म-कैद की सज़ा दी है। सारी उम्र चक्की पीसनी पड़ेगी!"

मालिक के साथ नानी की बातचीत में अपनाव और सहृदयता का भाव रहता। वह इस तरह बातें करती जैसे बड़े छोटों से करते हैं। कभी-कभी मालिक मेरी माँ का भी ज़िक्र करता, कहता:

"तुम्हारी लड़की वारवारा वसीलियेवना, एक ही औरत थी वह भी—एकदम चुस्तदुरुस्त, पूरी सैनिक!"

"तुम्हें याद है न," नानी की ओर मुँह करते हुए उसकी

पत्नी कहती, -- "मैंने उसे एक लबादा दिया था — काले रेशम का, और काले ही मोती जड़ा!"

"हाँ, हाँ, याद है।"

"एकदम नया मालूम होता था!"

"ऊंह, लबादा, सबादा — जीवन का कबाड़ा!" मालिक बड़बड़ाया।

"यह क्या — क्या कहा तुमने?" उसकी पत्नी ने अचकचा कर पूछा।

"कुछ नहीं — कुछ भी तो नहीं। सुखी दिन अतीत की चीज़ बनते जा रहे हैं, और उसी तरह अच्छे आदमी भी..."

पत्नी के माथे में चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गईं। बोली:

"तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें क्यों निकलती हैं? क्या हो गया है तुम्हें?"

इसके बाद नानी तो नये बेबी को देखने चली गई और मैं चाय के बरतन आदि साफ़ करने के लिए रह गया। तभी मालिक ने धीमे और सपनों में खोए से स्वर में कहा:

"तुम्हारी यह बूढ़ी नानी खूब है।"

उसके इन शब्दों को सुन कर मेरा हृदय गदगद हो गया। लेकिन अकेले में मुझसे नहीं रहा गया। दुःखते हृदय से मैंने नानी से कहा:

"तुम यहाँ आती ही क्यों हो? क्या तुम नहीं देखती कि ये किस किस्म के लोग हैं?"

"हाँ आल्योशा, मैं सब कुछ जानती हूँ," नानी ने उसांस भरते हुए कहा और मेरी तरफ़ देखा। नानी के अद्‌भुत चेहरे पर एक बहुत ही कोमल मुसकराहट जगमगा उठी, और मैंने तुरत लज्जा का अनुभव किया। सचमुच, नानी की आँखों से कुछ छिपा नहीं था — वह सब कुछ देखती थीं, सभी कुछ जानती थीं वह

उस उथल-पुथल तक से परिचित थी जो कि उस समय मेरे हृदय में हो रही थी।

नानी ने चौकस होकर इधर-उधर नज़र डाली और यह देखकर कि आस-पास में कोई नहीं है, मुझे अपनी बाँहों में खींच लिया और उमड़ते हुए हृदय से बोलीं:

"अगर तुम न होते तो मैं यहाँ कभी नहीं आती — इन लोगों से भला मेरा क्या वास्ता? फिर नाना बीमार हैं और उनकी बीमारी के चक्कर में मेरा सारा समय चला जाता है। मैं कुछ काम नहीं कर पाती, इस लिए हाथ भी तंग है। उधर बेटा मिखाइलो ने अपने साशा को धता बता दिया है, सो उसका खाना-पीना भी मुझे ही जुटाना पड़ता है। इन्होंने तुम्हें छै रूबल साल देने का वायदा किया था। सो मैंने सोचा कि अगर ज़्यादा नहीं तो कम से कम एक रूबल इनसे मिल ही जाएगा। क्यों, आधा साल तो होने आया न तुम्हें इनके यहाँ काम करते?" नानी और भी नीचे झुक गई और फुसफुसाकर मेरे कान में कहने लगी: "उन्होंने मुझसे तुम्हें डांटने के लिए कहा है। शिकायत करते थे कि तुम कहना नहीं मानते। अगर तुम कुछ दिन और यहाँ टिक सको — एक या दो साल तक — किसी तरह और निभा सको... जब तक कि तुम खुद अपने पांवों पर जम कर खड़े न हो जाओ... बोलो, कोशिश करोगे न, मेरे लोटन कबूतर?"

मैंने वायदा तो कर लिया, लेकिन था यह बेहद कठिन। जीवन क्या था, एक भारी और उबा देने वाला बोझ था, जिसके नीचे मैं कुचला जाता था। कुछ पैसों के लिए इतने ताने-तिश्ने सहना, सुबह से लेकर रात तक घनचक्कर की भांति सब की चाकरी बजाना, मुझे ऐसा मालूम होता मानो दुःस्वप्नों की दुनिया में मेरा जीवन बीत रहा है।

कभी-कभी मेरे मन में होता कि यहाँ से भाग चलूँ। लेकिन कम्बख़्त जाड़ा अपने पूरे ज़ोर पर था। रात को बर्फ़ की आँधियाँ चलतीं, तिदरी में हवा साँय-साँय करती और ठंड से जकड़ी लकड़ी की छतें चरमरा उठतीं। ऐसे में भाग कर मैं जाता भी कहाँ?

बाहर जाकर खेलना मेरे लिए मना था, सच तो यह है कि मुझे खेलने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। जाड़ों के छोटे दिन योंही काम की चकर-घिन्नी में गायब हो जाते थे।

लेकिन सप्ताह में दो बार मुझे गिरजा ज़रूर जाना पड़ता—एक तो शनिवार के दिन संध्या-प्रार्थना के लिए, दूसरे रविवार के दिन लम्बी प्रार्थना के लिए।

गिरजा जाना मुझे अच्छा लगता। किसी लुके-छिपे सूने कोने की मैं खोज करता और वहाँ जाकर खड़ा हो जाता। दूर से देखने में बड़ा अच्छा लगता—ऐसा मालूम होता मानो पत्थर के फ़र्श के ऊपर प्रवाहित मोमबत्तियों के सुनहरी प्रकाश की प्रशस्त धारा में देव-प्रतिमाओं की वेदी तैर रही हो। देव-प्रतिमाओं की काली आकृतियों में हलका-सा कम्पन पैदा होता और राज-द्वारों की सुनहरी झालरें झूम कर झिलमिला उठतीं। नीले शून्य में लटकी मोमबत्तियों की लौ सुनहरी मधुमक्खियों की भांति मालूम होतीं और स्त्रियों तथा लड़कियों के सिर फूलों की भांति दिखाई देते।

कोरस-गान शुरू होता और हर चीज़ मानो उसका स्वर-लहरियों के साथ थिरकने लगती, हर चीज़ मानो इस पार्थिव जगत से ऊपर उठकर परियों के लोक में पहुँच जाती, समूचा गिरजा हौले-हौले डोलने लगता, मानो काजर की भांति काले शून्य में पालना झूल रहा हो।

कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि गिरजा किसी झील में गोता लगा कर दुनिया का आँखों से दूर, खूब गहराई में,

छिप गया है जिससे कि वह अपना एक अलग और अन्य सब से भिन्न जीवन बिता सके। यह शायद नानी के एक देव-गीत का असर था जो सपनों के एक काल्पनिक नगर कितेज के बारे में था। अपने चारों ओर की हर चीज़ के साथ-साथ मैं भी बहुधा उनींदा-सा झूमने लगता—कोरस-गान की स्वर लहरियाँ मुझे थपकियाँ देतीं, निःशब्द प्रार्थनाएं और पूजा करनेवालों की उसांसें मेरी पलकों को मूंद देतीं, और मैं नानी के उस उदासी भरे मधुर देव-गीत को मन ही मन गुनगुनाने लगता:

सुबह का था समय, शुभ और पवित्र।
बज रही थीं घंटियाँ गिरजों में मातिन प्रार्थना की।
तभी किया धावा धर्म-द्वेषी तातार लुटेरों ने
घोड़ों पर कसे ज़ीन, कील-काटों और अस्त्रों से लैस
घेर लिया आनन-फानन में प्यारे नगर कितेजग्राद को!

ओ इस दुनिया के प्यारे स्वामी,
ओ प्यारी मरियम अविजेय!

खुदा के बन्दों की खातिर उतरो इस धरती पर,
न पड़े कोई विघ्न उनकी पूजा-प्रार्थना में,
दैवी प्रकाश से हो नागरिकों के हिय का अंधेरा दूर!

पवित्रता तेरे मन्दिर की कर सके न कोई नष्ट,
न रौंदी जाए लाज नगर कन्याओं की,
न फिरे नन्हे बच्चों के गलों पर तेग,
न आए बड़े-बूढ़ों और दुर्बलों पर आंच।

परम पिता जेहोवाह तब खुदा थे
और थी माँ मरियम अविजेय।

कर दिया उन्हें विचलित और व्यथित
लोगों के क्रन्दन और दुःख की गुहारों ने।
और दिया आदेश महान खुदा जेहोवाह ने
अपने सब से बड़ा फरिश्ते मिखाइल को:
मिखाइल, मानव-लोक में ज़रा जाओ लो
कितेजग्राद की धरती को ज़रा हिलाओ तो
फटे धरती और फूट पड़ें पानी के सोते
छिप जाए कितेजग्राद, पानी की लहरों में
तातार लुटेरों की पहुँच से दूर—बहुत दूर!
और खुदा के बन्दे
हों, अपनी प्रार्थनाओं में संलग्न,
अविरल और अविश्रान्त,
सुबह, सांझ और आठों याम,
वर्ष प्रति वर्ष—
बहे जब तक जीवन की अनन्त धारा!

उन दिनों नानी के देव-गीत मेरे रोम-रोम में वैसे ही समाये थे जैसे मधुमक्खियों के छत्ते में शहद। यहाँ तक कि मेरे विचार और कल्पनाएँ तक उन्हीं गीतों के सांचे में ढली होती थीं।

गिरजा में जाकर मैं कभी प्रार्थना नहीं करता था, नाना की द्वेष-भरी मिन्नतों और मानताओं तथा उदास ईश-प्रार्थनाओं को नानी के भगवान के सामने दोहराते मेरी जुबान अटकती। मुझे पक्का यक़ीन था कि नानी का भगवान भी उन्हें उतना ही नापसंद करेगा जितना कि मैं करता हूँ। इसके अलावा वे सब किताबों में छपी-छपायी थीं। दूसरे शब्दों में यह कि किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति की भांति भगवान को भी वे जुबानी याद होंगी।

इस कारण जब कभी मेरा हृदय किसी मधुर उदासी से उबचुभ करता या दिन-भर के छोटे-मोटे आघातों से कराह उठता तो मैं अपनी निजी प्रार्थनाएँ रचने का प्रयत्न करता। और उसके लिए मुझे कोई ख़ास प्रयास भी नहीं करना पड़ता। अपने दुखी जीवन पर मैं एक नज़र डालता और शब्द अपने-आप आकार रूप ग्रहण कर प्रकट होने लगते:

भगवान, ओ मेरे भगवान
हूँ मैं कितना दुखिया
बिनती मेरी,
झटपट मुझे बड़ा बना दे!
बहुत सहा—सह चुका बहुत मैं,
न होना मुझपर गुस्सा
गर हो जाऊँ मैं तंग
और कर दूँ इस जीवन का अन्त!
मरती यहाँ सभी की नानी
नहीं सिखाते, नहीं सिखाते
खाक—धूल, कुछ नहीं बताते
और यह बुढ़िया आफत की परकाला
जीवन को जंजाल बनाती,
सदा डांटती, कान खींचती।
करदे उसका मुँह काला।
भगवान, ओ मेरे भगवान,
हूँ मैं कितना दुखिया!

खुद रची हुई इन "प्रार्थनाओं" में से कितनी ही मुझे आज दिन भी याद हैं। बचपन में जिस तरह दिमाग़ काम करता है,

उसकी छाप कभी-कभी हृदय पर इतनी गहरी पड़ती है कि मृत्यु के दिन तक नहीं मिटती।

गिरजे में बहुत ही सुहावना मालूम होता। वहाँ मैं अब उतने ही सुख और सन्तोष का अनुभव करता जितना कि पहले खेतों और जंगलों में करता था। मेरा नन्हा हृदय जो अभी से ही रात-दिन की चोटों से छलनी और जीवन की बेहूदगियों से विषैला हो चुका था, धुंधले, पर रंग-बिरंगे सपनों में तैरने लगता।

मैं केवल तभी गिरजा जाता जब बला की ठंड पड़ती और हाथ-पांव सुन्न हो जाते, मानो बर्फ़ कट रही हो, या जब नगर में बर्फ़ीली आँधियाँ सनसनातीं और ऐसा मालूम होता मानो आकाश भी जम कर बर्फ हो गया हो, बर्फ के बादलों ने उसे घेर लिया हो। धरती पर इतनी बर्फ गिरती कि पूरी की पूरी ढंक जाती, जम कर वह भी बर्फ़ हो जाती और ऐसा मालूम होता मानो उसके हृदय का धड़कन अब फिर कभी नहीं सुनाई देगी।

रात के सन्नाटे में मुझे नगर में घूमना अच्छा लगता, कभी इस सड़क को नापता तो कभी उसे। एकदम निराले कोनों की मैं खोज करता। तेज़ी से मेरे डग उठते, मानो पर लगे हों। मैं सड़क पर ऐसे ही तैरता जैसे आकाश में चांद तैरता है, बिना किसी संगी-साथी के, अपने-आप में अकेला। मेरी परछाईं मुझसे भी आगे चलती, प्रकाश में चमकते हिमकणों पर पड़ उन्हें बुझा देती और रोशनी के खम्बों तथा बाड़ों का आलिङ्गन करने के लिए सौ-सौ बल खाकर उनकी ओर लपकती। ऊन की खाल का भारी-भरकम कोट पहने, हाथ में लाठी और साथ में अपना कुत्ता लिए एक चौकीदार सड़क के बीचों बीच गश्त लगाता दिखाई देता।

उसका भारी-भरकम आकार देख कर मुझे लकड़ी के उस कुत्ते-घर की याद हो आई जो न जाने कैसे आंगन में से लुढ़क कर सड़क पर आ गया था और ढलान पाकर किसी अज्ञात मंजिल की ओर आगे बढ़ चला था। उसे लुढ़कता देख कुत्ते का कौतुक जगा और वह भी उसके साथ-साथ लपक चला।

कभी-कभी खिलखिलाती जवान लड़कियों और उनके चहेतों से मुठभेड़ होती और मैं मन-ही-मन सोचता कि ये लोग भी गिरजे से भाग आए हैं और अब यहाँ अपनी संध्या-प्रार्थना कर रहे हैं!

खिड़कियाँ रोशनी से चमचमाती रहतीं। उनकी दराज़ों में से स्वच्छ हवा में कभी-कभी एक अजीब किस्म की गंध आती—भीनी और अपरिचित गंध जो एक भिन्न प्रकार के जीवन का आभास देती। और आड़े-तिर्छे होकर मैं यह पता लगाने का प्रयत्न करता किस तरह के लोग यहाँ रहते हैं, कैसा जीवन वे बिताते हैं। उस समय जबकि सभी भले लोगों को संध्या-प्रार्थना में शामिल होना चाहिए, ये लोग यहाँ आकर हँसते और अठखेलियाँ करते हैं, एक ख़ास किस्म का गितार झनझनाते और खिड़कियों में से मधुर स्वर-लहरियाँ प्रवाहित करते हैं।

दो सूनी सड़कों—तिखोनोवस्काया और मरतीनोवस्काया—के कोने पर स्थित एक नीचा, एक-मंजिला घर मुझे ख़ास तौर से अजीब मालूम हुआ। ईस्टर के भजन-कीर्तनों से पहले की बात है। मौसम बदल चला था और बर्फ़ पिघलने लगी थी। इन्हीं दिनों, चांदनी खिली रात में, इस घर के पास से मैं गुज़रा और वहीं उलझ कर रह गया। गंध के साथ-साथ खिड़की की दराज़ों में से एक अद्भुत आवाज़ भी आ रही थी, ऐसा मालूम होता था मानों कोई बहुत ही मज़बूत और बहुत ही भला व्यक्ति होंठों को बन्द

किये गा रहा हो। बोल तो समझ में नहीं आते थे, लेकिन धुन बहुत ही जानीपहचानी और समझी-बूझी मालूम होती थी। मैं उसे समझ भी लेता, लेकिन उसके साथ जिस बेसुरे ढंग से तार का बाजा झनझना रहा था, वह मानो गीत के प्रवाह और उसकी बोधगम्यता को छिन्न-भिन्न कर देता था। मैं एक ढूह पर बैठ गया और मुझे लगा कि मानव-कण्ठ से नहीं, बल्कि किसी जादू-भरे, हृदय को मरोड़ देने की अद्‌भुत शक्ति से सम्पन्न वायोलीन से यह संगीत प्रवाहित हो रहा है। उसका एक-एक स्वर वेदना में डूबा था। कभी-कभी उसका स्वर इतना तेज़ हो जाता कि समूचा घर थरथरा उठता, खिड़कियों के कांच झनझनाने लगते। पिघली हुई बर्फ़ छत पर से टपाटप गिरती, और आँसुओं की बूंदें मेरे गालों पर से ढुलकने लगतीं।

मैं अपने-आप में इतना खो गया था कि चौकीदार के आने का मुझे पता तक नहीं चला। धक्का देकर उसने मुझे ढूह पर से गिरा दिया।

"यहाँ किस लोंफरी की ताक में बैठे हो?" उसने पूछा।

मैंने बताया:

"ज़रा गाना...!"

"गाना सुन रहा था,—ऊह! बस, नौ-दो ग्यारह हो जाओ यहाँ से!"

मैं जल्दी-से नौ-दो ग्यारह हो गया और इमारतों के पीछे से घूम कर फिर उसी घर के सामने आ गया। लेकिन अब कोई गा नहीं रहा था। खिड़की में से अब चुहल और अठखेलियों की उल्टी-पल्टी आवाज़ें आ रही थीं जो उस उदास संगीत से इतनी भिन्न थीं कि दोनों में कोई मेल नहीं था। मुझे लगा मानो वह संगीत मैंने सपने में सुना था।

करीब-करीब हर शनिवार को मैं उस घर के चक्कर लगाता, लेकिन वह संगीत केवल एक ही बार और सुनने को मिला। बसन्त के दिन थे। पूरी आधी रात तक, बिना रुके, संगीत चलता रहा। इसके बाद जब मैं घर लौटा तो ख़ूब मार पड़ी।

जाड़ों के दिन, आकाश में तारे जड़े हुए और नगर की सूनी सड़कें, मैं ख़ूब घूमता और तरह-तरह के अनुभव बटोरता। मैं जान-बूझ कर उप-बस्तियों की सड़कें टटोलता। नगर की मुख्य सड़कों पर जगह-जगह लालटेन जलती थीं। मेरे मालिकों की जान-पहचान के लोगों में से अगर कोई मुझे देख लेता तो उन्हें ख़बर कर देता कि मैं संध्या-प्रार्थनाओं से ग़ायब रहता हूँ। इसके सिवा नगर की मुख्य सड़कों पर शराबियों, पुलिस वालों, और शिकार की खोज में निकली हरजाई स्त्रियों से टकराने पर घूमने का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता था। नगर से बाहर की निराली सड़कों पर मैं निश्चिन्त होकर घूमता। चाहे जहाँ जाता और निचले तल्ले की चाहे जिस खिड़की में झांक कर देखता — बशर्ते कि उस पर परदा न पड़ा हो, या पाले ने उसे ढंक न दिया हो।

इन खिड़कियों में से मैं अनेक प्रकार के दृश्यों की झाँकी लेता। कहीं लोग प्रार्थना करते दिखाई देते, कहीं चूमा-चाटी करते, कहीं एक-दूसरे के बाल नोचते, कहीं ताश खेलते और कहीं, पूरी गम्भीरता से, दबे हुए स्वरों में बातचीत करते। एक के बाद दूसरे दृश्य मेरी आँखों के सामने से गुज़रते—मूक और मछलियों की भांति तैरते हुए, मानो सन्दूकची के शीशे पर आँखें गड़ाए मैं बारह मन की धोबन वाला खेल देख रहा हूँ।

निचले तल्ले की एक खिड़की में से दो स्त्रियों पर मेरी नज़र पड़ी—एक बिल्कुल युवती, दूसरी कुछ बड़ी। दोनों मेज़ पर बैठी थीं। उनके सामने मेज़ के दूसरी ओर एक छात्र बैठा था,

उसके लम्बे बाल थे और खूब हाथ हिला-हिला कर वह उन्हें कोई पुस्तक पढ़ कर सुना रहा था। युवती कुर्सी से पीठ लगाए बैठी थी और बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसकी भौंहें सिकुड़ कर एक-दूसरे से मिल कर एक सीधी रेखा के रूप में तन गई थीं। बड़ी स्त्री ने जो बहुत ही दुबली-पतली थी और जिसके बाल ऊन के गाले मालूम होते थे, सहसा दोनों हाथों से अपना मुँह ढंक लिया और सुबक-सुबक कर रोने लगी। युवक ने अपनी पुस्तक नीचे पटक दी, युवती उछल कर खड़ी हो गई और भाग कर कमरे से बाहर चली गई। तब युवक उठा और मुलायम बालों वाली स्त्री के सामने घुटनों के बल गिर कर उसके हाथ चूमने लगा।

एक अन्य खिड़की में से एक लमतड़ंग दाढ़ीवाले आदमी पर मेरी नज़र पड़ी। लाल ब्लाउज़ पहने एक स्त्री को वह अपने घुटनों पर इस तरह झुला रहा था मानो वह कोई छोटा बच्चा हो। साथ ही वह कुछ गाता भी मालूम होता था। कारण कि रह-रह कर वह भट्टा-सा अपना मुँह खोलता और दीदे मटकाता। स्त्री खिलखिला कर दोहरी हो जाती, उछल कर उसकी बाँहों में आ गिरती और अपनी टांगों को हवा में नचाने लगती। खींच कर वह फिर उसे अपने घुटनों पर ले लेता। वह गाता और वह खिलखिला कर दोहरी हो जाती। बहुत देर तक मैंने उन्हें देखा, और मुझे लगा कि उनका यह गाना और खिलखिलाना सारी रात इसी तरह चलता रहेगा।

यह तथा इसी तरह के अन्य कितने ही दृश्य मेरी स्मृति में सदा के लिए अंकित हो गए। इन दृश्यों को बटोरने में बहुधा मैं इतना उलझ जाता कि घर देर से पहुँचता और मालिकों के हृदय में सन्देह का किड़ा कुलबुलाने लगता। वे पूछते:

"तुम किस गिरजे में गए थे? क्या पादरी ने बाइबल का पाठ किया था?"

वे नगर के सभी पादरियों से परिचित थे और जानते थे कि किस गिरजे में बाइबल के किस परिच्छेद का पाठ होगा। मैं झूठ बोलता तो वे आसानी से पकड़ लेते।

दोनों स्त्रियां भी नानावाले क्रोधमूर्त्ति भगवान की पूजा करती थीं—एक ऐसे भगवान की जो चाहता कि सब उससे डरें, सब उसका आतंक मानें। भगवान का नाम सदा उनके होंठों पर नाचता रहता, उस समय भी जब कि वे लड़तीं-झगड़तीं।

"ज़रा ठहर तो कुतिया, भगवान तेरी ऐसी ख़बर लेगा कि तू भी याद रखेगी!" वे एक-दूसरे पर चीख़तीं।—"तेरी वह चिन्दिया बिखेरेगा कि तू कहीं मुँह दिखाने लायक न रहेगी!"

ईस्टर के व्रत-उपवास शुरू हुए। पहले रविवार को बूढ़ी मालकिन ने मालपूवे बनाए जो कढ़ाई में ही चिपक कर जल गए।

"इन मरों को भी मेरी ही जान खानी थी!" झुंझला कर वह चिल्लाई। आग की तपन से उसका मुँह तमतमा रहा था।

सहसा कड़ाही की गंध सूंघ कर उसके चेहरे पर घटा घिर आई, कड़ाही को उठा कर उसने फ़र्श पर पटक दिया और चीख़ उठी:

"ओह मेरे भगवान, कड़ाही से चर्बी की गंध आ रही है! पवित्र सोमवार के दिन मैं इसे तपा कर शुद्ध करना भूल गई! मैं अब क्या करूँ, है भगवान!"

वह घुटनों के बल गिर गई और आँखों में आँसू भर कर भगवान से फ़रियाद करने लगी:

"क्षमा करना भगवान, मुझ पापिन को क्षमा करना, मुझपर तरस खाना। मेरी तो बुद्धि सठिया गई है, भगवान! इस बुढ़िया पर दया करना—मैं अब सज़ा देने योग्य भी तो नहीं रही, भगवान!"

मालपूवे ख़राब हो गए थे। कुत्ते के सामने डाल दिए गये। कड़ाही भी तपा कर शुद्ध कर ली गई। लेकिन इसके बाद, जब

भी मौका मिलता, छोटी मालकिन बूढ़ी मालकिन को इस घटना की याद दिला कर कोचने से न चूकती।

"व्रत-उपवास के पवित्र दिनों में तुमने कड़ाही को तपा कर शुद्ध नहीं किया, गंदी कड़ाही में ही मालपूवे बनाते समय तुम्हारे हाथ कट कर न गिर गए!" झगड़ा होने पर वह कहती।

घर में जो भी बात होती, वे भगवान को घसीटना न भूलतीं। अपने तुच्छ जीवन के हर अंधेरे कोने में वे भगवान को भी अपने साथ खींचकर ले जातीं। ऐसा करके वे अपने मरे-गिरे जीवन में कुछ महत्व और बड़प्पन का पुट भरने का प्रयत्न करतीं, उन्हें ऐसा मालूम होता मानो उनके जीवन का प्रत्येक क्षण किसी ऊँची शक्ति की सेवा में लगा है। हर ऐरी-गैरी चीज़ के साथ भगवान को चस्पां करने की उनकी आदत के असर से मैं भी अछूता न रहा, अनायास ही ओने-कोनों में मेरी नज़र पहुँच जाती, और मुझे ऐसा मालूम होता मानो कोई अदृश्य आँखें मुझे ताक रही हैं। रात के अंधेरे में मुझे इतना डर लगता कि मेरी जान ही निकल जाती। रसोई के उस कोने में से इस डर का उदय होता जहाँ धुएँ में काली पड़ी देवमूर्त्ति के सामने दिन-रात एक दिया जलता रहता था।

देवमूर्त्तियों के खाने से लगी हुई दोहरे चौखटे की एक बड़ी-सी खिड़की थी। खिड़की के उस पार नीले शून्य का अनन्त विस्तार दिखाई देता था। ऐसा मालूम होता मानो यह घर, यह रसोई, और यहाँ की हर चीज़ जिसमें मैं भी शामिल था, एक-दम कगारे से अटके हों और अगर ज़रा-सा भी हिले-डुले तो बर्फ़ से ठंडे इस नीले शून्य में, तारों से भी परे पूर्ण निस्तब्धता के सागर में, डूबते चले जाएंगे, ठीक वैसे ही जैसे पानी में फेंका गया पत्थर डूबता चला जाता है। और वहाँ, उस अतल गहराई में, मैं दीर्घकाल तक दुनिया के प्रलयकारी अन्त की प्रतीक्षा में निश्चल

पड़ा रहूँगा—डर के मारे सिकुड़ा-सिमटा, हिलने-डुलने तक का साहस न करते हुए।

यह तो अब याद नहीं पड़ता कि इस डर से किस प्रकार मैंने छुटकारा प्राप्त किया, लेकिन इस डर से मेरा पीछा छूट गया, और सो भी बहुत जल्दी ही। स्वभावत: नानी के भगवान ने मुझे सहारा दिया, और मुझे लगता है कि उन दिनों में भी एक सीधी-सादी सचाई का मैंने साथ नहीं छोड़ा था। वह यह कि मैंने कोई गलती नहीं की है, और अगर मैं बेकसूर हूँ तो दुनिया में कोई कानून ऐसा नहीं है जो मुझे सज़ा दे सके, और यह कि दूसरों के गुनाहों के लिए मुझे कठघरे में नहीं खड़ा किया जा सकता।

सुबह की प्रार्थना से भी मैं गायब रहने लगा—खास तौर से वसन्त के दिनों में। प्रकृति के नवयौवन का अदम्य उभार गिरजे के आकर्षण पर पानी फेर देता। इसके अलावा मोमबत्ती खरीदने के लिए अगर मुझे कुछ पैसे मिल जाते तब तो कहना ही न था। मोमबत्तियों के बजाय मैं गोटियाँ खरीदता और खूब खेलता। प्रार्थना का सारा समय खेल में बीत जाता और घर में अदबदाकर देर से पहुँचता। एक बार ईश-भोज और मृतकों की प्रार्थना के लिए मुझे दस कोपेक मिले और मैंने उन्हें भी ऐसे ही उड़ा दिया। नतीजा इसका यह हुआ कि जब धर्म-पिता देवमंच से थाल लिए उतरे तो मैंने अन्य किसी की रोटी पर हाथ साफ़ किया।

खेलने का मुझे बेहद शौक था, और खेल से मैं कभी नहीं थकता था। मेरा बदन तगड़ा और चपल था। गेंद, गोटियों और डंडा-बेड़ी में ख़ूब खेलता था। शीघ्र ही समूची बस्ती में मेरा सिक्का जम गया।

व्रत-उपवास के दिनों में मुझे भी गुनाह-मुक्ति के चक्र में से गुज़रना पड़ा। हमारे पड़ोसी पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोवस्की मेरे गुरु बने—उन्हीं के सामने मुझे अपने गुनाह स्वीकार करने थे। मेरे

मन में उनका आतंक बैठा था और वे सब शैतानी हरकतें मेरे हृदय में खड़बड़ मचा रही थीं जो कि मैं उनके ख़िलाफ़ आज़मा चुका था। पत्थर मार कर उनके ग्रीष्मागार की खपच्चियों के मैंने परखचे उड़ाए थे, उनके बच्चों को मारा-पीटा था और अन्य बहुत से जुर्म किए थे जिनकी वजह से वह मुझे बहुत बड़ा पापी समझ सकते थे। एक-एक कर के सभी कुछ मुझे याद आ रहा था, और उस समय जब अपने गुनाह स्वीकार करने के लिए मैं उस छोटे से मनहूस गिरजे में जाकर खड़ा हुआ, तो मेरा हृदय बुरी तरह धक-धक कर रहा था।

लेकिन पादरी दोरीमेदोन्त उस समय मानो भलमनसाहत का पुतला बना हुआ था।

"ओह, तुम तो हमारे पड़ोसी हो!" उसने चकित भाव से कहा।—"अच्छा तो अब घुटनों के बल बैठ जाओ, और अपने गुनाह स्वीकार करो!"

उसने मेरे सिर पर भारी मखमल का एक टुकड़ा डाल दिया। मोम और लोबान की गंध से मेरा दम घुटने लगा और जिन शब्दों को मैं पहले ही प्रकट करना नहीं चाहता था, उन्हें उगलना अब और भी मुश्किल मालूम होने लगा।

"क्या तुम अपने बड़ों का कहना मानते हो?"

"नहीं!"

"कहो, मैंने गुनाह किया।"

अनायास ही, न जाने कैसे, मैं कह उठा:

"ईश-भोज में खुद धर्म-पिता के थाल से मैंने चोरी की।"

"क्या, यह क्या कहा तुमने? कहाँ चोरी की?" एक क्षण रुक कर पादरी ने स्थिर भाव से पूछा।

"तीन सन्तों के गिरजा में, पोक्रोव गिरजा में और निकोला..."

"बुरी बात है, बेटा। ऐसा करना पाप है — समझे!"

"हां।"

"कहो, मैंने गुनाह किया! तुम बड़े नादान हो। क्या खाने के लिए रोटी चुराई थी?"

"कभी-कभी खाने के लिए, लेकिन कभी-कभी ऐसा होता कि गोटियों के खेल में मैं अपने पैसे हार जाता और ईश-भोज की रोटी के बग़ैर मैं घर लौट नहीं सकता था, इसलिए चोरी करके जान छुड़ाता।"

पादरी दोरीमेदोन्त ने दबे स्वर में बुदबुदाकर कुछ कहा, फिर दो-चार सवाल और किए। इसके बाद, कड़े स्वर में पूछा:

"क्या तुम भूमिगत छापेखाने से निकली पुस्तकें भी पढ़ते रहे हो?"

यह सवाल ऐसा था जो मैं समझ नहीं सका। मेरे मुँह से निकला:

"क्या?"

"ज़ब्त पुस्तकें, क्या तुमने कभी पढ़ी है?"

"नहीं, मैंने नहीं पढ़ी।"

"अच्छी बात है। तुम गुनाहों से मुक्त हुए। अब खड़े हो जाओ।"

मैंने कुछ अचकचा कर उसके चेहरे की ओर देखा। उसका चेहरा गम्भीर और दया के भावों से पूर्ण था। मैं कट कर रह गया। गुनाह मुक्ति के लिए भेजते समय मालकिन ने मेरी तो रूह ही कब्ज़ कर दी थी। ऐसी-ऐसी डरावनी बातें उसने बताई थीं कि अगर मैंने कुछ भी छिपाकर रखा तो मानो प्रलय ही हो जायगी। मालकिन की बातों का असर अभी गायब हुआ था। मैं बोला:

"मैंने तुम्हारे ग्रीष्मागार पर पत्थर फेंके थे।"

"यह बुरा किया। लेकिन अब तुम भाग जाओ।"

"और तुम्हारे कुत्ते पर..."

पादरी ने जैसे सुना ही नहीं। कनखियों से मुझे बिदा करते हुए बोले:

"चलो, अब किसकी बारी है?"

विक्षोभ और निराशा से भरा मैं वहाँ से चला आया। ऐसा मालूम होता था मानो मुझे धोखा दिया गया हो। जिस चीज़ को लेकर मन ही मन मैंने इतना तूमार बांधा था और हृदय का एक-एक तार झनझना उठा था, वह कुछ भी तो नहीं निकली—एकदम नीरस, दिलचस्पी से एकदम शून्य। ले-देकर एक ही बात उस में कुछ दिलचस्पी की थी — वह जो रहस्यमय पुस्तकों से संबंध रखती थी। मुझे उस पुस्तक का ध्यान आया जिसे वह युवक छात्र घर के निचले तल्ले में दो स्त्रियों को पढ़ कर सुना रहा था। और मुझे 'वाह भाई खूब' का भी ध्यान आया। उसके पास भी काली जिल्द की कितनी ही मोटी-मोटी किताबें थीं जिनमें अजीब-ग़रीब चित्र बने हुए थे।

अगले दिन पन्द्रह कोपेक देकर मुझे ईश-भोज में भेजा गया। उस साल ईस्टर का उत्सव कुछ देर से आया था। बर्फ़ पिघल चुकी थी और खुश्क सड़कों पर धूल के छोटे-छोटे बगूले उड़ते थे। मौसम रुपहला और खूब सुहावना था।

गिरजे की दीवार के पास कुछ मज़दूर गोटियाँ खेल रहे थे। मेरा मन ललचा उठा। मैंने सोचा, ईश-भोज से पहले एक-दो हाथ यहाँ भी हो जाएँ तो क्या बुरा है। मैंने पूछा:

"मुझे भी खेलने दोगे?"

"एक खेल का एक कोपेक — समझे!" लाल बाल और मुँह पर चेचक के दाग वाले एक साथी ने गर्व से ऐलान किया।

मैंने भी उतने ही गर्व से जवाब दिया:

"बाईं ओर से वह दूसरी गोली है न, उस पर मैं तीन कोपेक लगाता हूँ!"

"पहले कोपेक दिखाओ। हम झूठमूठ का दाँव नहीं मानते!"

मैंने कोपेक दिखा दिए और खेल शुरू हो गया।

मैंने पन्द्रह कोपेक का अपना सिक्का भुना लिया और तीन कोपेक अपने दाँव पर लगा दिए। जो कोई उसे पीट देगा तीन कोपेक जीत लेगा, नहीं पीट सका तो वह तीन कोपेक का देनदार हो जाएगा। मेरा सितारा ऊँचा था। दो ने निशाना लगाया, और दोनों ही चूक गए। इसका मतलब यह कि वे छै कोपेक के देनदार हो गए। इतने बड़े लोगों को मैंने मात दी, खुशी के मारे मेरे पाँव ज़मीन से ऊँचे उठ चले।

"इस पर निगाह रखना," खिलाड़ियों में से एक ने कहा, —"कहीं ऐसा न हो कि एकाध दाँव जीत कर यह भाग निकले!"

यह मेरे सम्मान पर चोट थी। मैंने तड़ाक-से चिल्लाकर कहा:

"बाईं ओर, आखिर गोली पर, मेरे नौ कोपेक!"

मेरी इस बहादुरी का खिलाड़ियों पर कोई रोब नहीं पड़ा। लेकिन मेरी ही आयु का एक अन्य लड़का चिल्ला उठा:

"इस लड़के को शैतान सिद्ध है। ज़रा संभल कर खेलना। मैं इसे खूब जानता हूँ।"

"हुआ करे! हमें भी देखना है कि इसे कैसा शैतान सिद्ध है?" एक दुबले-पतले मज़दूर ने कहा जिसके बदन से चमड़े की गंध आती थी।

उसने सावधानी से निशाना साधा और मेरे दाँव को पीट दिया।

"बोलो बच्चू, अब क्या कहते हो?" मेरे ऊपर झुकते हुए वह बोला।

"दाहिनी ओर, आखिरी गोली पर, तीन कोपेक और!" मैंने जवाब में कहा।

"देखते जाओ, मैं इसे भी नहीं छोड़ूँगा।" शेखी बघारते हुए उसने निशाना साधा, पर चूक गया।

कायदे के अनुसार एक आदमी तीन से अधिक बार लगातार दाँव नहीं लगा सकता। सो मैंने दूसरों के नाम से दाँव लगाना शुरू किया और इस तरह चार कोपेक और बहुत सी गोटियाँ जीतीं। इसके बाद दाँव लगाने का जब मेरा नम्बर आया तो मैं अपनी सारी जमा-पूंजी हार गया। ठीक इसी समय गिरजे की प्रार्थना भी खत्म हुई — घंटियाँ बजने लगीं, और लोग गिरजे से बाहर निकल आए।

चमड़ा रंगने का काम करने वाले मज़दूर ने मेरे बाल पकड़ने की कोशिश की और बोला:

"कहो बेटा, घर जाकर अब किसकी मार पड़ेगी — बीबी की या माँ की?"

कोहनिया कर मैं उसके चंगुल से निकल भागा और एक युवक के पास पहुँचा जो खूब बढ़िया कपड़े पहने गिरजे से निकला था। मैंने मुलामियत से पूछा:

"क्या तुम ईश-भोज से आ रहे हो?"

"क्यों, तुम से मतलब?" सन्देह से देखते हुए उसने जवाब दिया।

मैंने उससे जानना चाहा कि ईश-भोज में कैसे क्या हुआ, पादरी ने क्या कहा और ईश-भोज में शामिल होने वाले दूसरे लोगों ने क्या किया।

युवक ने घूर कर मुझे देखा और सांड़ की भांति गरजते हुए बोला:

"इसका मतलब यह है कि तुम ईश-भोज से भाग आए—क्यों? तुम्हें मैं कुछ नहीं बताऊँगा। घर पर जब मार पड़ेगी, तब अपने-आप सब पता चल जाएगा।"

मैं अब घर की ओर लपका। मुझे पक्का यकीन था कि घर पर पूछ-ताछ होगी और यह बात खुल जाएगी कि मैं ईश-भोज में शामिल नहीं हुआ।

लेकिन बूढ़ी मालकिन ने मुझे बधाई देने के बाद केवल एक सवाल पूछा:

"पादरी को तुमने क्या दिया?"

"पाँच कोपेक," मैंने योंही अललटप्प जवाब दे दिया।

"तू भी निरा भोंदू ही है!" बूढ़ी मालकिन ने कहा।—"उसके लिए तो तीन भी बहुत होते, और बाकी दो तुम अपने पास रख लेते!"

चारों ओर बसन्त छाया था। प्रत्येक दिन एक नया बाना धारण करके आता, जो दिन बीत गया है उससे और भी ज़्यादा उज्ज्वल तथा और भी ज़्यादा सुन्दर। घास की नयी कोंपलों और बर्च-वृक्ष की ताज़ी हरियाली से मादक गंध निकलती। बाहर खेतों की सैर करने और सुहावनी धरती पर लेट कर भारद्वाज पक्षी का चहचहाना सुनने के लिए मन बुरी तरह उतावला हो उठता। लेकिन मैं था कि यहाँ जाड़ों के कपड़ों में ब्रुश करके उन्हें ट्रंक में बन्द करता, तम्बाकू की पत्तियाँ कूटता और गद्देदार फ़र्नीचर की गर्द झाड़ता—सुबह से रात तक ऐसे कामों में जुटा रहता जिन्हें न तो मैं पसंद करता था, और न ही आवश्यक समझता था।

और जो थोड़ा बहुत समय काम से बचता, वह भी यों ही बेकार चला जाता। मेरी समझ में न आता कि फुरसत की इन घड़ियों का क्या करूं। हमारी गली आकर्षण से एकदम सूनी थी,

और उसकी सीमा से बाहर जाने की मुझे मनाही थी। हमारा अहाता खाई खोदने वाले थके-हारे और चिड़चिड़े मज़दूरों, फटेहाल बावर्चियों और धोबी-धोबिनों से अटा पड़ा था। और हर सांझ सांठ-गांठ के इतने बेहूदा और घृणित दृश्य दिखाई देते कि मैं विक्षुब्ध हो उठता और घबरा कर अपनी आँखें बंद कर सोचता कि मैं अँधा क्यों न हुआ।

कैंची और कुछ रंगीन कागज़ लेकर मैं ऊपर तिदरी में पहुंच जाता और फूल-पत्तियाँ काट कर उनसे छत के शहतीरों और खम्बों को सजाता। इससे मेरे मन की ऊब और नीरसता कुछ हल्की हो जाती। किसी ऐसी जगह जाने के लिए मेरा हृदय बुरी तरह ललकता जहाँ लोग कम सोते हों, कम झगड़ते हों और कभी न खत्म होने वाले अपने रोने-झींखने से भगवान को या कभी न चूकने वाले अपने कड़वे बोलों से लोगों को इस हद तक न सताते हों।

ईस्टर से पहले जो शनिवार आता है, उस दिन हमारे नगर में ओरान्स्की मठ से व्लादिमिस्र्काया मरियम की प्रतिमा का आगमन हुआ। यह प्रतिमा अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध थी। जून के मध्य तक वह हमारे नगर की मेहमान रहती थी और इस काल में एक-एक करके बस्ती के सभी घरों में उसे ले जाया जाता था।

एक दिन सुबह के समय मेरे मालिकों के घर भी उसका आगमन हुआ। मैं रसोई में बैठा बरतन चमका रहा था। एकाएक दूसरे कमरे से छोटी मालकिन सकपकाई सी आवाज़ में चिल्लाई:

"जाकर बाहर का फाटक तो खोल। ओरान्स्काया मरियम की प्रतिमा आ रही है!"

मेरे हाथ चिकनाई और पिसी हुई ईंट के चूरे से लथपथ थे। वैसी ही गंदी हालत में मैं लपक कर नीचे उतरा और बाहर का फाटक खोल दिया। दरवाज़े पर एक युवक साधु खड़ा था। एक हाथ में उसके लालटेन थी, और दूसरे में लोबान का धूप-दान।

"बड़ी देर लगा दी, क्या अभी तक सो रहे थे?" उसने भुनभुना कर कहा।—"इधर आओ, थोड़ा सहारा दो।"

दो नगर-निवासी मरियम की भारी प्रतिमा उठाए थे। वे उसे लेकर तंग ज़ीने पर चढ़ने लगे। मैंने भी सहारा दिया। प्रतिमा के एक कोने के नीचे मैंने कंधा लगाया और अपने गंदे हाथों से उसे थाम लिया। हमारे पीछे कुछ गोल-मटोल साधु और थे जो अनमने अन्दाज़ से भारी स्वर में गुनगुना रहे थे:

"माँ मरियम सुनो टेर हमारी..."

कांपते हृदय से मैंने सोचा:

"गंदे हाथों से मैंने मरियम को छुआ, शायद इसी लिए मेरे हाथ सुख जाते रहेंगी।"

दो कुर्सियों को जोड़ कर उनपर एक सफ़ेद चादर बिछा दी गई। प्रतिमा को उन्हीं पर टिका दिया गया। अगल-बगल दो युवक साधु उसे थामे थे—देखने में सुन्दर, चमकदार आंखें, मुलायम बाल और चेहरे प्रसन्नता से खिले हुए। ऐसा मालूम होता मानो वे कोई फरिश्ते हों।

पूजा-प्रार्थना शुरू हुई।

घने बालों में छिपे गांठ-गठीले से अपने कान को लाल उँगली से खुजलाते हुए एक लम्बे-चौड़े पादरी ने गुनगुनाया:

"माँ मरियम, जगत जननी..."

अन्य भिक्षुओं ने भी अनमने भाव से साथ दिया:

"संकट हरो, दुख दूर करो..."

मरियम मेरे हृदय में भी बसी थीं और मैं उन्हें जीजान से चाहता था। नानी ने मुझे बताया था कि दुखियों के आँसू पोंछने और उनके जीवन में आनन्द भरने के लिए मरियम ने ही धरती को फूलों से सजाया, हर उस चीज़ की रचना की जो भली सुन्दर

है। और जब चूमने की रस्म अदा करने का समय आया तो मैंने, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि बड़े क्या कर रहे हैं, काँपते हृदय से अपने होंठ उसके होंठों से सटा दिए।

एकाएक किसी के मज़बूत हाथ का धक्का खाकर मैं दरवाज़े के पास कोने में जा गिरा। यह तो मुझे याद नहीं कि भिक्षु प्रतिमा को उठा कर उसी समय वहाँ से बिदा हो गए या कुछ देर और घर में रहे, लेकिन यह मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि मैं फ़र्श पर पड़ा था, मेरे मालिक तथा मालकिन मुझे घेरे हुए थे और परेशान मुद्रा में दुनिया-भर की अलाय-बलाय का ज़िक्र कर रहे थे जो मुझपर नाज़िल हो सकती थीं।

"पादरी के पास चल कर हमें इसका उपाय पूछना चाहिए। इस तरह की बातें वह हमसे ज़्यादा समझता है," मेरे मालिक ने कहा, और फिर मुझे हल्की-सी डांट पिलाते हुए बोला:

"यह तूने क्या किया, बेवकूफ़! क्या तुझे इतना भी नहीं मालूम कि मरियम के होंठों को नहीं चूमा जाता? और तू स्कूल में पढ़ता था!"

कई दिन तक एक इसी बात का हौल मेरे दिल में समाया रहा कि इसकी न जाने मुझे क्या सजा मिलेगी। यही क्या कम था कि गंदे हाथों से मैंने मरियम को छुआ, तिस पर मैंने गलत ढंग से उसे चूम भी लिया। निश्चय ही इसकी मुझे सज़ा मिलेगी, किसी प्रकार भी मैं छूट नहीं सकूंगा।

लेकिन, ऐसा मालूम होता था मानो मरियम ने अनजाने में किए गए इन गुनाहों को माफ़ कर दिया था। मेरे मन में बुरी भावना नहीं थी। प्रेम से अनुप्राणित हो कर ही मैंने ये गुनाह किए थे। या फिर यह भी हो सकता है कि मरियम ने मुझे जो सज़ा

दी वह इतनी हल्की हो कि इन भले लोगों की बारहमासी डांट-फटकार के चक्कर में मुझे उसका पता तक न चला हो!

बहुधा बूढ़ी मालकिन को चिढ़ाने के लिए मैं दबे स्वरों में चुटकी लेता:

"ऐसा मालूम होता है, मानो मरियम को मुझे सज़ा देना याद नहीं रहा!"

"अभी क्या है," बड़ी मालकिन जवाब देती,—"माँ मरियम तुझे एकदम इकट्ठा सज़ा देंगी!"

चाय के गुलाबी लेबुलों, टीन के गुच्छों, फूल-पत्तियों और इसी तरह की अन्य छोटी-मोटी चीजों से छत और खम्बों को सजाते समय जो भी मन में आता मैं गुनगुनाने लगता और उसे गिरजे के गीतों की धुन में गूंथने की चेष्टा करता, उन कालमिकों की भांति जो घोड़ों पर चढ़े यात्रा भी करते हैं और गीत भी रचते जाते हैं:

बैठा हुआ तिदरी में
काटता हूं कागज़ मैं
गलाता मोम बूंद बूंद!
गर होता कुत्ता मैं
न टिकता क्षण भर यहाँ
जहाँ रहना है दुश्वार!
चीख़ कर कहते सब:
बन्द कर यह तोबड़ा
कहना मान, न बड़बड़ा
नहीं तो फूटेगा खोपड़ा!

बूढ़ी मालकिन जब मेरी कारीगरी और सजावट देखती तो वह हुमहुमा कर सिर हिलाते हुए कहती:

"रसोईघर को भी क्यों नहीं तुम ऐसे ही सजा देते?"

एक दिन मालिक भी तिदरी में आए, मेरी कारीगरी पर एक नज़र डाली और उसांस लेते हुए बोले:

"तुम भी खूब हो, पेश्कोव। पता नहीं तुम क्या बनोगे? देखो न, यह सब क्या तमाशा है? क्या जादूगर बनने की तैयारी कर रहे हो?"

और उसने मुझे निकोलाई प्रथम के काल का पाँच कोपेक का एक सिक्का भेंट किया।

सिक्के को मैंने महीन तार से खूब सजा-बजा कर तमगे की भांति लटका दिया। मेरी रंग-बिरंगी सजावट के बीच वह दूर से ही दिखाई देता था।

लेकिन अगले ही दिन वह सिक्कामय सजावट गायब हो गया। मुझे पक्का यक़ीन है कि बूढ़ी मालकिन ने ही उसपर हाथ साफ़ किया होगा।

५

आख़िर मुझसे नहीं रहा गया और वसन्त के दिनों में भाग निकला। सुबह का समय था और नाश्ते के लिए मैं पावरोटी लेने गया था। मैं पावरोटी खरीद ही रहा था कि किसी बात पर रोटीवाले का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया, उसने उसके सिर पर भारी बटखरा दे मारा। वह बाहर की ओर भागी और सड़क पर आकर ढेर हो गई। चारों ओर लोग जमा हो गए और उसे एक गाड़ी में डाल कर अस्पताल ले चले। मैं भी लपककर गाड़ी के साथ-साथ हो लिया और इसके बाद, पता नहीं कैसे, एकदम अनजाने में ही वोल्गा के तट पर पहुँच गया। उस समय मेरी मुट्ठी में बीस कोपेक थे।

वसन्त का दिन वसन्ती मुसकान की वर्षा कर रहा था। वोल्गा के पाट का कोई वार-पार नहीं था और पानी सागर की भांति हिलोरें ले रहा था। धरती दूर-दूर तक फैली थी और ऐसा मालूम होता था मानो वह हुमक और हुमस रही हो। लेकिन मैं—मैं था कि उस दिन तक चूहे की भांति एक बिल में जीवन बिता रहा था। मैंने निश्चय किया कि अपने मालिक के घर अब नहीं लौटूँगा, न ही अपनी नानी के पास कुनाविनो जाऊंगा। नानी को मैंने वचन दिया था, और उसे पूरा न कर सकने के कारण उसके सामने जाते मुझे झिझक मालूम होती थी। और नाना तो जैसे ऐसे अवसरों के लिए लपलपाते ही रहते थे।

दो या तीन दिन तक मैं नदी-तट पर यों ही मटरगश्ती करता रहा। भाईचारे में घाट-मज़दूर खाना खिला देते, घाट पर ही उनके साथ मैं रात को सोता। आखिर उनमें से एक ने कहा:

"इस तरह टल्लेनवीसी करने से काम नहीं चलेगा, बचुआ! 'दोब्री' जहाज़ में नौकरी क्यों नहीं कर लेते? रसोईघर में तश्तरियाँ साफ़ करने के लिए उन्हें एक आदमी की ज़रूरत है।"

मैं जहाज़ के दफ़्तर में पहुँचा। भण्डारे का मैनेजर एक लमतड़ंग दाढ़ीवाला आदमी था—सिर पर रेशम की काली टोपी, और चश्मे के भीतर से झांकतीं धुंधली सी आंखें। सिर उठा कर उसने मेरी ओर देखा और शान्त भाव से बोला:

"दो रूबल महीना। पासपोर्ट तो है न?"

मेरे पास पासपोर्ट नहीं था। मैनेजर ने एक क्षण कुछ सोचा। फिर बोला:

"अपनी माँ को लेकर आओ!"

भागा हुआ मैं नानी के पास पहुँचा। सारी बात मैंने बता दी। नानी ने मेरे इस नये क़दम का समर्थन किया और नाना को

भी समझा-बुझा कर तैयार कर लिया। व्यापार के दफ़्तर में जाकर वह ख़ुद मेरे लिए पासपोर्ट ले आए। फिर नानी को साथ लेकर मैं जहाज़ के दफ़्तर पहुँचा।

"बहुत ठीक," मैनेजर ने उड़ती नज़र से हमारी ओर देखा। फिर बोला: "मेरे साथ चले आओ।"

वह मुझे जहाज़ के पिछले हिस्से में ले गया जहाँ तगड़े बदन का खानसामाँ सफ़ेद पोशाक पहने और टोपी लगाये मेज़ के पास बैठा था। वह चाय पी रहा था और साथ ही एक मोटी सिगरेट से धुआँ उड़ा रहा था। मैनेजर ने मुझे उसकी ओर धकेलते हुए कहा:

"यह बरतन साफ़ करेगा।"

इसके बाद वह उल्टे पांव लौट गया। खानसामें ने अपनी नाक सिकोड़ी, फिर अपनी काली मूछों को फरफराया और मैनेजर को लक्ष्य कर फनफनाते हुए बोला:

"मजदूरी कम हो तो यह शैतान को भी न छोड़े!"

अपने भारी-भरकम सिर को जिसके काले बाल खूब महीन छंटे हुए थे, झुंझला कर उसने पीछे की ओर फेंका, फिर अपनी काली आँखों से मेरी ओर ताकते और अपने गालों को कुप्पा-सा फुलाते हुए चिल्लाकर कहा:

"कहाँ से आए हो?"

यह आदमी मुझे कतई पसंद नहीं आया। बावजूद इसके कि वह सिर से पांव तक सफ़ेद कपड़ों में ढंका था, वह मुझे गंदा मालूम हुआ। उसकी उँगलियों पर खूब घने बाल छाए थे, और उसके छाज-से कानों पर भी तिनकों की भांति लम्बे बाल खड़े थे।

"मुझे भूख लगी है," मैंने कहा।

उसने अपनी आँखें मिचमिचाईं, और उसके चेहरे का रूखापन देखते देखते गायब हो गया। प्रशस्त मुसकराहट से वह खिल उठा, उसके लाल गाल लहरियाँ लेते कानों तक फैल गए, और उसके बड़े-बड़े घोड़े ऐसे दाँत चमकने लगे। उसकी मूंछें विनम्र भाव से झुक गईं और वह एक मोटी-ताज़ी कोमल-हृदया गृहिणी की भांति मालूम होने लगा।

अपनी चाय का बाकी बचा हिस्सा उसने जहाज़ से नीचे पानी में फेंक दिया, फिर गिलास में ताज़ी चाय उँडेली और रोटी के एक अनछुए टुकड़े तथा सौसेज के एक बड़े स्लाइस के साथ उसे मेरी ओर बढ़ा दिया।

"लो, यह खाओ", उसने कहा।—"तुम्हारे माँ-बाप तो हैं न? चोरी करना जानते हो? कोई बात नहीं, जल्दी ही सीख जाओगे। चोरी करने में यहाँ सभी माहिर हैं!"

उसके मुँह से शब्द क्या निकलते थे, मानो भट्टी के मुँह से भभकारे निकलते थे। वह इतना कस कर हजामत बनाता था कि उसके भारी-भरकम गालों पर नीली खूंटियाँ उखड़ आई थीं। उसकी नाक के इर्द-गिर्द माँस में महीन लाल शिराओं का जाल बिछा था। उसकी कुप्पी-सी लाल नाक मूंछों के साथ दखलन्दाज़ी करती थी, उसका निचला मोटा होंठ उपेक्षा से नीचे लटक आया था और मुँह के कोने में एक सिगरेट जलती थी। ऐसा मालूम होता था मानो वह अभी गुसलखाने से स्नान करके निकला हो। उसके वदन से बर्चवृक्ष की टहनियों और मिरचौनी ब्राण्डी की गंध आ रही थी, और उसकी गरदन तथा कनपटियों पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं।

जब मैं भर-पेट खाना खा चुका तो उसने मेरे हाथ में एक रूबल थमा दिया।

"अपने लिए दो एप्रन खरीद लेना। नहीं, तुम रहने दो। मैं खुद ही खरीद कर ला दूँगा!"

उसने अपनी टोपी को सिर पर जमा कर ठीक किया और गडूलने की भांति दायें-बायें हिलता डैक की ओर चल दिया। ऐसा मालूम होता था मानो कोई रीछ झूमता हुआ चला जा रहा हो।

रात का समय था। चौचक चांद हमारे जहाज़ पर अपनी चांदनी छिटकाता बायें हाथ वाली चरागाहों की ओर खिसक चला। हमारा जहाज़ क्या था, बाबा आदम के ज़माने की यादगार था। खाकी रंग और धुआँ निकलने की चिमनी के सिर पर छल्ले की भांति सफ़ेद घेरा पुता हुआ। रुपहले पानी में छपछप करता अलस भाव से चल रहा था। जहाज़ को भेंटने के लिए नदी के काले तट ने धीरे-धीरे उभरना शुरू किया, और घरों की खिड़कियों की रोशनी से झिलमिल करतीं उसकी परछाइयाँ पानी पर तैरने लगीं। गाँव की ओर से गाने की आवाज़ आ रही थी— ऐसा मालूम होता था मानो गाँव की लड़कियों के दल मिल कर गा रहे हों और उनके गीत की टेक 'आएलूली' से 'हलेलूयाह' की धुन का धोखा होता था।

हमारा जहाज़ तारों के एक लम्बे रस्से के सहारे किसी बजरे को खींच रहा था। इस बजरे का रंग भी खाकी था। डैक पर लोहे का एक बड़ा सा कठघरा था और कठघरे में जलावतनी और कठोर श्रम की सज़ा पाए कैदी बंद थे। कोने पर खड़े सन्तरी की संगीन मोमबत्ती की लौ की भांति चमक रही थी, और गहरे नीले आकाश में टिमटिमाते तारे भी छोटी-छोटी मोमबत्तियों की भांति दिखाई देते थे। बजरे पर निस्तब्धता छाई थी, और चाँद अपनी चाँदनी लुटा रहा था। कठघरे की सलाखों के पीछे गोल भूरी परछाइयाँ दिखाई देती थीं। ये क़ैदी थे, बैठी हुई मुद्रा में। वोल्गा पर उनकी

आँखें टिकी थीं। पानी छल-छल करता बह रहा था — पता नहीं वह रो रहा था, या सहमे हुए भाव से हँस रहा था। हर चीज़ से गिरजे का आभास मिलता था, यहाँ तक कि तेल की गंध लोबान की याद दिलाती थी।

बजरे की ओर देखते-देखते मुझे अपने प्रारम्भिक बचपन की याद हो आई: अस्त्राखान से निजनी की यात्रा, नकाब के समान माँ का चेहरा और मेरी नानी जिसकी उँगली पकड़ कर मैंने इस कठोर किन्तु दिलचस्प जीवन में पाँव रखा। नानी, जिसकी याद आते ही जीवन के घृणित और हृदय को कचोटने वाले पहलू मानो ग़ायब हो जाते, हर चीज़ बदल जाती, पहले से ज़्यादा हृदयग्राही और ज़्यादा सुखद बन जाती, और लोग पहले से ज़्यादा प्रिय रूप धारण कर लेते।

रात इतनी सुन्दर थी कि मेरी आँखों में मोती ढुलक आए। बजरे ने मुझपर जादू-सा कर दिया। वह ताबूत की भांति दिखाई देता था और इस छलछलाती नदी के प्रशस्त वक्ष और इस सुहावनी रात की ध्यानोन्मुखी निस्तब्धता में उसका अस्तित्व बहुत ही अटपटा तथा बहुत ही बेतुका मालूम होता था। नदी-तट की असम रेखाएँ जो कभी उभरती और कभी नीचे उतरती थीं, हृदय में स्फूर्ति का संचार करतीं और मन में अच्छा बनने तथा मानव-जाति का कुछ भला करने की भावना हिलोरें लेने लगती।

जहाज़ के हमारे यात्री भी कुछ निराले ही थे। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे सब के सब — बूढ़े भी और जवान भी, पुरुष भी और स्त्रियाँ भी — एक ही सांचे में ढले हों। कछुवे की चाल से हमारा जहाज़ हरकत करता। वे लोग जिन्हें कुछ जल्दी होती, डाकजहाज़ से सफ़र करते। और हमारे जहाज़ की केवल वही शरण लेते जिन्हें विशेष आपाधापी करने की ज़रूरत नहीं होती, जल्दबाज़ी

के बन्धनों से जो मुक्त होते। सुबह से सांझ तक ये खाते और पीते-पिलाते, ढेर सारी तश्तरियों, छुरी-कांटों और चम्मचों को गंदा करते। और मेरा काम था इन तश्तरियों को साफ़ करना तथा छुरी-कांटों को चमकाना। सुबह के छै बजे से लेकर रात के बारह बजे तक दम मारने की भी फुरसत नहीं मिलती। दोपहर के दो बजे से लेकर छै बजे तक और रात को दस से बारह तक, काम का ज़ोर कुछ हल्का हो जाता। कारण कि भोजन करने के बाद यात्री केवल चाय, बीयर या वोडका पीते। इन घंटों में सभी वेटर खाली होते। फनेल के पास एक मेज़ पड़ी थी। चाय पीने के लिए आम तौर से यहीं उनका अखाड़ा जमता। बावर्ची स्मूरी, उसका सहायक याकोव ईवानोविच, रसोई के बरतन मांजनेवाला मक्सिम और चौड़े चेचक रुह चेहरे, चिपचिपाती आंखोंवाला और कुब निकला वेटर सेर्गेई जो डैक पर यात्रियों को चीज़ें परसने का काम करता, सभी इस मण्डली में जमा होते। याकोव ईवानोविच उन्हें गंदी कहानियाँ सुनाता और अपनी मैल-चढ़ी बत्तीसी दिखाते हुए जब वह हँसता तो ऐसा मालूम होता मानो सुबकियाँ ले रहा हो। सेर्गेई का मेंढकनुमा मुँह भी हँसते समय इस कान से उस कान तक फैल जाता। मैक्सिम का चेहरा पहले की भांति अब भी चढ़ा रहता, अनिश्चित रंग की अपनी बेजान आँखों से वह दूसरों की ओर देखता और बुत की भांति चुपचाप सुनता रहता।

बड़ा बावर्ची रह-रह कर अपनी गूंजती आवाज़ में चिल्ला उठता:

"आदमख़ोर! मोर्दोवियनों की औलाद!"

मैं इन सभी से घिन्नाता। मोटा गंजा याकोव ईवानोविच जब देखो तब केवल स्त्रियों का ही जिक्र करता, सो भी निहायत गंदे ढंग से। उसके भावशून्य चेहरे पर नीले चकत्ते पड़े थे। एक गाल पर

छोटे टीले की भांति रसोली निकली थी जिसमें लाल बाल उगे थे। इन बालों को वह सदा उमेठता रहता जो सिकुड़-सिमट कर सुई की नोक का रूप धारण कर लेते। जहाज़ पर जैसे ही कोई मिलने-जुलने और हँस कर दो बातें करने वाली स्त्री सवार होती वह उसके सामने बिछ जाता और भिखारी की भांति छाया बना उसके साथ लगा रहता, चाशनी में पगे मिमियाते स्वरों में उससे बतियाता, उसके होंठों पर झाग उफन आते जिन्हें उसकी गंदी जुबान लपलपा कर तेज़ी से चाटती रहती। न जाने क्यों, मुझे ऐसा लगता कि जल्लाद का काम करनेवाले लोग भी ठीक इतने ही मोटे और इतने ही चिक्कट होते होंगे।

"स्त्रियों को फंसाना भी एक बहुत बड़ा हुनर है!" एक दिन उसने सेर्गेई और मक्सिम को बताना शुरू किया जो मुँह बाये, मन-ही-मन उमड़ते-घुमड़ते, सुन रहे थे और उनके चेहरों पर लाल रंग दौड़ रहा था।

गूंजती आवाज़ में स्मूरी घृणा से चिल्लाया:

"आदमख़ोर!"

फिर कसमसा कर वह धीरे-धीरे उठा और अपने पाँवों पर तन कर खड़ा हो गया।

"पेश्कोव, मेरे साथ आओ!" उसने मुझसे कहा।

जब हम उसके केबिन में पहुँचे तो उसने मेरे हाथ में एक छोटी-सी किताब थमा दी जिसपर चमड़े की जिल्द बंधी थी। फिर वह अपने तख़्ते पर लम्बा पसर गया जो कोल्ड स्टोरेज़ रूम की दीवार में जड़ा था।

"इसे पढ़ कर सुनाओ।"

मकारोनी सिवइयों की एक खाली पेटी पड़ी थी। मैं उसी पर बैठ गया और अदब से पढ़कर सुनाने लगा।

"अम्बराकुलम में अगर तारे छिटकते दिखाई दें तो इसका अर्थ है कि स्वर्ग के देवता तुम से प्रसन्न है, सारे कलुष और गंदगी से मुक्त होकर तुम दिव्य ज्ञान प्राप्त करोगे।"

मुँह से धुएँ का बादल छोड़ते हुए स्मूरी भुनभुनाया:

"ऊँट के ताऊ! घास चरने के लिए क्या आकाश तक गरदन फैलाते हैं!"

"अगर उबड़ी हुई बाईं छाती दिखाई दे तो इसका अर्थ है निष्कपट हृदय।"

"किसकी बाईं छाती?"

"यह तो कुछ नहीं लिखा।"

"समझ लो कि स्त्री की। होगी कोई छिनाल!"

उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और हाथों का सिरहाना बनाकर लेट गया। मुँह के कोने से हिलगी अपनी सिगरेट को जो करीब-करीब बुझ-सी चली थी, सम्भाल कर उसने ठीक किया और इतने ज़ोरों से कश खींचा कि उसके सीने के अन्दर से कोई सीटी-सी आवाज़ आयी और उसका चेहरा धुएँ से ढंक गया। कई बार बीच-बीच में जब मुझे ऐसा लगता कि वह सो गया है तो मैं पढ़ना बंद कर देता और उस मनहूस किताव की ओर चुपचाप देखता रहता।

तभी उसकी भौंकने ऐसी आवाज़ सुनाई देती:

"पढ़ते क्यों नहीं?"

"वेनेराब्ल ने जवाब दिया: देखो, मेरे नेकदिल फ़ुरेयर सूवे-रियन..."

"सेवेरियन..."

"सूवेरियन लिखा है..."

"मारो गोली इसे। अन्त में कुछ कविताएँ छपी हैं। उन्हें पढ़ो।"

मैंने पढ़ना शुरू किया:

ओ मोरी के कीड़ो!
न किलबिलाओ इतना,
करो न दम्भ इतना!
टकियल तुम्हारी जात
करोगे तुम क्या हम को मात,
ओ मोरी के कीड़ो!

"बस करो!" स्मूरी ने चिल्लाकर कहा।—"यह भी कोई कविता है? लाओ, इसे मुझे दो!"

नीली जिल्द की मोटी किताब को अपने हाथ में लेकर उसने गुस्से से उसके पन्ने उलटे-पलटे और फिर तख्ते के नीचे पटक दिया।

"दूसरी लाकर पढ़ो!"

यह भी एक भारी जंजाल था। लोहे के कुन्दे और कील-कांटों से लैस काले रंग का उसका बक्स किताबों से अटा पड़ा था। अनेक शीर्षक नज़र आए: "सन्त ओमीर की वाणी", "तोपखाने के संस्मरण", "लार्ड सेडेनगाल के खुतूत", "खटमल भगाने के नुस्खे"। कई पुस्तकें ऐसी थीं जिनके आदि-अन्त का कुछ पता नहीं चलता था। कभी-कभी खानसामें पर धुन सवार होती और वह कहता कि इन सब पुस्तकों के बारे में मुझे बताओ। मैं उसे सब के नाम पढ़ कर सुनाता, और वह झुंझलाकर बड़बड़ा उठता:

"शैतान कहीं के, लिखते क्या हैं, मानो औचक में मुँह पर तमाचा-सा मारते हैं। और किस लिए समझ में नहीं आता। गेरवास्सी! भाड़ में जाए गेरवास्सी! अम्बराकुलम! इन कम्बख्तों को भी न जाने कहाँ-कहाँ की सूझती है!"

अटपटे और अजीब शब्द, ऐसे नाम जो न कभी देखे और

न कभी सुने, स्मृति में आकर अटक जाते, उन्हें बार-बार दोहराने के लिए मेरी जीभ खुजलाने लगती, मानो उनकी ध्वनि मात्र से ही उनका अर्थ मेरी समझ में आ जाएगा। खिड़की से बाहर कामा नदी गाती और छपछपाती रहती। मेरा मन डैक पर जाने के लिए उतावला हो उठता जहाँ बक्सों के इर्द-गिर्द बोट चलाने और कोयला झोंकने वालों की चौकड़ी जमती। वे गीत गाते, किस्से सुनाते या ताश के खेलों में यात्रियों की जेबें ख़ाली करते। कितना अच्छा होता अगर मैं भी इस समय उनके पास पहुँच जाता, उनके साथ बैठकर उनकी सीधी-सादी और समझ में आने वाली बातें सुनता और कामा नदी के तटों, बिजली के खम्बों की भांति सीधे खड़े देवदार वृक्षों के ऊंचे तनों और चरागाहों की ओर देखता जहाँ बाढ़ का पानी जमा होकर छोटी सी झीलें बन गई थीं जिनमें नीला आसमान टूटे हुए आईने के टुकड़ों की भांति चमकता दिखाई देता था। हमारा जहाज़ तट से दूर था और दूर ही रहा, लेकिन सांझ के सन्नाटे में आँखों से ओझल किसी गिरजे की घंटियों की आवाज़ हवा के साथ बहकर आती और आबाद बस्तियों तथा लोगों की हलचल की याद दिलाती। किसी मछियारे का डोंगा रोटी के टुकड़े की भांति पानी पर नाचता नज़र आता। फिर एक गाँव निकट आता दिखाई देता जहाँ छोटे लड़कों का एक दल पानी में छपछप खेल रहा था और लाल कमीज़ पहने एक किसान पीले फीते की भांति फैले रेत पर से चला आ रहा था। दूर से देखने पर हर चीज़ सुहावनी मालूम होती। ऐसा लगता मानो गुड्डे-गुड़ियों की बस्ती हो — रंग-बिरंगी, हर चीज़ खिलौनों की भांति नन्ही-मुन्नी। मन में उमंग उठती कि समूचे नदी-तट को अपने हृदय से सटा लूँ, प्यार और सहानुभूति का उद्‌गार बन कर सब कहीं छा जाऊँ — नदी तट पर भी, और उस बजरे पर भी जिसमें क़ैदी बंद थे।

ख़ाकी रंग का वह बजरा मानो मेरे मन में बसा था। मंत्र-मुग्ध-सा मैं घंटों बैठा रहता और उसके ठुके-पिटे से अग्रभाग को गंदला पानी चीर कर अपना रास्ता बनाते एकटक देखता रहता। हमारा जहाज़ गले में रस्सी बंधे सुअर की भांति उसे खींच रहा था। तारों का रस्सा जब ढीला पड़ता तो पानी से टकराता और इसके बाद, नाक के बल बजरे को खींचते समय, पानी को काटता हुआ फिर तन जाता। मन में होता कि बजरे पर जाकर उन लोगों के चेहरे देखूँ जो जानवरों की भांति लोहे के कठघरे में बंद थे। पेर्म में जब उन्हें बजरे से उतारा गया तो मैं जैसे-जैसे गैंग-प्लांक पर चढ़ गया और उन्हें देखने लगा: दल के दल मटमैले जीव, थैलों के बोझ से दोहरे और अपनी ज़ंजीरों को बजाते, आँखों के सामने से गुज़रे। उनमें पुरुष थे, स्त्रियाँ थीं, उनमें बूढ़े थे और जवान थे, सुन्दर और असुन्दर, सभी तरह के लोग थे—ठीक वैसे ही से कि सब लोग होते हैं, सिवा इसके कि वे दूसरी तरह के कपड़े पहने थे, और सिर-घुटे होने के कारण उनके चेहरे-मोहरे और भी बुरे दिखाई देते थे। वे ज़रूर डाकू ही रहे होंगे। लेकिन नानी तो डाकुओं के बारे में इतने बढ़िया क़िस्से सुनाया करती थीं!

स्मूरी इन सब से कहीं ज़्यादा दबंग और जानदार लुटेरा मालूम होता था।

"इस तरह बन्दी बनने से तो मर जाना अच्छा!" बजरे की ओर देखते हुए वह बुदबुदाता।

एक दिन मैंने पूछा:

"तुम बावर्ची ही क्यों बने, कुछ और क्यों नहीं बने? इसी तरह अन्य कितने ही लोग चोर और हत्यारे बन कर क्यों रह जाते हैं?"

"मैं बावर्ची नहीं, हैड खानसामाँ हूँ। बावर्ची का काम तो

केवल स्त्रियाँ करती हैं!" उसने नाक सिकोड़ कर भुनभुनाते हुए कहा। फिर एक क्षण कुछ सोचकर बोला: "जिसका जैसा दिमाग़ होता है, वह वैसा ही बनता है। कुछ लोग सयाने होते हैं, कुछ कूढ़ दिमाग़ और कुछ बिल्कुल गोबर गणेश। अगर ठीक ढंग की—जैसे काला जादू तथा इसी तरह अन्य बहुत-सी—किताबें पढ़ने को मिलें तो आदमी सयाना और समझदार बनता है। सभी तरह की किताबें पढ़ो, तब पता चलता है कि इनमें अच्छी कौनसी है, और बुरी कौनसी। सही किताब खोज निकालने का इसके सिवा और कोई तरीका नहीं है।"

वह मुझसे सदा यही कहता:

"पढ़ो, अगर कोई किताब समझ में न आए तो उसे सात बार पढ़ो। अगर सात बार पढ़ने पर भी समझ में न आए तो उसे बारह बार पढ़ो।"

स्मूरी जहाज़ पर हर किसी को उल्टी-सीधी सुनाता। चाहे वह मैनेजर ही क्यों न हो जिसके मुँह पर ताला पड़ा रहता था। जब वह किसी से बात करता तो अपना निचला होंठ उपेक्षापूर्ण अन्दाज़ में बाहर निकाल देता, अपनी मूंछों को फरफराता और शब्दों को इस प्रकार अपने मुंह से निकालता मानो बेर खाकर उनकी गुठलियाँ थूक रहा हो। लेकिन मेरे साथ वह मुलामियत से पेश आता, हालांकि उसकी इस हार्दिकता में भी कुछ ऐसी बात थी जिससे मुझे डर लगता था। कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि नानी की बहन की भांति उसके दिमाग़ का भी कोई पुर्ज़ा ढीला है।

"पढ़ना बंद करो!" वह कहता और आँखें बंद किए देर तक चुपचाप पड़ा रहता, साँस लेते समय उसकी नाक भरभराती, उसका भारी पेट धौंकनी की भांति उठता और गिरता, उसके हाथ सीने

पर लाश की भांति आड़े रखे रहते, उसकी कटी-फटी बालों वाली उँगलियाँ इस प्रकार तुड़तीं-मुड़तीं मानो वह अदृश्य सलाइयों से कोई अदृश्य मोज़ा बुन रहा हो। फिर, एकाएक, वह बुदबुदाना शुरू करता:

"खोपड़ियाँ—एक से एक अजीब और निराली, संभालना चाहो तो भी न संभलें! बुद्धि और समझ उनमें दिखाई देती है, लेकिन बहुत कम, भूले-भटके और सो भी असमान रूप में। अगर सभी एकसी मात्रा में बुद्धिमान हों, लेकिन होते कहाँ है? एक की समझ में कुछ आता है, दूसरे की समझ में कुछ नहीं आता और तीसरा है कि समझने से ही इन्कार करता है।"

लड़खड़ाते हुए से शब्द उसके मुँह से निकलते और वह मुझे अपने सैनिक जीवन की कहानियाँ सुनाता। उसकी कहानियों में मुझे कभी कोई तुक नहीं दिखाई देती और वे मुझे हमेशा बेमज़ा मालूम होतीं,—खास तौर से इसलिए भी कि वह कभी शुरू से शुरू नहीं करता, बल्कि जहाँ से भी मन होता, वहीं से सुनाना शुरू कर देता।

"सो रेजीमेंट के कमाण्डर ने उस सैनिक को तलब किया और उससे पूछा: 'तुम से लैफ़्टीनेन्ट ने क्या कहा था?' और उसने सभी कुछ बता दिया, कुछ भी छिपा कर न रखा, क्योंकि सैनिक का यह फर्ज़ है कि वह सच बोले। लैफ्टीनेन्ट ने उसकी ओर इस तरह देखा मानो वह पत्थर की दीवार हो, फिर मुँह फेर कर अपनी आँखें बन्द कर लीं। ऊँह!"

मन ही मन रस लेते हुए उसने एक लम्बी साँस खींची और बुदबुदाने लगा:

"मानो मुझे मालूम ही हो कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं! उन्होंने लैफ़्टीनेन्ट को जेल में बन्द कर दिया, और उसकी माँ..... ओह, मेरे भगवान! कोई तो ऐसा मिलता जो मुझे कुछ सिखाता!"

बड़ी ऊमस थी। ऐसा मालूम होता था मानो हर चीज़ काँप और भनभना रही हो। केबिन की लौह-दीवारों से बाहर जहाज़ का पैडल-चक्र थपथपाता और पानी छलछलाता। खिड़की में से पानी की चौड़ी धारा उमड़ती-घुमड़ती दिखाई देती, दूर चरागाह की हरियाली नज़र आती और वृक्षों के झुरमुट आँखों के सामने उभरने लगते। इन सब आवाज़ों को सुनते-सुनते मेरे कान इतने आदी हो गए कि निस्तब्धता के सिवा मुझे अन्य किसी चीज़ का भान नहीं होता, हालांकि जहाज़ के गलियारे में एक मल्लाह एकरस आवाज़ में बराबर दोहराता रहता था :

"सा-आ-त . . . सा-आ-त . . ."

मैं हर चीज़ से अलग रहना चाहता, — न कुछ सुनना चाहता, न करना, —बस किसी ऐसे कोने में छिप जाना चाहता जहाँ रसोई की गर्म और चिकनी गंध प्रवेश न कर सके, और जहाँ बैठ कर पानी पर तैरते हुए इस हलचल रहित और थके-हारे जीवन को अलसायी-उनींदी आँखों से देखा जा सके।

"पढ़ते क्यों नहीं?" झकझोरते हुए स्वर में स्मूरी आदेश देता।

पहले दर्जे के वेटर तक उससे डरते और ऐसा मालूम होता मानो सहमा-सिमटा, घुन्ना और मुँहबंद मैनेजर भी मन-ही-मन स्मूरी से भय खाता है।

"ऐ सूअर!" स्मूरी शराबखाने के चाकरों पर चिल्लाता। — "इधर आ चोर, आदमख़ोर, अम्बराकुलम!"

मल्लाह और कोयला झोंकने-वाले उसकी इज़्ज़त करते, यहाँ तक कि उसकी नज़रों में अच्छा बनने का भी प्रयत्न करते। वह उन्हें शोरबे में से गोश्त की बोटियाँ निकाल कर देता, उनके बाल-बच्चों और गाँव के जीवन के बारे में पूछता। कालिख में सने और चिक्कट कोयला झोंकनेवाले जहाज़ की तलछट समझे जाते थे। वे

बेलोरूस के रहनेवाले थे। रूसी उन्हें याक बैल कह कर चिढ़ाते और आपस में टक्कर मारने के लिए उकसाते:

"याक, याक, ज़रा दिखा तो अपना ज़ोर!"

स्मूरी जब यह देखता तो उसका पारा गर्म हो जाता। उसकी मूंछें फरफराने लगतीं, चेहरा तमतमा जाता और कोयला झोंकनेवालों से वह चिल्लाकर कहता:

"तुम इन कत्सपों* से डरते क्यों हो? इनका तोबड़ा क्यों नहीं तोड़ डालते!"

एक बार मल्लाहों के मुखिया ने जो शक्ल-सूरत से अच्छा पर स्वभाव से चिड़चिड़ा था, उससे कहा:

"याक और खोखोल**—नीचता में दोनों एक दूसरे से बढ़ कर!"

स्मूरी ने एक हाथ से उसकी पेटी दबोची और दूसरे से गरदन। फिर सिर से ऊँचा उठा कर उसे हिलाते-झंझोड़ते हुए चिल्ला उठा:

"बोल, अब क्या कहता है? ऐसा पटकूंगा कि बच्चू का कचूमर निकल जाएगा!"

अक्सर झगड़ा बढ़ जाता और जम कर लड़ाई होती। लेकिन स्मूरी कभी मार नहीं खाता। एक तो इसलिए कि ताक़त में वह पूरा देव था, दूसरे इसलिए भी कि कप्तान की पत्नी से उसका मेल-जोल था। वह ऊँचे क़द की स्त्री थी, मरदाना चेहरा और लड़कों की भांति सीधे कटे हुए बाल।

वह वोडका की बोतलों पर बोतलें चढ़ा जाता, लेकिन मदहोश

---

* कत्सप — रूसी के लिए एक अपमानजनक शब्द।

** उक्रइनी के लिए एक अपमानजनक शब्द।

कभी नहीं होता। सुबह से वह पीना शुरू करता, चार पैगों में ही एक बोतल खाली कर देता, और बीयर तो वह दिन भर चुसकता रहता। धीरे-धीरे उसका चेहरा लाल हो जाता, और उसकी काली आँखें इस तरह फैल जातीं मानो उनमें अचरज का भाव भरा हो।

कभी-कभी, सांझ के समय, सफ़ेद रंग की भीमाकार प्रतिमा की भांति वह डैक पर घंटों बैठा रहता और मुँह फुलाए पीछे छूटती हुई दूरी को घूरा करता। ऐसे क्षणों में प्राय: सभी उससे और भी ज्यादा डरते, लेकिन मुझे उसपर तरस आता।

याकोव ईवानोविच रसोई से बाहर निकलता: चेहरा लाल और पसीने में तर वह अपनी गंजी खोपड़ी को खुजलाता और फिर निराशा से हाथ हिलाता हुआ ग़ायब हो जाता। या वह दूर से कहता:

"मछली मर गई..."

"इसका सलाद बना डालो।"

"अगर कोई मछली का शोरबा या उबली हुई मछली मांगने लगा तो क्या करोगे?"

"बना डालो। वे सब चट कर जाएंगे!"

कभी-कभी साहस बटोर कर मैं उसके पास जाता। कांख कर मेरी ओर मुड़ते हुए वह मुझ से पूछता:

"क्यों, क्या चाहते हो?"

"कुछ नहीं।"

"तो मौज करो।"

एक बार मैंने उससे कहा:

"तुम इतने अच्छे हो। फिर भी सब लोग तुमसे डरते क्यों हैं? तुम उन्हें डराते क्यों हो?"

मेरा सवाल सुन कर वह भुंझलाया नहीं। इससे मुझे भारी अचरज हुआ।

"मैं केवल तुम्हारे साथ ही भला हूँ," उसने जवाब दिया, और फिर कुछ सोचते हुए मीठे स्वर में बोला:

"या शायद मैं सभी के साथ भला हूँ। केवल मैं दिखाता नहीं। लोगों को यह कभी नहीं मालूम होना चाहिए कि तुम भले हो, अन्यथा वे तुम्हें नोंच खाएंगे। जो भला होता है, लोग उसपर इस तरह चढ़ बैठते हैं मानो वह दलदल के बीच सूखी मिट्टी का कोई टीला हो, और वे उसे पांव-तले रौंद डालते हैं। जाओ, मेरे लिए कुछ बीयर तो उठा लाओ।"

एक के बाद एक कई गिलास बीयर पीने के बाद उसने अपनी मूंछों को चाटा और बोला:

"अगर तुम इतने छुनमुन न होकर कुछ बड़े होते तो तुम्हें बहुत-सी बातें सिखाता। मैं भी थोड़ी-बहुत काम की बातें जानता हूँ— निरा बौड़म नहीं हूँ। तुम्हें पुस्तकें पढ़ना चाहिए, पुस्तकों में काम की सभी बातें होती हैं। पुस्तकों से दुर्लभ वस्तु और कोई नहीं है। क्यों, कुछ बीयर पियोगे?"

"बीयर मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"यह अच्छी बात है। कभी नशा न करना। नशा एक बहुत बड़ी बला है। वोडका शैतान की देन है। अगर मैं अमीर होता तो पढ़ने के लिए तुम्हें स्कूल भेजता। बे पढ़े आदमी को पूरा बैल ही समझो। चाहो तो उसके कंधों पर जुवा लाद दो, चाहे उसे काट कर खा जाओ — दुम फड़फड़ाने के सिवा वह और कुछ नहीं करता।"

कप्तान की पत्नी ने उसे गोगोल की एक पुस्तक दी: "भयानक प्रतिशोध"। मुझे यह पुस्तक बहुत पसंद आई। लेकिन स्मूरी गुस्से से होंठ काटते हुए चिल्ला उठा:

"निरी बकवास, एकदम कूड़ा। भला, कौन यक़ीन करेगा इस खुराफ़ात पर! छोड़ो इसे, मैं कोई दूसरी पुस्तक लाऊँगा!"

उसने मेरे हाथ से पुस्तक छीन ली और कप्तान की पत्नी से एक अन्य पुस्तक ले आया।

"तो, अब इसे पढ़ो — तारास — ज़रा देखो तो, इसका पूरा नाम क्या है?" अपनी तरंग में बहते हुए उसने आदेश किया। "कहने लगी कि इसमें एक बहुत बढ़िया कहानी है। लेकिन बढ़िया से क्या मतलब? हो सकता है कि यह उसके लिए बढ़िया हो, और मेरे लिए घटिया। और देखो न, वह अपने बाल किस तरह कटाती है? इसी तरह अपने कान भी क्यों नहीं कटा लेती?"

पुस्तक पढ़ते-पढ़ते जब मैं उस स्थल पर पहुँचा जहाँ तारास ओस्ताप को लड़ने के लिए ललकारता है तो वह भरभराई सी आवाज़ में हँसा।

"बोलो, क्या कहते हो इसके बारे में?" उसने कहा। — "एक के पास दिमाग़ है, दूसरे के पास घूंसा! लिखने के लिए इन्हें और कुछ नहीं मिलता, ऊँट की औलाद!"

वह ध्यान से सुन रहा था, बीच-बीच में भुनभुनाता भी जाता था।

"ऊँह, यह भी क्या बकवास है। एक ही बार में कंधे से कमर तक आदमी को नहीं काटा जा सकता। एकदम गलत। और बर्छी की नोक पर आदमी को भला कैसे उठाओगे, वह टूट न जाएगी? क्या मैं जानता नहीं, मैं खुद सैनिक रह चुका हूँ।"

आन्द्रेई के विश्वासघात का प्रसंग सुन कर वह बुरी तरह आहत हो उठा :

"हरामी कहीं का! एक स्त्री के पीछे मुँह के बल जा गिरा!"

और उस समय जब तारास ने अपने बेटे के सीने में गोली दागी तो वह उचक कर बैठ गया, अपनी टांगों को उसने तख्ते से नीचे लटका लिया उसके किनारे को दोनों हाथों से पकड़ कर रोने

लगा। धीरे-धीरे उसकी आँखों से आँसू निकलने और उसके गालों पर से लुढ़कते हुए फ़र्श पर गिरने लगे। नथुने फड़काते हुए वह बुदबुदाया :

"ओह, मेरे भगवान!"

सहसा वह मुझपर चिल्ला उठा :

"पढ़ना क्यों बंद कर दिया, शैतान के पूत!"

वह और भी ज़ोरों से, फफक-फफक कर, रोने लगा उस समय जब ओस्ताप अपने प्राणदण्ड से पहले चीख उठा : "क्या मेरी आवाज़ तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचती पिता?"

"सभी कुछ समाप्त हो गया," स्मूरी भुनभुनाया!—"कुछ भी बाक़ी नहीं बचा। कितना विकट अन्त है! मुझे तो इसने बुरी तरह झंझोड़ दिया। कितने खरे आदमी होते थे उन दिनों! अपने इस तारास को ही देखो, क्या आदमी था वह भी?—एकदम असली!"

उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और ध्यान से उसे देखा। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और पुस्तक की जिल्द पर टपा-टप गिर रहे थे।

"पुस्तक भी कितनी बढ़िया चीज़ होती है!"

इसके बाद "आइवनहो" का पाठ हुआ। स्मूरी को रिचर्ड प्लान्टागेनेट का चरित्र पसंद आया।

"बादशाह हो तो ऐसा!" उसने रोबीली आवाज़ में कहा। लेकिन मुझे वह अच्छा नहीं लगा।

मोटे तौर से हमारी रुचि एक-दूसरे से भिन्न थी। "थामस जोन्स की कहानी" और "लावारिस टाम जोन्स की जीवनी" के पुराने संस्करण ने मुझे मंत्रमुग्ध कर लिया लेकिन स्मूरी बड़-बड़ाया :

"एकदम बकवास! भाड़ में जाए तुम्हारा थामस। मुझे उससे

क्या लेना? बढ़िया पुस्तकों की कमी नहीं है, खोजने से ज़रूर मिल जाएंगी।"

एक दिन मैंने उसे बताया कि पुस्तकों की एक और किस्म होती है: ज़ब्तशुदा पुस्तकें, भूमिगत पुस्तकें, जिन्हें केवल रात के समय तहख़ानों में बैठ कर पढ़ा जाता है।

सुन कर उसकी आँखें फैल गईं, मूंछें फरफराने लगीं।

"क्या कहा तुमने? क्यों बे पर की उड़ा रहे हो?"

"मैं झूठ नहीं कहता। पाप-स्वीकारोक्ति के समय खुद पादरी ने उनके बारे में मुझसे पूछा था, और उससे भी पहले मैंने लोगों को उन्हें पढ़ते और उनपर आँसू बहाते देखा है।"

चुंधी-सी आँखों से उसने मेरी ओर देखा।

"आँसू बहाते देखा है? कौन था वह?"

"एक स्त्री जो सुन रही थी, और दूसरी तो डर के मारे भाग ही गई!"

"कहीं तुम सपना तो नहीं देख रहे?" अपनी आँखों को धीरे-धीरे सिकोड़ते हुए स्मूरी ने पूछा। फिर कुछ रुक कर बोला:

"हर जगह कोई न कोई भेद की बात रहती ही है। भेद की बातों के बिना काम भी तो नहीं चलता... लेकिन मैं तो अब बुढ़ा गया हूँ... और मेरा स्वभाव भी वैसा नहीं है... फिर भी इस तरह की बातों का जब ख़याल आता है तो..."

बिना रुके घंटों तक वह इसी तरह बातें कर सकता था।

एकदम अनजाने में ही मुझे पढ़ने की आदत पड़ गई, और चाव के साथ मैं पढ़ता। पुस्तकों की दुनिया में रमने के बाद जो इस दुनिया से भिन्न भी थी और दिलचस्प भी, मुझे चारों ओर का जीवन और भी दुःखद मालूम होता।

स्मूरी की दिलचस्पी भी पुस्तकों में बढ़ती गई। अक्सर वह मुझे अपना काम भी न करने देता। कहता:

"पेश्कोव, चले आओ और पुस्तक पढ़कर सुनाओ।"

"जूठी रकाबियों का एक ढेर जमा है। उन्हें साफ़ करना है।"

"मक्सिम साफ़ कर लेगा।"

वह रकाबियाँ धोनेवालों के मुखिया की गरदन दबोच कर उससे मेरा काम लेता, और कांच के गिलास तोड़ कर वह अपना बदला चुकाता। मैनेजर इस पर नाराज़ होता और निश्चल आवाज़ में मुझे चेतावनी देता:

"तुम्हें जहाज़ से निकाल दूँगा।"

एक दिन मक्सिम ने जान-बूझ कर गंदे पानी के बरतन में गिलास पड़े रहने दिए। नतीजा यह हुआ कि जब मैंने बरतन का गंदा पानी जहाज़ से नीचे फेंका तो गिलास भी उसके साथ-साथ जा गिरे।

"असल में कसूर मेरा है," स्मूरी ने मैनेजर से कहा। "गिलासों के दाम मेरे हिसाब में से काट लेना।"

वेटरों ने भी मुझसे जलना और कुढ़ना शुरू कर दिया। मुझे कोंचते हुए कहते:

"कहो किताबी कीड़े, खूब हराम की खाते हो आजकल!"

मेरा काम बढ़ाने के लिए वे जान-बूझ कर रकाबियों को गंदा कर देते। मुझे लगता कि इस छेड़छाड़ का अन्त अच्छा नहीं होगा, और ऐसा ही हुआ भी।

सांझ का समय था। एक छोटे-से घाट से एक लाल चेहरे वाली स्त्री हमारे जहाज़ पर सवार हुई। उसके साथ एक लड़की भी थी जो पीले रंग का रूमाल और गुलाबी रंग का ब्लाउज़ पहने थी। दोनों नशे में कुछ धुत्त थीं। स्त्री बराबर मुसकराती,

झुक कर सभी का अभिवादन करती और उसके मुँह से तोते की भांति शब्द निकलते:

"मुझे माफ़ करना, मेरे प्यारे साथियो! आज मैंने थोड़ी-सी चढ़ा ली है। मुझे पकड़ कर उन्होंने अदालत में पेश किया और वहाँ से मैं बेदाग छूट गई, सो मैं अब ख़ुशी मना रही हूँ।"

लड़की खिलखिला कर हँसती, अपनी धुंधली आँखों से सभी पर डोरे डालती और स्त्री की पसलियों को निरन्तर गुदगुदाती।

"बस रहने दो अपनी राम कहानी! जाओ, तुम्हारी एक-एक रग लोगों की जानी-पहचानी है!"

जहाज़ के सेकंड क्लास वाले हिस्से में, उस केबिन के सामने जहाँ याकोव ईवानोविच और सेर्गेई सोते थे, दोनों ने अपना अड्डा जमाया। स्त्री तो शीघ्र ही गायब हो गई, और सेर्गेई लड़की की बग़ल में जाकर जम गया। उसका मेंढकनुमा चेहरा लिजबिज हँसी में फैला था।

काम-काज से निबट कर उस रात सोने के लिए मैं मेज़ पर चढ़ा ही था कि सेर्गेई मेरे पास आया और मेरा हाथ खींचते हुए बोला:

"चलो, हम आज तुम्हारी जोड़ी मिलाएँगे!"

वह नशे में धुत्त था। मैंने उससे अपना हाथ छुड़ाना चाहा तो मुझे धकियाते हुए बोला:

"चुपचाप चले चलो, नहीं तो..."

तभी मक्सिम भागा हुआ आ गया। वह भी नशे में धुत्त था। दोनों ने मुझे पकड़ा और डैक तथा सोते हुए यात्रियों के पास से खींचते हुए मुझे अपने केबिन की ओर ले चले। लेकिन दरवाज़े से कुछ हट कर स्मूरी और ठीक दरवाज़े के बीचोंबीच याकोव

ईवानोविच लड़की का रास्ता रोके खड़ा था। वह उसकी पीठ पर घूंसे बरसा रही थी और नशीली आवाज़ में बार-बार चिल्ला रही थी:

"रास्ते छोड़ो! मुझे जाने दो!"

स्मूरी ने मुझे मक्सिम और सेर्गेई के चंगुल से छुड़ा लिया, बाल पकड़ कर दोनों को खींचा और उनके सिरों को एक-दूसरे से टकराया। इसके बाद इतने ज़ोरों से उसने उन्हें धक्का दिया कि वे लुढ़कते हुए डेक पर जा गिरे।

"आदमखोर!" वह याकोव पर चिल्लाया और झटके-से उसके मुँह पर दरवाज़ा बन्द कर दिया। फिर मुझे धकियाते हुए गुर्रा उठा:

"दफ़ा हो यहां से!"

मैं जहाज़ के पिछले हिस्से की ओर भाग गया। बादलों घिरी रात थी, नदी पर अंधेरा छाया था। जहाज़ के पीछे पानी में दो भूरी धारियाँ कट कर एक-दूसरे से दूर होती हुईं अदृश्य तटों की ओर भागी जा रही थीं। इन धारियों के बीच बजरा चल रहा था। कभी दाहिनी और कभी बाईं ओर लाल रोशनियाँ दिखाई देतीं और फिर, किसी चीज़ को आलोकित किए बिना ही नदी के घुमावों के पीछे तुरत गायब हो जातीं। उनके ओझल हो जाने के बाद रात और भी अधिक काली तथा और अधिक बोझिल मालूम होने लगती।

बावर्ची आकर मेरे पास ही बैठ गया। गहरी साँस खींचते हुए उसने अपनी सिगरेट सुलगाई।

"क्या वे तुम्हें उस छछूंदर के साथ बंद करना चाहते थे? कुत्ते कहीं के! मैंने उन्हें तुम्हारी ओर झपटते हुए देखा था!"

"उस लड़की का क्या हुआ?" मैंने पूछा।—"क्या तुम उसे उनके चंगुल से छुड़ा सके?"

"लड़की?" भद्दे से शब्दों में उसने लड़की को कोसा और फिर चोट खाए स्वर में बोला:

"यहाँ सभी सूअर हैं! देहात से भी बदतर। क्या तुम कभी देहात में भी रहे हो?"

"नहीं।"

"सड़ाँध और गंदगी से लबालब! जाड़ों में तो खास तौर से।"

उसने अपनी सिगरेट का टुकड़ा पानी में फेंक दिया और कुछ रुक कर बोला:

"तुम भी कहाँ इन सूअरों के बीच आ फंसे! मेरे नन्हे मूस, तुम्हें देख कर दुःख होता है। दुःख तो मुझे सभी पर होता है। और कभी-कभी तो मन बुरी तरह छटपटाने लगता है। न मुझे भले का ज्ञान रहता है, न बुरे का। मन करता है कि घुटनों के बल गिर कर मैं उनसे कहूँ—यह तुम क्या कर रहे हो, हरामी के पिल्लो! क्या तुम्हारी आँखें फूट गई हैं जो कुछ सुझाई नहीं देता? ऊंट कहीं के!"

जहाज ने देर तक सीटी की आवाज़ की, तार का रस्सा पानी में गिर कर छपछपाया, अंधेरे को चीर कर लालटेन की रोशनी झूल उठी जो इस बात की सूचक थी कि बन्दरगाह यहाँ है, और अन्य कितनी ही छोटी-मोटी रोशनियाँ धुंधलके में झिलमिलाने लगीं।

"यहीं है वह 'नशे में झूमता जंगल'।" बावर्ची बड़बड़ाया। "यहाँ नशे में झूमती एक नदी बहती है—'मदमाती नदी'। किसी ज़माने में यहाँ एक अफ़सर रहता था। उसका नाम था 'शराबोव'। और एक क्लर्क जिसे सब 'नशा-उतार' कहते थे... अच्छा, मैं किनारे पर जाऊँगा।"

कामा प्रदेश की हट्टी-कट्टी स्त्रियाँ लम्बी हथगाड़ियों पर लकड़ी लाद कर ला रही थीं। फुर्ती से छोटे-छोटे डग भरतीं, बोझ से झुकीं, दो-दो के जोड़ों में जहाज़ के ईंधन-घर तक आतीं और उसके काले मुँह में चार-चार फुट के लकड़ी के कुन्दों को झोंक देतीं। उनकी हि-हि की आवाज़ चारों ओर गूंज उठती।

जब वे लकड़ी लेकर आतीं तो जहाज़ी उनकी टांगें खींचते, उनकी छातियों को पकड़ कर मसकते और स्त्रियां कीकती हुईं उनके मुँह पर थूकतीं। लकड़ियाँ उतार कर जब वे लौटतीं तो जहाज़ियों की हाथापाई और चिकोटियों से बचने के लिए वे पलट कर अपनी हथगाड़ियों को उन पर चढ़ा देतीं। अनेक बार, हर फेरे में, मैं यह देख चुका था। जहाँ कहीं भी जहाज़ ईंधन लेता, इसी तरह के दृश्य दिखाई देते।

मुझे ऐसा मालूम होता मानो मैं कोई बड़ा बूढ़ा आदमी हूँ जो अपनी उम्र का काफ़ी बड़ा हिस्सा इस जहाज़ पर बिता चुका है, जिसके लिए कुछ भी नया नहीं है और जो पहले से ही बता सकता है कि अगले सप्ताह या अगले शरद में क्या होगा।

अब उजाला हो चला था। घाट से परे रेत के टीले पर देवदार के एक बड़े जंगल की शक्ल दिखाई देने लगी। जंगल से लकड़ियाँ लाने के लिए स्त्रियाँ टीले पर चढ़ रही थीं। आपस में हँसतीं, गीत गातीं और किलकारियाँ भरतीं। अपनी लम्बी हथ-गाड़ियों से लैस वे सैनिकों के दल की भांति दिखाई देतीं।

मेरा रोने को जी चाहता। आँसू हृदय में उमड़ते-घुमड़ते और जैसे गले में आकर अटक जाते। इससे मेरा हृदय और भी कराह उठता।

लेकिन स्त्रियों की भांति रोते मुझे शर्म मालूम हुई। सो मैं उठा और डैक साफ़ करने में जहाज़ी शूरिन का हाथ बंटाने लगा।

शूरिन उन जहाज़ियों में से था जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। पीला और बेरंग, जहाज़ के ओने-कोने में बैठा बस अपनी छोटी आंखें मिचमिचाता रहता।

एक दिन मुझसे बोला:

"सच कहता हूँ मेरा यह छोटा-सा शूरिन नाम असल धोखे की टट्टी है,—शूरिन नहीं, मेरा नाम होना चाहिए सूरिन। जिस माँ ने मुझे जन्म दिया, वह पूरी सूरी थी, न जाने कहाँ-कहाँ मैले में मुँह मारती फिरती थी। और मेरी बहन—वह भी अपनी माँ से कम नहीं थी। ऐसा मालूम होता है कि विधाता ने इन दोनों के भाग्य में यही लिख दिया था। भाग्य, मेरे भाई, उस पत्थर की भांति है जो गले में बंधा रहता है। तुम उबरने के लिए हाथ-पांव मारते हो, और वह तुम्हें ले डूबता है।"

और अब, डैक को साफ़ करते समय, शान्त स्वर में कहने लगा:

"देखा तुमने, वे लड़कियों को किस तरह मसकते और कचोटियाँ काटते हैं? कौन नहीं जानता कि अगर पीछे पड़े रहो तो सीली लकड़ी भी गरमा जाती है! मुझसे यह नहीं देखा जाता। नहीं भाई, मैं यह सब सहन नहीं कर सकता। अगर मैं लड़की होता तो भगवान का नाम लेकर किसी अंधे कुवें में डूब मरता। जो बोझ सिर पर पहले से लदा है, उसे उतारना ही जब मुसीबत मालूम होता है तो हृदय के तारों को इस तरह झनझना कर एक नयी मुसीबत क्यों खड़ी की जाए? स्कोप्तसियों को लोग मूर्ख कहते हैं। लेकिन मैं उन्हें मूर्ख नहीं मानता। कभी सुना है स्कोप्तसियों के बारे में? ज़नखे लोग बहुत ही समझदार—भले जीवन का रास्ता खोजने में उन्हें देर न लगी। बस, मन को भटकाने वाली इन नन्हीं चीज़ों को जड़-मूल से काट कर फेंक दो और, शुद्ध-शरीर हो, भगवान की सेवा करो।"

कप्तान की पत्नी हमारे पास से गुज़री। डैक पर पानी फैला था। अपने घाघरे को भीगने से बचाने के लिए वह उसे ऊँचा उठाए थी। वह हमेशा जल्दी उठ जाती थी। लम्बी और शानदार, चेहरा कुछ इतना निष्कपट और भोलेपन का कुछ ऐसा भाव लिए कि मेरा मन ललक उठता, जी करता कि भाग कर उसके पीछे जाऊँ और अपना समूचा हृदय उँडेलते हुए उससे कहूँ:

"मुझसे बातें करो—कुछ तो अपने मुँह से कहो!"

जहाज़ धीरे-धीरे बन्दरगाह से दूर होने लगा।

"अगली मंज़िल की ओर!" शूरिन ने कहा, और अपने हाथ से क्रॉस का चिन्ह बनाया।

६

सारापूल पहुँचने पर मक्सिम ने जहाज़ की नौकरी छोड़ दी। चलते समय उसने किसी से विदा तक न ली। बस, एकदम चुपचाप, शान्त और गम्भीर, वह जहाज़ से चल दिया। रंगीन स्वभाव की वह स्त्री भी हँसती और खिलखिलाती, उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। साथ में उसकी लड़की भी थी—आँखें सूजी हुई, मसली और मुरझाई सी। सेर्गेई कप्तान के केबिन के दरवाज़े के सामने देर तक बैठा रहा, दोनों घुटने टेके हुए। दरवाज़े की चौखट को वह चूमता था, और रह-रह कर उससे अपना सिर टकराता था।

"मुझे माफ़ करो," झींकता हुआ वह कहता।—"मैंने कुछ नहीं किया। वह सब मक्सिम का कसूर था।"

जहाज़ियों, शराबख़ाने के लोगों, यहाँ तक कि कुछ यात्रियों को भी मालूम था कि वह झूठ बोल रहा है। फिर भी वे उसे उकसा और बढ़ावा दे रहे थे:

"ठीक है, दरवाज़े पर डटे रहो। वह निश्चय ही तुम्हें माफ़ कर देगा!"

और कप्तान ने सचमुच उसे माफ़ कर दिया। यह बात दूसरी है कि माफ़ के साथ-साथ उसने एक ऐसी लात भी उसके जमाई कि वह लुढ़कियाँ खाने लगा। लेकिन इससे क्या, अगले ही क्षण वह कपड़े झाड़ कर खड़ा हो गया और हाथों में नाश्ते की ट्रे लिए डैक पर इधर से उधर लपकता और मार खाए पिल्ले की भांति लोगों के सामने दुम हिलाता नज़र आने लगा।

मक्सिम की जगह जिस आदमी को उन्होंने रखा, वह व्यात्का का रहने वाला था और पहले फ़ौज में काम कर चुका था। वह मुख्तसिर सा आदमी था। छोटा-सा उसका सिर था और लाल-भूरी आँखें। आते ही सहायक बावर्ची ने उसे कुछ चूज़े काटने भेज दिया। दो तो उसने काट डाले, और बाक़ी डैक पर छुट्टा निकल भागे। यात्रियों ने उन्हें पकड़ने की कोशिश की, और तीन चूज़े फुदक कर जहाज़ से पानी में जा गिरे। रसोईघर के पास लकड़ियों का एक ढेर पड़ा था। निराशा से सिर झुकाए सैनिक इसी ढेर पर बैठ गया, और फूट-फूट कर रोने लगा।

"रोते क्यों हो, बेवकूफ़!" स्मूरी ने अचरज में भर कर पूछा। "छिः, तुम भी कैसे सैनिक हो?"

सैनिक ने धीमे स्वर में कहा:

"मैं तो गैर लड़ाकू सैनिक था।"

यह कहना था कि उसका तो ढेर हो गया। आध घंटा बीतते न बीतते जिसे देखिए वही जहाज़ में उस पर हँस रहा है। एक-एक करके वे आते, सैनिक की ओर ताक कर देखते, और पूछते:

"क्या यही है?"

इसके बाद बहुत ही भोंडे और भद्दे ढंग से खिलखिलाकर वे उसकी हँसी उड़ाते, और हँसते-हँसते दोहरे हो जाते।

शुरू में सैनिक का ध्यान न तो उनकी ओर गया, और न ही उनके खिलखिलाने और हँसने की ओर। वह केवल उसी जगह बैठा हुआ अपनी फटी पुरानी सूती कमीज़ की आस्तीन से अपने आँसुओं को इस तरह पोंछता रहा मानो उन्हें अपनी आस्तीन में छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। लेकिन यह हालत देर तक न रही। शीघ्र ही उसकी लाल-भूरी आँखें गुस्से से दमकने लगीं, और व्यात्का निवासियों के चुहचुहाते लहज़े में उसकी ज़ुबान कतरनी-सी चल पड़ी:

"इस तरह दीदे फाड़ कर मुझे क्यों घूर रहे हो? शैतान के घर में भी क्या तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है?"

उसकी इस बात ने लोगों को और भी गुदगुदा दिया। वे आते और उसकी पसलियों में अपनी उँगलियाँ गड़ाते उसकी कमीज़ और उसका एप्रन पकड़ कर खींचते। इस तरह पूरी बेरहमी से, वे उसे भोजन का समय होने तक चिढ़ाते रहे। भोजन के बाद किसी ने लकड़ी के चमचे के सिर में नींबू गड़ा कर उसे उसके एप्रन की डोरियों से कमर के पीछे बांध दिया। सैनिक जब इधर-उधर हरकत करता तो चमचा भी उसके साथ-साथ झकोले खाता और लोग उसे देख-देख कर हँसी के मारे दोहरे हो जाते। पिंजरे में बंद चूहे की भांति वह छटपटाता और भुनभुनाता—उसकी समझ में न आता कि आख़िर ये लोग इतना हँस क्यों रहे हैं।

बिना कुछ बोले, बड़ी गम्भीरता से, स्मूरी ने उसे देखा और उसका चेहरा किसी स्त्री के चेहरे की भांति कोमल हो उठा।

मुझे भी सैनिक पर तरस आना शुरू हुआ। मैंने स्मूरी से पूछा:

"कहो तो चमचे के बारे में उसे बता दूँ?"

स्मूरी ने सिर हिला कर अनुमति दे दी।

जब मैंने सैनिक को यह बताया कि वह क्या चीज़ है जिसपर सब लोग हँस रहे हैं तो उसका हाथ झपट कर चमचे के पास पहुँचा, उसकी डोरी को उसने तोड़ डाला, फिर चमचे को फ़र्श पर पटक उसे पाँव तले रौंदा और अपने दोनों हाथों से मेरे बाल पकड़ कर मुझे खींचना शुरू कर दिया। फिर क्या था, हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गये और अन्य सब लोग तुरंत घेरा-सा बना कर हमारा तमाशा देखने लगे।

स्मूरी ने सब को इधर-उधर कर हमें एक-दूसरे से छुड़ा दिया। पहले उसने मेरे कान गरम किए, फिर सैनिक को कान से पकड़ कर उठाया। अपना कान छुड़ाने के लिए जब टुइयाँ से उसके बदन ने ऐंठना और बल खाना शुरू किया तो लोग उसे देखकर उछल पड़े और उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। तालियों और सीटियों की आवाज़ से उन्होंने आसमान सिर पर उठा लिया, और हँसी के मारे दोहरे हो गए।

"वाहरे मेरे शेर! देखता क्या है, बावर्ची की तोंद फाड़ डाल!"

मानव-समूह के इस जंगलीपन को देख कर मेरे मन में हुआ कि एक लट्ठा उठा कर इन सब के सिर चकनाचूर कर दूँ!

स्मूरी ने सैनिक को तो छोड़ दिया और जंगली भालू की भांति उसने अब लोगों की ओर रुख किया। उसके हाथ उसकी कमर के पीछे थे, उसके दाँत चमक रहे थे, और मूँछों के बाल फरफरा रहे थे।

"जिसका जहाँ दरबा है वहीं,—बस, फ़ौरन नौ-दो ग्यारह हो जाओ! आदमखोर कहीं के।"

सैनिक एक बार फिर मेरी तरफ़ झपटा, लेकिन स्मूरी ने उसे एक हाथ से उठा लिया और इसी प्रकार उठाए-उठाए उसे

पानी के नल्के तक ले गया। फिर पानी का नलका खोल कर उसने सैनिक का सिर उसके नीचे कर दिया और उसके टुइयाँ से बदन को पानी की धार के नीचे इस तरह उलट-पलट कर घुमाने लगा मानो वह चिथड़ों की गुड़िया हो।

कुछ जहाज़ी, उनका मुखिया और प्रथम सहायक, लपक कर बाहर निकल आए और एक बार फिर भीड़ जमा हो गई। भीड़ में मैनेजर का सिर अन्य सब से ऊँचा दिखाई दे रहा था, सदा की भांति चुप्पा, मानो बोलना जानता ही न हो।

सैनिक लकड़ी के ढेर पर बैठ गया और कांपते हाथों से अपने जूते उतारने लगा। उसने उन चिथड़ों को निचोड़ा जो उसके पाँवों में लिपटे थे। लेकिन वे सूखे थे। बेतर्तीबी से बिखरे हुए उसके बालों से पानी टपटप गिर रहा था। यह देख लोगों ने फिर हँसना शुरू कर दिया।

"हंसते क्यों हो?" सैनिक ने ज़ोर लगा कर पतली आवाज़ में कहा—"उस लड़के को मैं जीता न छोड़ूँगा।"

स्मूरी मेरा कंधा थामे था। उसने प्रथम सहायक से कुछ कहा। जहाज़ियों ने लोगों को तितर-बितर कर दिया। जब सब चले गए तो स्मूरी ने सैनिक से पूछा:

"बोलो, तुम्हारा अब क्या किया जाए?"

सैनिक कुछ नहीं बोला। जंगली आँखों से बस मेरी ओर देखता-भर रहा। उसका समूचा शरीर अजीब ढंग से बल खा रहा था।

"अटैन्शन, यू बातों के शेर!" स्मूरी ने कहा।

"दिमाग़ तो सही है न? आये यहाँ कमान चलाने!" सैनिक ने जवाब दिया।

बावर्ची अचकचा गया। उसे ऐसा जवाब पाने की उम्मीद न

थी। उसके फूले हुए गाल पिचक गए, मुँह से उसने थूका और मुझे अपने साथ घसीटता हुआ ले चला। मुझे भी जैसे काठ मार गया। बार-बार मुड़कर मैं सैनिक की ओर देखता। लेकिन स्मूरी बुदबुदाया:

"बड़ा ढीठ है। ऐसे आदमी के मुँह कौन लगे?"

तभी सेर्गेई लपक कर हमारे पास आया और फुसफुसाकर बोला:

"वह तो अपना गला काटने पर उतारू है!"

"क्या?" स्मूरी के मुँह से निकला और तेज़ी से उल्टे पाँव मुड़ चला।

हाथ में बड़ा सा चाकू लिए जो चूज़ों की गरदन हलाल करने तथा ईंधन के लिए छिपटियाँ चीरने के काम आता था, सैनिक उस केबिन के दरवाज़े पर खड़ा था जिसमें वेटर रहते थे। चाकू खुट्टल था, काटने का काम रेती की भांति करता था। केबिन के सामने लोग फिर जमा हो गए थे, और बालों से पानी चूते इस टुइयाँ-से आदमी को देख रहे थे जो उनके लिए एक अच्छा-खासा तमाशा बन गया था। पिचकी नाक वाला उसका चेहरा जैली की भांति काँप रहा था, उसका मुँह जैसे खुला-का खुला रह गया था, उसके होठों में बल पड़ रहे थे और वह बार-बार बुदबुदा रहा था:

"शैतान... ह-त्या-रे..."

मैं उछल कर किसी चीज़ पर खड़ा हो गया और उचक कर लोगों के चेहरों पर मैंने नज़र डाली। खिल खिला कर वे हँस रहे थे, और एक-दूसरे कोहनियाते हुए कह रहे थे:

"अरे देखो, उसे देखो..."

अपने दुबले-पतले बच्चों एसे हाथ से जब उसने पतलून के भीतर अपनी कमीज़ खोंसनी शुरू की तो मेरे पास ही खड़े एक खूबसूरत आदमी ने उसाँस भरते हुए कहा:

"ठीक है। गरदन चाहे साफ़ हो जाए पर पतलून नहीं खिसक-नी चाहिए!"

लोग और भी जोरों से हँसने लगे। सभी समझते थे कि यह मरदूद जान नहीं दे सकता। मेरा भी ऐसा ही खयाल था। लेकिन स्मूरी ने, उछलती-सी नज़र से देखने के बाद, लोगों को अपने पेट से धकियाते और इधर-उधर करते हुए उन्हें डांटना शुरू किया:

"हट जा यहाँ से, बेवकूफ़ कहीं का!"

समूह को एक व्यक्ति की भांति "बेवकूफ़ कहीं का" कहने की उसे आदत थी। चाहे कितने ही लोग क्यों न जमा हों, वह उनके पास जाता और उन सबको एकवचन में कहता:

"दफ़ा हो जा, बेवकूफ़ कहीं का!"

उसे ऐसा करते देख हँसी छूटती, लेकिन यह भी सच था कि आज, सुबह से ही, मानो सभी लोगों ने एक बहुत बड़े "बेवकूफ़" का रूप धारण कर लिया था।

लोगों को तितर-बितर करने के बाद वह सैनिक के पास गया और अपना हाथ फैलाते हुए बोला:

"यह चाकू मेरे हवाले कर दो...।"

"अच्छी बात है, तुम्हीं ले लो," सैनिक ने कहा और चाकू स्मूरी को दे दिया। स्मूरी ने चाकू मुझे थमा दिया और सैनिक को केबिन में धकेलते हुए बोला:

"यहाँ आराम करो, और आँखें बंद कर के सो जाओ! आखिर तुम्हें यह क्या सूझा?"

सैनिक सोने के तख़्ते पर बैठ गया। मुँह से कुछ नहीं बोला।

"यह तुम्हारे लिए कुछ खाना और थोड़ी-सी वोडका ले आएगा। वोडका पीते हो?"

"यों ही कभी-कभी चख लेता हूँ।"

"और देखा उसको हाथ न लगाना। क्या तुम समझते हो कि यह तुम्हारी हँसी उड़ा रहा था? नहीं, तुम्हारी हँसी उड़ानेवालों में यह नहीं था। मैं कहता हूँ यह नहीं था...।"

सैनिक ने धीमे स्वर में पूछा:

"मैंने इन लोगों का ऐसा क्या बिगाड़ा है? ये क्यों मेरी जान के पीछे पड़े हैं?"

कुछ क्षण तक स्मूरी चुप रहा। अन्त में बोला:

"मैं खुद नहीं जानता।"

इसके बाद वह और मैं रसोईघर की ओर चल दिए।

"ऊँह, मरे को मारे शाह मदार!" उसने रास्ते में बुदबुदा कर कहा।—"देखा तुमने? भाई मेरे, लोगों का वश चले तो तुम्हारी जान ही निकाल लें, सच कहता हूँ, तुम्हें किसी करम का न छोड़ें। बस, खटमल की भांति चिपक जाते हैं, और जब तक सारा खून न चूस लें पीछा नहीं छोड़ते। क्या कहा मैंने... खटमल की भांति नहीं, एक साथ हजार खटमल मिलकर भी उनका मुकाबिला नहीं कर सकते!"

सैनिक के लिए जब मैं कुछ रोटी, माँस और वोडका लेकर उसके पास पहुँचा तो वह तख़्ते पर बैठा स्त्रियों की भांति सिसक-सिसक कर रो रहा था, और उसका बदन आगे-पीछे की ओर हिल रहा था। रकाबी मेज़ पर रखते हुए मैंने कहा:

"यह लो, अब खाना खा लो।"

"दरवाज़ा बंद कर दो।"

"अंधेरा हो जाएगा।"

"बंद कर दो, कहीं वे फिर न आ जाएं?"

मैं बाहर निकल आया। सैनिक मुझे अच्छा नहीं लगा। उसके प्रति मेरे हृदय में सहानुभूति या दया का कोई भाव पैदा नहीं हुआ। यह मुझे और भी अटपटा मालूम हुआ और मैं बेचैन हो उठा। नानी ने सदा मुझे सीख दी थी:

"लोगों पर तरस खाना चाहिए, भाग्य के मारे न जाने किस तरह एड़ियां रगड़-रगड़-कर अपने दिन बिताते हैं।"

"खाना दे आए?" वापिस लौटने पर बावर्ची ने पूछा।—"अब उसका क्या हाल है?"

"रो रहा है।"

"नहीं तो! न सैनिक, न सैनिक की दुम!"

"मुझे तो उस पर ज़रा भी तरस नहीं आया।"

"यह क्या कहा तुमने?"

"यही कि लोगों के साथ दया का बरताव करना चाहिए...।"

स्मूरी ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपने निकट खींच लिया।

"किसी पर ज़बर्दस्ती दया कैसे दिखाओगे, और मगरमच्छ की भांति दया के आँसू बहाना तो और भी बुरा है। समझे?" उसने रोबीले स्वर में कहा।—"इस तरह मोम बनने से काम नहीं चलेगा, तुम्हें कुछ अपने दिमाग़ से भी काम करना चाहिए।"

उसने मुझे अपने से दूर धकेल दिया। फिर उदास स्वर में बोला:

"तुम यहाँ बेकार आ फंसे। तुम्हें कहीं और होना चाहिए। यह लो, सिगरेट पियो।"

यात्रियों के बरताव ने मेरे हृदय में गहरी उथल-पुथल मचा दी। जिस बुरे ढंग से उन्होंने सैनिक को चिढ़ाया और स्मूरी के उसका कान पकड़ कर उठाने पर जिस कुत्सित ढंग से खिलखिला

कर वे हँसे, उसमें मुझे हद दर्जे का अमानवीय घिनौनापन मालूम हुआ। क्या वह भी कोई हँसने की बात थी? उसमें उन्हें ऐसा क्या दिखाई दिया जो वे हँसी की अपनी उस बाढ़ को रोक नहीं सके?"

पहले की भांति वे अब फिर डैक पर सायबान के नीचे बैठे या लेटे हुए थे। उनके जबड़े चल रहे थे, वे पी और पिला रहे थे, ताश खेल रहे थे, शान्त और सुघड़ ढंग से बातें कर रहे थे, और नदी का नज़ारा देख रहे थे। उन्हें देख कर कोई सोच भी नहीं सकता था कि यही वे लोग थे जो एकदम बेलगाम होकर जंगलियों की भांति उछल-उछल कर सीटियाँ बजा रहे थे, हाथ-पाँव फेंक रहे थे। सदा की भांति वे अब फिर निश्चल और काहिल हो गए थे। चींटियों या सूरज की रोशनी में चक्कर लगाते धूल के कणों की भांति सुबह से सांझ तक वे जहाज़ में टल्लानवीसी करते, इधर-से उधर गोल-गर्दिश में घूमते। जहाज़ जब कहीं रुकता तो वे भेड़ों के झुंड की भांति सारा रास्ता घेर लेते और नीचे उतरने से पहले क्रास का चिन्ह बनाते। वे नीचे उतरते और ठीक उन्हीं की भांति अन्य बीसियों लोग, उन्हीं जैसे कपड़े पहने और उन्हीं की भांति पोटले-पोटलियों के बोझ से झुके, जहाज़ पर सवार होने के लिए ऊपर चढ़ आते।

लोगों की इस निरन्तर आवा-जाही से जहाज़ के जीवन में कोई अन्तर न पड़ता। नए यात्री भी उन्हीं चीज़ों के बारे में बातें करते जिनके बारे में दूसरे कर चुके थे: ज़मीन और काम के बारे में, खुदा और स्त्रियों के बारे में। यहाँ तक कि उनके शब्दों के प्रयोग में भी कोई भिन्नता न होती:

"भगवान को अगर हमारी सहन-शक्ति की परीक्षा लेना मंज़ूर है तो यही सही। हम उसमें क्या दखल दे सकते हैं। आखिर होगा वही जो विधाता ने भाग्य में लिख दिया है।"

उन्हें इस तरह की बातें करते देख बड़ी ऊब मालूम होती, मन झुंझलाने लगता। गंदगी से मेरा बैर था। न ही मैं यह सहन कर सकता था कि मेरे साथ कोई बेरहमी और गैर इन्साफ़ी का बरताव करे। मुझे पक्का विश्वास था कि मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया है जो मेरे साथ इस तरह का बरताव किया जाए। न ही सैनिक ने ऐसा कोई काम किया था। निश्चय ही वह यह नहीं चाहता था कि उसका इस तरह तमाशा बनाया जाए।

मक्सिम जैसे गम्भीर और भले आदमी को तो उन्होंने जहाज़ से निकाल दिया जब कि कुत्सित सेर्गेई की नौकरी पर कोई आंच नहीं आई। और ये लोग जो किसी को भी सहज ही इस हद तक सता सकते हैं कि वह पागल हो जाए, जहाजियों के भोंडे से भोंडे आदेशों को इस तरह दुम दबा कर मानते हैं मानो उनकी नानी मर गई हो! जहाजियों की गंदी से गंदी गालियों और डांट-डपट को गले के नीचे उतारते समय उनके चेहरों पर ज़रा भी बल क्यों नहीं दिखाई देता?

"ऐ, बाड़े पर जमघट न लगाओ!" शैतानी-भरी अपनी सुन्दर आँखों को सिकोड़ते हुए जहाज़ियों के मुखिया ने कहा।—"क्या तुम नहीं देखते कि जहाज़ मोड़ ले रहा है? हट जाओ यहाँ से, शैतान के बच्चो!"

शैतान के बच्चे भाग कर डैक के दूसरे बाज़ू पहुँच गए, और वहाँ से फिर उन्हें भेड़ों के रेवड़ की भांति खदेड़ा जाने लगा:

"चूहे, अब यहाँ जमा हुए हैं। निकलो यहाँ से!"

गर्मी की रातों में टीन के सायबान में टिकना दूभर हो जाता। दिन में सायबान खूब तप जाता और रात को भभकारे छोड़ता। यात्री तिलचट्टों की भांति रेंगते हुए बाहर डैक पर निकल आते और जहाँ भी जी करता, पड़े रहते। हर पड़ाव पर जहाज़ी ठोकर और घूंसे मार कर उन्हें जगाते।

"ऐ, रास्ता छोड़ो! अपनी-अपनी जगहों पर जाकर सोओ!"

वे चौंक कर उठ बैठते और उनींदी आँखों से चाहे जिस दिशा में चल देते।

जहाज़ियों और यात्रियों में केवल इतना ही अन्तर था कि दोनों की वेशभूषा भिन्न थी। फिर भी वे उन्हें पुलिसवालों की भाँति डांटते-फटकारते और इधर-से-उधर खदेड़ते।

लोगों के बारे में सब से मुख्य बात यह है कि वे सँकोची, दब्बू और सिर पर जो आ पड़े उसे उदास भाव से सहन करने वाले होते हैं, और वे बहुत ही अजीब तथा भयानक मालूम होते हैं उस समय जब उदास सहनशीलता का उनका बांध एकाएक टूट जाता है और बर्बर खुशी की एक ऐसी बाढ़ में वे डूबने-उतराने लगते हैं जिससे ज़रा भी ध्यान नहीं हट पाता। मुझे ऐसा मालूम होता मानो इन लोगों को यह भी पता नहीं है कि उन्हें कहाँ ले जाया जा रहा है, और इस बात का भी उनके लिए कोई विशेष महत्व नहीं है कि जहाज़ उन्हें कहाँ उतारता है, उन के लिए मानो सभी जगहें एक सी हैं। जहाँ कहीं भी जहाज़ उन्हें उतारेगा, तट पर वे थोड़ी देर ही रहेंगे, जब तक कि वे इस या किसी दूसरे जहाज़ पर सवार नहीं हो जाते और वह उन्हें अन्य किसी जगह नहीं ले जाता। वे सब के सब घर-द्वारविहीन घुमक्कड़ यात्री थे, सभी देश पराए थे, और सभी लोग छंटे हुए बुज़दिल!

एक दिन, आधी रात बीते कुछ ही देर हुई होगी कि किसी मशीन के टूटने का बड़े ज़ोर से धमाका हुआ। ऐसा मालूम होता था जैसे किसी ने तोप दागी हो। देखते-देखते समूचा डैक सफ़ेद भाप से घिर गया जो इंजन-घर से निकल रही थी और घने बादलों के रूप में उमड़ती-घुमड़ती और बल खाती दरारों में प्रवेश कर रही थी। कोई कानफोड़ आवाज़ में ज़ोर से चिल्लाया:

"गाव्रीलो! कुछ लाल सीसा और ऊनी कपड़े का एक टुकड़ा तो लाओ!"

मैं इंजन-घर की बगल में उसी मेज़ पर सोता था जहाँ मैं तश्तरियाँ साफ़ करता था। मशीन के फटने और धमाके की आवाज़ से जब मेरी आँख खुली तब डैक पर सन्नाटा छाया था, मशीन भाप से सनसना रही थी और हथौड़ियां तेज़ी से खटा-खट कर रही थीं। इसके बाद, अगले क्षण ही, डैक यात्रियों की भयानक चीख-पुकार ने आसमान सिर पर उठा लिया।

धुंध की सफ़ेद चादर को बंध कर, जो अब तेज़ी से झीनी पड़ती जा रही थी, बिखरे हुए बालों वाली स्त्रियाँ और मछलियों-ऐसी आँखें वाले पुरुष घबराहट में इधर-उधर भाग रहे थे, एक दूसरे को धक्का देकर गिरा रहे थे। सब के सब अपने पोटले-पोटलियों, थैलों और सूटकेसों से जूझ रहे थे, ठोकरें खा रहे थे और भगवान तथा सन्त निकोलाई से फ़रियाद कर रहे थे। दृश्य भयानक था, और साथ ही दिलचस्प भी। लोगों की हरकतों को देखने और यह जानने के लिए कि वे अब क्या करेंगे, मैं भी उनके साथ-साथ चकरघिन्नी बना हुआ था।

रात में सर्वग्रासी हलचल, घबराहट और शोर-शराबे का यह मेरा पहला अनुभव था, और न जाने क्यों मुझे कुछ ऐसा लगा कि यह सारा तूफ़ान बेकार और ग़लत था। जहाज़ उसी तरह चल रहा था। दाहिने तट पर, बहुत ही नज़दीक, घसियारों के अलाव जल रहे थे। उजली रात थी। पूनो का ऊँचा भरा-पूरा चाँद चाँदी बरसा रहा था।

लेकिन डैक पर एक कुहराम मचा हुआ था। लोगों की घबराहट बढ़ती जा रही थी, वे पागलों की भांति लपक-झपक रहे थे। केबिन के यात्री भी निकल आए। न जाने कौन, छलाँग मार

कर पानी में कूद गया। कुछ औरों ने भी उसका साथ दिया। दो दहकान और एक पुरोहित ने लपक कर लकड़ी के कुन्दे उठाए और उनसे डैक पर पेचों से जड़ी बैंचों में से एक उखाड़ डाली। एक बड़े-से दरबे में चूज़े बन्द थे। उसे भी उठाकर पानी में पटक दिया। डैक के बीचोंबीच, उस जगह जहाँ कप्तान के मंच की सीढ़ियाँ थीं, एक दहकान घुटनों के बल बैठा था। जो भी उसके पास से गुज़रता, वह झुक कर उसे सलाम करता और भेड़िये की आवाज़ में चिल्ला उठता :

"ओ खुदा के सच्चे बन्दो, पापों ने मुझे छलनी कर दिया है!"

एक मोटा थलथल भलामानस जो नंगे बदन, केवल पतलून पहने ही बाहर निकल आया था, छाती कूट-कट कर चिल्ला रहा था :

"डोंगी, शैंतान के बच्चो, डोंगी!"

जहाज़ी भीड़ में झपट कर कभी एक की गरदन नापते, कभी किसी दूसरे के सिर पर घूंसा लगाते और ठोकरें मार कर उन्हें एक ओर पटक देते। स्मूरी भी रात के कपड़ों पर कोट डाले भारी धमक के साथ यहाँ से वहाँ जाता और गरजती हुई आवाज़ में हरेक को डांट पिलाता :

"कुछ तो शर्म करो! अपने दिमाग़ का इतना दिवाला न निकालो! देखते नहीं, जहाज मज़े में चल रहा है, वह डूब नहीं रहा है। दो हाथ पर ही नदी का किनारा है। और वह देखो, उधर दो डोंगियाँ दिखाई दे रही हैं, आदमियों से लदीं। जानते हो, ये कौन है? ये वही बेवकूफ़ हैं जो पानी में कूद पड़े थे। घसियारों ने एक को भी नहीं डूबने दिया, सभी को बाहर निकाल लाए!"

इसके बाद तीसरे दर्जे के यात्रियों की खोपड़ियों पर उसने घूंसों की कुछ ऐसी बौछार शुरू की कि वे समूचे डैक पर बोरों की भांति बिछते नज़र आने लगे।

हंगामा अभी शान्त होने भी न पाया था कि लकदक कपड़े पहने एक स्त्री आई, एक बड़ा-सा चम्मच हिलाते हुए झपट कर वह स्मूरी के पास पहुँची और चिल्ला कर बोली:

"यह क्या बदतमीज़ी है?"

पसीना-चूते एक भले आदमी ने उसे रोका और अपनी मूछों को चूसते हुए झुंझला कर कहा:

"रहने दो, वह ख़रदिमाग़ है...।"

स्मूरी ने अपने कंधे बिचकाए और हैरानी से आँखें मिचमिचाते हुए मेरी ओर घूम गया।

"यह क्या तमाशा है?" उसने कहा—"जान न पहचान, बस एकदम आसमान से टपक पड़ी? आखिर यह चाहती क्या है?"

एक किसान जो नाक से बहते हुए खून को सुड़कने का प्रयत्न कर रहा था, चिल्लाया:

"लोग क्या हैं, पूरे डाकू हैं—डाकू।"

गर्मी बीतते न बीतते इस तरह की घबराहट और हलचल ने दो बार सिर उभारा और दोनों ही बार सचमुच के किसी ख़तरे ने नहीं, बल्कि ख़तरे के डर ने उन्हें बौखला दिया था। तीसरी बार यात्रियों ने दो चोरों को पकड़ा। उनमें से एक तीर्थयात्री के भेष में था। जहाज़ियों के कानों में उन्होंने इसकी भनक तक न पड़ने दी और अलग ले जा कर पूरे एक घंटे तक उनकी ख़ूब मरम्मत की। अन्त में जहाज़ियों को जब इसका पता चला और उनके चंगुल से चोरों को उन्होंने छुड़ाया तो लोग उन पर भी झपटे। चिल्लाकर बोले:

"चोर चोर मौसेरे भाई, तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो!"

"तुम खुद चोर हो, और इसीलिए तुम उन्हें बचाना चाहते हो!"

चोरों को इस हद तक पीटा गया था कि वे बेहोश हो गए थे। और उस समय भी जब अगले पड़ाव पर उन्हें पुलिस के हवाले किया गया, उनमें इतनी सकत नहीं थी कि अपने पाँव पर खड़े हो सकें।

एक के बाद एक इस तरह की अनेक घटनाएँ घटीं, इस हद तक हृदय को कोचने वाली कि दिमाग़ भन्ना जाता और समझ में न आता कि ये लोग सचमुच में भले हैं या बुरे, दब्बू हैं या जान-मार? आखिर क्या चीज़ है वह जो उन्हें इतना बेरहम, कौवे की भांति इतना कुत्सित और इसी के साथ-साथ शर्मनाक हद तक दब्बू तथा दीन-हीन बनाती है?

स्मूरी से जब कभी मैं इस बारे में पूछता तो वह सिगरेट से इतना धुआँ छोड़ता कि उसका सारा मुँह ढक जाता और झुंझला कर जवाब देता:

"आखिर तुम से मतलब? लोग जैसे होते हैं, वैसे होते हैं। कोई चतुर होता है, और कोई एकदम बुद्धू। उनकी चिन्ता छोड़ो, और पुस्तकों में मन लगाओ। उनमें तुम्हें सभी सवालों के जवाब मिल जाएँगे, अगर वे ठीक ढंग की हुईं...।"

धार्मिक पुस्तकें और सन्तों की जीवनियाँ उसके लिए बेकार थीं। उनका ज़िक्र आने पर कहता:

"वे तो पुजारियों के लिए हैं, या फिर पुजारियों के लड़कों के लिए।"

उसे खुश करने के लिए मैंने एक पुस्तक भेंट करने का निश्चय किया। कज़ान बन्दरगाह पहुँचने पर मैंने पाँच कोपेक में एक पुस्तक खरीदी: "प्योत्र महान की किस प्रकार एक सैनिक ने जान बचाई"। लेकिन उस समय वह नशे में चूर था, और किसी को अपने पास नहीं फटकने देता था। सो उससे भेंट करने से पहले

पुस्तक को खुद पढ़ने का मैंने इरादा किया। मुझे वह बेहद पसन्द आई। हर बात थोड़े में, बहुत ही साफ़-सुथरे, सीधे-सादे और इतने दिलचस्प ढंग से कही गई थी कि मैं मुग्ध हो गया। मुझे पक्का विश्वास था कि वह भी उसे खूब पसन्द करेगा।

लेकिन हुआ यह कि उसने, चुपचाप, पुस्तक को तोड़-मरोड़ कर उसकी गेंद सी बनाई और उसे पानी में फेंक दिया।

"यह भी कोई पुस्तकों में पुस्तक है, बेवकूफ़!" उसने झल्लाकर कहा।—"शिकारी कुत्ते को साधने और ट्रेन करने में एक तो दिन-रात करो, इसके बाद जब उसे शिकार पर ले कर जाओ तो वह केवल उड़ती चिड़ियों को ताकता रहे। तुम भी ठीक वैसे ही हो!"

फ़र्श पर उसने अपना पाँव पटका और मुझपर चिल्लाया:

"किस केंडे की पुस्तक है यह? मैं उसे पूरी पढ़ गया—शुरू से आख़िर तक। एकदम बकवास ही बकवास! तुम्हीं बताओ, उसमें जो कुछ लिखा है, क्या वह सच है?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन मैं जानता हूँ। अगर वे उस पहले आदमी का सिर काट देते तो वह सीढ़ी से नीचे लुढ़क आता और दूसरे लोग पूलों के अम्बार पर कभी न चढ़ पाते। फिर, सैनिक इतने बेवकूफ़ नहीं होते! वे पूलों के अम्बार में आग लगा देते जिससे सारा झंझट ही मिट जाता! सुन रहे हो न?"

"हाँ।"

"तभी तो कहता हूँ कि सब कुछ बकवास है। और तुम्हारा वह प्योत्र ज़ार—मैं जानता हूँ कि उसके साथ कभी उस तरह की कोई घटना नहीं घटी। बस, अब दफ़ा हो जाओ यहाँ से!"

मुझे लगा कि स्मूरी जो कुछ कह रहा है, वह ग़लत नहीं है। लेकिन पुस्तक के साथ मेरा मन फिर भी उलझा रहा। मैंने

उसे दुबारा खरीदा और एक बार फिर पढ़ा, और इस बार यह जानकर खुद मुझे भी अचरज हुआ कि पुस्तक सचमुच में दो कौड़ी की थी। मुझे अपने ऊपर बड़ी शर्म आई, और स्मूरी को मैं और भी ज़्यादा आदर तथा भरोसे की नज़र से देखने लगा और वह खुद, कारण चाहे जो भी हो, बहुधा मुझसे झुंझलाहट के साथ कहता:

"अह, तुम भी कहाँ आ फंसे? तुम्हें तो लिखना-पढ़ना चाहिए"

मैं भी कुछ ऐसा ही अनुभव करता कि यह जगह मेरे लिए नहीं है। सेर्गेई मेरे साथ बेहद बुरा बरताव करता। मेरी मेज़ पर से वह चाय की चीज़ें उड़ा लेता और मैनेजर की आँख बचा कर उन्हें यात्रियों के हाथ बेच देता। वह कई बार ऐसा कर चुका था। मैं जानता था कि इस तरह चीज़ें उड़ाना चोरी कहलाता है। स्मूरी भी एक से अधिक बार मुझे चेता चुका था:

"ज़रा चौकस रहना। ऐसा न हो कि वेटर तुम्हारी मेज़ से छुरी-काँटों का सफ़ाया कर दे!"

इसी तरह की और भी कितनी ही बातें थीं जो काली छाया की भांति मेरे सिर पर मंडरा रही थीं और जिनका नतीजा मेरे लिए बुरा हो सकता था। अक्सर मन में होता कि अगले पड़ाव पर जहाज़ छोड़ कर जंगलों की राह लूँगा। लेकिन स्मूरी की वजह से ऐसा न कर पाता। उसकी घनिष्टता काफ़ी बढ़ गई थी और बराबर बढ़ती जा रही थी। इसके अलावा खुद जहाज़ और उसकी निरन्तर गति का भी कुछ कम आकर्षण नहीं था। घाटों या पड़ावों पर जब भी जहाज रुकता, मुझे बड़ा बुरा मालूम होता और किसी ऐसी घटना या चमत्कार की मैं प्रतीक्षा करता जिसकी बदौलत, पलक झपकते, कामा नदी से बेलाया और उससे भी खूब आगे व्यातका या वोल्गा नदी की मैं सैर करूँ, और नये तटों, नये नगरों तथा नये लोगों को देखने का मुझे अवसर मिले।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरे जहाज़ी जीवन का एकाएक और शर्मनाक ढंग से अन्त हो गया। एक सांझ, उस समय जब कि हम कज़ान से निजनी की ओर यात्रा कर रहे थे, मैनेजर ने मुझे बुलाया। जब मैं उसके सामने हाज़िर हुआ तो उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया और कालीन-चढ़े एक स्टूल पर उदास मुद्रा में बैठे स्मूरी से उसने कहा:

"लो, यह भी अब सामने मौजूद है।"

"क्या तुम सेर्गेई को चम्मच और दूसरी चीज़ें देते हो?" उसने रूखी आवाज़ में पूछा।

"मेरी आँख बचा कर इन चीज़ों को वह खुद अपने-आप उठा लेता है।"

"तुम उसे चीज़ें उठाते नहीं देखते, लेकिन यह जानते हो कि वह ऐसा करता है?" मैनेजर ने निश्चल भाव से कहा।

स्मूरी का मुट्ठी-बंधा हाथ धम से घुटने पर गिरा और फिर वह उसे सहलाने लगा।

"ज़रा ठहरो। ऐसी कोई जल्दी नहीं है," उसने कहा और रुक कर किसी सोच में पड़ गया।

मैंने मैनेजर की ओर देखा और उसने मेरी ओर। मुझे ऐसा लगा मानो उसके चश्मे के पीछे आँखें हैं ही नहीं।

वह नि:शब्द जीवन बिताता था, चलते समय ज़रा भी आवाज़ नहीं करता था, और धीमे स्वरों में बोलता था। कभी-कभी उसकी रंग-उड़ी दाढ़ी और कोटरनुमा आँखें किसी कोने में झलकाई देतीं और फिर तुरंत विलीन हो जातीं। सोने से पहले एक लम्बे अर्से तक घुटनों के बल वह देव-प्रतिमा के सामने बैठा रहता जिसके सामने, दिन हो चाहे रात, चौबीसों घंटे, एक दीया जलता था। दरवाज़े की पहलू-कटी खिड़की से मैं घंटों उसे देखता, लेकिन

उसके होंठ प्रार्थना में कभी फड़कते न दिखाई देते — प्रार्थना का एक भी शब्द वह अपने मुँह से न निकालता। घुटनों के बल बैठा हुआ वह केवल देव-प्रतिमा और दीये की ओर एकटक देखता, उसाँस लेता और अपनी दाढ़ी सहलाता।

थोड़ी देर रुक कर स्मूरी ने फिर पूछा:

"क्या सेर्गेई ने तुम्हें कभी कोई धन दिया?"

"नहीं।"

"कभी भी नहीं?"

"नहीं, कभी भी नहीं।"

"यह झूठ नहीं बोलेगा," स्मूरी ने मैनेजर से कहा।

"इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता," मैनेजर ने धीमे स्वर में जवाब दिया, — "मैं सब समझता हूँ।"

"चलो अब!" मेरी मेज़ के पास आते और गरदन पर हलके से चपत जड़ते हुए स्मूरी ने चिल्लाकर कहा:

"मैं नहीं जानता था कि तुम इतने बड़े चुगद हो! और चुगद तो मैं भी हूँ जो तुम्हारे बारे में चौकस नहीं रहा।"

निजनी में मैनेजर ने मेरा हिसाब चुकता कर दिया। मुझे करीब आठ रूबल मिले। यह पहला मौका था जब इतनी बड़ी रकम एक मुश्त मेरे हाथ में आई थी।

विदा के समय स्मूरी का गला भर गया। उदास स्वर में बोला:

"आगे अपनी आँखें खुली रखना, समझे? यह नहीं कि मुँह बाये मक्खियाँ पकड़ रहे हैं...।"

सीसे जड़ा तम्बाकू रखने का एक चमकदार बटुवा उसने मेरे हाथ में थमा दिया।

"यह लो, इसे अपने पास रखना। कितनी बढ़िया चीज़ है।

मेरी एक मुँह-बोली बेटी थी। उसी ने यह मेरे लिए बनाया था...। अच्छा तो अब जाओ। पुस्तकें पढ़ते रहना, उनसे बड़ा साथी तुम्हें और कोई नहीं मिलेगा!"

उसने मुझे बाँहों के नीचे से पकड़ा, हवा में अधर उठा कर मेरा मुँह चूमा और फिर संभाल कर मज़बूती से मुझे घाट पर खड़ा कर दिया। मेरा जी भारी हो गया। मुझे अपने पर भी दुःख हुआ, और उस पर भी। और जब वह, एकदम एकाएकी, अपने भारी-भरकम, हिंडोले-से झूलते शरीर को लिए घाट-मज़दूरों को धकियाता हुआ जहाज़ की ओर लौट चला तो मुझसे न रहा गया, और मेरी आँखों में बरबस आँसू उमड़ आए।

उस जैसे न जाने कितने लोग,—इतने ही भले, उतने ही अकेले और जीवन से उतने ही छिटके हुए,—आगे भी मेरे जीवन में आए, और अपनी छाप छोड़ कर विलीन हो गए...।

७

नानी और नाना अब फिर नगर में आ बसे थे। इस बार जब मैं उनके पास पहुँचा तो मेरा मन गुस्से से उमड़-घुमड़ रहा था, और हर किसी से लड़ने को जी चाहता था। ऐसा मालूम होता था मानो मेरा हृदय भारी बोझ से दबा जा रहा हो। आख़िर क्यों और किस बित्ते पर उन्होंने मुझे चोर ठहराया?

नानी ने मुझे बड़े प्यार से अपनाया, और तुरत समोवर गरम करने चली गई। नाना अपनी आदत के अनुसार चिंगारियाँ छोड़ने से न चूके:

"क्यों, कितना सोना बटोर लाए?"

खिड़की के पास बैठते हुए मैंने कहा:

"चाहे जो भी मैंने बटोरा हो, तुम्हें तो मिलने से रहा। वह मेरी मिल्कियत है।"

गर्व के साथ मैंने जेब में हाथ डाला, और सिगरेट का पैकेट निकाल कर धुआँ उड़ाने लगा।

"ओहो," मेरी प्रत्येक हरकत का मुआयना करते हुए नाना ने कहा,—"दूध के दाँत तो टूटे नहीं, और दुनिया-भर के हुनर सीख लिए,—क्यों, कुछ तो इन्तज़ार किया होता?"

"मेरे पास एक और चीज़ है—तम्बाकू का बटुवा!" मैंने शेखी बघारी।

"तम्बाकू का बटुवा!" नाना चीख उठे।—"आख़िर तुम्हारा इरादा क्या है,—क्या तुम मुझे चिढ़ाने पर तुले हो?"

वह मेरी ओर झपटा। उसके पतले, मजबूत हाथ फैले थे और उसकी हरी आँखें चिंगारियाँ छोड़ रही थीं। मैंने उछल कर ज़ोरों से उसके पेट में सिर से टक्कर मारी। बूढ़ा वहीं फ़र्श पर ढेर हो गया और सन्नाटे से पूर्ण उन क्षणों में, अंधेरी खोह की भांति हक्का-बक्का-सा अपना मुँह बाये, आँखें मिचमिचा कर मेरी ओर देखता रह गया। आख़िर उसके मुँह से आवाज़ निकली। भरभराए स्वर में बोला:

"तुम...तुमने मुझपर, अपने नाना पर, हाथ उठाया... मुझे...अपनी सगी माँ के बाप को?"

"मेरी चमड़ी उधेड़ने में तुम्हीं कौन क़सर छोड़ते थे," मैं बुदबुदाया, लेकिन यह सोचकर तुरत मेरा मुँह बंद हो गया कि सचमुच मुझसे एक घिनौनी हरकत हो गई है।

नाना कपड़े झाड़ कर फुर्ती से उठ खड़े हुए और मेरी बग़ल में आकर बैठ गए। मेरे हाथ से उन्होंने सिगरेट छीन ली और उसे खिड़की से बाहर फेंक भय से काँपती आवाज़ में बोले:

"तू भी निरा काठ का उल्लू है! इस तरह की हरकत के लिए ख़ुदा तुझे ताज़िन्दगी माफ़ नहीं करेगा!"

फिर वह नानी की ओर मुड़े:

"देखो न मालकिन, और किसीने भी नहीं इसने मुझे मारा हाँ, इसीने मुझे मारा! यक़ीन न हो तो ख़ुद पूछ देखो!"

पूछना-ताछना तो दूर, नानी सीधी मेरे पास आई और बाल पकड़ कर मुझे झंझोड़ने लगी।

"इसकी यही सज़ा है," नानी ने कहा और बालों को झटका-सा देते हुए दोहराया: "यही सज़ा है...।"

नानी की इस सज़ा ने, और ख़ास तौर से नाना की घृणापूर्ण हँसी ने, मेरे शरीर को तो चोट नहीं पहुँचाई, लेकिन मेरे हृदय को बुरी तरह घायल कर दिया। वह कुर्सी पर बैठा था और घुटनों पर हाथ मारते हुए उचक-उचक कर मेंढ़क की भांति टर्रा रहा था:

"ठीक, बहुत ठीक...।"

नानी के चंगुल से अपने-आप को छुड़ा कर मैं दहलीज़ में भागा गया, और वहाँ एक कोने में मुँह छिपाकर पड़ा रहा। दुःख और निराशा ने मुझे दबोच लिया था, और कानों में समोवर में पानी के खलबलाने की आवाज़ आ रही थी।

सहसा नानी आई और मेरे ऊपर झुकते हुए इतने धीमे स्वर में फुसफुसा कर बोली कि उसके शब्द बड़ी मुश्किल से सुनाई देते थे:

"बुरा न मानना, मैं तुम्हें सचमुच की सज़ा थोड़े ही दे रही थी। तुम्हीं बताओ, क्या चोट पहुँची? वह तो केवल एक दिखावा भर था। इसके सिवा मैं और करती भी क्या? आख़िर तुम्हारा नाना बड़ा-बूढ़ा आदमी है, और उसका तुम्हें मान रखना चाहिए। उसने क्या कम मार खाई है? उसके शरीर की सारी हड्डियाँ टूटी हुई हैं, और उसका हृदय दुःखों से लबालब भरा है। उसे और

चोट पहुँचाना क्या अच्छी बात है? तुम अब नन्हे-मुन्हे तो हो नहीं, खुद सारी बातें समझ सकते हो। और तुम्हें समझना चाहिए, आल्योशा, कि बुढ़ापे में आदमी बच्चों ऐसी हरकतें करने लगता है। तुम्हारे नाना का भी वही हाल है। बस, इतनी सी बात है, और कुछ नहीं...।"

नानी के शब्दों ने मरहम का काम किया। ऐसा मालूम हुआ मानो सुहानी बयार का झोंका हृदय को सहलाता हुआ निकल गया हो। नानी के शब्दों की प्यार भरी सरसराहट से मेरा हृदय हल्का हो गया। सारी दुखन जाती रही, लाज का मैंने अनुभव किया, और नानी से मैं कसकर लिपट गया। नानी ने मुझे, और मैंने नानी को चूम लिया।

"जाओ, नाना के पास जाओ। डरो नहीं, सब ठीक हो जाएगा। केवल इतना करना कि नाना के सामने एकाएक सिगरेट निकाल कर अब फिर न पीने लगना। अभी वह तुम्हें सिगरेट पीता देखने के आदी नहीं है। इसके लिए कुछ तो समय चाहिए न?"

जब मैंने कमरे में पाँव रखा और नाना पर नज़र डाली तो मेरे लिए हँसी रोकना मुश्किल हो गया। इस समय वह, सचमुच, बच्चों की भांति प्रसन्न थे। चेहरा खिला हुआ था, पाँव पटक रहे थे और ललौहें बालोंवाले अपने पजों से मेज़ पर धमाधम तबला सा बजा रहे थे।

"कहो मरखने बकरे की औलाद, तुम फिर आ गए, — टक्कर मारने का शौक क्या अभी भी पूरा नहीं हुआ? डाकू कहीं का! आख़िर है तो अपने बाप का ही बेटा! मुँह उठाया और सीधे घर में चले आए, न क्रास का चिन्ह बनाया, न किसी से दुआ-सलाम की, और एक टुकड़ची सिगरेट मुँह में दबा कर धुआँ उड़ाना शुरू कर दिया! पूह, टकियल नेपोलियन!"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उसके शब्द चुक गए और वह चुप हो गया। उसकी यह चुप्पी और भी बोझिल मालूम हुई। लेकिन चाय के समय उसने फिर मुझे लैक्चर पिलाना शुरू किया:

"बिना लगाम के घोड़ा और बिना ख़ुदा के डर का आदमी, दोनों एक से हैं। ख़ुदा के सिवा और कौन हमारा मीत हो सकता है? इन्सान का सब से बड़ा दुश्मन है इन्सान!"

नाना के केवल इन शब्दों की सचाई ने तो मेरे हृदय को छुआ कि इन्सान ही इन्सान का दुश्मन है। इसके अलावा नाना ने जो कुछ कहा, उसका मेरे हृदय पर कोई असर नहीं हुआ।

"देखो, अभी तुम अपनी मौसी मात्रियोना के यहाँ लौट जाओ, और वहीं काम करो। इसके बाद चाहो तो वसन्त में फिर किसी जहाज में नौकरी कर लेना। लेकिन जाड़ों-भर तुम उन्हीं के यहाँ रहना, और उन्हें यह न बताना कि वसन्त में तुम गोल हो जाओगे!"

"लेकिन यह तो धोखा देना होगा," नानी ने कहा जो अभी कुछ देर पहले सज़ा के नाम पर मुझे झूठमूठ हिला झंझोड़ कर खुद नाना को धोखा दे चुकी थी।

"यह सारा जीवन ही धोखाधड़ी है," नाना ने और भी ज़ोरों से कहा,—"बिना धोखा दिए कोई जीवित नहीं रह सकता,—नहीं, कोई भी नहीं!"

उसी सांझ जब नाना धर्मग्रंथ का पाठ करने बैठे तो मैं और नानी फाटक से बाहर निकल आए और खेतों की ओर चल दिए। छोटा-सा दो खिड़कियों वाला यह घर जिसमें नाना अब रहते थे, नगर के एकदम छोर पर, कनातनाया स्ट्रीट के अन्त में था, जहाँ किसी ज़माने में उनका निजी मकान था।

"देखो न, घूम-फिर कर हम भी अब कहाँ बसे हैं!" नानी

ने हँसते हुए कहा।—"तुम्हारे नाना को कहीं शान्ति नहीं मिलती, सो वह बराबर घर बदलता रहता है। मुझे तो यह घर अच्छा लगता है, लेकिन नाना को यहाँ भी चैन नहीं है!"

घर के सामने दो-ढाई मील खाइयों से कटा-फटा और जहाँ-तहाँ खूंटों से भरा मैदान फैला था। उसके अन्त में कज़ान जाने वाली सड़क थी जिसके किनारे बर्च के वृक्ष खड़े थे। खाइयों की मेड़ों पर झाड़ियाँ उगी थीं जिनकी नंगी-बूची टहनियाँ, सांझ के सूरज की ठंडी पड़ती हुई लाली में खून का दाग लगे हण्टरों की भांति मालूम होती थीं। हल्की हवा के झोंके झाड़ियों को सरसरा रहे थे। सब से पास वाली खाई के उस पर युवक-युवतियों के जोड़े टहल रहे थे और उनकी छाया-आकृतियाँ भी, झाड़ियों की भांति, हवा में सरसरा रही थीं। दाहिने छोर पर कट्टर पुरानपंथियों के क़ब्रिस्तान की लाल दीवार थी। यह क़ब्रिस्तान 'बुग्रोवस्की मठ' कहलाता था। बाईं ओर खाई के ऊपर जहाँ वृक्षों का एक काला-सा झुरमुट दिखाई देता था, यहूदियों का क़ब्रिस्तान था। हर चीज़ पर एक नहूसत सी छाई थी, हर चीज़ मानो क्षत-विक्षत धरती में चुपचाप समा जाना चाहती थी। शहर के छोर पर खड़े छोटे-छोटे घरों की खिड़कियाँ मानो सहमी हुई नज़रों से धूल अटी सड़क की ओर ताकती रहतीं जिसपर भूख की मारी दुबली-पतली और मरियल सी मुर्ग़ियाँ गश्त लगाती थीं। 'डेविची मठ' के पास से रंभाती हुई गायों का एक रेवड़ गुज़र रहा था, और पास की छावनी से फ़ौजी संगीत की आवाज़ आ रही थी—बिगुल और हथसिंगे बज रहे थे।

कोई शराबी, पूरी बेरहमी से हरमोनियम बजाते हुए, लड़खड़ाते डगों से टहल रहा था और लड़खड़ाते स्वरों में ही बुदबुदा रहा था:

"तुझे खोज ही लूँगा कहीं न कहीं..."

नानी से नहीं रहा गया। सूरज की लाल रोशनी में आँखें मिचमिचाते हुए बोली:

"किसे खोज लेगा, बेवकूफ़! तुझे कुछ अपनी भी ख़बर है? यहीं कहीं लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा, दीन-दुनियाँ का कुछ होश नहीं रहेगा, कोई आएगा और ऐसा सफाया करेगा कि तन पर कुछ बाक़ी नहीं बचेगा, तेरा यह हरमोनियम तक गायब हो जाएगा जिसे तू अपने हृदय से सटाए है..."

मैं चारों ओर देखता जाता था और नानी को अपने जहाज़ी जीवन के बारे में बताता भी जाता था। उस जीवन में जो कुछ मैं देख चुका था उसके बाद मुझे अपना मौजूदा वातावरण बहुत ही बोझिल मालूम देता और मैं उदास हो जाता। नानी मेरी बातों को गहरे चाव और ध्यान से सुन रही थी, वैसे ही जैसे कि मैं नानी की बातें सुनता था और जब मैंने स्मूरी का ज़िक्र किया तो नानी ने अभिभूत होकर क्रास का चिन्ह बनाया और बोलीं:

"बिल्कुल ठीक, आल्योशा! भले आदमी ऐसे ही होते हैं। माँ मरियम उसका भला करे। और सुनो, उसे कभी न भूलना! अपने दिमाग़ के कोठे में अच्छी चीज़ों को कस कर बन्द रखना, और बुरी चीजों को,—बस, आँखें मूंद कर ठुकरा देना!"

जहाज़ से निकाले जाने की बात मेरे गले में अटक कर रह गई, और उसे नानी के सामने खोल कर रखना मुझे बेहद कठिन मालूम हुआ। लेकिन मैंने दाँत भींच कर अपना जी कड़ा किया और जैसे भी बना, नानी को सब बता दिया। नानी के हृदय पर उसका ज़रा भी असर नहीं हुआ। सारी घटना सुनने के बाद उपेक्षा से इतना ही कहा:

"तुम अभी छोटे हो। जीवन के उतार-चढ़ावों से तुम्हारा वास्ता नहीं पड़ा—अभी तुमने जीवन नहीं देखा।"

"सब एक-दूसरे से यही कहते हैं कि तुमने जीवन नहीं देखा," मैंने कहा,—"दहकानों को मैंने ऐसा कहते सुना है, जहाज़ी लोग भी ऐसा ही कहते थे, और मौसी मात्रियोना भी अपने बेटे के सामने यही राग अलापती थी। आख़िर जीवन में ऐसी देखने-समझने की चीज़ है भी क्या?"

नानी ने अपने होंठ भींच लिए और सिर हिलाते हुए जवाब दिया:

"यह तो मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानती तो फिर इस बात को बार-बार दोहराती क्यों हो?"

"दोहराऊँ क्यों नहीं?" नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया।—"लेकिन तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम अभी छोटे हो, इतनी कम-उम्र में भला जीवन के रंग-ढंग तुम कैसे जान सकते हो? सच तो यह है कि जीवन को जानने का दावा कोई भी नहीं कर सकता, केवल चोरों को छोड़कर। अपने नाना ही को देखो—पढ़ा-लिखा और काफ़ी चतुर है, लेकिन सब एकदम बेकार, कोई चीज़ अब साथ नहीं देती!"

"और तुम—तुम्हारा अपना जीवन कैसा रहा?"

"मेरा? अच्छा ही जीवन बिताया मैंने। और बुरा भी। कभी अच्छा, और कभी बुरा। ऐसे ही अदला-बदली चलती रही।"

लोग हमारे आस-पास घूम-फिर रहे थे, उनकी लम्बी परछाइयाँ उनके पीछे-पीछे घिसट रही थीं और पाँवों से उड़ी धूल धुएँ की भांति उठ कर उन परछाइयों पर छा जाती थी। सांझ की उदासी और भी घनी हो चली थी, और खिड़की में से नाना के भुनभुनाने की आवाज़ आ रही थी:

"ओ भगवान, अपने गुस्से का सारा पहाड़ अकेले मेरे ही सीने पर न तोड़! मुझे इतनी ही सज़ा दे जितनी कि मैं बरदाश्त कर सकूँ।"

नानी मुसकराई।

"भगवान भी इसका रोना-झींकना सुनते-सुनते तंग आ गया होगा," नानी ने कहा।—"हर सांझ यह इसी तरह भुनभुनाता है। आख़िर किस लिए? बूढ़ा हो गया है, जीवन में कोई भी साध बाक़ी नहीं रही, फिर भी मिमियाना और रोना-झींकना नहीं छूटता! हर सांझ इसकी आवाज़ सुनकर भगवान के पेट में भी हँसते-हँसते बल पड़ जाते होंगे कि यह लो, वसीली काशीरिन फिर भुनभुना रहा है...। लेकिन चलो अब, सोने का वक्त हो आया।"

मैंने निश्चय किया कि अब गानेवाली चिड़ियों को पकड़ने का धंधा शुरू किया जाए। मुझे लगा कि इससे गुज़र लायक अच्छे पैसे मिल जाएंगे। मैं चिड़ियों को पकड़ कर लाऊँगा और नानी उन्हें बाज़ार में बेच आया करेंगी। सो मैंने एक जाल, एक फन्दा, लासे का कुछ सामान खरीद लिया और कुछ पिंजरे बना लिए। सवेरा होते ही मैं तो किसी खाई की झाड़ियों में छिप कर बैठ जाता और नानी, एक बोरा और टोकरी लिए, आस-पास के जंगलों में जाकर, कुकुरमुत्तों, बेरों और जंगली बादामों की खोज करतीं।

सितम्बर महीने का थका हुआ-सा सूरज अभी-अभी निकला था। उसकी पीली किरनें कभी तो बादलों में ही खो जातीं और कभी रुपहले पंख की भांति फैलकर उस जगह भी पहुँच जातीं जहाँ मैं छिपा हुआ था। खाई की तलहटी में अभी भी परछाइयाँ तैर रही थीं और एक सफ़ेद कुहरा-सा उठ रहा था। खाई का एक

मटियाला किनारा एकदम गहरा, नंगा-बूचा और अंधेरे में डूबा था, दूसरा किनारा ढलवाँ होता चला गया था। इस किनारे पर घास और घनी झाड़ियाँ उगी थीं जिनकी लाल, पीली और कत्थई पत्तियाँ खूब चमचमा रही थीं और हवा के झोंकों के साथ उड़-उड़ कर समूची खाई में छितर गई थीं।

तलहटी की कंटीली झाड़ियों में गोल्डफ़िंच पक्षी चहचहा रहे थे और झिनझिनी पत्तियों के बीच उनके छोटे-छोटे बाँके सिरों पर गुलाबी मुकुट झिलमिला रहे थे। मेरे अगल-बगल और आगे-पीछे कुटूहली टिटमाइस बड़ी व्यग्रता से निरन्तर टिटिया रहे थे, अपने सफ़ेद गालों को फुलाए फुंकार छोड़ रहे थे और मेले-ठेले के दिन कुनाविनो की युवतियों की भांति दुनिया-भर का शोर मचा रहे थे। चपल-चतुर और रसीले—हर चीज़ की ओर वे लपकते, उसे छूने-कुरेदने के लिए ललक उठते, और इस प्रकार एक के बाद एक फंदे में फंसते जाते। इसके बाद वे बुरी तरह छटपटाते और फंदे से निकल भागने का इस हद तक प्रयत्न करते कि उन्हें देखकर हृदय मसोस उठता। जी कड़ा कर के और हृदय की कोमल भावनाओं को कुचल कर मैं उन्हें पकड़ता और पास के पिंजरे में बन्द कर देता, फिर उनके ऊपर एक बोरी डाल देता जिससे वे शान्त हो जाएँ।

नागफनी की एक झाड़ी को सूरज की किरनों ने रंग दिया था। सिसकिन पक्षियों का एक झुंड उसपर आकर बैठा। सूरज की सुहानी किरनों में पक्षियों की खुशी का वारपार नहीं रहता और स्कूली बच्चों के दल की भांति फुदक-फुदक कर वे और भी अधिक प्रसन्नता से चहचहाते तथा चहकते हैं। लालची, चौकस और अपनी गांठ का पक्का श्राइक पक्षी—जिसके अन्य साथी पहले ही दक्षिणी प्रदेशों की ओर प्रयाण कर चुके हैं—रसीले बन-गुलाब की झूमती हुई टहनी पर बैठा हुआ चोंच से अपने परों को संवार रहा है और मटर के दाने ऐसी काली अपनी आँखों से शिकार की खोज में

इधर-उधर देख रहा है। सहसा लार्क पक्षी की भांति उड़कर वह एक बम्बलबी पर झपटता है और उसे अपनी चोंच में लेता है। इसके बाद उसे एक काँटे में बींध कर और चोर की भांति चौकन्नी अपनी गर्दन उचका कर, इधर-उधर मुड़-तुड़ कर, अगल-बगल नज़र डालता और अपने शिकार की निगरानी करता है। एक पाइन-फिंच पक्षी — सन्न से उड़ता हुआ मेरे पास से निकल जाता है और मेरा मन उसे पकड़ने के लिए ललक उठता है! लाल रंग का बुलफिंच पक्षी, सेनापति की भांति गर्वीला, अपने झुंड से अलग हो कर सुस्ताने के लिए एक ऐल्डर झाड़ी पर आ बैठता है और अपनी काली चोंच को ऊपर-नीचे करते हुए इस तरह चिचियाता है मानो खीजकर तान तोड़ रहा हो!

जैसे-जैसे सूरज आकाश में ऊँचा उठता, वैसे-वैसे पक्षियों की संख्या भी बढ़ती जाती, वे और भी खुशी से चहचहाने लगते। समूची घाटी उनके संगीत से भर जाती और हवा के झोंकों में झाड़ियों की निरन्तर सरसराहट इस संगीत का साथ देती। पक्षियों की आवाज़ों का उभार इस मृदु, मधुर और उदास सरसराहट को दबा न पाता। मुझे उसमें ग्रीष्म विदा-गीत की ध्वनि का आभास मिलता, हृदय को मथ देनेवाले उन शब्दों की फुसफुसाहट सुनाई देती जो मेरी कल्पना में साकार होकर गीत का रूप धारण कर लेते और बीते हुए जीवन के दृश्य, बरबस, मेरे स्मृति-पट पर मूर्त हो उठते।

सहसा कहीं ऊँचे से नानी की आवाज़ सुनाई दी :

"तुम कहाँ हो?"

वह घाटी के कगारे पर बैठी थी। पास ही ज़मीन पर उसका रूमाल बिछा था और रोटी, खीरे, शलजम और कुछ सेब रूमाल पर सजे थे। इन सब बरकतों के बीच कट-पहलू काँच का एक बहुत ही सुन्दर सागर रखा था जिसका बिल्लौरी काग नेपोलियन की

आकृति का था। सागर में वोडका छलछला रही थी जिसमें, उसे और भी सुगंधित बनाने के लिए, सन्तजौन नामक पौधे की जड़ मिली हुई थी।

नानी ने गदगद हृदय से सन्तोष की साँस छोड़ी:

"कितना अच्छा — कितना सुनहला है यह सब, मेरे भगवान!"

"मैंने एक गीत बनाया है!"

"क्या सचमुच? ज़रा सुनाओ तो।"

और मैंने कुछ इस तरह की पंक्तियाँ सुनानी शुरू की:

गरमी का सूरज लेता बिदा,
सुहानी छटा हो गई हवा,
जाड़े का मौसम फिर आ गया,
फूलों पर पाला छा गया!

मेरी इन पंक्तियों को अनसुना करते हुए नानी बोलीं:

"ऐसा एक गीत तो मुझे पहले से ही याद है, और तुम्हारे इस गीत से अच्छा है।"

और नानी ने गुनगुनाते हुए गीत सुनाया:

हृदय की कली खिल न पाई अभी कि किरनों का रहा न कुछ बाक़ी निशां, गर्मी का सूरज दे गया दग़ा और पहाड़ों की ओटक में वह छिप गया। पाले ने लिया फिर अपना कब्ज़ा जमा, कलियों ने खिलना बन्द कर दिया। मेरे हिए का दिया बुझ गया!

याद आता मुझे, तुम्हारा वह रूप नीले आकाश में ज्यों सूरज की धूप बागों में, गलियों में वह घूमना, सूरज की किरनों का मुँह चूमना। एक सपना-सा था जो उड़ गया,

भय पाले का दिल पै अब छा गया। मेरे हिए का दिया बुझ गया!

कहती उनसे जो दु:ख की मारी हुईं, अपने साजन से हैं जो बिछुड़ी हुईं। चलें, जब बर्फीली आँधियाँ बरफ़ के लगें जब अम्बार यहाँ तो बनाना समाधि तुम, प्रेम से लेकर मेरा हृदय जो जला, शोक से उड़ा, कर उसे एक हिम का कफ़न, हिम की समाधि में ही कर देना दफ़न!

गीत रचने की अपनी क्षमता पर मुझे जो गर्व था, उसे ज़रा भी चोट नहीं पहुँची। नानी का यह गीत मुझे बेहद अच्छा लगा और गीत की 'कुंवारी लड़की' के लिए मेरा हृदय भी वेदना से भर गया।

"देखो, कितनी कसक है इस गीत में," नानी ने कहा। —"किसी कुंवारी लड़की के हृदय की वेदना इस गीत में फूट निकली है। ग्रीष्म में उसका साजन उसके साथ था। अपने प्रेमी के साथ वह घूमती थी। उसे क्या पता था कि जाड़ा आते ही वह विदा हो जाएगा, उसे अकेला छोड़ कर किसी दूसरे घोंसले में मुँह छिपाने के लिए चल देगा। उसके हृदय की वेदना आँसू बनकर बह निकली और इन आँसुओं से इस गीत का जन्म हुआ। जिसके हृदय में कभी टीस नहीं उठी, उसके गीतों में तड़प भी कहाँ से आएगी? देखो न, कितना अच्छा गीत बनाया है उस लड़की ने!"

पक्षियों के बेचने पर पहली बार जब चालीस कोपेक हाथ में आए तो नानी चकित रह गईं, और उन्हें भारी अचरज हुआ।

"कमाल हो गया। मैं तो सोचती थी कि इससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। सोचा कि छोटे लड़के की ज़िद्द है, सो उसे भी अपने

मन की कर लेने दो। लेकिन देखो न, यह तो भारी मुनाफ़े की चीज़ निकली!"

"मुनाफ़ा तो और भी ज़्यादा होता। तुमने सस्ते में ही बेच दिये।"

"क्या सचमुच?"

जिस दिन बाज़ार लगता, वह एक रूबल या इससे भी अधिक कमा कर लाती और अपने इस अचरज को पचा न पाती कि छोटी-मोटी चीज़ों से भी कितना अधिक धन पैदा किया जा सकता है।

"यह सब क्या तमाशा है?" नानी कहतीं—"दिन-भर कपड़े धोने या किसी दूसरे के घर जाकर बरतन-भांडे साफ़ करने के बाद तो मुश्किल से पच्चीस कोपेक हाथ लगते हैं। और तुम खेल ही खेल में इतना पैदा कर लेते हो। नहीं, इसमें कोई तुक नहीं है। यह ग़लत है। और पक्षियों को पकड़-पकड़ कर पिंजरे में बन्द करना भी ग़लत है। यह अच्छा धंधा नहीं है, आल्योशा! तुम इसे छोड़ दो!"

लेकिन पक्षियों को पकड़ने का मुझे भारी चस्का लगा। इसमें मुझे आनन्द आता और पक्षियों को छोड़ अन्य किसी को ज़रा-सा भी परेशान किए बिना अपनी स्वच्छन्दता को भी मैं बनाए रखता। अब मैं बढ़िया साज-सामान से लैस था। पक्षी पकड़ने में दक्ष लोगों से मिल-जुल कर मैंने बहुत कुछ सीख लिया था। अब मैंने अकेले ही बीस-पच्चीस मील के पेटे में धावे मारने शुरू किए: वोलगा के तट पर, कस्तोवस्की वन की मैं खबर लेता जहाँ मैं देवदार के ऊँचे वृक्षों के बीच क्रासबिलों या एक ख़ास जाति के लम्बी-दुम और सफ़ेद रंग वाले बेहद सुन्दर और दुर्लभ टिटमाउसों को पकड़ सकता था जिन की पक्षियों के प्रेमी भारी क़द्र करते थे।

कभी-कभी मैं सांझ के समय रवाना होता और रात-भर कज़ान वाली सड़क पर चलता रहता। शरद् के दिनों में मैं बहुधा बर्षा में भीग जाता, रास्ते में खूब कीचड़ हो जाती और मैं लथपथ आगे बढ़ता रहता। मेरी कमर पर एक मोमियाँ थैला लदा होता जिसमें फंदे, पिंजरे और लासे का सामान भरा रहता और हाथ में रहती एक मोटी लाठी। शरद् की अंधेरी रातें खूब ठंडी और डरावनी मालूम होतीं—बहुत ही डरावनी! सड़क के किनारे बिजली-मारे पुराने बर्च वृक्ष खड़े रहते और बर्षा में भीगी उनकी टहनियाँ मेरे सिर का स्पर्श करतीं। बाईं ओर पहाड़ी की तलहटी में जिधर वोल्गा बहती थी देर से आने वाले जहाज़ों और बजरों के मस्तूल जब-तब रोशनियों में चमक उठते और तैरते हुए निकल जाते, ऐसा मालूम होता मानो वे किसी अतल गहराई में—पाताल लोक के अथाह अंधकार में—समाते जा रहे हों। उनके भोंपुओं के बजने और चप्पुओं के पानी में छप-छप करने की आवाज़ें सुनाई देतीं।

सड़क के किनारे, लोहे-सी कड़ी भूमि पर, आस-पास के गाँवों के घर दिखाई देते, कटखने भूखे कुत्ते मेरी टाँगों की ओर झपटते और रात के चौकीदार अपने खटखटे बजाते हुए भय से चीख उठते:

"कौन है तू? कोई आदमी या खास शैतान का भेजा हुआ कोई दूत—भींग गयी रात में जिसका नाम तक लेना बुरा है!"

मुझे डर लगता कि कहीं मेरे फंदे आदि न छीन लिए जाएँ और इस लिए, चौकीदारों का मुँह बन्द करने के लिए, पाँच कोपेक का सिक्का मैं सदा अपनी जेब में रखता। फ़ोकिनो गाँव के चौकीदार से तो मेरी दोस्ती भी हो गई। मैंने जब उसे अपने कार्यों के किस्से सुनाए तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा।

"तुम फिर आ गए!" वह कहता।—"तुम पूरे रात के पंछी हो, एकदम निडर, और एक घड़ी चैन से न बैठने वाले!"

उसका नाम था निफ़ोन्त। कद का छोटा, सफ़ेद बालों वाला। देखने में ऐसा मालूम होता मानो वह कोई सन्त हो। अक्सर वह अपनी जेब में हाथ डालता और शलजम, या सेब, या मुट्ठी भर मटर के दाने निकाल कर मुझे देते हुए कहता:

"यह लो, मेरे मित्र। अपनी इस नन्हीं भेंट को मैंने तुम्हारे लिए ही रख छोड़ा था। उम्मीद है, तुम इसे पसन्द करोगे।"

और वह गाँव के छोर तक मेरे साथ चलता।

"अच्छा तो अब विदा। भगवान तुम्हारा भला करे।"

जब मैं जंगल में पहुँचा तो अंधेरा छंट चला था। मैंने अपने जाल फैला दिए, लासे लटका दिए और जंगल के एक किनारे लेट कर दिन निकलने की बाट जोहने लगा। चारों ओर सन्नाटा छाया था। हर चीज़ शरद् की गहरी नींद में डूबी थी। धुंध लिपटी पहाड़ियों की तलहटी में दूर-दूर तक फैली चरागाहों की हल्की सी झलक दिखाई दे रही थी जिन्हें दो हिस्सों में काटती हुई वोल्गा नदी बहती थी। चरागाहों के इर्द-गिर्द, जंगल के उस पार, पेड़ों की ओट में से सूरज अलस भाव से निकल रहा था और पेड़ों की काली फुनगियों को लाल रंग में रंग रहा था,—ऐसा मालूम होता था मानो वे आग से दमक रही हों! देखते-देखते एक अद्‌भुत और रोम-रोम में व्याप्त हो जानेवाली हरकत शुरू हो गई। धुंध की चादर, अधिकाधिक तेज़ गति से, ऊँची उठती गई। सूरज की किरनों ने उसे रुपहला रंग दिया। झाड़ियों, पेड़ों और घास के झुरमुटों ने मानो धुंध की यह चादर उतार कर अंगड़ाई ली और धीरे-धीरे धरती से सिर उठाने लगे। लगता था जैसे कि सूरज की गर्मी पाकर चरागाहें पिघलने और सभी दिशाओं में अपनी सुनहरी-

पीत आभा बिखेरने लगी हैं। नदी-तट पर पहुँचे सूरज ने अब उसके निश्चल पानी का स्पर्श किया और ऐसा मालूम हुआ, मानो समूची नदी उसी एक स्थल की ओर उमड़ चली हो जिसका कि सूरज ने अपनी सुनहरी उँगलियों से स्पर्श किया था। सोने का थाल ऊँचा उठता गया, और चारों ओर खुशी के लाल गुलाल की वर्षा होने लगी। शीत से सिकुड़ी-सिमटी और काँपती धरती में जान पड़ी, वह कसमसाई और अपनी कृतज्ञतापूर्ण उसाँसों से शरद् की सोंधी सुगंध फैलाने लगी। हवा इतनी साफ़ और पारदर्शी थी कि धरती का विस्तार, उसका आकार-प्रकार, अपनी अन्तहीन महानता और गौरव-गरिमा के साथ मूर्त हो उठा। हर चीज़ मानो दूर धरती के नीले छोरों को छूने के लिए ललक रही थी और अन्य सब को भी अपने इसी रंग में रंगने के लिए अपना माया-जाल फैला रही थी। सूरज निकलने का यह दृश्य, इसी जगह से, बीसियों बार मैंने देखा, और हर बार एक नयी दुनिया मेरी आंखों के सामने उभर कर आई, — एक ऐसी दुनिया जिसका सौन्दर्य बेजोड़, निराला और अद्भुत था!

सूरज से, न जाने क्यों, मुझे बेहद प्रेम है। उसकी कल्पना मात्र से मेरा हृदय कसमसाने लगता, उसके नाम की मधुर ध्वनि से मेरे हृदय के सभी तार झनझना उठते। आँखें बन्द कर मैं सूरज की ओर मुँह कर लेता और उसकी सुहानी किरनों का स्पर्श मुझे बहुत अच्छा मालूम होता। किसी दरार, बाड़े या किसी पेड़ की टहनियों में से छन कर जब उसकी किरनें बर्छी की अनी की भांति मेरी ओर लपकतीं तो मैं उन्हें हथेली में पकड़ने की कोशिश करता। नाना शाहज़ादे मिखाइल चेर्नीगोवस्की और बोयारिन फेओदोर की बड़ी इज्ज़त करते थे। कारण कि उन्होंने सूरज के आगे सिर झुकाने से इन्कार कर दिया था। लेकिन मुझे वे बड़े कुत्सित मालूम

होते, जिप्सियों की भांति काले और मनहूस, मोरदोविया के ग़रीब किसानों की भांति चपड़-चुंधी आँखों वाले। लेकिन मैं...चरागाहों के पीछे से जब भी मैं सूरज को निकलते हुए देखता, मेरा चेहरा अदबदाकर खिल जाता और मेरे होठों पर हँसी नाचने लगती।

चीढ़ के पेड़ ऊपर सरसरा रहे थे और उनकी टहनियाँ हिल-हिल कर ओस की बूंदों की वर्षा कर रही थीं। और नीचे, पेड़ों की छाया में, फर्न झाड़ियों की पत्तियों पर ओस की बूंदें पाले से जम गई थीं, ऐसा मालूम होता था मानो किसीने रुपहले बेल-बूटे काढ़ दिए हों। कत्थई घास, बारिश से आहत हो कर, धरती पर निश्चल पड़ी थी। लेकिन सूरज की किरनों का स्पर्श पाकर उसमें भी हलकी-सी कुनमुनाहट दौड़ जाती, मानो जीवित रहने के लिए आखिरी प्रयास कर रही हो।

पंछियों के घोंसलों में भी हलचल दिखाई देती। टिटमाइस पक्षी भूरे रंग की गुलगुली गेंदों की भांति, डाल-डाल पर फुदकना शुरू करते। अगिया क्रास बिल देवदार की सब से ऊपर वाली फुन्गियों पर अपनी चोंचे मारते। एक टहनी के छोर से लटका सफ़ेद नटहैच पक्षी झूल रहा था। वह अपनी चोंच से परों को छांटता, रह-रह कर गरदन उठाता, और मेरे जाल की ओर सन्देह-भरी नज़र से देखता। अनायास ही, एका-एक मुझे ऐसा लगा मानो समूचा जंगल जो एक क्षण पहले तक किसी गहरी उदासी में डूबा था, अब सैकड़ों पंछियों की सुस्पष्ट आवाज़ों से गूँज उठा है, उनकी सरसराहट और चहलपहल ने उसमें जान डाल दी है। जानदार जीवों में सब से पवित्र ये पंछी ही तो हैं जिनसे अनुप्राणित होकर मानव ने, जो इस दुनिया में सौन्दर्य का जनक है, अपनी प्रसन्नता के लिए दैवी संगीत, फ़रिश्तों और अप्सराओं की रचना की है।

पंछियों को पकड़ना दुःखद था, और उन्हें पिंजरों में कैद करना शर्मनाक। मैं उन्हें देखता रहता और केवल इतने से ही मुझे असीम आनन्द प्राप्त होता। लेकिन शिकारी की लगन और पैसा कमाने की इच्छा का पलड़ा भारी पड़ता और मेरी संवेदनशीलता को झुका देता।

पक्षियों की चतुराई देखने में मुझे बड़ा आनन्द आता। नीला टिटमाइस ध्यान जमा कर जाल की ओर देखता, — मानो उसका गहरा अध्ययन कर रहा हो। फिर, जाल में छिपे खतरे का मन ही मन अनुभव कर, कन्नी काटता हुआ सावधानी से आगे बढ़ता और छड़ों के बीच फंसे बीज को बड़ी सफ़ाई से निकाल लेता। टिटमाइस पक्षी बड़ी चतुराई दिखाता, लेकिन उसका मन चंचल होता और हर चीज़ में चोंच मारने की उसकी आदत उसे ले बैठती। गम्भीर और भारी-भरकम बुलफिंच पूरे बुद्धूपन का परिचय देता। गिरजे की ओर जा रहे बस्ती के मोटे-ताज़े लोगों की भांति वे मेरे जाल में झुंड आ फंसते। जब मैं उन्हें बन्द करता तब वे चौंक उठते, भारी अचरज के साथ अपनी आँखों को टेरते और अपनी मोटी चोंच से मेरी उँगलियों को नोंचते। क्रासबिल बड़ी शान्ति और शान से आता, और जाल में फंस जाता। निराला फिंच अपने निरालेपन का परिचय देता, — जाल के सामने आकर वह रुक जाता, चौड़ी दुम के टेक लगाकर अपने बदन को पीछे की ओर तान लेता, और अपनी लम्बी चोंच को अलस भाव से इधर-उधर घुमाता। इसी मुद्रा में बैठा काफ़ी देर तक वह अपनी चोंच को हिलाता रहता। टिटमाइस का पीछा करना उसकी आदत है। इसके लिए खुटकबढ़ई की भांति, वह वृक्षों के तनों के ओर-छोर नापता। भूरे रंग का यह छोटा-सा पक्षी, न जाने क्यों, मुझे बड़ा मनहूस मालूम होता, —एकदम अकेला, जिसके पास कोई नहीं फटकता, न ही वह

किसी को फटकने देता। मैगपाई की भांति वह भी छोटी-छोटी चमकीली चीज़ें चुराता, और उन्हें अपने कोटर में छिपा कर रखता।

दोपहर तक मैं अपना काम समाप्त कर लेता और जंगलों तथा खेतों में से होकर घर लौटता। मैं सड़क का रास्ता नहीं पकड़ता जो गाँवों और बस्तियों के बीच से गुज़रती थी। मुझे डर था कि गाँव के लड़के मुझपर टूट पड़ेंगे, मेरे पिंजरों को छीन लेंगे और मेरे जाल को तोड़ डालेंगे। एक बार ऐसा हो भी चुका था और कटु अनुभव के बाद मैंने यह सावधानी बरतना सीखा था।

घर पहुँचते-पहुँचते सांझ हो जाती। बदन थक कर चूर-चूर हो जाता और पेट में चूहे कूदने लगते। लेकिन मैं उदास नाम को भी न होता। यह चेतना मेरे मन को भरा-पूरा रखती कि मैं कुछ पाकर लौटा हूँ, नयी शक्ति और नयी जानकारी मैंने प्राप्त की है। इस नयी शक्ति के सहारे मैं नाना के ताने-तिशनों को इस तरह सुनता मानो कुछ हुआ ही न हो। वह मेरी हँसी उड़ाना चाहते, लेकिन सफल न हो पाते। अन्त में, गम्भीर स्वर में कहना शुरू करते:

"बस बहुत हो चुका! मेरी बात मानो और अपनी यह खुराफ़ात अब बन्द करो! चिड़िया पकड़ कर दुनिया में आज तक कोई आगे नहीं बढ़ा। अपने लिए कोई ठिकाना खोजो और दिमाग़ की समूची शक्ति से एक जगह जम कर काम करो। आदमी का जीवन इसलिए नहीं है कि उसे ओछी बातों में नष्ट किया जाए। वह खुदा का बीज है और अच्छी फ़सल पैदा करना उसका काम है। आदमी सिक्के की भांति है। अगर उसे ठीक ढंग से काम में लाया जाए तो वह अपने साथ अन्य सिक्कों को भी खींच लाता है। क्या तुम जीवन को आसान समझते हो? नहीं, वह एक कठोर चीज़ है—बहुत ही कठोर। दुनिया अंधेरी रात के समान है जिस में हर

व्यक्ति को खुद मशाल बन कर अपने लिए उजाला करना होता है। खुदा ने हम सभी को समान रूप से दस उँगलियाँ दी हैं, लेकिन हर आदमी दूर-दूर तक अपने पंजों को फैलाना और सभी कुछ दबोच लेना चाहता है। तुम्हें मज़बूत बनना होगा, अगर मज़बूत नहीं बन सकते तो चालाक बनो। कमजोर और काजू-वाजू लोगों के लिए इस दुनिया में कोई जगह नहीं है, वे कभी सफल नहीं हो सकते। लोगों के साथ मेल-जोल रखना, लेकिन यह कभी न भूल-ना कि तुम अकेले हो। बात सबकी सुनना, लेकिन विश्वास किसी पर न करना। केवल अपनी आँखों पर भरोसा रखना। लेकिन हर चीज़ की तांक-झांक करते रहना भी मूर्खता की निशानी है। अपना मुँह बन्द रखना। यह जो नगर, गाँव और बस्तियाँ देखते हो, इनका निर्माण जुबान से नहीं, रुपये-पैसों और हथौड़े से हुआ है। तुम्हें न तो बश्कीरिया के निवासियों की भांति बनना है, न काल्मिकों की भांति जिनकी एकमात्र पूंजी है उनके सिरों में पड़ी जुवें और भेड़-बकरियों के रेवड़!"

रात घिर आती और उनकी बातों का यह सिलसिला फिर भी ख़त्म न होता। उनके शब्द मुझे जुबानी याद थे। जब वह बोलते तो उनके शब्दों की ध्वनि तो मुझे अच्छी लगती, लेकिन उन-के अर्थ के बारे में संदिग्ध रहता। वह जो कुछ कहते, उसे सुनकर एक ही बात समझ में आती। वह यह कि दो ताकतें हैं जो जीवन को कठिन बना रही हैं: खुदा और लोग।

खिड़की के पास बैठ कर, अपनी चपल उँगलियों से तकली को फिर्की की भांति नचाते हुए, नानी बेल बूटों के लिए सूत कातती। नाना के शब्दों को कुछ देर वह चुपचाप सुनतीं, फिर एकाएक कह उठतीं:

"खुदा की माँ मरियम चाहेंगी तो सब हो जाएगा, नहीं तो कुछ नहीं होगा।"

"यह क्या?" नाना चिल्लाते।—"खुदा की बात तुम करती हो? जैसे मैं खुदा को पहचानता ही नहीं? खुदा मेरे लिए बेगानी चीज़ नहीं है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। क्या तुम समझती हो कि इस दुनिया में जो इतने बेवकूफ़ दिखाई देते हैं, उन्हें भी खुदा ने ही बनाया है? सिर के बाल पक गए, पर तुम्हें अभी अक़्ल नहीं आई!"

...सैनिकों और कज़ाकों को जब मैं देखता तो मुझे ऐसा मालूम होता मानो दुनिया में इनसे ज़्यादा खुश और सुखी और कोई नहीं है। उनके जीवन में कोई पेच नहीं था, और खुशी जैसे बिखरी पड़ी थी। सुबह की सुहानी फ़ज़ा में वे आते, हमारे घर के सामने खाई के उस पार वाले मैदान में इधर-उधर बिखर जाते और उनका मज़ेदार खेल शुरू हो जाता जिसका सिर-पांव कुछ भी मेरी समझ में न आता। शरीर के वे मज़बूत थे, फुर्ती उनमें कूट-कूट कर भरी थी। सफ़ेद कमीज़ें पहने, हाथों में राइफ़लें ताने, शोर मचाते वे मैदान में दौड़ते, खाई में छिप जाते, बिगुल की आवाज़ सुनते ही फिर दौड़ कर बाहर निकल आते और 'हुर्रा' की आवाज़ों तथा फ़ौजी ढोल की कंपा देने वाली धमाधम के साथ, सीधे हमारी गली की ओर रुख किए, तेज़ी से बढ़ने लगते। उन की संगीनें चमचमातीं, मानो अगले ही क्षण वे हमारे घर पर टूट पड़ेंगी, और सब कुछ उलट-पुलट कर उसे मल्वे का एक ढेर बना देंगी।

मैं भी ज़ोरों से 'हुर्रा' की आवाज़ करता और उनके पीछे-पीछे दौड़ता। फ़ौजी ढोलों की जानसोख आवाज़ सुन मैं भन्ना उठता, और तोड़-फोड़ करने की भावना हृदय में इतने ज़ोरों से

सिर उठाती कि उस पर काबू पाना मुश्किल हो जाता, — किसी बाड़े को खींच कर गिराने या किसी को पकड़ कर पीटने के लिए मन उतावला हो उठता!

अवकाश के क्षणों में वे मुझे माखोरका तम्बाकू पिलाते, और अपनी भारी राइफ़लों से खेलने देते। कभी-कभी उनमें से कोई मेरे पेट में अपनी संगीन की नोक गड़ा देता और गुस्से में भौंहों को चढ़ा कर बनावटी आवाज़ में चिल्लाता:

"अभी बींध दूंगा तिलचट्टे को!"

संगीन धूप में चमचमा उठती और उसमें ज़िन्दा सांप की भांति वल पड़ने लगते, ऐसा मालूम होता कि बस, अब काम तमाम हुआ चाहता है। मेरा हृदय काँप उठता। भय और उल्लास, दोनों का ही मैं अनुभव करता।

मोरदोविया निवासी एक लड़के ने जो ढोलची था, मुझे ढोल बजाने की मूँगरियाँ पकड़ना सिखाया। पहले उसने मेरे हाथों को अपने हाथों में लेकर इतने ज़ोरों से भींचा कि मैं कराह उठा। फिर ढीली पड़ी मेरी उँगलियों में उसने मूँगरी थमा दी।

"हाँ, अब बजाओ — एक बार, और फिर एक बार, और एक बार फिर! टा-टा-टा-आ-आ-आ-आ-आ! दाहिनी मूँगरी हल्के हाथ से, और बाईं ज़ोरों से — टा-टा-टा-आ-आ-आ-आ!" चिड़िया ऐसी गोल आँखों से वह मुझे घूरता और फटे हुए गले से रेंकता।

कवायद समाप्त होने तक मैं भी सैनिकों के साथ-साथ दौड़ता, फिर उनके साथ समूचे नगर में मार्च करता हुआ उनकी वैरकों तक जाता, उनके ज़ोरदार गाने सुनता और उनके दयालु चेहरों को एकटक देखता रहता जो मुझे, एक सिरे से, अभी-अभी टकसाल से निकले सिक्कों की भांति एकदम नये और उजले मालूम होते।

आदमियों का यह समूह एक रंग और एक चाल से जब बाज़ार में उमड़ता हुआ गुजरता तो हृदय खुशी से छलछलाने लगता और मन उनके साथ बहने के लिए उतावला हो उठता — जैसे कोई नदी के साथ बहे, उसमें समा जाने को जी ललकता — जैसे कोई जंगल में समा जाए। डर इन लोगों को छू तक नहीं गया था। साहस के साथ हर चीज़ का ये सामना करते थे, कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके लिए अजेय हो, जिसे वे चाहें और प्राप्त न कर सकें, और सबसे बढ़ कर यह कि वे नेक दिल और सीधे-सच्चे थे।

लेकिन एक दिन, अवकाश के क्षणों में, एक नान-कमीशन्ड युवक अफ़सर ने मुझे एक मोटी-ताज़ी सिगरेट भेंट की।

"यह लो, सिगरेट पियो। यह एक बहुत ही बढ़िया किस्म की सिगरेट है। तुम्हारे सिवा अगर और कोई होता तो उसे कभी न देता। तुम इतने अच्छे हो, इसीलिए मैं तुम्हें यह सिगरेट दे रहा हूँ।"

मैंने सिगरेट सुलगाई। वह पीछे हट गया। एकाएक सिगरेट से लाल लपट निकली और मैं चौंधिया गया — मेरी उँगलियाँ, नाक और भौंहें झुलस गयीं। भूरे तेज़ाबी धुएं ने नाक में वह दम किया कि छींकते-खांसते हुलिया तंग हो गया। आँखों के चौंधिया जाने और घबराहट के मारे मैं उसी एक जगह खड़ा हाथ-पाँव नचा रहा था। सैनिक मेरे चारों ओर घेरा बनाए खड़े थे, और खूब खिलखिला कर हँस रहे थे। मैं घर की ओर चल दिया। पीछे से उनके हँसने, सीटियाँ बजाने और गडरियों ऐसा हँटर फटकारने की आवाज़ आ रही थी। मेरी उँगलियों में जलन थी, चेहरे में काँटे से चुभ रहे थे, और आँखों से आँसू बह रहे थे। लेकिन इस पीड़ा से भी अधिक जानलेवा, अधिक परेशान करने वाली, चीज़

दुख और अचरज का वह भाव था जो मेरे हृदय को मथ रहा था और जिसे मैं समझ नहीं पा रहा था। आखिर उन्होंने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? इतने भले लोग भी इस तरह की चीज़ में कैसे आनन्द ले सके?

घर पहुँचने के बाद मैं ऊपर तिदरी पर चढ़ गया, और बहुत देर तक वहाँ बैठा हुआ समझ में न आनेवाली बर्बरता की उन सभी कड़ियों को बटोरने का प्रयत्न करता रहा जिनसे कि इस छोटे से जीवन में मेरा वास्ता पड़ चुका था। सारापूल का वह टुइयां-सा सैनिक मेरी कल्पना में मूर्त हो उठा। उसकी याद सब से ज़्यादा प्रखर और सब से ज़्यादा साफ़ थी। ऐसा मालूम होता था मानो वह, एकदम सजीव रूप में, मेरी आँखों के सामने खड़ा मुझ से पूछ रहा हो:

"कहो, तुम्हारी कुछ समझ में आया?"

लेकिन इसके शीघ्र बाद ही मुझे कुछ ऐसे दृश्य देखने को मिले जो और भी ज़्यादा क्रूर तथा हृदय को और भी ज़्यादा आहत करने वाले थे।

मैंने अब पेचेरस्काया स्लोबोदा के निकट उन बैरकों में भी जाना शुरू कर दिया जिनमें कज़ाक रहते थे। कज़ाक सैनिक से भिन्न थे — केवल इसलिए नहीं थे कि वे उनसे अच्छे कपड़े पहनते थे, और मंजे हुए घुड़सवार थे, बल्कि इसलिए कि उनके बोलने का ढंग उनसे भिन्न था, वे उनसे भिन्न गीत गाते थे, और कमालका नाचते थे। सांझ को घोड़ों की मलाई-दलाई करने के बाद सब कज़ाक अस्तबल के पास घेरा बना कर जमा हो जाते। नाटे कद का लाल सिर वाला एक कज़ाक घेरे के बीच में निकल आता और अपने लहरदार बालों को पीछे की ओर झटकाते हुए नफीरी जैसी तेज़ आवाज़ में गाने लगता। सीधा और सतर, शरीर का जैसे

एक-एक तार तना हुआ। शान्त दोन या नीली दान्यूब के बारे में वह कोई कोमल और उदास गीत गाता। प्रातः पक्षी की भांति वह अपनी आँखें बंद कर लेता जो उस समय तक गाता रहता है जब तक कि वह निष्प्राण हो कर धरती पर नहीं गिर पड़ता। उसके सलूके का गला खुला रहता जिसमें से उसकी हंसुली की हड्डी तपे हुए ताम्बे या ब्रोंज़ की छड़ की भांति दिखाई देती। सच तो यह है कि उसका समूचा शरीर ब्रोंज़ की ढली हुई प्रतिमा मालूम होता। आँखें उसकी मुंदी थीं। उसके हाथ लहरा रहे थे, पतली टाँगों पर टिका उसका शरीर इस तरह डोल रहा था मानो उसके पाँव के नीचे की धरती गहरी उसाँसें ले रही हो। उसे देखकर ऐसा लगता मानो उसका मानवीय शरीर विलय होकर किसी गड़रिये की बाँसुरी, किसी बिगुल वादक का हौर्न, बन गया हो। मेरी कल्पना में प्रातः पक्षी का चित्र मूर्त हो उठता और मुझे ऐसा मालूम होता कि वह अभी पीठ के बल धरती पर गिर पड़ेगा और प्रातः पक्षी की भांति ही निष्प्राण हो जाएगा। सच तो यह कि अपने-आप में उसका कुछ शेष रहा भी नहीं था। उसका समूचा हृदय, उसकी आत्मा, उसकी शक्ति का एक-एक अणु, गीत के स्वरों के साथ मिलकर एकाकार हो गया था।

उसके साथी उसके इर्द-गिर्द खड़े थे, हाथों को अपनी जेबों में डाले या कमर के पीछे किए। उनकी आँखें, बिना पलक झपकाए, उसके ब्रौंज़ चेहरे और लहराते हुए हाथों पर टिकी थीं, और गिरजे के कोरस-दल की भाँति वे खुद भी शान्त और पुर-असर ढंग से गा रहे थे। ऐसे क्षणों में वे सब — जिनके दाढ़ी थे वे और जो दाढ़ी विहीन थे वे भी — समान रूप से देव-प्रतिमाओं की भांति मालूम होते, — उतने ही अलग, उतने ही भयोत्पादक। और गीत के स्वर, किसी राजपथ की भांति, दूर-दूर तक फैल जाए, प्रशस्त

और युगों-युगों का अनुभव अपने हृदय में समेटे हुए। गीत के स्वर रोम-रोम में समा जाते। न दिन का ज्ञान रहता, न रात का। न बुढ़ापे की सुध रहती, न बचपन की। सभी कुछ भूल जाता। गायकों की आवाजें निस्तब्धता में डूब जातीं तो घोड़ों की गहरी उसाँसें सुनाई देतीं मानो उन्हें उन दिनों की याद सता रही हो जब कि वे दूर-दूर तक फैले स्तेपी मैदानों में आज़ादी से घूमते थे। और शरद् रात्रि के आगमन की अनवरत गतिशीलता शुरू हो जाती, खेत-खलिहानों में उसकी पदचाप सुनाई देती। भीतर से एक उबाल-सा उठता और भावनाओं का यह भरा-पूरा और असाधारण उभार, देश की धरती और उसपर बसने वाले लोगों के प्रति मौन अनुराग की यह व्यापक भावना, मेरे हृदय में उमड़ती-घुमड़ती और बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगती।

मुझे ऐसा मालूम होता कि तपे ताम्बे-सा नाटे कद का यह कज़ाक निरा मानव नहीं है, वरन् वह मानव से बड़ा और उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है — वह मानव जीवधारियों से अलग और उनसे ऊपर, लोककथाओं का जीव है। मैं उससे बोलना चाहता, पर मेरी आवाज़ साथ न देती। वह मुझे कुछ पूछता तो मेरा चेहरा खिल उठता, लेकिन मेरे मुँह से एक शब्द न निकलता, उसके सामने मुँह खोलने का साहस न होता। मैं उसे केवल देखना, देखते रहना, और उसका गाना सुनना चाहता। और इसके लिए, एक वफ़ादार कुत्ते की भांति, मैं उसके साथ दुनिया-भर में घूमने को तैयार था।

एक दिन मैंने उसे अस्तबल के कोने में खड़ा देखा। वह अपनी उँगली में चांदी की एक सादी अँगूठी पहने था, और बड़े ध्यान से उसे देख रहा था। उसके होंठ हिल रहे थे, और उसकी

छोटी-छोटी लाल मूछें बल खा रही थीं। उसके चेहरे पर उदास और चोट खाया हुआ-सा भाव मंडरा रहा था।

इसके बाद, एक दिन अंधेरी सांझ के समय स्ताराया सेन्नाया स्क्वायर के शराबख़ाने में मैंने उसे देखा। शराबख़ाने का मालिक गानेवाली चिड़ियों का बेहद शौक़ीन था, और मुझसे अक्सर चिड़ियाँ खरीदा करता था। इस समय भी कुछ चिड़ियाँ लेकर मैं उसके पास गया था।

कज़ाक बार के निकट, तन्दूर और दीवार के बीच, बैठा था। उसके साथ एक मोटी थलथल स्त्री भी थी जो आकार-प्रकार में क़रीब-क़रीब उससे दूनी थी। उसका गोल-मटोल चेहरा सिन्दूर की भांति चमक रहा था और वह बड़े चाव और लगन से उसकी ओर देख रही थी, जैसे माँ अपने बच्चे की ओर देखती है। वह नशे में धुत्त था और उसके पाँव मेज़ के नीचे बराबर कुलबुला रहे थे। उसने ज़रूर ही स्त्री को ठोकर मारी होगी क्योंकि सहसा वह चौंक उठी। भौंहें सिकोड़ीं और धीमे स्वर में कहा:

"यह क्या हरकत है?"

कज़ाक ने बड़ी मुश्किल से अपनी भौंहें उठाईं, फिर तुरत ही उन्हें गिरा लिया। गर्मी के मारे बुरा हाल था। उसने अपने कोट और कमीज़ के बटन खोल डाले और उसकी गरदन नंगी हो गई। स्त्री ने रूमाल सिर से खिसका कर अपने कंधों पर डाल लिया, फिर अपनी हृष्ट-पुष्ट सफ़ेद बाँहों को मेज़ पर रखा और दोनों हाथों को मिलाकर इतने ज़ोर से भींचा कि उंगलियों के पोरवे लाल पड़ गए। जितना ही अधिक मैं उन्हें देखता, उतना ही अधिक वह कज़ाक मुझे एक ऐसे लड़के की भांति मालूम होता जिसे उसकी नेक माँ के प्यार ने बिगाड़ दिया है। वह उसे प्यार से झिड़कती, लेकिन वह घुन्ने की भांति चुप रहता। उसकी सही और जायज़ झिड़कियों के जवाब में उससे कुछ नहीं बनता।

सहसा वह खड़ा हो गया, मानो किसी बिच्छू ने उसे काट लिया हो। अपनी टोपी को उसने माथे पर खींचा और थपथपाकर उसे ख़ूब जमा लिया। इसके बाद, कोट के बटन बन्द किए बिना ही, वह दरवाज़े की ओर बढ़ा। स्त्री भी उठ खड़ी हुई।

"हम अभी लौट आएँगे, कुज़मिच," स्त्री ने शराबख़ाने के मालिक से कहा।

जब वे जाने लगे तो 'शराबख़ाने के जीवों' ने उन्हें लक्ष्य कर हँसना और फब्तियाँ कसना शुरू किया। उनमें से एक गंभीरतापूर्वक बोला:

"मांझी जब लौटेगा तो देखना किस तरह इसका भुर्ता बनाता है।"

मैं भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। वे अंधेरे में मुझसे कोई बीस एक क़दम आगे चल रहे थे। कीचड़-भरे स्क्वायर को पार कर वे सीधे वोल्गा के ऊँचे तट की ओर चल दिए। मैंने देखा कि कज़ाक अपने लड़खड़ाते पाँवों से चल नहीं पा रहा है, और उसे संभालने के प्रयत्न में ख़ुद स्त्री भी डगमगा जाती है। उनके पाँवों के नीचे कीचड़ के पिचरने की आवाज़ तक सुनाई दे रही थी। स्त्री, दबे स्वर में, उससे बार-बार पूछ रही थी:

"आख़िर तुम जा कहाँ रहे हो? बोलो न, तुम कहाँ जा रहे हो?"

मैं भी उनके पीछे-पीछे कीचड़ में चलने लगा, हालांकि मेरा रास्ता दूसरा था। जब वे बांध के छोर पर पहुँचे तो कज़ाक रुक गया, एक क़दम पीछे हटा और फिर, एकाएक उस स्त्री के मुँह पर भरपूर हाथ से तमाचा मारा। स्त्री भय और अचरज से चीख़ उठी:

"ओह, यह तुम्हें क्या सूझी?"

मैं भी चौंक उठा, और लपक कर उसके पास पहुँचा। लेकिन कज़ाक ने झपट कर स्त्री को कमर से उठा लिया, और रेलिंग के उस पार फेंक दिया। इसके बाद वह ख़ुद भी उसके पीछे-पीछे कूद गया और दोनों, काली गठरियों की भांति गुंथे हुए, घास-उगे ढलुवाँ बाँध पर से नीचे लुढ़कते चले गए। मुझे जैसे काठ मार गया, और बुत की तरह वहीं खड़ा हुआ तड़प-झड़प की, कपड़ों के फटने और कज़ाक के हांफने और भरभराने की, आवाज़ सुनता रहा। स्त्री, दबे स्वर में, रह-रह कर बुदबुदा रही थी:

"मैं चिल्ला पड़ूँगी! मैं चिल्ला पड़ूंगी!"

इसके बाद, तिलमिला कर, वह ज़ोरों से चीख़ी और सब तरफ़ एक सन्नाटा-सा छा गया। मैंने एक पत्थर उठाया और उसे बाँध पर से फेंका। सरकंडों की सरसराहट के सिवा और कुछ सुनाई न दिया। तभी शराबख़ाने का काँच का दरवाज़ा झनझना उठा, कराहने-कांखने की आवाज़ आई जैसे कोई गिर पड़ा हो, और उसके बाद फिर सन्नाटा छा गया, जिसके गर्भ में आतंक और डर छिपा हुआ था।

बाँध के अध-बीच ढलवान पर बड़े आकार की कोई सफ़ेद-सी चीज़ दिखाई दी। लड़खड़ाती-सी, सुबकती और भुनभुनाती, वह धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही थी। वह स्त्री थी। भेड़ की भांति, दोनों हाथों और पाँवों के सहारे, वह चढ़ रही थी। मैंने देखा कि उसका बदन कमर तक नंगा है। उसकी बड़ी-बड़ी गोल छातियाँ सफ़ेद दमक रही थीं, और ऐसा मालूम होता था मानो उसके तीन चेहरे हों। आख़िर वह बाड़े से आ लगी, और मेरे निकट बैठ गई। वह गरमाए हुए घोड़े की भांति हाँफ रही थी, और अपने उलझे-बिखरे बालों को सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी। उसके सफ़ेद बदन पर धूल-कीचड़ के काले निशान साफ़ दिखाई देते थे। वह रो रही थी,

जब अपने आँसुओं को पोंछती थी तो ऐसा मालूम होता था मानो कोई बिल्ली पंजे से अपना मुँह साफ़ कर रही हो।

"हाय राम, तुम कौन हो?" मुझपर नज़र पड़ते ही वह धीमे से चिल्लाई।—"बड़े बेशर्म लड़के हो! जाओ, भाग जाओ, यहाँ से?"

लेकिन मैं भागा नहीं। गहरे दुःख और अचरज से मेरे पाँव जाम हो गए थे। मुझे नानी की बहन अपनी मौसी के शब्द याद हो आए:

"स्त्री की शक्ति के सामने कोई नहीं टिक सकता। कौन नहीं जानता कि हौवा के सामने ख़ुदा को भी हार माननी पड़ी।"

स्त्री उठकर खड़ी हो गई। कपड़ों के नाम पर जो कुछ बच रहा था, उससे उसने अपनी छातियों को ढंका, और ऐसा करने के प्रयत्न में अब उसकी टाँगें उघरी रह गईं। लेकिन वह रुकी नहीं, तेज़ डगों से चल दी। तभी बाँध के ढलवान पर कज़ाक चढ़ता दिखाई दिया। उसके हाथ में कुछ सफ़ेद कपड़े थे जिन्हें वह हवा में हिला रहा था। धीमे से उसने सीटी बजाई, कान लगा कर सुना, फिर प्रसन्न आवाज़ में बोला:

"दारिया! क्या मैंने तुम्हें पहले ही नहीं बता दिया था कि कज़ाक जो चाहता है उसे पूरा करके ही छोड़ता है? तुमने समझा कि मुझे नशा चढ़ा है, और मुझे संभालने के लिए मेरे साथ हो ली। क्यों, ठीक है न? लेकिन नहीं, दारिया! नशे का वह सब नाटक तो केवल तुम्हें चकमा देने के लिए था!"

उसके पाँव ज़मीन पर मज़बूती से जमे थे। उसकी आवाज़ में नशे का नहीं, व्यंग का पुट था। नीचे झुक कर स्त्री के कपड़ों से उसने अपने जूतों की कीचड़ पोंछी, और इसके बाद बोला:

"यह लो, अपना ब्लाउज़ ले जाओ! चली आओ दारिया, बहुत मान न दिखाओ!"

और फिर ज़ोर से एक गंदा नाम लेकर उसे पुकारा।

मैं वहीं, पत्थरों के एक ढेर पर बैठा, उसकी आवाज़ सुनता रहा—रात की निस्तब्धता में इतनी अकेली और सूनी, और इतनी दबंग कि हृदय को कुचल कर रख दे।

मेरी आँखों के सामने स्क्वायर की लालटेनों की रोशनियाँ नाच रही थीं। दाहिनी ओर काले पेड़ों के एक झुरमुट के बीच कुलीनवर्ग की लड़कियों के स्कूल की सफ़ेद इमारत दिखाई दे रही थी। अलस भाव से गंदे शब्दों को अपने मुँह से उगलता और सफ़ेद कपड़ों को हिलाता कज़ाक स्क्वायर की ओर बढ़ा और एक दु:स्वप्न की भांति ओझल हो गया।

नीचे पानी की टंकी के पास पाइप में से भाप निकलने की सनसनाती आवाज़ आ रही थी। ढलावान पर से खड़खड़ करती एक बग्घी नदी की ओर जा रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। व्याकुलता से भरा मैं बाँध के किनारे किनारे चलने लगा। हाथ में एक ठंडा पत्थर था जिसे मैंने कज़ाक पर फेंकने के लिए उठाया था। सन्त जार्ज विजेता के गिरजे के पास एक चौकीदार ने मुझे टोका। कमर परमैं अपना थैला डाले था। उसे देख कर उसका सन्देह बढ़ा और लाल-पीला होकर बोला:

"इसमें क्या भर रखा है और तू है कौन?"

मैंने उसे कज़ाक का क़िस्सा बताया। हँसते-हँसते वह दोहरा हो गया।

"तुमने भी क्या क़िस्सा सुनाया है!" उसने चिल्ला कर कहा।—"भाई मेरे, कज़ाक ऐसे होते ही हैं। आव देखा न ताव,

बस सीधे टूट पड़े! उनकी तो दुनिया ही अलग है! और वह स्त्री,—सच, उसे भी पूरा छिनाल ही समझो!"

इसके बाद वह फिर हँसते-हँसते दोहरा हो गया और मैं आगे बढ़ चला। मेरी समझ में न आया कि वह इतना हँसा क्यों, हँसी की ऐसी क्या बात उसने देखी?

रह-रह कर मैं सोचता, और मेरा हृदय काँप उठता:

"अगर वह स्त्री मेरी माँ, या मेरी नानी होती तो...?"

८

बर्फ़ गिरना शुरू होते ही नाना ने पहला काम यह किया कि मुझे फिर नानी की बहिन के यहाँ ले गए। बोले:

"घबराते क्यों हो, वहाँ तुम मर न जाओगे!"

लेकिन अपने मालिकों के यहाँ पहुँच कर मुझे वहाँ का जीवन और भी उबा देने वाला मालूम हुआ, खास तौर से इसलिए कि गर्मियों में मैं बहुत ही बहुरंगी और विविधतापूर्ण जीवन बिता चुका था, अनुभवों का भारी भण्डार मेरे पास जमा हो गया था और मैं अपने-आप को अधिक बड़ा और अधिक समझदार अनुभव करता था। लेकिन यहाँ का जीवन अभी भी उसी पुराने ढर्रे पर चल रहा था—पहले की भांति अब भी वे इतना खाते कि उबकाई आने लगती, अपनी छोटी-मोटी मुसीबतों का इतना राग अलापते कि सुनते-सुनते कान पक जाते। बूढ़ी मालकिन भी हृदय में कड़ुवाहट और बदला लेने की भयानक भावना भरे अपने खुदा के दरबार में उसी तरह फरियाद करती। छोटी मालकिन एक और बच्चा जनने के बाद अब कुछ दुबली हो गई थी, लेकिन पेट के पिचक जाने और पहले से अधिक हल्की हो जाने के बाद भी उतने ही धमाके

और रोब से लपक-झपक करती, समूचे घर में चक्कर लगाती। जब वह बच्चों के लिए कपड़े सीने बैठती तो धीमे और लगे-बंधे स्वर में सदा एक ही गीत की कड़ियाँ गुनगुनाती:

वान्या, वान्या, वानिचका
नन्हा वान्या, प्यारा वान्या
अपनी अम्माँ की गाड़ी खींचेगा
अपनी अम्माँ का कहना मानेगा!

अगर कोई कमरे में आ जाता तो वह तुरंत अपना गाना बंद कर देती और झुंझला कर कहती:

"यहाँ क्या करने आए हो?"

मुझे यक़ीन था कि इसके सिवा वह अन्य कोई गीत नहीं जानती।

सांझ होते ही दोनों मालकिनें मुझे भोजन करने के कमरे में तलब करतीं और कहतीं:

"हाँ तो जहाज़ पर तुम्हारे साथ और क्या-क्या बीती?"

पाख़ाने के दरवाज़े के पास एक कुर्सी पर मैं बैठ जाता और उन्हें सारी बातें बताता। इस अनचाहे और अनचेते जीवन के बीच उस जीवन की याद करना मुझे अच्छा लगता। उसका वर्णन करने में मैं इतना डूब जाता कि मुझे अपनी मालकिनों की उपस्थिति तक का ध्यान न रहता। लेकिन यह हालत अधिक देर तक न टिकती। उनके लिए जहाज़ और उसका जीवन एक नयी चीज़ था। वे सवाल करतीं:

"और तुम्हें डर नहीं लगा?"

मेरी समझ में नहीं आया कि डर से उनका क्या मतलब है।

"अगर कहीं गहरे में जहाज़ डांवांडोल होकर पानी में समा जाता तो...?"

मालिक खिलखिलाकर हँसते और मैं, यह जानते हुए भी कि जहाज़ गहरे पानी में न तो उलटते हैं और न ही डूबते हैं, स्त्रियों के हृदय में यह बात नहीं बैठा पाता। बूढ़ी मालकिन को पक्का यक़ीन था कि जहाज़ पानी में तैरता नहीं, बल्कि उसके चप्पू सड़क पर चलने वाली गाड़ी के पहियों की भांति नदी की तलहटी में चलते हैं।

"अगर जहाज़ लोहे का बना है तो वह तैर कैसे सकता है? कुल्हाड़ी को जब पानी में डालते हैं तो वह तैरती नहीं, एकदम डूब जाती है...।"

"हाँ, कुल्हाड़ी डूब जाती है। लेकिन डोल नहीं डूबता।"

"डोल की तुलना खूब दी। एक तो वह छोटा होता है, और दूसरे खोखला।

स्मूरी का और उसकी पुस्तकों का जब मैंने उनसे जिक्र किया तो उन्होंने सन्देह की नजर से मुझे देखा। बूढ़ी मालकिन को पुस्तकों से चिढ़ थी। दावे से कहती:

"धर्मभ्रष्ट और बेवकूफ़ लोगों के सिवा और कौन पुस्तकें लिखता है?"

"धर्म पुस्तक साल्टर किसने लिखी? और डेविड राजा कौन था?"

"साल्टर बात छोड़ो। यों डेविड राजा ने भी अपने साल्टर के लिए खुदा से माफ़ी माँगी थी!"

"यह कहाँ लिखा है?"

"यहाँ मेरे हाथ पर जिसका तमाचा पड़ते ही तुम्हें सब पता चल जाएगा!"

वह जैसे हर बात जानती थी और बड़े विश्वास के साथ हर बात की नुक्ताचीनी करती थी जो कि हमेशा बेहूदा होती थी।

"पेचोरका स्ट्रीट में जो तातार रहता था, वह जब मरा तो मुँह के रास्ते उसकी जान इस तरह निकली जैसे किसीने कोलतार का पीपा उँडेल दिया हो—एकदम काली!"

"जान नहीं, आत्मा," मैं बोला, लेकिन वह व्यंगपूर्वक चिल्लाई:

"तातार के आत्मा नहीं होती, बेवक़ूफ़!"

छोटी मालकिन भी पुस्तकों को हौवा समझती।

"पुस्तकें पढ़ना बुरा है, ख़ास तौर से कच्ची उमर में", वह कहती।—"हमारे मोहल्ले में—ग्रेबेशोक स्ट्रीट की मैं बात कर रही हूँ—एक लड़की रहती थी। काफ़ी अच्छे घर में उसने जन्म लिया था, लेकिन उसने पुस्तकें पढ़ना शुरू किया और पुस्तकों का उसे कुछ ऐसा चस्का लगा कि बराबर पढ़ती रहती। अन्त में, पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते वह एक पादरी से प्रेम करने लगी। पादरी की पत्नी भला उसे क्यों छोड़ देती? पंजे पैने कर वह उसपर टूट पड़ी और खुले आम, ठीक मोहल्ले के बीचोंबीच उसकी ख़ूब मिट्टी पलीद की। देख कर मेरी तो रूह काँप उठी!"

कभी-कभी मैं उन शब्दों और वाक्यों को दोहराता जो मैंने स्मूरी की पुस्तकों में पढ़े थे। इन पुस्तकों में से एक में मैंने पढ़ा था: 'असल बात यह है कि बारूद का किसी एक व्यक्ति ने आविष्कार नहीं किया, वह उन छोटे-छोटे प्रयोगों और खोज-कार्यों का नतीजा था जिनका लम्बा सिलसिला बहुत पहले ही शुरू हो चुका था।'

न जाने क्यों, ये शब्द मेरी स्मृति में जम कर बैठ गए। ख़ास तौर से शुरू का टुकड़ा 'असल बात यह है कि' मुझे बहुत

पसंद आया और मुझे लगा कि बात करने का यह ढंग काफ़ी ज़ोरदार है। इसका इस्तेमाल मेरे लिए काफ़ी महंगा पड़ा, बेकार काफ़ी यातना सहनी पड़ी, कुछ वैसी ही यातना जिसकी कि मैं अपने चारों ओर बहुतायत देखता था।

एक दिन, सांझ के समय, समूचे परिवार ने जब मुझसे जहाज़ के अपने अनुभव सुनाने के लिए कहा तो मेरे मुँह से निकला:

"असल बात यह है कि अब और कुछ कहने के लिए बाक़ी नहीं रहा।"

सुनकर एक बार तो वे लगे मेंढक की भांति टर्राने:

"यह क्या? क्या कहा तुमने?"

फिर चारों ख़ूब खिलखिला कर हँसे, और उन्होंने बार-बार दोहराना शुरू किया:

"असल बात यह है—ओ मेरे भगवान!"

मालिक तक ने मुझसे कहा:

तुम भी क्या सनकीपन की बातें करते हो?"

और इसके बाद भी, काफ़ी दिनों तक, वे मुझे 'असल बात' कह कर पुकारते और चिढ़ाते रहे।

"अरे, असल बात, ज़रा इधर आओ। बच्चे ने फ़र्श गंदा कर दिया है। असल बात, इसे झटपट साफ़ तो कर दो!"

उनका यह बेमतलब चिढ़ाना मुझे बड़ा अजीब लगता। बुरा मानने के बजाय मैं अचरज से उनकी ओर देखता।

जानलेवा उदासी की धुंध मुझ पर छाई रहती। उससे छुटकारा पाने के लिए मैं जी तोड़ काम करता। काम की कोई कमी नहीं थी। घर में दो बच्चे थे, दोनों गोद के। मेरी मालकिनें जुबान की इतनी तेज़ थीं कि दाई या आया को टिकने न देतीं।

नतीजा इसका यह कि बच्चों की देख-भाल भी ज़्यादातर मेरे ही सिर पड़ती। रोज़ मैं उनके पोतड़े धोता और सात दिन में एक बार जन्दार्मी झरने पर जाकर कपड़े पछाड़ता। अन्य स्त्रियाँ भी वहाँ कपड़े धोने आतीं। वे मेरी हँसी उड़ातीं:

"यह स्त्रियों का काम तुम क्यों कर रहे हो?"

कभी-कभी, चिढ़ कर, गीले कपड़ों के कोड़ों से मैं उनकी ख़बर लेता। कोड़े का जवाब वे भी कोड़े से देतीं। बड़ा मज़ा आता और उनके साथ रहकर ख़ूब जी लगता।

जन्दार्मी झरना एक गहरी घाटी में बहता था। यह घाटी ओका नदी में जाकर मिलती थी। घाटी के एक ओर नगर आबाद था और दूसरी ओर एक मैदान था। यह यारीलो मैदान कहलाता था। यारीलो स्लाव जाति का एक पुराना देवता था। ईस्टर के बाद सातवें सप्ताह में वृहस्पति के दिन नगर निवासी इस मैदान में जमा होते और सेमिक उत्सव मनाते थे। नानी ने बताया कि उनकी युवावस्था तक लोग यारीलो देवता को मानते थे और उसकी पूजा किया करते थे। वे एक पहिए पर कोलतार चढ़ाते और आग लगा कर उसे पहाड़ी पर से लुढ़का देते थे। वे ख़ूब शोर मचाते और गीत गाते। अगर पहिया ओका नदी तक पहुँच जाता तो समझते कि यारीलो ने उनका पूजन स्वीकार कर लिया है, ग्रीष्म ऋतु इस बार बहुत बढ़िया होगी, और घर-घर बसन्त छा जाएगा।

कपड़ा धोने का काम करने वाली अधिकाँश स्त्रियाँ यारीलो मैदान में रहती थीं। फुर्ती उन सब में कूट-कूट कर भरी थी, और कतरनी की भांति उनकी जुबान चलती थी। नगर के जीवन की एक-एक बात उन्हें मालूम थी और दुकानदारों, क्लर्कों और अफ़सरों का, जिनके यहाँ वे कपड़े धोती थीं, बहुत ही सजीव ढंग से वर्णन करती थीं। जाड़ों के दिनों में जब झरने का पानी बर्फ़ की

भांति ठंडा हो जाता तो कपड़े पछाड़ना बड़ा ज़ालिम काम मालूम होता। स्त्रियों के हाथ सुन्न हो जाते और खाल तड़कने लगती। लकड़ी की नाँद पर, जिसमें पानी बह कर आता था, झुके-झुके कमर अकड़ जाती। सिर पर लकड़ी की एक गिरी-पड़ी-सी छत थी जो न तो हवा से उनकी रक्षा कर पाती थी, न हिम कणों की बौछारों से। उनके चेहरे लाल और पाला-मारे हो जाते, दुःखती हुई उँगलियों के जोड़ काम करने से इन्कार कर देते, आँखों में आँसू उमड़ आते, लेकिन उनका चहकना फिर भी एक क्षण के लिए बंद न होता, वे बराबर बतियातीं, ताज़ी-से-ताज़ी घटनाओं के बारे में एक-दूसरे से चर्चा करतीं, और लोगों तथा दुनिया-भर की चीज़ों का निबटारा करने में असाधारण साहस का परिचय देतीं।

बातें करने में नतालिया कोज़लोवस्काया उनमें सब से तेज़ थी। आयु तीस से कुछ ऊपर, ताज़ी और हृष्ट-पुष्ट, जुबान ख़ास तौर से तेज़ और लचकीली, और खिल्ली उड़ाती सी आँखें। जब वह बोलती तो सबके कान उसकी ओर लग जाते, जब कोई बात सिर पर आ पड़ती तो सब उससे सलाह लेतीं और काम में दक्ष होने के कारण सब उसकी इज़्ज़त करतीं। इसके अलावा उसकी इज़्ज़त करने के कारणों में यह भी था कि वह बहुत ही साफ़-सुथरे और सुघड़ ढंग से कपड़े पहनती थी, और यह कि वह अपनी लड़की को पढ़ने के लिए स्कूल में भेजती थी। दो झौवा-भर गीले कपड़ों के बोझ से झुकी, पथ की रपटन से बचती, जब वह आती तो सबके चेहरे खिल जाते और वे पूछतीं:

"तुम्हारी लड़की तो मज़े में है न?"

"हाँ, अच्छी तरह है। पढ़ रही है। भला करें भगवान!"

"मेरी बात गाँठ बाँध लो, कुछ दिन के बाद बड़े घर की लड़कियाँ भी उसके सामने पानी भरती दिखाई देंगी!"

"इसीलिए तो मैंने उसे स्कूल में भर्ती कराया है। बड़े घर की लड़कियाँ कोई आसमान से बड़ी बन कर थोड़े ही टपकती हैं? हमारे-तुम्हारे जैसे छोटे लोग ही उन्हें बड़ा बनाते हैं, हमारा-तुम्हारा खून ही उनके गालों पर लाली बन कर चमकता है। जितना ही तुम पढ़ोगी, उतना ही अच्छी बनोगी। भगवान हमें दुनिया में भेजता है—एकदम कोरे और कच्चे, बिल्कुल मूर्ख; लेकिन यह उसकी इच्छा है कि बड़े और समझदार बन कर हम इस दुनिया से बिदा लें। अब यह हमारा काम है कि हम कितना पढ़ते-लिखते, और क्या कुछ सीखते-जानते हैं।"

सहज विश्वास के साथ, बिना किसी दुविधा के, उसके मुँह से शब्दों की धारा निकलती और सब, एकदम चुप होकर, उसकी बातें सुनतीं। मुँह पर वे उसकी तारीफ़ करतीं, और उसकी पीठ के पीछे भी। उसकी शक्ति, लगन और चतुराई देखकर वे चकित रह जातीं। लेकिन उस जैसा बनने की बात किसीको न सूझती। कोहनी तक अपनी बाँहों की हिफ़ाज़त करने और अपनी आस्तीनों को भीगने से बचाने के लिए उसने फुलबूट के ऊपरी चमड़े को काट-छांट कर दो खोल बना लिए थे जिन्हें वह अपने हाथों में पहने रहती थी। इन खोलों को देख सभी ने उसकी सूझ-बूझ की सराहना की, लेकिन अन्य किसीने अपने लिए ऐसे खोल नहीं बनाए, और एक दिन जब मैं ऐसे ही खोल अपने हाथों में डाल कर पहुँचा तो सबने मेरा मज़ाक उड़ाया।

"हो-हो-हो, महरिया की नकल करता है!" उन्होंने छींटा कसा।

और वे उसकी लड़की के बारे में कहतीं:

"माना कि पढ़-लिख कर खूब शटर-पटर करेगी! लेकिन इससे क्या, यही न कि पढ़ी-लिखी शाहज़ादियों की संख्या में एक

की बढ़ती और हो जाएगी! और कौन जाने, वह अपनी पढ़ाई पूरी न कर सके, भगवान इससे पहले ही उसे उठा ले। जीवन का क्या भरोसा, आज है और कल नहीं!"

"पढ़े-लिखों का जीवन भी कौन सुखमय होता है? बाखीलोव की लड़की को ही लो,—सालों तक पढ़ती रही। लेकिन नतीजा क्या निकला? एक स्कूल में मास्टरनी बन गई। अब तुम्हीं सोचो, स्कूल में मास्टरनी बनने का मतलब है जवानी में बुढ़ापा!"

"ऐसी पढ़ाई-लिखाई किस काम की जो जवानी को ही चाट ले। फिर लड़कियों को पढ़ने की ज़रूरत भी क्या है। अगर तुममें कुछ रस हो तो बिना पढ़े-लिखे ही चाहे जिसकी नाक पकड़ कर नचा सकती हो। अगर तुममें कुछ नहीं है तो कोई मुँह पर थूकने भी नहीं आएगा!"

"स्त्री की अकल उसकी खोपड़ी में नहीं, कहीं और अड्डा जमाती है!"

अपने ही बारे में जब वे इतनी निर्लज्जता से बातें करतीं तो बड़ा अजीब और अटपटा मालूम होता, और मैं काफ़ी बेचैनी का अनुभव करता। सैनिकों, जहाजियों और खाई-खोदने वालों को स्त्रियों के बारे में दुनिया-भर की उल्टी-सीधी बातें करते मैं सुन चुका था, और पुरुषों को आपस में डींग मारते और इस बात से अपने पुरुषत्व की माप करते भी मैं देख चुका था कि कितनी स्त्रियों को उन्होंने उल्लू बनाया। उनकी बातों और व्यवहार में 'घाघरा-वर्ग' के प्रति दुश्मनी का भाव साफ़ झलकता, लेकिन जब कभी भी मैं किसी पुरुष के मुँह से उसकी 'विजयों' का वर्णन सुनता तो मुझे लगता कि वह डींग मार रहा है, उसकी बातों में सचाई कम है और व्यर्थ का तूमार अधिक।

कपड़ा धोनेवाली स्त्रियाँ एक-दूसरे से अपने प्रेम के क़िस्सों का बखान नहीं करती थीं, लेकिन पुरुषों का जब वे ज़िक्र करतीं तो उसमें हँसी उड़ाने और बदला लेने का भाव झलकता जो इस कथन की पुष्टि करता कि स्त्रियाँ एक ऐसी शक्ति हैं जिसे मात देना आसान नहीं है।

"चाहे तुम कितना ही बच कर भागना चाहो," नतालिया ने एक दिन कहा,—"लेकिन घूम-फिर कर तुम्हें स्त्रियों के तलुवे चाटने पड़ेंगे।"

"तलुवे नहीं चाटेंगे तो और क्या करेंगे!" एक बूढ़ी खूसट ने फटे-बांस ऐसी आवाज़ में कहा।—"बड़े-बड़े साधु-सन्यासी तक पूजा-पाठ छोड़ हमारे पीछे खिंचे चले आते हैं!"

पानी में झागों और बुलबुलों के सुबकने और कपड़ों के पछाड़ने की आवाज़ों के साथ बातों का यह सिलसिला चलता रहता और घाटी के तल में छिपे इस सड़ांध-भरे स्थल में जहाँ सारी गंदगी को साफ़ कर देनेवाली बर्फ़ भी अधिक देर तक न टिक पाती, निहायत नंगे और कुत्सापूर्ण ढंग से जन-सृष्टि के उस महान रहस्य का परदा उघाड़ा जाता जिसके फलस्वरूप सभी जातियों और सभी कबीलों का इस दुनिया में आना सम्भव हुआ है। उनकी इन बातों को सुन कर मेरा हृदय काँप उठता, एक ऐसी घबराहट और घृणा मेरे विचारों और भावनाओं में समा जाती कि प्रेम सम्बन्धी उन सभी बातों और घटनाओं से मैं बचना और दूर भागना चाहता जो कि इस बुरी तरह मेरे चारों ओर फैली थीं और क़दम-क़दम पर आँखों के सामने आतीं। प्रेम के बारे में जब भी मैं सोचता, गंदे और घिनौने दृश्य आँखों के सामने उभर आते। प्रेम का यह रूप, गंदे और घिनौने दृश्यों के साथ उसका यह अटूट गठबन्धन, मेरे हृदय और मस्तिष्क पर छा गया, और काफ़ी दिनों तक छाया रहा।

यह सब होने पर भी घाटी में कपड़ा धोनेवाली इन स्त्रियों के साथ, या बावर्ची घरों में अफ़सरों के अरदलियों अथवा खोहनुमा घरों में मज़दूरों के साथ, जीवन बिताना मुझे कहीं अच्छा लगता। इसके मुकाबिले में घर का बेजान जीवन, बोलने-चालने और सोचने का वही एक घिसा-पिटा और जंग-खाया ढर्रा, रोना और झींकना, एक ऐसी बोझिल उदासी का संचार करता कि दम घुटने लगता। मालिकों का जीवन क्या था, खाने-पीने, सोने और बीमार पड़ने का एक कुत्सित चक्र था। आँखें खुलते ही उनकी चराई शुरू हो जाती, दिन-भर चरते और जुगाली करते रहते, रात को फिर सो जाते। गुनाह और मौत उनकी बातों के ओर-छोर थे। मौत से वे बहुत डरते। दिन रात इन्हीं की चक्की पीसते, गुनाहों के बोझ के नीचे कुचले जाने के भय से काँपते और कंपाते रहते।

काम से छुट्टी मिलने पर मैं बाहर सायवान में चला जाता और लकड़ियाँ चीरने लगता। इस तरह मैं अकेले रहने का प्रयत्न करता, लेकिन बहुत कम सफल हो पाता। अफ़सरों के अरदली, अदबदा कर, आ धमकते और अहाते में रहने वाले लोगों के बारे में बातें शुरू कर देते।

इन अरदलियों में से दो, येरमोखिन और सिदोरोव, अक्सर मेरे पास आते। येरमोखिन कलूगा का रहने वाला था। लम्बा कद और कंधे झुके हुए, छोटा सिर, आँखें धुंधली और उसका समूचा शरीर, ऊपर से नीचे, केवल मोटे और मज़बूत स्नायुओं का ताना-बाना मालूम होता था। वह काहिल और इतना बेवकूफ़ था कि उससे तबीयत भन्ना जाती थी। चाल-ढाल में वह बेढंगा और सुस्त था। जब किसी स्त्री को देख लेता तो मिमियाने लगता और ऐसा मालूम होता कि अभी उसके पाँवों पर गिर कर ढेर हो जाएगा। बावर्चिनों, दाइयों और नौकरानियों पर वह इस तरह आनन-फानन

डोरे डालता कि सभी चकित रह जाते। सभी उससे ईर्ष्या करते, और भालू ऐसी उसकी शक्ति से भय खाते। सिदोरोव तूला का रहने वाला था। दुबला-पतला और कड़ियल। वह हमेशा उदास-सा रहता, दबे हुए स्वर में बातें करता, और सहमा हुआ सा खांसता खखारता। उसकी आँखों में जैसे डर झलक मारता और वे हमेशा अंधेरे कोनों की खोज करतीं। चाहे वह फुसफुसा कर बातें करता हो, या एकदम चुप बैठा हो, उसकी आँखें हमेशा सबसे अंधेरा कोना खोजतीं और वहीं चिपकी रहतीं।

"उधर क्या देख रहे हो?"

"हो सकता है, कोई चूहा उधर से निकल आए। मुझे चूहे पसंद हैं—देखने में छोटे पर कितने चपल और कितने शान्त।"

अरदली मुझसे चिट्ठियाँ लिखवाते, कभी अपनी प्रेमिकाओं के नाम, कभी अपने घरवालों के नाम जो देहातों में रहते थे। मुझे चिट्ठियाँ लिखना अच्छा लगता, खास तौर से सिदोरोव की चिट्ठियाँ लिखने में मेरा खूब जी लगता। हर शनिवार के दिन वह अपनी बहन के नाम चिट्ठी लिखाता जो तूला में रहती थी।

वह मुझे अपने बावर्चीघर में ले जाता और एक मेज़ पर मेरी बगल में बैठ जाता। अपने सफाचट सिर को तेज़ी से खुजलाता और मेरे कानों में फुसफुसाता:

"हाँ तो अब शुरू करो। सबसे पहले तो सिरी नामा लिखो: 'मेरी अत्यन्त पूजनीय बहन, भगवान तुम्हें सदा खुश रखे',—अरे तुम तो सब जानते हो कि कैसे-क्या लिखा जाता है। लिख लिया? अच्छा तो अब आगे लिखो: 'तुमने जो रूबल भेजा था सो मुझे मिल गया, लेकिन यह तुमने ठीक नहीं किया, और आगे तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, और इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यहाँ किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, मैं बहुत अच्छी तरह से हूँ'—समझ गए न चिट्ठी

में ऐसे ही लिखा जाता है। यों सच पूछो तो कुत्ते भी हम से अच्छा जीवन बिताते हैं, लेकिन उसे यह सब बताने से क्या फ़ायदा। हाँ, तो लिखो: 'मैं बहुत अच्छी तरह से हूँ।' अभी उसकी उमर ही क्या है? मुश्किल से चौदह साल की होगी। सारी बातें लिख कर उसकी जान साँसत में क्यों डालूं? हाँ तो लिखो,—लेकिन तुम तो सब जानते हो जैसे लिखा जाता है, वैसे ही लिखकर इसे पूरा कर डालो!"

और वह मेरे कंधे पर झुक गया। उसके मुँह से निकली गर्म साँस और बदबू मेरे मुँह पर आ रही थी और वह बराबर फुसफुसा रहा था:

"और यह भी लिखो कि वह लड़कों को अपने पास न फटकने दे, छातियों या बदन के किसी अन्य हिस्से पर उनकी हवा तक न लगने दे। और लिखो कि कभी किसी की मीठी बातों के बहकावे में न आए। अगर कोई मीठी बातें करे तो समझे कि वह उसे उल्लू बना रहा है, और उसका नाश करने का जाल रच रहा है।"

सहसा उसके गले में एक फंदा-सा पड़ गया, और खाँसी रोकने के भारी प्रयास में उसका भूरा चेहरा लाल हो उठा, उसके गाल कुप्पा-से हो गए, आँखों में आँसू आए, और कुर्सी पर अपने बदन को दोहरा किए, मेरी बाँह से टकराता हुआ, वह काँपने लगा।

"लिखूँ कैसे? तुम तो मेरा हाथ हिला रहे हो!"

"कोई बात नहीं," उसने कहा।—"हाँ तो अब आगे लिखो: 'बाबू लोगों से ख़ास तौर से बचकर रहना। ये सफ़ेदपोश पहली बार में ही मिट्टी खराब कर देते हैं। वे कुछ इस ढंग से चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं कि एक बार अपने जाल में फंसाने के बाद तुम्हें वे कसबिन बना कर ही छोड़ेंगे। अगर तुम एकाध रूबल बचा सको तो उसे पादरी के पास जमा करा देना, लेकिन यह देख लेना

कि पादरी ईमानदार हो। अच्छा तो यह होगा कि उसे कहीं ज़मीन में गाड़ कर छिपा दो। लेकिन यह काम इस तरह करना कि किसी की नज़र न पड़े, और जिस जगह गाड़ो वह ऐसी जगह हो कि तुम उसे भूल न जाओ।"

सिर के ऊपर ही एक छोटी-सी खिड़की थी जो बराबर चरचराती और खड़खड़ करती थी। खिड़की की इस आवाज़ में डूबी उसकी फुसफुसाहट हृदय को बुरी तरह कुरेदने लगती। सिर उठा कर मैं कालिखलगे तन्दूर और बरतन रखने की अल्मारी की ओर देखता जिसे मक्खियों के दाग-धब्बों ने रंग रखा था। बावर्चीखाना क्या था, गंदगी का घर था। खटमलों की भरमार थी और धुएं, मिट्टी के तेल और जली हुई चर्बी की गंध से भरा था। तन्दूर के ऊपर और जलावन के भीतर तिलचट्टे सरसरा रहे थे। मेरा हृदय बोझिल और उदास था, और इस गरीब सिपाही तथा उसकी बहन के दुःख से आँखों में आंसू उमड़ आए थे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इस तरह की परिस्थितियों में कोई कैसे जीवित रह सकता है?

सिदोरोव की फुसफुसाहट से बेखबर मैं लिखता ही गया। मैंने लिखा कि जीवन कितना बोझिल, कितने दर्द और दुःखों से भरा है। अन्त में उसने एक ठंडी साँस ली और बोला:

"धन्यवाद। आज तो तुमने ढेर सारा लिख दिया। अब उसे मालूम हो जायगा कि किन-किन चीज़ों से उसे बच कर रहना चाहिए।"

"बच कर क्यों रहे? नहीं, तुम्हें किसी भी चीज़ से डरना नहीं चाहिए!" मैंने झुंझलाकर कहा, हालांकि मैं खुद भी कितनी ही चीज़ों से डरता था।

वह हँसा और फिर गले को साफ़ करते हुए बोला:

"तुम निरे चुगद हो! डर से तुम भले ही पीछा छुड़ाना चाहो, लेकिन वह तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा। भले लोगों का डर, खुदा का डर, और अन्य बहुत-सी चीज़ों का डर,—बोलो, कहाँ तक भागोगे?"

जब उसे अपनी बहन का खत मिलता तो वह लपका हुआ मेरे पास आता। कहता:

"यह लो, ज़रा जल्दी से पढ़ सुनाओ।"

और निराशाजनक हद तक छोटे तथा बेकार उस खत को जिसकी लिखावट समझना अच्छा-खासा वबाले जान होता, वह मुझसे तीन बार पढ़वा कर सुनता।

वह भला और अच्छे हृदय का आदमी था। लेकिन स्त्रियों के प्रति उसका रवैया भी वैसा ही था जैसा कि दूसरे लोगों का—अनगढ़ और आदिम। मेरी आँखों के सामने नित्य ही द्रुत गति से एक न एक गुल खिलता और चाहे या अनचाहे रूप में मुझे यह सब देखना पड़ता। सिदोरोव स्त्रियों के सामने अपने कठोर सैनिक जीवन का रोना रोता और उनके हृदय में सहानुभूति जगाने का प्रयत्न करता, और ऐसा दिखाता मानो उनके प्रेम में उसकी जान निकली जा रही है। इस तरह उसका जादू चल जाता। बाद में येरमोखिन से अपनी विजय का ज़िक्र करते समय मुँह बनाकर वह इस तरह ज़मीन पर थूकता मानो उसने कोई कड़ुवी गोली खा ली हो। यह देख मुझे ऐसा लगा जैसे किसीने जले पर नमक छिड़क दिया हो। मैंने सैनिक से पूछा कि इस झूठ और फरेब के विना क्या उनका काम नहीं चल सकता, स्त्रियों के साथ इस तरह खिलवाड़ करना, उन्हें एक के बाद दूसरे के हाथों में उछालना, यहाँ तक कि उन्हें मारना-पीटना, कहाँ का न्याय है?

वह धीरे से हँसा और बोला:

"तुम्हारे लिए इन सब बातों की ताक-झांक करना ठीक नहीं। सभी जानते हैं कि ये बातें बुरी हैं, सोलहों आना पाप है। लेकिन तुम अभी बहुत छोटे हो। बड़े होने पर अपने-आप सब समझ जाओगे।"

लेकिन मैंने एक दिन उसे ऐसा पकड़ा कि इधर-उधर की बातों में न टाल कर उसे सीधा और साफ़ जवाब देना पड़ा। और उसका यह जवाब ऐसा था कि मैं उम्र भर न भूला।

"तुम्हारी समझ में स्त्री यह नहीं जानती कि उसे उल्लू बनाया जा रहा है," आँख मार कर खखारते हुए उसने कहा।—"लेकिन मैं कहता हूँ कि वह इसे खूब अच्छी तरह जानती है। वह खुद चाहती है कि उसे उल्लू बनाया जाए। लेकिन यह बात मुँह से कोई नहीं कहता। सब झूठ की चादर तानते हैं। उन्हें शर्म मालूम होती है न? असलियत यह है कि कोई किसीसे प्रेम नहीं करता, केवल मज़े के लिए यह सब करते हैं। और यह एक बहुत ही शर्मनाक बात है कुछ दिन की कसर और है, बड़े होने पर खुद तुम भी यह सब सीख जाओगे। रात का अंधेरा इसके लिए ज़रूरी है, और अगर दिन हो तब भी किसी अंधेरे कोने की ज़रूरत पड़ती है—जैसे लकड़ियों के पीछे या ऐसी ही कोई और जगह। आदम और हौवा ने यही तो किया था जिसपर नाराज़ हो कर खुदा ने उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया, और इसीकी वजह से दुनिया में इतना दुःख-दर्द फैला है।"

यह सब उसने कुछ इतना खुलकर, सच्चे और उदास हृदय से कहा कि इससे एक हद तक, उसके अपने पापों का भुगतान हो गया। उसके साथ मैं जितना घुलमिल गया, उतना येरमोखिन के साथ नहीं। उससे तो मैं घृणा करता था। उसकी नाक में दम करने और उसका मज़ाक उड़ाने से कभी नहीं चूकता था। मेरा तीर निशाने पर बैठता और येरमोखिन, मेरी जान का दुश्मन बना हुआ,

बहुधा अहाते में मेरे पीछे झपटता, लेकिन उसका बेढंगापन साथ न देता और मैं साफ़ निकल भागता।

"वर्जित फल का चखना ही सारी मुसीबतों की जड़ है," अन्त में सिदोरोव कहता।

फल वर्जित है, यह तो मैं भी जानता था, लेकिन मानव की सारी मुसीबतों और दुःख-दर्द की जड़ भी वही है, यह बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरती थी। कारण कि सब कुछ होते हुए भी उस असाधारण चमक से मैं परिचित था जो प्रेम में पड़े स्त्री-पुरुषों की आँखों में दिखाई देती थी। इस चमक को अनेक बार मैं देख चुका था। प्रेमी-प्रेमिकाओं की अद्‌भुत हार्दिकता, उनकी अद्‌भुत निश्छलता, मुझसे छिपी न थी। दिलों को मिलते, एक-दूसरे के निकट आते और प्रेम से उत्पन्न उनके उल्लास को जब भी मैं देखता था, मेरा हृदय नाच उठता था।

और यह उन दिनों की बात है जब जीवन और भी अधिक बोझिल, और भी अधिक क्रूर होता जा रहा था, और गांठ-गठीले नाते-रिश्तों तथा आपा-धापी की उस दलदल से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था जो मेरे चारों ओर फैली थी। जो कुछ है, उसे बदला या और अच्छा बनाया जा सकता है, यह मुझे सपने में भी नहीं सूझता था। लगता था कि इसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा, सदा ऐसे ही चलता रहेगा।

इन्हीं दिनों सैनिक के मुँह से मैंने एक ऐसी घटना सुनी जिससे मेरा हृदय बुरी तरह झनझना उठा। अहाते के घरों में से एक में एक कटर रहता था। वह नगर के सबसे अच्छे दर्ज़ी की दुकान पर काम करता था। वह शान्त स्वभाव का बहुत ही भला आदमी था। वह रूसी नहीं था। उसकी पत्नी एक छोटी-सी औरत थी — फकतदम, न कोई बच्चा, न कच्चा। दिन-भर किताबें पढ़ा

करती। अहाते में चाहे कितना ही शोर-गुल मचे, शराबियों के मारे चाहे कितना ही नाक में दम क्यों न हो, लेकिन वे दोनों बाहर निकल कर कभी झांकते तक नहीं। न ही उनकी कभी शक्ल दिखाई देती। वे कभी किसीको अपने घर नहीं बुलाते, न ही खुद कहीं जाते, एक रविवार को छोड़कर जब थिएटर देखने के लिए वे बाहर निकलते।

पति तड़के ही काम पर चला जाता, और गई रात लौटता। उसकी पत्नी जो देखने में चौदह-पन्द्रह साल की लड़की मालूम होती थी, सप्ताह में दो बार दोपहर के समय पुस्तकालय जाती। छोटे-छोटे डग भरती जब वह गली में से गुज़रती तो मैं उसे देखा करता। ऐसा मालूम होता मानो उसकी टांग में बाँकपन हो, वह कुछ लंगड़ा कर चलती। अपने छोटे-छोटे हाथों में, बड़ी सुघराई से, वह दस्ताने पहने रहती और उसके हाथ में स्कूली लड़कियों की भांति किताबों का थैला झूलता रहता। चिड़िया ऐसा उसका चेहरा था, और छोटी-छोटी चपल आँखें। वह इतनी सुघर और सुन्दर थी कि लगता जैसे चीनी की गुड़िया ताक पर रखी हो। सैनिकों का कहना था कि उसके दाहिने बाज़ू की एक पसली गायब है, इसी लिए लंगड़ा कर चलती है। लेकिन मुझे उसकी टाँगों का यह बाँकपन अच्छा लगता, और साफ़ मालूम होता कि वह हमारे अहाते में रहने वाली अफ़सरों की बीवियों से सर्वथा भिन्न कोटि की जीव है। बावजूद इसके कि वे दिन-भर चहकती थीं, लक़दक कपड़े पहनती थीं और छातियाँ उभार कर चलती थीं, वे बूढ़ी और जंगखाई सी मालूम होतीं, उस फ़ालतू सामान की भांति जिसकी कभी ज़रूरत नहीं पड़ती और जिसे किसी उपेक्षित कोने में डाल दिया जाता है।

कटर की छोटी पत्नी को पड़ोसी इस तरह देखते मानो वह कोई "अजूबा" हो, उसके दिमाग़ का पेच ढीला पड़ गया हो या अपनी

जगह से खिसक कर दूसरी जगह पहुँच गया हो। वे कहते कि किताबों ने उसे निकम्मा बना दिया है, और वह इस लायक नहीं रही कि घर का कोई काम कर सके। सारा काम उसका पति ही करता था: बाज़ार से सौदा-सुलफ़ वही लाता था, बावर्चिन को आदेश भी वही देता था। यह बावर्चिन भी किसी गैर देश की रहने वाली थी—भारी-भरकम और नकचढ़ी। उसकी एक आँख सूजी हुई थी जो बराबर बहती रहती थी, और दूसरी आँख की जगह एक गुलाबी से निशान के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता था। घर की मालकिन का यह हाल था कि वह—पड़ोसियों के शब्दों में—सूअर माँस और गोमाँस तक में तमीज़ नहीं कर सकती थी। एक दिन वह बाज़ार गई और गाजर के बजाय मूली खरीद कर खूब बेवकूफ़ बनी! और कोई होता तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरती!

अहाते के जीवन से उनका—पति, पत्नी और बावर्चिन का—कोई मेल नहीं था। ऐसा मालूम होता था जैसे वे योंही, संयोगवश, यहाँ आ टपके हों, आकाश में उड़ने वाले उन पक्षियों की भांति जो बर्फ़ीली हवा के थपेड़ों से बचने के लिए खिड़की या रोशनदान के रास्ते मानव-बस्ती के किसी गंदे और दमघोट घर में घुस कर शरण लेते हैं।

और इसके बाद ही अरदलियों के मुँह से सुना कि कटर की इस छोटी सी पत्नी के साथ उनके अफ़सर एक बहुत ही कमीना और बेहूदा खेल खेल रहे हैं। बिला नागा, करीब-करीब हर रोज़, वे उसके पास परवाना भेजते, अपने प्रेम और हृदय की खुदर-पुदर का राग अलापते, उसकी खूबसूरती की तारीफ़ के पुल बांधते। जवाब में वह लिखती कि मुझे बख्शो। इस बात पर वह दुःख प्रकट करती कि उसे लेकर उनके हृदय की यह हालत हुई, और कामना करती कि भगवान उन्हें शीघ्र ही इस रोग से छुटकारा दिलाए। उसका

यह पत्र पाते ही सब अफ़सर जमा होकर एक साथ उसे पढ़ते, जी भर कर हँसते, और फिर सब मिलकर नया पत्र लिखते जिसपर उनमें से कोई एक दस्तखत कर देता।

यह सब बताते समय अरदली भी हँसने और स्त्री की टाँग खींचने में पीछे न रहते।

"यह लंगड़ी भी एकदम उल्लू है!" येरमोखिन ने अपनी गहरी गूंजती हुई आवाज़ में कहा।

"यह उल्लूपन ही तो स्त्रियों की खूबी है," सिदोरोव ने स्वर में स्वर मिलाया,—"असल में वे समझती सब हैं, और चाहती यह हैं कि उन्हें कोई ज़बर्दस्ती उल्लू बनाए!"

मुझे यक़ीन नहीं हुआ कि कटर की पत्नी अफ़सरों की इस शरारत से परिचित है, वह जानती है कि वे उसे उल्लू बना रहे हैं। और मैंने उसे खबर देने का निश्चय कर लिया। एक दिन, यह देख कर कि बावर्चिन नीचे तहखाने में गई हुई है, पीछे के ज़ीने से लपक कर मैं उसके घर में चढ़ गया। रसोईघर में मैंने प्रवेश किया, वह खाली था। फिर भोजन करने के कमरे में मैं गया। वहाँ कटर की पत्नी दिखाई पड़ी। एक हाथ में वज़नदार सुनहरी प्याला और दूसरे में एक पुस्तक लिए वह मेज़ पर बैठी थी। डर के मारे उसने पुस्तक अपनी छाती से सटा ली, और धीमे स्वर में चीख उठी:

"कौन हो तुम? देखो तो, आगस्ता! यहाँ कौन घुस आया है?"

अटपटे से कुछ शब्द मेरे मुँह से निकले और मुझे लगा कि प्याला या किताब दोनों में से कोई एक चीज़ अभी मेरे सिर से आकर टकराएगी। अखरोट की लकड़ी की बड़ी-सी कुर्सी पर वह बैठी थी, आसमानी रंग का लबादा उसने पहन रखा था जिसमें नीचे झालर और गले तथा कलाइयों पर बेल लगी थी, और सुनहरी रंग के घुंघराले बाल उसके कंधों पर लहरा रहे थे। ऐसा

मालूम होता था जैसे गिरजे के राजद्वार की मेहराब के फ़रिश्त में से एक यहाँ उतर आया है। पीछे की ओर झुकते हुए उसने कुर्सी की पीठ का सहारा लिया, और अपनी गोल-मटोल आँखों से नज़र गड़ा कर मेरी ओर देखने लगी। पहले तो उसकी आँखों में ग़ुस्से की लपक थी, लेकिन शीघ्र ही उसके चेहरे का भाव मुलायम पड़ा, और अचरज-भरी मुसकराहट से खिल उठा।

उसे सब कुछ बताने के बाद मैं वापिस लौटने के लिए मुड़ा।

"ज़रा ठहरो!" वह चिल्लाई।

प्याला उसने ट्रे में रख दिया, किताब को मेज़ पर पटक कर उसने अपने दोनों हाथों को मोड़ लिया और बड़े आदमी की भांति भरपूर आवाज़ में बोली:

"तुम भी कितने अजीब लड़के हो! ज़रा इधर आओ।"

सहमा-सा मैं उसकी ओर बढ़ा। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया, और छोटी ठंडी उँगलियों से उसे थपथपाया।

"क्यों, मुझे यह सब बताने के लिए किसी और ने तो तुम्हें नहीं भेजा?" उसने पूछा।—"अच्छा-अच्छा, तुम्हारी बात का मैं यक़ीन करती हूँ कि तुम खुद अपने मन से ही यहाँ आए हो।"

उसने मेरा हाथ छोड़ कर अपनी आँखों को ढक लिया और फिर धीमे, चोट खाए से स्वर में बोली:

"तो ये मुँहजले सैनिक मेरे बारे में इस तरह की वाही-तबाही बकते हैं?"

"तुम यह जगह छोड़ क्यों नहीं देती, यहाँ से कहीं और चली जाओ," बड़ों की भांति मैंने सलाह दी।

"क्यों?"

"वे तुम्हें कहीं की नहीं छोड़ेंगे।"

वह बड़े ही सुहावने ढंग से हँसी।

"क्या तुम पढ़ना-लिखना जानते हो?" उसने पूछा।—"क्या तुम्हें पुस्तकें पढ़ने का चाव है?"

"मुझे वैसे ही फ़ुरसत नहीं मिलती।"

"पढ़ने का चाव हो तो फ़ुरसत भी निकाल ही लोगे। अच्छा तो अब जाओ। तुम मुझे ख़बर देने आए, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद!"

उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। अँगूठे और उँगली के बीच में चांदी का एक सिक्का चमचमा रहा था। उसके बहुत-बहुत धन्यवाद का यह ठंडा रूप देख कर मैं शर्म से कट गया, लेकिन मुझसे इन्कार करते नहीं बना। जब मैं नीचे उतरने लगा तो उस सिक्के को ज़ीने के खम्बे पर छोड़ कर चला आया।

गहरी और सर्वथा नयी छाप लेकर मैं उसके यहाँ से लौटा। ऐसा मालूम होता था जैसे मेरे जीवन में एक नयी सुबह का उदय हुआ हो। कई दिन तक मुझपर एक नशा-सा सवार रहा और उस खुलासा कमरे तथा फ़रिश्ते की भांति आसमानी लबादा पहने कटर की नन्ही पत्नी की याद में मैं झूमता रहा। वहाँ की हर चीज़ में एक अनदेखा सौन्दर्य था। उसके पाँव के नीचे फ़र्श पर एक गुदगुदा सुनहरी क़ालीन बिछा था और जाड़ों का ठिठुरा हुआ दिन, मानो उसके स्पर्श से अपने को गरमाने के लिए, रुपहली खिड़की में से भीतर झांक रहा था।

मेरा मन उसे एक बार और देखने के लिए ललक रहा था। किताब माँगने के बहाने अगर मैं उसके पास जाऊँ तो बुरा न होगा।

मैं गया, और उसे ठीक उसी जगह पर बैठे देखा। इस बार भी वह अपने हाथों में एक किताब लिए थी। लेकिन इस बार उसके चेहरे पर किशमिशी रंग का रूमाल बंधा था, और उसकी एक आँख सूजी हुई थी। उसने मुझे काली जिल्द वाली एक किताब उठा

कर दे दी और बुदबुदा कर कुछ कहा जो मैं समझ नहीं सका। भारी हृदय से मैंने पुस्तक ले ली। पुस्तक में से क्रेयोसोट और अनीसीड पौधों की सुगंध आ रही थी। घर लौटने पर मैंने पुस्तक को एक कागज़ और साफ़ ब्लाउज़ में लपेटा और ऊपर जाकर तिदरी में छिपा दिया। मुझे डर था कि अगर पुस्तक मालिकों के हाथ पड़ गई तो वे उसे नष्ट कर डालेंगे।

मेरे मालिक "नीवा" नाम का एक मासिक पत्र मंगाते थे यह इसलिए कि पत्र के ग्राहकों को पोशाकों के नमूने और अन्य चित्रमय उपहार मुफ़्त में ही मिलते थे। पत्र को वे पढ़ते कभी नहीं थे, केवल चित्रों को देखते और इसके बाद, सोने के कमरे में, कपड़े रखने की अलमारी के ऊपर उसे डाल देते। साल पूरा होने पर वे उसकी जिल्द बंधवा लेते और "चित्रमय जगत" की तीन जिल्दों के साथ पलंग के नीचे छिपा कर रख देते। जब कभी मैं सोने के कमरे का फ़र्श धोता तो ये जिल्दें गंदे पानी में सराबोर हो जातीं। इनके अलावा मेरा मालिक एक समाचार-पत्र भी मंगाता था। उसका नाम था: "रूसी कोरियर।"

"इन अखबार वालों की बातें भी शैतान ही समझ सकता है," सांझ को जब वह समाचार-पत्र पढ़ता तो कहता,—"एकदम दून की हाँकते हैं।"

शनिवार के दिन कपड़े सुखाने के लिए जब मैं ऊपर गया तो मुझे किताब का ध्यान हो आया। मैंने उसे बाहर निकाला, उसका काग़ज़ खोला और शुरू की पंक्ति पर नज़र डाली:

"घर भी इन्सानों की भांति होते हैं, इस मानी में कि हर मकान की अपनी एक रूप-रेखा, अपना एक आकार-प्रकार होता है।" इस एक पंक्ति की सचाई ने मुझे स्तब्ध कर दिया। मैंने आगे

पढ़ना शुरू किया और रोशनदान की खिड़की से सटा उस समय तक पढ़ता रहा जब तक कि ठंड के मारे वहाँ बैठे रहना असम्भव न हो गया। सांझ को जब मेरे मालिक गिरजा चले गए तो पुस्तक के साथ मैंने रसोईघर में अड्डा जमाया और पतझड़ के पत्तों की भांति पीले पड़े उसके जीर्ण पन्नों में इतना डूब गया कि कुछ सुध न रही। उन्होंने मुझे दूसरी ही दुनिया में पहुँचा दिया, नये नामों और नये नाते-रिश्तों की दुनिया में, एक ऐसी दुनिया में जिसमें नेक नायक भी थे और खल नायक भी—इस दुनिया के उन सभी लोगों से भिन्न जिन्हें मैं जानता-पहचानता और अपने चारों ओर देखता था। यह एक काफ़ी बड़ा उपन्यास था, द-मौन्तेपिन का लिखा हुआ। उपन्यास क्या था, पात्रों, घटनाओं और हलचल से भरी एक अजीब ज़िन्दगी का चित्र था। हर चीज़ इतनी साफ़ और इतनी सजीव थी कि देखकर अचरज होता, मानो पंक्तियों के पीछे कोई रोशनी छिपी हो जो हर बुरे और भले पहलू को उजागर करती, पाठक को प्रेम और घृणा करना सिखाती तथा उसे उन तमाम घटनाओं और परिस्थितियों के आल-जाल में से गुज़ारती जिसमें कि उसके पात्र फंसे होते। पात्रों में से कुछ के साथ सहानुभूति होती, उन्हें सहारा देने के लिए जी ललक उठता; और कुछ के साथ घृणा होती, जी चाहता कि उनका नाम-निशां तक मिटा दिया जाए। पढ़ते-पढ़ते पाठक भूल जाता कि यह सारा जीवन, जो इतने अद्भुत और अप्रत्याशित रूप में उसकी आँखों के सामने प्रकट हुआ है, केवल पुस्तक के पन्नों तक ही सीमित है, कागज़ के पन्ने से बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। सच तो यह है कि घटनाओं के उतार-चढ़ाव में पाठक इतना खो जाता कि उसे अन्य किसी चीज़ का ध्यान नहीं रहता, कभी उसका हृदय खुशी से नाच उठता, कभी निराशा से सिर धुनने लगता।

पढ़ने में मैं इस हद तक पूर्णतया डूब गया कि जब दरवाज़े की घंटी बजी तो एकाएक मैं समझ नहीं सका कि उसे कौन बजा रहा है, और किस लिए बजा रहा है।

मोमबत्ती क़रीब-क़रीब सारी जल चुकी थी और मोमबत्तीदान में जिसे मैंने आज सुबह ही चमकाया था, पिघले हुए मोम की परत जमी थी। देव-प्रतिमा का दीया जिसे सदा चेतन रखना मेरा काम था, दीवट से खिसक कर बुझ गया था। अपने अपराध के चिन्हों को छिपाने के लिए मैंने रसोईघर में लपक-झपक शुरू की, किताब को मैंने तन्दूर के नीचे खिसका दिया, और देव प्रतिमा के दीये को ठीक करने लगा।

"बहरे हो क्या? घंटी की आवाज़ सुनाई नहीं देती?" सोने के कमरे में से भाग कर आते हुए आया चिल्लाई।

मैं सदर फाटक की ओर लपका।

"क्या सो रहा था?" मालिक ने कड़े स्वर में कहा। उसकी पत्नी भी चिचियाई कि मेरी वजह से बाहर खड़े-खड़े उसे ठंड ने जकड़ लिया। उसकी माँ ने भी लगे हाथ डांटना-डपटना शुरू कर दिया। रसोईघर में पाँव रखते ही जली हुई मोमबत्ती पर उसकी नज़र पड़ी और उसने सवाल किया कि मैं क्या कर रहा था।

मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। मुझसे बोला नहीं गया और भय के मारे मेरी जान सूख गई कि कहीं उसके हाथों में किताब न पड़ जाए। बुढ़िया ने चिल्ला कर सारा घर सिर पर उठा लिया कि अगर मेरा दिमाग़ ठीक न किया गया तो मैं एक दिन सारा घर जला कर राख कर दूँगा, और जब मेरा मालिक और उसकी पत्नी खाना खाने के लिए बैठे तो वह बोली:

"देखो न, इसने सारी मोमबत्ती जला डाली। इस तरह तो एक दिन यह सारा घर जला डालेगा।"

खाना खाते समय मुँह के साथ-साथ उनकी जुबान भी चलती रही और मुझे भला-बुरा कहने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। जाने अनजाने मेरे सभी गुनाहों का उन्होंने जिक्र किया और मुझे चेताया कि मेरा अंजाम बुरा होगा। लेकिन मैं जानता था कि उनकी सारी डांट-फटकार के पीछे न तो कोई बुरी भावना है और न भली, बल्कि इस तरह वे केवल अपने जीवन का बोझा कुछ हल्का करते हैं। और यह देखकर मुझे बड़ा अजीब लगा कि पुस्तक के पात्रों के मुक़ाबले में वे कितने तुच्छ और कितने बेहूदा मालूम होते हैं!

जब वे खाना खा चुके और उनके पेट गले तक भोजन से अट गए तो अलसाए हुए से उठे और सोने के लिए चल दिए। बूढ़ी मालकिन, अपनी कुत्सित शिकायतों से कुछ देर तक भगवान की नाक में दम करने के बाद, तन्दूर पर चढ़ कर चित्त हो गई। उसके सन्नाटा साधते ही मैंने तन्दूर के नीचे से अपनी किताब निकाली और खिड़की के पास जा बैठा। उजली रात थी, आकाश में पूरा चांद चमक रहा था, लेकिन पुस्तक के अक्षर इतने छोटे थे कि उन्हें पढ़ना मुश्किल था। हृदय में पढ़ने की ललक इतनी ज़ोरदार थी कि उसे दबा न सका। बरतनों के ख़ाने में से मैंने एक ताम्बे की तश्तरी निकाली, और चांद की किरनों का उसपर जो अक्स पड़ा, उससे पुस्तक के पन्नों को चमकाने की कोशिश की। लेकिन यह कोशिश और भी बेकार रही, चमकने के बजाए पन्ने और भी धुंधले दिखाई देने लगे। इसके बाद मैं कोने में रखे बेंच पर खड़ा हो गया और देव-प्रतिमा के दीये की रोशनी में पढ़ने लगा। जब थकान के मारे टाँगें जवाब देने लगीं तो मैं वहीं बेंच पर पड़ कर सो गया। अन्त में बूढ़ी मालकिन की चिल्लाहट और घूंसों ने मुझे जगा दिया। केवल रात का लबादा पहने, नंगे

पाँव, वह वहाँ खड़ी गुस्से में सिर झटक रही थी। उसका चेहरा गुस्से से तमतमा रहा था, मेरी पुस्तक वह अपने हाथ में लिए थी और उसी से मेरी गरदन और कंधों पर प्रहार कर रही थी।

"बस भी करो माँ, क्यों चिल्लाए जा रही हो?" वीक्तर ने अपने तख्ते पर लेटे-लेटे कहा।—"तुम्हारी वजह से इस घर में रहना मुश्किल है!"

और मुझे अपनी पुस्तक की फ़िक्र थी। मैं सोच रहा था कि अब उसकी खैर नहीं, बिना फाड़े बुढ़िया दम न लेगी।

अगले दिन, नाश्ते के समय, मेरी पेशी हुई।

"यह पुस्तक तुम कहाँ से लाए?" मालिक ने कड़े स्वर में सवाल किया।

स्त्रियाँ भी मुझपर चिल्लाने में पीछे नहीं रहीं। वीक्तर ने पुस्तक को उठा कर सूंघा और चमक कर बोला:

"वाह, इसमें से तो इत्र की गंध आती है!"

जब मैंने उन्हें बताया कि यह पुस्तक मैंने पादरी से ली है तो उनकी आँखें फटी-की फटी रह गईं, पुस्तक को उलट-पुलट कर उन्होंने देखा और उपन्यास पढ़ने वाले पादरी पर झुंझलाहट उतारी।

इससे उनका गुस्सा कुछ हल्का पड़ा, हालांकि मालिक मुझे फिर भी चेतावनी देना न भूला कि पुस्तकें पढ़ना नुकसानदेह और ख़तरनाक है। बोला:

"और वे लोग भी तो पुस्तकें ही पढ़ते थे जिन्होंने रेल की पटरियाँ उड़ा कर..."

"तुम पागल तो नहीं हो गए!" भय से काँप कर पत्नी ने रोका।—"लड़के के दिमाग़ में भला ऐसी बातें क्यों डालते हो?"

मौन्तेपिन की पुस्तक लेकर मैं सैनिक के पास पहुँचा और जो कुछ बीता था, सब उसे कह सुनाया। बिना कुछ कहे सिदोरोव

ने पुस्तक को अपने हाथ में ले लिया, छोटा-सा बक्स खोल कर उसने एक साफ़ तौलिया निकाला, पुस्तक को उसमें लपेटा और फिर उसे बक्स में छिपा दिया।

"उनकी पर्वाह न करो। यहाँ आकर पढ़ लिया करो। मैं किसी से नहीं कहूँगा," उसने कहा,—"और अगर तुम आओ और मैं उस समय नहीं मिलूँ तो कुंजी देव-प्रतिमा के पीछे रहती है। वहाँ से कुंजी लेकर बक्स खोल लेना, और जब तक जी चाहे पढ़ते रहना।"

पुस्तक के प्रति मालिकों के इस रवैये की बदौलत मैं उसे इस तरह अपने हृदय में संजो कर रखने लगा मानो वह कोई बहुत ही महत्वपूर्ण और भयोत्पादक रहस्य हो। यह तथ्य कि "पुस्तकें पढ़ने वाले" कुछ लोगों ने किसी की हत्या करने के लिए रेल की पटरियाँ उड़ा दी थीं, मुझे विशेष दिलचस्प नहीं मालूम हुआ, हालांकि पाप-स्वीकारोक्ति के दौरान में किया गया पादरी का सवाल मुझे अभी तक याद था। न ही मैं उस छात्र को भूला था जिसे मैंने निचले तल्ले के मकान में दो स्त्रियों के सामने पुस्तक पढ़ते देखा था, स्मूरी की याद भी मेरे दिमाग़ में ताज़ी थी जो 'सही ढंग' की पुस्तकों का ज़िक्र किया करता था। साथ ही गुप्त संगठन बना कर जादू की काली पुस्तकें पढ़ने वाले उन फ्रीमैसनों की भी मुझे याद थी जिनका ज़िक्र करते हुए नाना ने मुझे बताया था:

"और उन दिनों जब ज़ार अलेक्सान्दर पावलोविच ईश्वर प्रदत्त शासन की बागडोर अपने हाथों में संभाले थे, ऊँचे कुलीनों ने काली पुस्तक दल के लोगों और फ्रीमैसनों के साथ मिलकर साज़िश का ऐसा जाल बिछाया कि रूस की समूची जनता रोम के पोप के चंगुल में फंस जाती। लेकिन भला हो जेनरल आरकचेयेव का, ऐन वक्त पर आकर उसने सब को गिरफ़्तार कर लिया, और

चक्की पीसने के लिए साइबेरिया भेज दिया। उसने न किसी के ओहदे का ख़्याल किया, न किसी की हैसियत का। बस, सब का पुलिन्दा बांध कर साइबेरिया के लिए रवाना कर दिया। साधारण कैदियों की भांति वहाँ उन्हें भी अपने हाड़ तोड़ने पड़े, और अन्त में गल-सड़ कर वे भी उसी तरह ख़त्म हो गए जैसे कि हर सड़ी-गली चीज़ ख़त्म हो जाती है।"

'तारों से छिदा अम्बराकुलम' भी मुझे याद था, न ही मैं 'गेरवास्सी' और उन गम्भीर शब्दों को भूला था जिनमें मोरी का कीड़ा कह कर निम्न स्तर के लोगों का मज़ाक उड़ाया गया था:

"ओ मोरी के कीड़ो! न किलबिलाओ इतना, करो न दम्भ इतना!"

मुझे ऐसा मालूम होता मानो किसी महान रहस्य का भेद मेरी आँखों के सामने खुलने वाला है। इस भाव ने मुझे पूरी तरह ग्रस लिया और मैं इस तरह घूमता मानो मेरे सिर पर कोई भूत सवार हो। पुस्तक के सिवा मुझे और किसी चीज़ का ध्यान न रहता, और मैं उसे जल्दी से जल्दी ख़त्म करना चाहता। साथ ही एक भय भी मेरे हृदय को कचोटता रहता। जिस महान रहस्य के खुलने की प्रतीक्षा में मैं इस हद तक उतावला हो उठा था, मुझे डर था कि अरदली के इस बावर्चीघर में कहीं वह नष्ट या खण्डित न हो जाए। कटर की पत्नी को यह सब मैं भला किस तरह समझा सकता था?

बूढ़ी मालकिन गिद्ध ऐसी तेज़ आँखों से मेरा पीछा करती और इस बात की ताक-झांक में रहती कि कहीं मैं सैनिक के पास न खिसक जाऊँ। उसकी जुबान चुप होने का नाम न लेती और वह बराबर चिड़चिड़ाती रहती:

"किताबचाटू! जिसे बदमाशी सीखना हो वह बस किताबें पढ़ना शुरू कर दे। उस चुचमुँही को देखो न जो हर घड़ी किताबों में ही डूबी रहती है, किताबों के पीछे जो अब घर के लिए सौदा-सुलफ़ लेने तक नहीं जा सकती। बस, अफ़सरों से चोंचें लड़ाया करती है। क्या मैं नहीं जानती कि दिन-दहाड़े वे किस तरह उसके चारों ओर मंडराते हैं, और वह मज़े से उन्हें ताका करती है!"

मैं उतावला हो उठा कि चिल्लाकर बुढ़िया का मुँह बंद कर दूं:

"यह सफ़ेद झूठ है! वह अफ़सरों से कतई चोंचें नहीं लड़ाती!"

लेकिन कटर की पत्नी की हिमायत में मैं जुबान खोलने का साहस नहीं कर सका। मुझे डर था कि कहीं बूढ़ी खूसट यह न भाँप ले कि पुस्तक मैं वहीं से लाया हूँ।

कई दिन तक मैं बेहद परेशान रहा। मैं खोया-खोया-सा रहता और मुझे कुछ सुझाई न देता। रात को नींद न आती और हर घड़ी यही चिन्ता सताती कि द-मौन्तेपिन की अब ख़ैर नहीं है। एक दिन कटर की पत्नी की बावर्चिन ने मुझे अहाते में रोका और बोली:

"वह किताब लौटा दो!"

भोजन के बाद, उस समय जब कि मेरे मालिक झपकी ले रहे थे, मैं कटर की पत्नी के पास पहुँचा, परेशान और बुझा हुआ-सा दिल लिए।

इस समय भी वह वैसे ही बैठी थी जैसे कि मैंने उसे पहली बार देखा था, सिवा इसके कि कपड़े दूसरे पहने थी। सलेटी रंग का घाघरा, काले रंग की मखमली चोली, और गले में नीलम का क्रास। एकदम बुलफिंच पक्षी की याद दिलाती थी।

जब मैंने उसे बताया कि मुझे पुस्तक ख़त्म करने का अवसर नहीं मिला और यह कि मेरे पढ़ने पर रोक लगा दी गई तो इस बात की चोट और उसे एक बार फिर देखने की खुशी से मेरी आँखें उमड़ आईं।

"कितने गंवार लोग हैं!" अपनी कमान-सी भौंहों को चढ़ाते हुए उसने कहा।—"शक्ल से तो तुम्हारा मालिक मुझे बुरा नहीं लगता। लेकिन इतना परेशान होने की क्या ज़रूरत है? कोई न कोई रास्ता निकल ही आएगा। और कुछ नहीं तो मैं उसे एक पत्र ही लिख दूँगी।"

इससे मेरे होश और भी फ़ाख्ता हो गए। मैंने उसे बताया कि मालिकों को असल बात मालूम नहीं है। मैंने उनसे झूठमूठ कह दिया है कि पुस्तक पादरी से लाया हूँ।

"नहीं, उन्हें पत्र नहीं लिखना," मैंने विनती के स्वर में कहा,—"वे केवल तुम्हारी हंसी उड़ाएंगे, और तुम्हें और भी उलटी-सीधी सुनाएँगे। हमारे घर में सभी तुमसे चिढ़ते हैं, तुम्हारा मज़ाक उड़ाते हैं, और कहते हैं कि तुम बेवकूफ़ हो और तुम्हारी एक पसली गायब है।"

एक ही सपाटे में मैं यह सब कह गया और कहने के तुरत बाद सकपका कर मैंने अनुभव किया कि मेरे शब्दों से उसके हृदय को चोट पहुँची होगी। उसने अपना ऊपर का होंठ दाँतों से भींचा और हाथ अपने कूल्हे से इस तरह टकराया मानो वह घोड़े की पीठ पर सवार हो रही हो। मैंने अपना सिर लटका लिया। अगर धरती फट जाती तो मैं उसमें समा कर चैन पाता। लेकिन अगले ही क्षण वह संभल गई और कुर्सी पर अपने बदन को ढीला छोड़ते हुए खूब खिलखिला कर हँसने लगी।

"ओह कितने गंवार हैं ये लोग, परले सिरे के गंवार!

लेकिन इसमें मैं क्या कर सकती हूँ?" मेरी ओर देखते हुए उसने मानो अपने-आप से ही कहा। फिर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए बोली:—"तुम भी अजीब लड़के हो, बहुत ही अजीब!"

उसके पास ही, बराबर में, एक आईना लगा था। आईने में मेरा अक्स पड़ रहा था: ऊँचे कल्ले, चौड़ी नाक से लैस चौखटा, माथे पर चोट का बड़ा-सा निशान और बेतर्तीबी से हर तरफ़ बिखरे हुए घास की भांति बिना कटे बाल। लेकिन 'बहुत ही अजीब लड़के' का चेहरा क्या ऐसा होता है? कहाँ यह 'अजीब लड़का', और कहाँ नन्ही-मुन्नी चीनी की यह सुन्दर गुड़िया...।

"पिछली बार मैंने तुम्हें धन दिया था। उसे तुम यहीं छोड़ गए, क्यों?"

"मुझे उसकी ज़रूरत नहीं थी।"

उसने एक साँस भरी।

"तब तो और कुछ भी नहीं किया जा सकता। अच्छी बात है, अगर वे तुम्हें पढ़ने की इजाज़त दें तो आना, मैं तुम्हें किताबें दूँगी।"

ताक पर तीन पुस्तकें रखी थीं। मैंने जो अभी लौटाई थी, वह सब से मोटी थी। उदास आँखों से मैंने उसे देखा। कटर की पत्नी ने अपना छोटा-सा गुलाबी हाथ बढ़ाया और बोली:

"अच्छा तो अब जाओ!"

मैंने बहुत सम्हल कर उसके हाथ का स्पर्श किया और तेज़ी से लौट आया।

उसके बारे में उनकी राय, कौन जाने, ठीक ही हो। शायद वह फूहड़ ही है। अभी-अभी तो उसने बीस कोपेक के एक छोटे से सिक्के को धन कहा था—बिलकुल छोटे बच्चे की तरह।

लेकिन उसका यह अल्हड़पन मुझे अच्छा लगा।

९

पुस्तकें पढ़ने की अपनी इस अचानक धुन के कारण क्या कुछ मुझे नहीं सहना पड़ा: अपमान के कड़ुवे घूंट मैंने पिये, हृदय में लगी चोटों से मैं कराह उठा। इन सबकी जब मैं याद करता हूँ तो दु:ख भी होता है, और हँसी भी आती है।

जाने कैसे, मेरे मन में यह बात बैठ गई कि कटर की पत्नी की पुस्तकें बेहद कीमती हैं, और अगर बूढ़ी मालकिन ने उन्हें जला डाला तो आफत ही आ जाएगी। यह भय यहाँ तक बढ़ा कि मैंने उससे पुस्तकें लेने का ख़्याल तक अपने दिमाग़ से निकाल दिया, और उस दुकान से जहाँ नाश्ते के लिए मैं रोटी खरीदने जाता था, चटख रंग की छोटी-छोटी पुस्तकें लाना शुरू कर दिया।

दुकानदार बहुत बदनुमा आदमी था—मोटे-मोटे होंठ, जब देखो तब पसीने में लथपथ, फोड़े-फुंसियों के दागों और नश्तरों से कटा-फटा थलथल और लेही-सा चेहरा, पीलिया आँखें, और बादी-फूले हाथ जिनके अन्त में ठुकी-पिटी-सी उँगलियाँ दिखाई देती थीं। सांझ होते ही हमारे मोहल्ले के आवारा लड़कों और लड़कियों का उस दुकान पर जमघट लगता। मेरे मालिक का भाई भी बीयर पीने और ताश खेलने के लिए हर सांझ बिला नागा वहाँ पहुँचता। सांझ के खाने का समय होने पर मुझे अक्सर दौड़ाया जाता कि लपक कर उसे दुकान से बुला लाओ। जब मैं वहाँ पहुँचता तो मुझे अजीब झाँकियाँ दिखाई देतीं। एक से अधिक बार मैंने देखा कि दुकान के पीछे एक छोटे से कमरे में दुकानदार की छैलछबीली और गोबर दिमाग़ बीवी वीक्तर या अन्य किसी युवक छोकरे के घुटनों पर बैठी मटक रही है। दुकानदार की आँखों के सामने ही

यह सब होता, और लगता जैसे वह बुरा नहीं मानता। न ही उसे उस समय बुरा मालूम होता जब उसकी बहन, जो ग्राहकों को निबटाने में उसका हाथ बंटाती थी, सैनिकों और गायकों और अन्य सभी के साथ जो ज़रा भी इशारा करते, चूमा-चाटी पर उतर आती। दुकान में बहुत ही कम बिक्री का सामान दिखाई देता। पूछने पर मालिक बताता कि अभी नया-नया ही काम शुरू किया है, और दुकान का ढर्रा बैठाने के लिए उसे अभी तक समय नहीं मिला, हालांकि दुकान का कारबार उसने पतझड़ के दिनों में शुरू किया था। वह अपने ग्राहकों को नंगी तस्वीरें दिखाता और हर किसी को, जो भी इसकी इच्छा प्रकट करता, गंदी तुकबन्दियों की नकल करने देता।

प्रति पुस्तक एक कोपेक किराए के हिसाब से मैंने मीशा येवस्तिगनेयेव की पुस्तकें पढ़ डालीं जिनमें कोई जान नहीं थी। एक तो यह महंगा सौदा था। फिर इन पुस्तकों के पढ़ने में कतई मज़ा नहीं आता था। "गुआक अथवा मौत भी जिसे न झुका सकी"; "वेनिस का बांका फ्रान्सिल"; "कबार्डीनियों के साथ रूसियों का युद्ध, या तुर्क सुन्दरी जो अपने पति के साथ दफ़न हो गई"—इस तरह की किताबें मुझे जरा भी अच्छी न लगतीं और उन्हें पढ़कर मैं अक्सर झुंझला उठता। ऐसा मालूम होता, मानो ये पुस्तकें मुझे बेवकूफ़ बनाने की कोशिश कर रही हों। निहायत भोंडी भाषा और एकदम बे सिर-पैर की असम्भव बातें उनमें भरी थीं!

"स्त्रेलत्सी", "यूरी मिलोस्लावस्की", "रहस्यमय सन्त", और "तातार घुड़सवार यापांचा"—ऐसी पुस्तकें मैं अधिक पसंद करता, कम से कम मेरे हृदय पर वे कुछ तो छाप छोड़तीं। लेकिन सब से ज़्यादा खुशी मुझे होती सन्तों की जीवनियाँ पढ़ कर। इनमें

गम्भीरता होती, उनकी बातों पर यक़ीन करने को जी चाहता, और कभी-क़भी तो वे हृदय में गहरी उथल-पुथल मचा देतीं। जाने क्यों, अपने जीवन की बलि देने वाले पुरुष शहीदों के बारे में जब मैं पढ़ता तो मुझे "वह भाई खूब" का ध्यान हो आता, स्त्री शहीदों के बारे में पढ़ता तो नानी का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता और ऊंचे पादरियों के बारे में पढ़ कर मुझे उन क्षणों की याद हो आती जिनमें कि नाना अपने श्रेष्ठतम रूप में दिखाई देते थे।

पुस्तकें पढ़ने के लिए मैं ऊपर तिदरी की शरण लेता या फिर सायबान में उस समय पढ़ता जब मैं वहाँ लकड़ियाँ चीरने जाता। दोनों ही जगह समान रूप से ठंडी और तकलीफ़देह थीं। अगर पुस्तक ख़ास तौर से दिलचस्प होती या किसी वजह से मैं खुद उसे जल्दी से ख़त्म करना चाहता तो मैं रात को उठ बैठता और मोमबत्ती की रोशनी में पढ़ता। लेकिन बूढ़ी मालकिन की नज़रों से यह छिपा न रहा कि रात में मोमबत्तियाँ छोटी हो जाती हैं। नतीजा यह कि उसने अब मोमबत्तियों की नाप-जोख शुरू कर दी। लकड़ी की खपच्ची से वह मोमबत्ती को नापती और खपच्ची को कहीं छिपा कर रख देती। इस खपच्ची को मैं अक्सर खोज निकालता और तोड़ कर उसे भी जली हुई मोमबत्ती की लम्बाई का बना देता। जब कभी मैं ऐसा करने में चूक जाता और सुबह उठने पर वह देखती कि खपच्ची और मोमबत्ती की लम्बाई में अन्तर है, तो रसोईघर में खड़े होकर इस बुरी तरह शोर मचाती कि सारे घर को सिर पर उठा लेती। उसकी आवाज़ सुनकर वीक्तर झुंझला उठता और तख़्ते पर से चिल्ला कर कहता :

"यह टाँय-टाँय बन्द करो माँ, तुम इस घर में किसी को न टिकने दोगी! कौन नहीं जानता कि वह मोमबत्तियाँ जलाता

है, न जलाए तो दुकान से लाई हुई पुस्तकें कैसे पढ़े। मैंने अपनी आँखों से देखा है। तिदरी पर जाकर खोजो, सारा भेद अपने आप खुल जाएगा!"

बुढ़िया तिदरी की ओर लपकी। एक छोटी-सी पुस्तक उसके हाथ लगी जिसे उसने भीर-भीर कर दिया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह एक आघात था, लेकिन इसने पुस्तकें पढ़ने की मेरी लगन को और भी तेज़ कर दिया। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं था कि चाहे कोई सन्त ही क्यों न इस घर में चला आए, मेरे मालिक लोग उसे भी सबक पढ़ाना और उसे अपने मनचीते सांचे में ढालना शुरू कर देंगे। और यह वे केवल इसलिए करेंगे कि करने के लिए इससे अच्छा काम उनके पास और कोई नहीं है। अगर उन्हें कभी चीखना-चिल्लाना, दूसरे लोगों पर फतवे कसना और उनका मजाक उड़ाना छोड़ देना पड़े तो वे गूंगे हो जाएं, बोलने के लिए उनके पास कुछ न रहे और उन्हें अपने आपे की भी सुध न रहे। अपने आपे की सुध रखने के लिए ज़रूरी है कि आदमी दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में कुछ सचेत रहे। मेरे मालिक लोग अपने-आपको केवल एक ही रूप में देखते थे—गुरू और काज़ी के रूप में। इसी रूप में वे सब से अपना नाता क़ायम करते थे। अगर कोई अपने आपको खुद उनके सांचे में ढालने की कोशिश करता तो वे इसके लिए भी उसे आड़े हाथों लेने से न चूकते। यह उनकी घुट्टी में मिला हुआ था।

पढ़ने के लिए मुझे नित्य नये मोर्चों की खोज करनी पड़ती, नित्य नये पैंतरे बदलने पड़ते। बूढ़ी मालकिन इतनी बार मेरी पुस्तकें फाड़ चुकी थी कि मैं दुकानदार का कर्ज़दार हो गया—एक-दो नहीं, पूरे सैंतालीस कोपेक की भारी रकम का बोझ मेरे

सिर पर लदा था। दुकानदार तुरत अदायगी के लिए तकाज़ा करता और धमकी देता कि रोटी खरीदने के लिए जब मैं मालिकों का धन लेकर आऊँगा तो वह उसमें से काट लेगा।

"तब बच्चू को आटे-दाल का भाव मालूम होगा!" वह मुझे कोंचता।

उससे मुझे इतनी घिन मालूम होती कि मैं बरदाश्त न कर पाता। उसने भी यह भाँप लिया और दुनिया-भर की धमकियाँ देकर मुझे सताने में वह ख़ास मज़ा लेता। मेरे दुकान में पाँव रखते ही उसके नोचे-खोंचे से चेहरे पर मुसकराहट का लेप चढ़ जाता।

"क्यों, मेरा कर्ज़ अदा करने के लिए धन लाए?" वह धीमे स्वर में कहता।

"नहीं।"

कुछ बल-सा खाकर वह अपनी भौंहें चढ़ा लेता।

"नहीं? बोलो, तुम्हारा क्या अब मैं अचार डालूँ? या तुम्हारे पीछे कचहरी के कुत्ते छोड़ूँ? जानते हो इसका क्या नतीजा होगा? उठाकर वे तुम्हें किसी पिटाईघर में बन्द कर देंगे!"

पैसा पाने के सभी रास्ते बन्द थे। जो पगार मुझे मिलती थी, वह नाना के हवाले कर दी जाती थी। मेरी समझ में नहीं आता था कि कैसे क्या किया जाए। जब मैं दुकानदार से कुछ दिन की और मोहलत माँगता तो वह डबल रोटी की भांति मोटा और चीकट अपना हाथ आगे की ओर बढ़ा कर कहता:

"यह लो, मेरा हाथ चूम कर दिखाओ। मोहलत मिल जाएगी!"

काउण्टर पर बटखरा पड़ा था। झपट कर मैंने उसे उठाया और उसके सिर का निशाना साधा। डुबकी-सी लगा कर वह चिल्लाया:

"अरे यह क्या करते हो? मैं तो केवल मज़ाक कर रहा था!"

उसका यह मज़ाक मेरे हृदय में खुब गया। उससे छुटकारा पाने के लिए मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मेरे मालिक की जेबों में छुट्टा रेज़गारी पड़ी रहती थी। सुबह कोट साफ़ करते समय यह मैं अक्सर देख चुका था। कभी-कभी जेब से निकल कर वह फ़र्श पर भी आ गिरती, और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक सिक्का लुढ़कता हुआ ज़ीने के नीचे लकड़ियों के ढेर में जाकर ओझल हो गया। दूसरे कामों में इसका मुझे कुछ ध्यान नहीं रहा, और मैं अपने मालिक को बताना भूल गया। बाद में, लकड़ियाँ उठाते समय, बीस कोपेक का वह सिक्का मुझे मिला। जब मैंने उसे मालिक को लौटाया तो उसकी पत्नी बोली:

"देखा तुमने? जेब में रेज़गारी छोड़ने से पहले गिन तो लिया करो!"

"अरे नहीं, यह चोरी नहीं करेगा," मेरी ओर मुसकरा कर देखते हुए मालिक ने जवाब दिया।

और अब, चोरी के अपने निश्चय को पूरा करने के लिए जब मैं आगे बढ़ा, मुझे मालिक के इन शब्दों और उसकी विश्वास-भरी मुसकराहट का ध्यान हो आया। इससे मेरा काम और भी कठिन हो गया। कई बार मैंने उसकी जेब से रेज़गारी निकाली, उसे गिना, और फिर उसकी जेब में ही डाल दिया। तीन दिन तक मैं अपने से संघर्ष करता रहा, और इसके बाद सारा मामला एकाएक आसानी से तय हो गया।

"पेश्कोव, तुम्हें आजकल हो क्या गया है?" अनायास ही मेरे मालिक ने मुझसे पूछा।—"तुम अपने आपे में नहीं दिखाई देते। क्या तबीयत खराब है?"

अपनी परेशानी का कारण मैंने साफ़-साफ़ बता दिया।

"देखो न, पुस्तकों ने तुम्हें किस उलझन में फंसा दिया है?" भौंहें चढ़ा कर उसने कहा।—"यह एक निश्चित बात है कि इस या उस रूप में पुस्तकों से सदा तुम्हें नुकसान ही होगा।"

लेकिन उसने मुझे पचास कोपेक के सिक्के दे दिए। साथ ही एक चेतावनी भी थी:

"समझे, मेरी पत्नी या माँ के कानों में इसकी भनक तक न पड़े, नहीं तो एक तूफ़ान बरपा हो जाएगा।"

इसके बाद, बहुत ही भले ढंग से हँसते हुए, बोला:

"तुम अपनी धुन के पक्के हो, शैतान नहीं तो! लेकिन ठीक है, धुन का होना बुरा नहीं। बस, एक बात है। वह यह कि पुस्तकों को धता बताओ। नए साल से मैं एक अच्छा समाचार-पत्र मंगा दूँगा। उसे पढ़ा करना।"

और उसने समाचार-पत्र मंगाना शुरू कर दिया। हर सांझ, चाय और भोजन के बीच, मैं अपने मालिकों को "मास्को पत्रिका" पढ़ कर सुनाता जिसमें वाश्कोव, रोकशानिन, रूदनिकोवस्की और इसी तरह के अन्य कितने ही लेखकों के 'उदासी भगाने वाले' उपन्यास छपते थे।

ज़ोर-ज़ोर से पढ़ कर सुनाना मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि इससे मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ता था और शब्दों का अर्थ पकड़ने में बाधा पहुँचती थी। लेकिन सुनने वाले इस हद तक एकचित और एक तरह के श्रद्धापूर्ण उत्साह से सुनते कि जैसे ही बदमाशी की किसी करतूत का ज़िक्र आता, उनके मुँह खुले के खुले रह जाते, वे चीख़ते-चिल्लाते और फिर, गर्व में भर कर, आपस में रायज़नी करते:

"भला हो उस भगवान का जो हम यहाँ इस माद-धाड़ से

मुक्त इतना शान्त और चैन का जीवन बिताते हैं और दुनिया की कांय-कांय हम तक नहीं फटक पातीं!"

वे हर चीज़ को खलत-मलत कर देते, प्रसिद्ध लुटेरे चुरकिन के कारनामों को वे गाड़ीवान फ़ोमा क्रूचीना के सिर मढ़ देते; नामों के बारे में वे अदबदा कर गड़बड़ करते और मैं जब उनकी भूलों और उलझावों को सीधा करके उनके सामने रखता तो वे अचरज में भर कर कहते:

"इस लड़के का दिमाग़ भी क्या है, जादू का पिटारा है!"

बहुत करके "मास्को पत्रिका" में लेओनिद ग्रावे की कविताएँ भी छपतीं। मुझे वे बेहद पसंद आतीं और मैं उन्हें अपनी कापी में उतार लेता। लेकिन मेरी मालकिनें कवि के बारे में टिप्पणी कसतीं:

"देखो न, बुढ़ापे में इसे कविता का शौक चर्राया है।"

"उस जैसे शराबी-कबाबी और कमज़ोर दिमाग़ आदमी से और आशा भी क्या की जा सकती है!"

स्त्रुजकिन और काउंट मेमेन्टो-मोरी की कविताएँ भी मुझे बहुत अच्छी लगतीं, लेकिन बूढ़ी और जवान दोनों मालकिनें कविता का नाम सुनते ही नाक-भौंह चढ़ा लेतीं और अपनी इस राय पर अड़ जातीं कि कविता निरी बकवास है:

"भांड और नाटकवालों के सिवा कविता से और कोई भला आदमी वास्ता नहीं रखता!"

जाड़ों की सांझें, छोटा-सा कमरा, जिसमें साँस लेते दम घुटता, और मालिकों की नज़रें जो मुझ पर जमी रहतीं, मेरा जी बुरी तरह उकता जाता। खिड़की से बाहर, मौत की भांति सन्नाटा खींचे रात फैली होती, जबतब बर्फ़ के चटखने की आवाज़ आती और लोग, बर्फ़ से सुन्न मछलियों की भांति, मेज़ के इधर-उधर गुमसुम बैठे रहते। या फिर तेज़ हवा अपने पंजों से दीवारों तथा खिड़कियों

को नोंचती-झकझोरती और चीखती-सनसनाती चिमनी में घुसती और नमदानों को खड़खड़ाती। जो कसर रह जाती उसे बच्चों के कमरे से उनका रोना-टर्राना पूरा कर देता। मेरा मन भीतर ही भीतर उबलता-उफनता और जी चाहता कि यहाँ से चुपचाप खिसक जाऊँ, और किसी अंधेरे कोने में पहुँच कर भेड़िये की भांति गला फाड़ कर चिल्लाना शुरू कर दूँ।

मेज़ के एक छोर पर सिलाई या बुनाई का ताम-झाम लिए स्त्रियाँ बैठी होतीं, दूसरे छोर पर वीक्तर अनमने भाव से उस नक्शे पर झुका रहता जिसकी कि वह नकल उतारता होता। बीच-बीच में वह चीख़ता भी जाता:

"मेज़ न हिलाओ, शैतान की दुमो! घर न हुआ बढ़ईखाना हो गया, जब देखो तब कोई न कोई खटर-पटर। क्यों, इस घर में रहने भी दोगी या नहीं?"

कुछ हट कर एक बाज़ू मेरा मालिक बैठा था। उसके सामने एक लम्बा-चौड़ा चौखटा रखा था। चौखटे में एक मेज़पोश कसा हुआ था और वह सुई-धागे से उस पर कसीदे का काम काढ़ रहा था। उसकी चपल उँगलियों के स्पर्श से लाल केकड़े, नीली मछली, वासन्ती तितलियाँ और पतझड़ के पीले पत्ते आकार ग्रहण कर रहे थे। ये डिज़ाइन खुद उसके बनाए हुए थे और उन्हें पूरा करते उसे तीन जाड़े बीत चुके थे। इस मेज़पोश से अब वह पूरी तरह से उकता चुका था और अक्सर, अगर दिन में मैं खाली हाथ होता तो मुझे बुला कर कहता:

"पेश्कोव, यह मेज़पोश तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा है। कुछ देर इसमें भी हाथ लगा दिया करो।"

मैं कसीदा काढ़ने की मोटी सुई उठाता और मेज़पोश पर अपना हाथ आज़माने लगता। अपने मालिक पर मुझे तरस आता और जैसे

भी बनता, मैं उसका हाथ बंटाने की कोशिश करता। मुझे ऐसा लगता कि यह नक्शे बनाना, कसीदे काढ़ना, और ताश खेलना एक दिन वह छोड़ देगा और कोई दूसरा काम शुरू कर देगा, — कोई ऐसा काम जो कुछ दिलचस्प हो, जो उसके उन सपनों से मेल खाता हो जिन्हें कि वह कभी-कभी देखा करता। काम करते-करते वह एकाएक रुक जाता, और अचरज के भाव से इस तरह उसकी ओर निहारता मानो वह कोई एकदम अनजानी चीज़ हो जिसे देखने का उसे अब, पहली बार, अवसर मिला है। आँखों में अचरज का भाव भरे वह वहाँ खड़ा रहता, उसके बाल उसकी भौंहों से हाथ मिलाते और उसके गालों का स्पर्श करते। ऐसा मालूम होता मानो वह कोई नया सन्यासी हो जो अभी-अभी मठ में भर्ती होकर आया हो।

"क्या सोच रहे हो?" उसकी पत्नी पूछती।

"कुछ नहीं," वह जवाब देता और फिर अपने काम में जुट जाता।

मैं मन ही मन सोचता और अचरज करता कि भला यह भी कोई पूछने की बात है कि कोई क्या सोच रहा है? फिर इस तरह के सवाल का कोई जवाब भी क्या दे सकता है? एक साथ, एक ही वक्त में, बहुत-सी चीज़ों के बारे में आदमी सोचता है — उन चीज़ों के बारे में जिन्हें कि उसकी आँखें इस समय देख रही हैं या उन चीज़ों के बारे में जिन्हें उसने कल या पिछले साल देखा था। और इस तरह जितने भी चित्र आँखों के सामने उभरते, सभी धुंधले और उलझे हुए, बराबर चलायमान और हर घड़ी बदलते हुए।

"मास्को पत्रिका" के लेखों से एक सांझ का भी गुज़ारा नहीं होता, वे जल्दी ही चुक जाते। इसलिए मैंने सुझाव दिया कि पलंग के नीचे पड़े पत्रों को पढ़ना शुरू किया जाए।

"वे भी कोई पढ़ने की चीज़ हैं?" मेरी युवती मालकिन ने अविश्वास के साथ कहा। — "चित्रों के सिवा उन में और होता क्या है?"

लेकिन पलंग के नीचे अकेला "चित्रमय जगत" ही नहीं था, अन्य पत्र भी थे। "शोला" नामक पत्र निकालकर हमने सालियास कृत उपन्यास "काउंट त्यातिन-बाल्तिइस्की" पढ़ना शुरू किया। मेरे मालिक को इस उपन्यास का मूर्ख हीरो बहुत पसंद आया जो अपने बौड़मपन की वजह से अनेक मुसीबतों में फंसता है। मेरा मालिक इस बौड़म युवक की हरकतों पर इतना हँसता कि उसकी आँखों से आंसू निकल आते और गालों पर से ढुलकने लगते।

"ओह, कितना मज़ेदार है!" उसके मुँह से निकलता।

"सब मनघड़न्त है," उसकी पत्नी कहती और यह दिखाने का प्रयत्न करती कि वह भी अपना दिमाग़ रखती है।

पलंग के नीचे पड़े पत्रों की जिल्दों ने मेरा एक बड़ा काम किया। इन पत्रों को रसोईघर में ले जाने और उन्हें रात को पढ़ने का मुझे अधिकार मिल गया।

इन्हीं दिनों मेरे सौभाग्य से एक बात और हुई। आया को लगातार शराब पीने की ऐसी धुन सवार हुई कि बीमार पड़ गई। उसके बाद से नानी सोनेवाले कमरे में ही अपना बिस्तरा लगाती। वीक्तर को मेरे पढ़ने-न-पढ़ने की कोई चिन्ता नहीं थी। जब सब सो जाते तो वह चुपचाप कपड़े पहनता और सजधज कर सुबह तक के लिए बाहर खिसक जाता। मेरी मालकिन मोमबत्ती को भी हमेशा अपने साथ दूसरे कमरे में ले जाती और मैं बिना रोशनी के रह जाता। दूसरी मोमबत्ती खरीद लाने के लिए मेरे पास पैसा नहीं था। मोमबत्तियों के पिघले हुए मोम को मैं अब चुपचाप बटोरता और उसे सारडीन के एक खाली टीन में जमा कर देता। मोम के ऊपर देव-प्रतिमा के लैम्प में से भी कुछ तेल डाल देता। फिर धागों को

बट कर एक बत्ती बनाता और इस तरह तैयार किए अपने लैम्प को, जो रोशनी से अधिक धुआँ देता था, तन्दूर के ऊपर जमा देता।

पत्रों की भारी-भरकम जिल्दों को जब मैं खोलता और उनके पन्ने पलटता तो लैम्प की नन्ही लाल लौ काँपने और दम तोड़ने लगती। बत्ती बार-बार खिसक कर मोम में डूबने लगती, और धुएँ से मेरी आँखें कड़ुवा उठतीं। लेकिन इन सब झंझटों-बाधाओं के बावजूद मैं तस्वीरों को देखने और उनके नीचे छपे परिचयों को पढ़ने में डूब जाता और मेरी खुशी का पारावार न रहता।

मेरी दुनिया अब हर घड़ी फैलती और बढ़ती जा रही थी। अद्‌भुत नगरों, आकाश चूमने वाले पहाड़ों और सुन्दर समुद्र तटों के नित्य नये दृश्य मैं देखता। जीवन का हर फैलाव मुझे अचरज में डाल देता। भांति-भांति के नगरों, लोगों और काम्-धंधों की बहुलता धरती को और भी सुन्दर बना देती, वह मुझे और भी रंगबिरंगी मालूम होती। वोल्गा के उस पार के विस्तारों को अब मैं देखता तो मालूम होता कि उनमें निरा सूनापन ही नहीं है, कुछ और भी है। पहले दीन-दुनिया से दूर इन विस्तारों को जब मैं देखता था तो अदबदाकर उदास हो उठता था: अन्तहीन सपाट चरागाहें, काले धब्बों-सी इक्की-दुक्की झाड़ियाँ, चरागाहों से परे जंगल की कटी-फटी-सी कोर, ठँड से ठिठुरा-बदली, छाया आसमान, सूनी और उदास धरती। मेरा हृदय भी सूना हो जाता, एक कोमल उदासी उसे मथती, सभी अरमान मुरझा जाते, सोचने के लिए कुछ बाक़ी न रहता, बस आँखें मूंद लेने को जी चाहता। घना और गहरा सन्नाटा, वीरानी का यह आलम, हृदय की हर आकाँक्षा को सोख लेता, आशा उसके स्पर्श से बेजान हो जाती।

मैं चित्रों को देखता। उनके नीचे लिखे मज़मूनों को पढ़ता। सीधी-सादी भाषा में दूसरे देशों और दूसरे लोगों से मेरा परिचय

होता। अतीत और वर्तमान की बहुत-सी घटनाओं के बारे में लिखा होता जिनमें से कई मेरी समझ में न आतीं, और इससे मेरा हृदय कचोट उठता। कभी-कभी, तीर की भांति, कुछ विचित्र शब्द मेरे दिमाग़ से आकर टकराते: "आधिभौतिकवाद", "चिलियज़्म", "चार्टिस्ट" आदि। ये शब्द मेरे जी का जंजाल बन जाते और मेरे दिमाग में घुस कर इतना फैलते-बढ़ते कि उनके सिवा और कुछ सुझाई न देता, और मुझे ऐसा लगता कि इन शब्दों के अर्थ का पता लगाए बिना मेरी समझ में कभी कुछ नहीं आएगा, मानो ये शब्द प्रहरियों की भांति सभी रहस्यों के द्वार पर खड़े हों और मेरा रास्ता छेक रहे हों। बहुधा, समूचे-के-समूचे वाक्य मेरे दिमाग़ में अटक कर रह जाते, माँस में घुसी फांस की भांति खटकते और मेरे लिए अन्य किसी ओर ध्यान लगाना असम्भव कर देते।

कुछ अजीब पंक्तियाँ तो मुझे अभी तक याद हैं जो मैंने उन दिनों पढ़ी थीं:

> पहने हुए इस्पाती जामा
> काला और मौत की भांति गम्भीर
> हूनों का सरगना अतीला
> रौंद रहा रेगिस्तानों को।

उसके पीछे घोड़ों पर सवार उसके योद्धा, काली घटा की भांति, उमड़-उमड़ कर गरज रहे थे:

> कहाँ गया वह रोम
> रोम जो था शक्ति में अपने को भूला!

यह तो मैं जानता था कि रोम एक नगर है, लेकिन ये हून कौन थे? मुझे अब इस रहस्य का उद्घाटन करना था।

अनुकूल अवसर देख मैंने अपने मालिक से पूछा।

"हून?" उसने कुछ अचरज से कहा। —"शैतान ही जानता है कि वे कौन थे? होंगे ऐसे ही कोई भिखारी-विखारी?"

फिर उसने नाराज़ी के भाव से सिर हिलाया:

"पेश्कोव, दुनिया-भर का कबाड़ तुमने अपने दिमाग़ में जमा कर लिया है, और यह बहुत बुरा है!"

बुरा हो चाहे भला, मुझे तो इसका पता लगाना ही था।

मैंने अन्दाज़ लगाया कि हो न हो, फ़ौज के पादरी सोलोव्योव को ज़रूर मालूम होगा कि हून कौन थे। अहाते में मुठभेड़ होने पर मैंने उसके सामने अपना मसला पेश कर दिया।

वह एक मरियल-सा आदमी था: पीले रंग का, रोगी और सदा चिड़चिड़ा। उसकी आँखें लाल थीं, भौंहें नदारद और छोटी-सी पीली दाढ़ी।

"तुम्हें हूनों से क्या लेना?" अपनी काली लाठी को धूल में धंसाते हुए उसने उलटे मुझे ही कुरेदा।

इसके बाद लेफ़टीनेन्ट नेस्तेरोव के सामने मैंने अपना सवाल रखा। सुन कर वह ज़ोरों से चिल्लाया:

"क्या-आ-आ-आ?" बस यही उसका जवाब था।

अब मैंने दवाफ़रोश की दुकान पर जाने का निश्चय किया। वह काफ़ी मिलनसार मालूम होता था। समझदार चेहरा, भारी-भरकम नाक जिस पर सुनहरा चश्मा चढ़ा हुआ था।

"हून," दवाफरोश पावेल गोल्डबर्ग ने कहा,—"वे किरगिज़ों की भांति खानाबदोश जाति के लोग थे। अब वे नहीं हैं,—सब के सब मर-खप गए।"

मुझे बड़ी निराशा हुई और झुंझलाहट ने मुझे घेर लिया, इसलिए नहीं कि हून मर-खप कर लोप हो गए थे, बल्कि इसलिए

कि जिस शब्द ने मुझे इतना सताया कि जान ही निकाल ली, उसका अर्थ इतना साधारण और मेरे लिए इतना बेकार होगा।

फिर भी हूनों का मैं बेहद कृतज्ञ था। उन्हें लेकर इतनी परेशानियों में से गुज़रने के बाद मैं पक्का हो गया और शब्दों ने मुझे सताना छोड़ दिया। और भला हो अतीला का, उसकी वजह से दवाफ़रोश से मेरी जान-पहचान हो गई।

भारी-भरकम और पण्डिताऊ शब्द और उनके इतने मामूली अर्थ,—वह इन सभी शब्दों से परिचित था, और हर रहस्य की कुंजी उसके पास थी। हाथ की दो उँगलियों से वह अपने चश्मे का ठीक करता और मोटे शीशों के भीतर से घूर कर मेरी आँखों में देखता और इस तरह बोलना शुरू करता मानो अपने शब्दों को, कीलों की भांति, वह मेरे दिमाग़ में ठोंक रहा हो:

"शब्द, मेरे नन्हे मित्र, उसी तरह होते हैं जैसे पेड़ में पत्ते, और यह जानने के लिए कि पत्तों का रूप-रंग ऐसा ही क्यों है, किसी दूसरे प्रकार का क्यों नहीं, यह जानना ज़रूरी है कि पेड़ किस प्रकार बढ़ता-पनपता है। तुम्हें अध्ययन करना चाहिए। पुस्तकें, मेरे नन्हे मित्र, एक सुन्दर बाग के समान हैं, जिसमें तुम्हें हर वह चीज़ मिलेगी जो सुहावनी और भली है।"

बड़े-बूढ़ों के वास्ते सोडा और मैगनीशिया लेने जिन्हें हमेशा पेट और छाती में जलन की शिकायत रहती थी, और छोटों के वास्ते बे का तेल तथा अन्य छोटी-मोटी दवाइयाँ लेने मुझे अक्सर दवाफ़रोश की दुकान के चक्कर लगाने पड़ते। दवाफ़रोश की नपी-तुली सीखों की बदौलत पुस्तकों के साथ मेरा लगाव और भी गहरा हो गया, और अनजाने में वे मेरे लिये उतनी ही अनिवार्य हो उठीं जितनी कि एक शराबी के लिये वोडका।

पुस्तकें मुझे एक दूसरी दुनिया की सैर करातीं, एक ऐसा जीवन मेरी आँखों के सामने पेश करतीं जिसमें आशा-आकांक्षाओं का सागर हिलोरें लेता, उसके भंवर में पड़ कर लोग भले से भले और बुरे से बुरे काम करते। लेकिन जिस तरह के लोगों को मैं अपने चारों ओर देखता था, उनमें न भले काम करने की सकत थी, न बुरे। किताबों में जो कुछ लिखा था, उससे सर्वथा भिन्न — एकदम अलग — जीवन वे बिताते थे, और उनके इस जीवन में खोजने पर भी कोई दिलचस्प चीज़ नज़र नहीं आती थी। जो हो, एक चीज़ मेरे दिमाग़ में साफ़ थी — वह यह कि मैं वैसा जीवन नहीं बिताना चाहता था, जैसा कि वे बिताते थे।

चित्रों के नीचे मज़मूनों से मुझे पता चला कि प्राग, लन्दन और पेरिस में, नगर के बीचोंबीच, न तो कूड़ा-करकट के पहाड़ दिखाई देते हैं, न गंद भरे नाले नज़र आते हैं। वहाँ की सड़कें चौड़ी और सीधी होती हैं, और इमारतें तथा गिरजे सर्वथा भिन्न। और वहाँ के लोग लम्बे जाड़ों के मारे पूरे छै महीनों तक घरों में बन्द नहीं रहते, न ही वहाँ व्रत-उपवास के पेंतालीस दिन होते हैं जिन में नमक-गोभी, कुकुरमुत्तों, जौ के आटे, और अलसी के घिनौने तेल में तैरते आलुओं के सिवा और कुछ नहीं खाया जा सकता। व्रत-उपवास के दिनों में जिनमें पढ़ना गुनाह होता, "चित्रमय जगत" को उठाकर रख दिया जाता, और मुझे भी इस सूने उपवासी जीवन का अंग बनने के लिए मजबूर किया जाता। लेकिन अब, किताबों के जीवन से इस जीवन की तुलना करने के बाद, मुझे यह और भी बेरंग, और भी बदनुमा मालूम होता। पुस्तकें पढ़ने के बाद मुझे लगता कि मेरी शक्ति बढ़ गई है, और मैं भारी लगन तथा आपा भूल कर काम में जुट जाता, क्योंकि मेरे सामने अब एक लक्ष्य होता: वह यह कि जितनी जल्दी

काम ख़त्म होगा, उतना ही अधिक समय मुझे पढ़ने के लिए मिलेगा। किताबों के न रहने पर मैं सुस्त और काहिल हो जाता, खोया खोया-सा घूमता, और एक ऐसी विकृत बेखबरी मुझे जकड़ लेती जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था।

मुझे याद है कि बेखबरी और उदासी के इन्हीं दिनों में एक रहस्यमय घटना घटी। सांझ का समय था। सब लोग सोने चले गए थे। तभी गिरजे की घंटी एकाएक बजना शुरू हुई। सकपका कर सभी लोग जाग उठे, और अधूरे कपड़ों में ही खिड़कियों पर जा खड़े हुए।

"यह ख़तरे की घंटी है? क्या कहीं आग लगी है?" आपस में उन्होंने कहा।

अन्य घरों के लोग भी जाग गए थे। उनके इधर-उधर डोलने और दरवाज़ों को बन्द करने की आवाज़ें आ रही थीं। एक आदमी, घोड़े की लगाम थामे, लपका हुआ अहाते को पार कर रहा था। मेरी बूढ़ी मालकिन चिल्ला रही थी कि गिरजे पर डाकुओं का धावा हुआ है। लेकिन मेरे मालिक ने उसका मुँह बन्द करते हुए कहा:

"चुप भी रहो, मालकिन, कौन नहीं जानता कि यह ख़तरे की घंटी नहीं है!"

"तब फिर क्या है, कहीं पादरी तो नहीं मर गए!"

वीक्तर अपने तख़्ते से नीचे उतर आया।

"मैं जानता हूँ कि क्या हुआ है, मुझे सब मालूम है," कपड़े बदन पर डालते हुए उसने कहा।

यह देखने के लिए कि कहीं आकाश में आग की दमक तो नज़र नहीं आती, मेरे मालिक ने मुझे तिदरी पर दौड़ा दिया। लपक कर मैं ऊपर चढ़ गया और रोशनदान की खिड़की में से बाहर छत पर निकल आया। आकाश में कहीं कोई लाली नहीं दिखाई दे रही

थी। गिरजे का बड़ा घंटा अभी भी उसी गति से थिर और पालामारे वायुमण्डल को गुंजा रहा था। नज़र की पहुँच से बाहर लोग दौड़ रहे थे और उनके पाँवों के नीचे बर्फ़ के कचरने की आवाज़ आ रही थी। बर्फ़ पर गाड़ियों के दौड़ने की आवाज़ भी सुनाई पड़ रही थी। गिरजे का बड़ा घंटा रुकने का नाम नहीं लेता था और उसकी आवाज़ हृदय को अधिकाधिक कंपा रही थी। मैं नीचे उतर आया। मैंने कहा:

"नहीं, आग तो नहीं लगी है।"

मालिक ने मेरी बात को सुना-अनसुना करते हुए "टट-टट" की आवाज़ की। वह कोट और टोपी पहने था। उसने अपना कालर ऊपर खींच लिया और जूतों में पाँव डालने लगा।

"कहाँ जाते हो? मेरी मानो, बाहर न जाओ!" उसकी पत्नी ने रोकना चाहा।

"बको नहीं!"

वीक्तर भी कोट और टोपी पहने था और यह कहकर सभी को चिढ़ा रहा था:

"मुझे मालूम है कि क्या हुआ है, मैं सब जानता हूँ।"

जब दोनों भाई चले गए तो स्त्रियों ने मुझे समोवर गरम करने में जोत दिया और खुद खिड़कियों पर जम कर बैठ गईं। उसी समय मेरे मालिक ने दरवाज़े की घंटी बजाई, तेज़ डगों से चुपचाप ऊपर आए, बड़े कमरे का दरवाजा खोला और भरभराई सी आवाज़ में घोषित किया:

"ज़ार की हत्या कर दी गई!"

"क्या कहा, जार की हत्या कर दी गई?" बुढ़िया ने चौंक कर पूछा।

"हाँ, हत्या कर दी गई। एक अफ़सर ने मुझे बताया। अब क्या होगा?"

इसी बीच वीक्तर ने दरवाज़े की घंटी बजाई और अपना लबादा उतारते हुए झुंझलाहट में बोला:

"और मैं तो इसे युद्ध समझ बैठा था!"

इसके बाद सब चाय पीने बैठ गए और चौकन्ने से होकर दबे स्वरों में बातें करने लगे। बाहर अब सन्नाटा छाया था। घंटी का बजना बंद हो गया था। दो दिनों तक लोग लगातार फुसफुसाते रहे, एक के यहाँ जाते और दूसरों को अपने यहाँ बुलाते, और बारीकी के साथ हर बात का वर्णन करते। मैंने बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मैं समझ नहीं सका कि आख़िर हुआ क्या है। मेरे मालिकों ने समाचार-पत्रों को मुझसे छिपा दिया था, और जब सिदोरोव से मैंने यह सवाल किया कि ज़ार को उन्होंने क्यों मार डाला, तो वह धीमे स्वर में बोला:

"इस बारे में बातें करना मना है।"

समूची घटना जल्दी ही आई-गई हो गई, आए दिन के जीवन की घिस-घिस ने उसे पीछे डाल दिया, और इसके कुछ बाद ही एक ऐसी घटना घटी जिससे मैं बेहद परेशान हो उठा।

रविवार का दिन था। परिवार के लोग सुबह की प्रार्थना में शामिल होने गिरजा गए थे। और मैं, समोवर की अंगीठी दहकाने के बाद, घर की सफ़ाई करने में जुटा था। इसी बीच छोटा बच्चा रसोईघर में घुस गया, समोवर की टोंटी के ढक्कन को खींच कर उसने बाहर निकाल लिया और मेज़ के नीचे रेंग कर उससे खेलने लगा। समोवर के बीच के नलके में कोयले दहक रहे थे, जब सारा पानी निकल गया तो समोवर बुरी तरह गरमा गया और उसके जोड़ तड़कने लगे। दूसरे कमरे में मैंने समोवर को गुस्से में

भरकर अजीब आवाज़ें करते सुना। लपक कर मैं रसोईघर में पहुँचा। यह देख कर मैं काँप उठा कि वह एकदम नीला पड़ गया है, और इस तरह हाथ-पाँव पटक रहा है मानो उसे मिर्गी का दौरा पड़ा हो। जोड़ खुला नलका जिसमें टोंटी लगी थी, निराशा से गरदन लटकाए था, ढक्कन अलग अपनी दुर्गति पर आँसू बहा रहा था, हत्थों के नीचे धातु पिघल गई थी और बूंद-बूंद टपक रही थी, और नीला-काला पड़ा समोवर ऐसा मालूम होता था मानो वह नशे में धुत्त हो। जब मैंने उस पर ठंडा पानी उँडेला तो वह सनसनाया और उदास भाव से फ़र्श पर ढह गया।

उसी समय दरवाज़े की घंटी बजी। दरवाज़ा खोलते ही बूढ़ी ने पहला सवाल समोवर के बारे में किया:

"समोवर तो गरम है न?"

"हाँ, है," संक्षेप में जवाब देकर मैं चुप हो गया।

भय और शर्म से कट कर ही मैंने यह संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था। लेकिन यह भी मेरी गुस्ताखी में शुमार हो गया और उसी हिसाब से मेरी सज़ा भी डबल कर दी गई। मेरी पिटाई की गई। बूढ़ी मालकिन ने देवदार की संटियों का इस्तेमाल किया। मार से मेरी जान तो कुछ ज़्यादा नहीं निकली, लेकिन मेरे बदन में अनगिनती खपच्चियाँ और फाँसें खूब गहरी घुस गईं। सांझ तक मेरी कमर सूज कर तकिए की भांति हो गई, और अगले दिन दोपहर तक मेरे मालिक को मुझे लेकर अस्पताल जाना पड़ा।

डाक्टर इतना लम्बा और इतना पतला था कि देखकर हँसी छूटती थी। उसने मेरा बदन देखा-भाला, उसकी जांच की, और फिर गहरी थिर आवाज़ में बोला:

"इस जुल्म की मैं सरकारी हैसियत से रिपोर्ट करूँगा।"

मेरे मालिक का चेहरा लाल हो उठा, कभी वह इस पाँव पर उचका और कभी उसपर, फिर बुदबुदाकर उसने डाक्टर से कुछ

कहा, लेकिन डाक्टर ने अपनी नज़र से उसका सिर लांघ कर कहीं दूर देखते हुए दो टूक शब्दों में कहा:

"नहीं, यह नहीं हो सकता। मुझे अधिकार नहीं है।"

फिर मेरी ओर मुड़ा। पूछा:

"क्या तुम शिकायत दर्ज कराना चाहते हो?"

मेरी कमर बेहद दु:ख रही थी। मैंने कहा:

"नहीं। लेकिन जल्दी से कुछ ऐसा कीजिए कि मुझे चैन पड़े।"

वे मुझे एक दूसरे कमरे में ले गए, मेज़ पर मुझे लिटा दिया, और डाक्टर ने किसी चिमटी से खपच्चियों को निकालना शुरू किया। चिमटी का ठंडा स्पर्श गुदगुदाता-सा मालूम होता था। डाक्टर अपना काम भी करता जाता था, और बोलता भी जाता था:

"सुन रहे हो लड़के! तुम्हारी चमड़ी के साथ अच्छा-ख़ासा तमाशा किया है इन लोगों ने। इसके बाद तुम वाटर-प्रूफ़ हो जाओगे!"

डाक्टर इतनी देर तक अपनी चिमटी से कुरेदता-गुदगुदाता रहा कि मेरे लिए असह्य हो उठा। जब अपना काम ख़त्म कर चुका तो बोला:

"समझे लड़के, एकदम बयालीस खपच्चियाँ निकाली हैं मैंने। अपने साथियों के सामने तुम गर्व के साथ इसका उल्लेख कर सकते हो। कल इसी समय आकर अपनी पट्टी बदलवा जाना। क्या वे तुम्हारी अक्सर मरम्मत करते हैं?"

"पहले अक्सर किया करते थे," मैंने एक क्षण सोच कर कहा।

डाक्टर अपनी गहरी आवाज़ में हँसा।

"कोई बात नहीं, लड़के! हर चीज़ में भलाई छिपी है,— समझे, हर चीज़ में!"

जब वह मुझे मालिक के पास वापिस ले गया तो उससे कहा :

"संभालो इसे। अब यह ठीक है, बिल्कुल नये के माफ़िक। कल इसे फिर भेज देना। एक बार और बांध-बूंध देंगे। यह तो कहो कि लड़के ने हँस कर सब टाल दिया, नहीं तो लेने के देने पड़ जाते।"

गाड़ी में बैठ कर जब हम घर लौट रहे थे तो मालिक ने कहा :

"पेश्कोव, मैं भी बचपन में खूब पिटता था। बोलो भाई, इस बारे में तुम क्या कहोगे? और कितनी बुरी तरह वे मुझे मारते थे! तुम्हारे साथ कम-से-कम इतना तो है कि मैं थोड़ी-बहुत सहानुभूति दिखा सकता हूँ, लेकिन मेरे साथ तो कभी कोई सहानुभूति नहीं दिखाता था। लोगों की यों कमी नहीं थी, चारों ओर ढेर के ढेर मौजूद थे, लेकिन सब के सब हरामी, सहानुभूति के दो शब्द कहने के लिए कोई पास तक न फटकता। सब, मुर्गे-मुर्गियों की भांति कुड़कते और चोंचें लड़ाते रहते!"

रास्ते-भर वह यही सब कहता और बताता रहा। मुझे उसपर तरस आया, और कृतज्ञता का भी मैंने अनुभव किया कि उसने मेरे साथ इतनी सहानुभूति से बातें कीं।

जब हम घर पहुँचे तो सबने इस तरह मेरा स्वागत किया, मानो मैं कोई बहुत बड़ी बाज़ी जीत कर लौटा हूँ। स्त्रियों ने मुझे बैठा कर सारा हाल सुना कि डाक्टर ने किस तरह खपच्चियों को निकाला और क्या-क्या कहा। मैंने उन्हें सुनाना शुरू किया। वे सुनतीं और बीच-बीच में 'आह' 'ओह' की ध्वनि करती जातीं, अपने होठों पर जीभ फेर कर चटकारा लेतीं और इस या उस बात पर भौंहें चढ़ा लीं। बीमारी-ईकारी में, दु:ख और दर्द में, हर उस चीज़ में जो

आदमी को परेशान कर सकती है, उनकी विकृत दिलचस्पी ने मुझे चकित कर दिया।

वे इस बात से खुश थे कि मैंने उनके खिलाफ़ शिकायत दर्ज कराने से इन्कार कर दिया। इससे उत्साहित होकर मैंने उनसे कहा कि अगर इजाज़त हो तो कटर की पत्नी से पुस्तकें माँग लाया करूँ। उनसे अब इन्कार करते नहीं बना, लेकिन बूढ़ी मालकिन ने चकित होकर कहा:

"बड़े शैतान हो तुम!"

अगले ही दिन मैं कटर की पत्नी के सामने खड़ा था, और वह मुझसे कह रही थी:

"मैंने तो सुना था कि तुम बीमार पड़ गए हो और तुम्हें अस्पताल पहुँचा दिया गया है। देखो न, लोग भी कैसी-कैसी अफवाह उड़ाते हैं?"

मैंने उसकी बात को काटा नहीं। उसे सच बात बताते मुझे शर्म मालूम हुई—ऐसी औघड़ और जी भारी करने वाली बातें कह कर आखिर उसे क्यों परेशान किया जाए? मेरे लिए यही क्या कम खुशी की बात थी कि वह अन्य लोगों की तरह नहीं थी।

मैंने अब बड़े ड्यूमा, पौनसौन-द-तैरेल, मौन्तेपिन, ज़ाकोन्ने, गाबोरिओ, एमर और बुआगोबे की मोटी-मोटी जिल्दों को पढ़ना शुरू किया। मैं इन पुस्तकों को, एक के बाद एक, तेज़ी से पढ़ गया, और इन्हें पढ़कर मेरा हृदय खुशी से नाच उठा। मुझे लगा कि जैसे मैं उनके असाधारण जीवन का एक हिस्सा बन गया हूँ। मधुर भावों का मुझ में संचार हुआ और नयी शक्ति का मैंने अनुभव किया। एक बार फिर हाथ का बना मेरा लैम्प चेतन होकर धुआँ छोड़ने लगा, क्योंकि मैं रात-भर पढ़ता और पौ फटने तक पढ़ता ही रहता। मेरी आँखों के पपोटे सूज गए और मेरी बूढ़ी मालकिन

को अपना जी हल्का करने का अवसर मिला। मुझे कोंचते हुए बोली :

"अभी तो शुरुआत ही है, किताबचाटू! मज़ा तो तब आएगा जब तेरे दीदे बाहर निकल पड़ेंगे, और तू अंधा हो जाएगा!"

शीघ्र ही मैंने देखा कि ये तमाम दिलचस्प पुस्तकें, कथानकों में विविधता और मौक़े-महल में भिन्नता के बावजूद, एकसी बात कहती हैं। वह यह कि जो भले लोग हैं, वे हमेशा दुःख उठाते हैं और बुरे लोगों के हाथों उन्हें अनेक मुसीबतों का शिकार होना पड़ता है। बुरे लोग, भलों के मुक़ाबिले में ज़्यादा मज़े में रहते हैं और उनसे ज़्यादा चतुर होते हैं। और अन्त में, एकाएक, किसी चमत्कार के सहारे बुराई की सदा हार होती है और भलाई की सदा जीत, मानो यह हार-जीत वे अपने भाग्य की पाटी पर लिखा कर लाए हों। और, 'प्रेम', प्रेम का राग अलापने का तो जैसे इन्हें रोग था। उनके इस राग को सुनते-सुनते मैं तंग आ जाता। पुस्तकों के सभी पुरुष और सभी स्त्रियाँ, सदा एकसी भाषा में, 'प्रेम' की बातें करते, उनके शब्दों में ज़रा भी अन्तर न होता। इससे मन तो ऊबता ही, साथ ही उनके इस प्रेम-व्यापार में बनावट की भी गंध आती, अनेक धुंधले सन्देहों को वह जन्म देता।

कभी-कभी, कुछ पन्ने पढ़ने के बाद ही मैं यह अन्दाज़ लगाना शुरू कर देता कि अन्त में किसकी जीत होगी, और किसकी हार। और कथानक की गुत्थी का एकाध सिरा हाथ में आते ही मैं खुद उसे खोलना शुरू कर देता। पुस्तक को मैं अलग रख देता, गणित के सवाल की भांति मैं उसपर दिमाग़ लड़ाने लगता, और मेरे हल अधिकाधिक सही निकलते,—यह कि किस पात्र को स्वर्ग नसीब होगा, और किसको जहन्नुम रसीद किया जाएगा।

इस सब के अलावा एक और चीज़ थी जिसके बारे में मुझे इन पुस्तकों से पता चला, और यह एक ऐसी चीज़ थी जिसका मेरे लिए भारी महत्व था। वह यह कि मुझे उनमें भिन्न प्रकार के जीवन और भिन्न प्रकार के सम्बन्धों की झलक दिखाई देती थी। मैं अब साफ़-साफ़ देखता कि पेरिस के गाड़ीवानों, मेहनत-मज़दूरी करने वालों, सैनिकों और अन्य उन सब लोगों में जिन्हें समाज की तलछट कहा जाता है, और निजनी-नोवगोरोद, कज़ान और पेर्म की तलछट में अन्तर है, दोनों में कोई समानता नहीं है। बड़े और भद्र लोगों के सामने उनकी बोलती बंद नहीं होती, उनके सहज भाव और स्वतंत्र चेतना को पाला नहीं मारता, खुल कर और साहस से वे बातें करते हैं। इस एक सैनिक को ही लीजिए जो उन सभी सैनिकों से भिन्न था जिनसे कि मेरा वास्ता पड़ चुका था—न वह सिदोरोव से मिलता था, न उस सैनिक से जिसे मैंने जहाज़ पर देखा था, न येरमोखिन से। उसमें कहीं ज़्यादा आदमियत थी। स्मूरी से वह कुछ-कुछ मिलता था, लेकिन उसमें स्मूरी जितना भोंडापन और पाशविकता नहीं थी। या फिर इस दुकानदार को लीजिए। वह भी उन सभी दुकानदारों से भिन्न था जिन्हें कि मैं जानता था। यही बात पादरियों के बारे में थी। वे भी मेरे जाने-पहचाने पादरियों से भिन्न थे। लोगों के साथ वे अधिक प्रेम और सहानुभूति का बरताव करते थे। कुल मिला कर यह कि पुस्तकों के पन्नों में चित्रित बाहर के दूसरे देशों का जीवन उस जीवन से ज़्यादा अच्छा, ज़्यादा सहज और ज़्यादा दिलचस्प मालूम होता था जिसे कि मैं अपने चारों ओर देखता था। दूसरे देशों में लोग इतना अधिक और इतनी बर्बरता से नहीं लड़ते थे, आदमी के साथ उस तरह की कुत्सित खिलवाड़ नहीं करते थे जैसी की जहाज़ के यात्रियों ने उस सैनिक के साथ की थी, और भगवान से प्रार्थना करते

समय उस तरह की कुढ़न और जलन का परिचय नहीं देते थे जो मेरी बूढ़ी मालकिन में दिखाई देती थी।

पुस्तकों में खल-पात्रों की, कमीने और कफन खसोटनेवाले लोगों की, कमी नहीं थी। और इस बात की ओर ख़ास तौर से मेरा ध्यान गया कि पुस्तकों के इन खल-पात्रों में भी समझ में न आनेवाली वह क्रूरता, और दूसरों को धूल में रगेतने की वह धुन नहीं दिखाई देती जिससे कि मैं इतना परिचित था। पुस्तकों के खल-पात्र क्रूरता का परिचय देते थे, लेकिन तभी जब उन्हें कोई मतलब साधना होता था। उनकी क्रूरता, बहुत कर ऐसी नहीं होती थी कि समझ में न आए। लेकिन मैं जिस क्रूरता से परिचित था, उसमें कोई तुक नहीं दिखाई देती थी, बिल्कुल बेमानी और बेमतलब, एक ऐसी क्रूरता जिसने खिलवाड़ का रूप धारण कर लिया था, मनबहलाव के सिवा जिसका और कोई लक्ष्य नहीं था।

हर नयी पुस्तक, रूस और दूसरे देशों के जीवन के बीच इस अन्तर और उनके भेद को उभारकर रखती, असन्तोष का एक बगूला-सा मेरे हृदय में उमड़ता, अँगूठों और उँगलियों के निशान पड़े पुस्तकों के पीले पन्नों पर झुंझलाहट आती और मेरा यह सन्देह ज़ोर पकड़ने लगता कि इन पन्नों में जो कुछ लिखा है, वह एकदम सच नहीं है।

इन्हीं दिनों गौनकोर्ट का उपन्यास "ज़ेमगान्नो बन्धु" मेरे हाथों में पड़ा। एक ही रात में मैं उसे पढ़ गया। दु:खी में डूबी इसकी सीधी-सादी कहानी में कुछ ऐसी नवीनता थी कि मुझसे रहा नहीं गया, और मैं इसे दोबारा पढ़ गया। इसमें न तो कोई पेचीदा कथानक था, न ही फालतू बनाव-सिंगार की चकाचौंध थी। यहाँ तक कि शुरू में यह कुछ रूखा और सन्तों की जीवनियों की भांति गम्भीर मालूम हुआ। इसकी भाषा इतनी नपी-तुली और

सिंगार से इतनी कोरी थी कि पहले-पहल बड़ी निराशा हुई, लेकिन कुछ देर बाद ही उसके संक्षिप्त से शब्दों और सबल वाक्यों ने तीर की भांति सीधे मेरे हृदय में प्रवेश करना शुरू किया और इन नट-बन्धुओं के जीवन-संघर्ष का इतना सजीव और सच्चा चित्र मेरी आँखों के सामने खड़ा कर दिया कि मेरा रोम-रोम खुशी से थरथरा उठा, मेरी आँखों में आँसू उमड़-घुमड़ आए और इस समय जब मुसीबतों का मारा नट अपनी टूटी टांग लिए बड़ी मुश्किल से ऊपर चढ़कर अपने भाई के पास पहुँचा जो तिदरी में छिप कर जान से भी प्यारी अपनी नट-कला का अभ्यास कर रहा था, तो मैं बुरी तरह चीख उठा, मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मेरा हृदय फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।

इस अद्भुत पुस्तक को लौटाने के लिए जब मैं कटर की पत्नी के पास गया तो मैंने उससे कहा:

"ठीक इस जैसी कोई और पुस्तक हो तो मुझे दो।"

"भला यह भी कोई बात हुई,—ठीक इस जैसी वैसी? इतना कहने से तो कुछ समझ में नहीं आता।" उसने हँसते हुए कहा।

उसकी हँसी से मैं अचकचा गया। न ही मैं उसे यह समझा सका कि 'ठीक इस जैसी' से मेरा क्या मतलब है। वह बोली:

"वह भी कोई पुस्तक है—पढ़ते-पढ़ते मन ऊब जाता है। ज़रा ठहरो, मैं तुम्हें एक बढ़िया पुस्तक निकाल कर दूँगी, बहुत ही दिलचस्प।"

कुछ ही दिन बाद उसने मुझे ग्रीनवुड कृत "एक आवारा लड़के की सच्ची कहानी" दी। पुस्तक का नाम देखते ही मैंने मुँह बिचकाया, लेकिन पहला पन्ना पढ़ते न पढ़ते मेरा चेहरा खिल गया और जब तक उसे ख़त्म न कर लिया, पुस्तक हाथ से न छोड़ी,

और कितने ही अंशों को तो दो-दो और तीन-तीन बार तक पढ़ गया।

सो दूसरे देशों में भी छोटे लड़कों को कुछ कम मुसीबतें नहीं उठानी पड़तीं! सच तो यह है कि उसके मुक़ाबिले में मुझे अपना जीवन कहीं गनीमत मालूम हुआ, और मुझे लगा कि अपने को गया-बीता समझ कर मैं बेमतलब ही इतना परेशान होता हूँ।

ग्रीनवुड ने मुझे बड़ा सहारा दिया, और इसके शीघ्र बाद ही एक ऐसी पुस्तक हाथ लगी जो सचमुच में "सही ढंग" की थी — 'यूजेनी ग्राण्डे'।

बूढ़े ग्राण्डे की कहानी पढ़ कर मेरी आँखों के सामने अपने नाना का सजीव चित्र खड़ा हो गया। पुस्तक इतनी छोटी थी कि जल्दी से ख़त्म हो गई, और यह मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ। लेकिन यह छोटी-सी पुस्तक इतनी सचाई से भरी थी कि मैं चकित रह गया। इसकी सचाई मेरे लिए अनजानी नहीं थी, खुद अपने जीवन में मैं उससे परिचित हो चुका था। लेकिन पुस्तक ने मुझे एक नयी रोशनी प्रदान की, एक ऐसी रोशनी जो चीज़ों को शान्त, तटस्थ और असंलग्न नज़र से देखती थी। गौनकोर्ट को छोड़ कर अन्य जितने भी लेखक मैंने पढ़े थे, मेरे मालिक की भांति वे सब भी उतने ही निर्मम और चिड़चिड़े ढंग से लोगों को जहन्नुम रसीद करते और उन्हें मुसीबतों का शिकार बनाते थे, जिसका असर यह होता कि पाठक बहुधा खल-नायक से सहानुभूति करने लगता, और भले पात्रों की 'भलमनसाहत' से तंग आ जाता। यह देख कर मैं हमेशा परेशान हो उठता कि लाख सिर खपाने और हाथ-पाँव मारने के बाद भी आदमी अपना रास्ता नहीं खोज पाता, वह आगे नहीं बढ़ पाता, और सब से दुःख की बात तो यह थी कि वही चीज उसे ले डूबती जिसे हम भलमनसाहत कहते हैं। शुरू से लेकर

आखिर के पन्ने तक, क़दम-क़दम पर, यह भलमनसाहत ही उसके मार्ग में आड़े आती। पत्थर की दीवार की तरह वह उसके प्रयत्नों को विफल करती। माना कि खल-नायक की सारी चालें और सारे इरादे इस दीवार से टकरा कर चकना-चूर हो जाते, लेकिन दीवार कोई ऐसी चीज़ नहीं होती कि उसके लिए हृदय में प्यार जगे, हृदय उसके साथ कुछ लगाव अनुभव करे। पत्थर की दीवार अपने आप में चाहे जितनी सुन्दर और मज़बूत क्यों न हो, लेकिन उस आदमी को जिसके हृदय में दीवार के दूसरी ओर उगे सेबों को पाने की ललक है, न तो दीवार की सुन्दरता भली लगेगी, न उसके पत्थरों की मज़बूती। और मुझे हमेशा ऐसा अनुभव होता कि हर उस चीज के आगे जो वास्तव में अत्यन्त सच्ची और अत्यन्त महत्वपूर्ण है, भलमनसाहत की यही दीवार खड़ी है।

गौनकोर्ट, ग्रीनवुड और बालज़ाक के उपन्यासों में न तो खल-नायक थे, और न भले नायक। केवल सीधे-सादे लोग थे, इतने सजीव कि देख कर अचरज होता। वे जो कुछ भी कहते और करते, क्या मजाल जो उसपर कोई उँगली उठा सके! ऐसा मालूम होता जैसे सचमुच के जीवन में भी उन्होंने उसे ठीक उसी रूप में कहा या किया होगा, और ठीक इसी रूप में उसे कहा या किया जा सकता है, अन्य किसी रूप में नहीं।

अब मेरे लिए वह सुख कोई बेगानी चीज़ नहीं रहा जो किसी अच्छी पुस्तक, 'सही ढंग' की पुस्तक को पढ़ने से प्राप्त होता है। लेकिन ऐसी पुस्तकें पाना भी एक समस्या थी। कटर की पत्नी इसमें मेरी कोई मदद नहीं कर सकी।

"लो, ये कुछ अच्छी पुस्तकें हैं," उसने कहा और मुझे आर्सेन हौस्साये कृत "गुलाब, स्वर्ण और रक्त से रंजित हाथ", और बैलेयू, पाल-द-काक तथा पाल फेवाल के उपन्यास थमा दिए।

लेकिन ऐसी पुस्तकों को पढ़ना अब मुझे काफ़ी भारी मालूम होता।

मरयात और वर्नर के उपन्यास उसे पसंद थे, लेकिन मैं उन्हें पढ़ कर ऊब गया। न ही मुझे स्पीलहागेन के उपन्यास पसन्द आए। लेकिन अवरबाख की कहानियाँ मुझे खूब अच्छी लगीं। स्यू और ह्यूगो मुझे इतने पसन्द नहीं आए जितने कि सर वाल्टर स्काट। मैं ऐसी पुस्तकें चाहता जिन्हें पढ़ कर मेरे हृदय के तार झनझना उठें, मेरा रोम-रोम खुशी से नाच उठे, बालज़ाक की पुस्तकों की भांति जो कि पूरा जादूगर था। चीनी की गुड़िया के समान सुन्दर कटर की पत्नी भी अब मुझे उतनी अच्छी नहीं लगती।

उसके यहाँ जाने से पहले मैं साफ़-सी कमीज़ पहनता, बालों में कंघी करता और हर वह उपाय करने में कोई कसर नहीं छोड़ता जिससे कि मैं कुछ भला दिख सकूँ। इसमें कितनी सफलता मुझे मिलती थी, यह तो पता नहीं, लेकिन इतनी उम्मीद मैं अवश्य करता था कि भले आदमियों जैसी मेरी इस सजधज को देख कर वह मुझसे अधिक सहज और मित्रतापूर्ण भाव से बातें करेगी, और आईने की भांति साफ़-सुथरे अपने चेहरे को उस बिल्लौरी मुसकान से मुक्त रखेगी जो कि ऐसे मौकों पर ख़ास तौर से धारण कर ली गई मालूम होती थी। लेकिन वह मुसकराये बिना न रहती, और थकी हुई सी मधुर आवाज़ में पूछती:

"तुमने पढ़ा इसे? पसन्द तो आई न?"

"नहीं।"

वह अपनी कमान-सी भौंहों को हल्का-सा बल देती, और उसाँस भर कर अपने उसी परिचित स्वर में गुनगुनाती:

"पसन्द क्यों नहीं आई?"

"यह सब तो मैं पहले ही पढ़ चुका था।"

"यह सब क्या?"

"यही प्रेम-व्रेम की बातें।"

उसकी भौंहें तन जातीं और वह एक बनावटी-सी हँसी हँसती।

"तुम भी गज़ब करते हो! यह नहीं तो फिर पुस्तकों में होता क्या है, — सिवा प्रेम के?"

बड़ी-सी आरामकुर्सी पर बैठे हुए कभी वह अपने छोटे-छोटे पाँवों को झुलाती जिनमें वह रोएंदार स्लीपर पहने थी, कभी जमुहाई लेती और आसमानी लबादे को खींच कर अपने कंधों से ज़रा और सटा लेती, कभी गोद में पड़ी पुस्तक को अपनी गुलाबी उँगलियों के छोरों से ठकठकाती।

मेरा जी चाहता कि उससे कहूँ:

"तुम यहाँ से किसी दूसरी जगह क्यों नहीं चली जातीं? अफ़सर अभी भी तुम्हारे पास खरीते भेजते हैं और तुम्हारा मज़ाक उड़ाते हैं।"

लेकिन मेरी आवाज़ साथ न देती। साहस के अभाव में मेरी बोलती बंद हो जाती और मैं, हाथ में 'प्रेम' सम्बन्धी कोई दूसरी पुस्तक और हृदय में निराशा लिए, वहाँ से चला आता।

अहाते में अब उसका और भी कुत्सित तथा बेहूदा मज़ाक उड़ाया जाता, दुनिया-भर की उल्टी-सीधी बातें उसके बारे में की जातीं। इन गंदी और सिर से पाँव तक झूठी बातों को सुनकर मेरा हृदय कचोट उठता। जब मैं उसके सामने न होता तो मुझे उसपर तरस आता, और उसे लेकर अनेक आशंकाएँ मेरे हृदय को कुरेदने लगतीं। लेकिन जब मैं उसके सामने होता और उसकी पैनी आँखों, बिल्ली की भांति चपल गुड़िया-ऐसे उसके शरीर और 'मिलनसारी' का नकाब ओढ़े उसके चेहरे पर नज़र डालता तो मेरी सारी हमदर्दी कोहरे की भांति गायब हो जाती।

वसन्त में वह एकाएक कहीं चली गई, और इसके कुछ ही दिन बाद उसके पति ने भी घर छोड़ दिया।

उनके घर में अभी कोई नया किरायेदार नहीं आया था, वह खाली पड़ा था। मैंने उसका चक्कर लगाया। सूनी दीवारों पर तुड़ी-मुड़ी कीलों या उनके छेदों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता था। दीवार के वे स्थल जहाँ तस्वीरें लटकी थीं, रंग-उड़ने के कारण साफ़ उभरे हुए दिखाई देते थे। रोगनदार फर्श पर कागज़ के टुकड़े, चमकती हुई पन्नियाँ और रंग-बिरंगे लेबुल आदि बिखरे पड़े थे। एक ओर गोलियों की खाली डिबियाँ, इत्र की शीशियाँ और उनके बीच पीतल की एक बड़ी पिन दिखाई पड़ रही थी।

यह सब देख कर मेरा जी उदास हो गया, और कटर की पत्नी को एक बार और देखने तथा उसके सामने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरा मन ललकने लगा।

१०

कटर की पत्नी के चले जाने से भी पहले से हमारे घर के निचले हिस्से में काली आँखों वाली एक युवती स्त्री रहती थी। साथ में एक छोटी लड़की और स्त्री की माँ भी थी। माँ बुढ़िया थी। उसके बाल सफ़ेद हो गए थे और अम्बर के होल्डर को मुँह में दबाए चौबीसों घंटे सिगरेट का धुआँ उड़ाती रहती थी। युवती बेहद खूबसूरत, गर्वीली और सब को अँगूठे के नीचे रखने वाली थी। आवाज़ गहरी और मधुर, लोगों से बोलते समय वह कुछ इस अन्दाज़ से अपना सिर पीछे की ओर फेंकती तथा आँखों को सिकोड़ लेती मानो वे इतनी दूर हों कि साफ़-साफ़ न दिखाई पड़ते हों। क़रीब-क़रीब हर रोज़ उसका सैनिक नौकर जिसका

नाम तूफ़ायेव था, पतली टाँगों वाले एक घोड़े को लेकर उसके घर के सामने पोर्च में आ खड़ा होता और युवती, इस्पाती भूरे रंग का घुड़सवारी का लम्बा मखमली जामा पहने, हाथों में सफ़ेद दस्ताने डाले और पाँव में खाकी बूट कसे बाहर निकल आती। एक हाथ से अपने जामे को ऊँचा उठाए और नीलम की मूठ वाला हण्टर थामे दूसरे हाथ से वह घोड़े के नथुने थपथपाती। घोड़े की बत्तीसी चमक उठती, अपनी आँखों को वह घुमाता तथा कड़ी ज़मीन को खुरखुराता, और उसके समूचे बदन में एक सिहरन-सी दौड़ जाती।

"रोबी! रोबी!" वह धीमे स्वर में गुनगुनाती और घोड़े की बहुत ही सुन्दर खमदार गरदन को थपथपाती।

फिर तूफ़ायेव के घुटने पर अपना पाँव रखती, हल्के से उचक कर घोड़े पर सवार हो जाती और घोड़ा, इशारा पाते ही, इठलाता-नाचता बांध के किनारे-किनारे चलने लगता। घोड़े पर वह कुछ इतने सहज भाव से बैठती मानो इसी रूप में, घोड़े पर बैठे-बैठे, उसने जन्म लिया हो।

वह उन दुर्लभ सुन्दर स्त्रियों में से थी जिनका सौन्दर्य सदा नया और निराला प्रतीत होता है, जिन्हें देख कर हृदय पर एक नशा-सा छा जाता है, और रोम-रोम खुशी से नाचने लगता है। जब मैं उसकी ओर देखता तो ऐसा लगता कि डायना-द-पौयतिये, रानी मारगोट, ला-वैलियेर तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की अन्य नायिकाओं का सौन्दर्य भी, बिला शक, इतना ही जादू-भरा रहा होगा।

छावनी के फ़ौजी अफ़सर उसे बराबर घेरे रहते। सांझ होते ही वे उसके घर आ जाते, वायोलीन, प्यानो और गितार बजाते, नाचते और गाते। अपनी ठिंगनी टाँगों पर उसके सामने फुदकने में ओलेसोव नाम का एक मेजर अन्य सभी को मात कर देता। मोटा-

ताज़ा बदन, सफ़ेद बाल और लाल चेहरा जिसकी चिकनाहट देखकर किसी तेलची के चेहरे का गुमान होता। वह गिटार बजाने में माहर था, और युवती स्त्री के सामने इस तरह बिछ जाता था मानो वह उसका बहुत ही वफ़ादार और ज़मीन चूमने वाला चाकर हो।

गुलाब से लाल गाल और घुंघराले बालों वाली उसकी पाँच वर्षीया लड़की भी उतनी ही उज्ज्वल और सुन्दर थी जितनी कि वह खुद। अपनी बड़ी-बड़ी नीली आँखों से वह बड़े ही शान्त, गम्भीर और आशा-भरे अन्दाज़ में देखती। उसकी इस गम्भीरता में बचपन से अधिक बड़पन का पुट दिखाई देता।

बुढ़िया पौ फटते ही उठ बैठती और गई रात तक घर के धंधों में जुटी रहती। भौंहें चढ़ा और मुँहबन्द तूफ़ायेव और थलथल तथा ऐंची-तानी महरी काम में बुढ़िया का हाथ बंटाती। बच्ची के लिए कोई आया नहीं थी और वह मानो बिना किसी देख-भाल और निगरानी के, पल और बढ़ रही थी। वरांडे में या उसके सामने जमा लकड़ियों के ढेर पर वह दिन-भर खेलती रहती। सांझ होते ही मैं बहुधा उसके पास पहुँच जाता, उसके साथ खेल करता और वह मुझे बहुत प्यारी मालूम होती। शीघ्र ही वह मुझसे इतनी हिल-मिल गई कि परियों की कहानियाँ सुनते-सुनते वह मेरी गोद में ही सो जाती। जब वह सो जाती तो मैं उठता और उसे अपनी बाँहों में संभाले उसके बिस्तरे पर सुला आता। देखते-देखते वह इतनी हिल गई कि जब तक मैं उसके पास जाकर उससे "गुडनाइट" न करता, वह सोने से इन्कार कर देती। जैसे ही मैं उसके कमरे में पैर रखता, रौब के साथ वह अपना छोटा-सा गुलाबी हाथ फैलाती और कहती:

"गुडबाई, कल तक के लिए। हाँ तो मुझे और क्या कहना चाहिए, नानी?"

"भगवान तुम्हारी रक्षा करे," अपने दाँतों और नाक के सुरों में से धुएँ की पतली धार छोड़ते हुए उसकी नानी जवाब देती।

"भगवान तुम्हारी रक्षा करे कल तक," वह दोहराती और बेल लगी अपनी रज़ाई में कुनमुनाने लगती।

"कल तक नहीं, बल्कि हमेशा रक्षा करे," उसकी नानी उसे ठीक करती।

"कल क्या हमेशा नहीं होती?"

'कल' शब्द से उसका ख़ास लगाव था और जो भी चीज़ उसके मन को भाती उसे ही वह कल के खाने में डाल देती। फूलों या टहनियों के एक गुच्छे को वह मिट्टी में गाड़ देती और कहती:

"कल यह बाग बन जाएगा।"

"कल मैं एक घोड़ा खरीदूँगी और ममी की भांति उस पर सवार होकर घूमने जाया करूँगी।"

वह बहुत ही समझदार थी, लेकिन उत्साह और उछाह उसमें अधिक नहीं था। बहुधा खेलते-खेलते वह कुछ सोचने लगती और एकाएक पूछ बैठती:

"पादरी लोग स्त्रियों की भांति लम्बे बाल क्यों रखते हैं?"

एक दिन कंटीली झाड़ी उसके चुभ गयी। वह खड़ी हो गई और उँगली से उसे धमकाते हुए कहने लगी:

"अगर फिर कभी ऐसा किया तो मैं भगवान से कह दूँगी और वह तेरी ख़ूब मरम्मत करेगा। भगवान से कोई नहीं बच सकता — मेरी ममी भी नहीं!"

कभी-कभी एक उदास थिरता उस पर छा जाती, अपने बदन को वह मुझसे सटा लेती। आशा-भरी नज़रों से आकाश की ओर देखती और कहती:

"नानी कभी-कभी मुझे डाँटती है, लेकिन ममी कभी नहीं डाँटती, बस हँसती रहती है। ममी को सभी प्यार करते हैं, क्योंकि उसे कभी फ़ुरसत नहीं मिलती, क्योंकि लोग हमेशा उससे मिलने आते हैं और उसे देखते रहते हैं, क्योंकि वह इतनी सुन्दर है। ममी अद्भुत है। ओलेसोव भी यही कहता है — मेरी अद्भुत ममी!"

बचपन की भाषा में एक अनजाने जीवन के बारे में जब वह मुझे बताती तो बड़ा अच्छा लगता। अपनी माँ का ज़िक्र करते समय उसके उछाह और तत्परता का वारापार न रहता, एक नए जीवन की मुझे झांकी मिलती और रानी मारगोट की कहानी की मुझे याद हो आती। इससे पुस्तकों में मेरा विश्वास और भी बढ़ता, अपने चारों ओर के जीवन में मैं और भी दिलचस्पी लेता।

एक दिन की बात है। सांझ का समय था। मेरे मालिक घूमने गए थे और मैं, लड़की को अपनी गोद में लिए, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। लड़की की आँखें झपक गई थीं। तभी उसकी माँ घोड़े पर सवार बाहर से लौटी, लचक के साथ वह ज़ीन से नीचे उतरी और अपने सिर को पीछे की ओर फेंकते हुए बोली:

"क्या सो गई है?"

"हाँ।"

"क्या सचमुच..."

सैनिक तूफ़ायेव लपक कर आया और घोड़े को अपने साथ ले गया। हंटर को अपनी पेटी में खोंसते हुए युवती ने अपनी बाँहें फैलाईं और मुझ से कहा:

"इसे मुझे दे दो।"

"मैं खुद इसे पहुँचा दूँगा।"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं!" पाँव पटक कर वह इस तरह चिल्लाई मानो मैं उसका घोड़ा हूँ। लड़की चौंक उठी, आँखें मिचमिचा कर उसने देखा, माँ पर उसकी नज़र पड़ी, और उसने भी अपनी बाँहें फैला दीं। दोनों भीतर चली गईं।

डाँट-डपट का मैं आदी था। लेकिन इस स्त्री का चिल्लाना मुझे बहुत अटपटा मालूम हुआ। वह अगर हल्का-सा इशारा भी करती तो सब उसकी आँखों के आगे बिछ जाते।

कुछ ही क्षण बाद ऐंचो-तानी महरी बाहर आई और उसने मुझे आवाज़ दी। बच्ची ने हठ पकड़ ली थी और बिना मुझसे गुडबाई कहे बिस्तर पर सोने से इन्कार कर दिया था।

कुछ गर्व के साथ मैंने ड्राइंगरूम में पाँव रखा। युवती स्त्री लड़की को गोद में लिए बैठी थी और फुर्ती से उसके कपड़े उतार रही थी।

"लो, यह आ गया तुम्हारा अवधूत!" उसकी माँ ने कहा।

"इसे अवधूत क्यों कहती हो? यह तो मेरा खेल का साथी है!"

"क्या सचमुच? अच्छी बात है। खेल के अपने इस साथी को तुम्हें कोई चीज़ भेंट करनी चाहिए,—क्यों, ठीक है न?"

"हाँ-हाँ, जरूर भेंट करो माँ!"

"अच्छा तो तुम अब झटपट अपने बिस्तरे पर चली जाओ। मैं अभी उसे कोई चीज़ देती हूँ।"

"कल तक के लिए, गुडबाई!" हाथ फैलाते हुए लड़की ने कहा।—"भगवान तुम्हारी रक्षा करे, कल तक!"

"अरे, यह तुमने कहाँ सीखा?" उसकी माँ ने अचरज से पूछा।—"क्या नानी ने सिखाया है?"

"हाँ।"

जब लड़की सोने के लिए चली गई तो युवती स्त्री ने मुझे अपने पास बुलाया:

"तुम क्या लेना पसंद करोगे?"

मैंने कहा कि मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, अगर पढ़ने के लिए कोई किताब मिल जाए तो अच्छा हो।

उसने अपनी सुहावनी, महकती हुई उँगलियों से मेरी ठोड़ी को ऊपर उठाया और प्रसन्न भाव से मुसकराते हुए कहा:

"मतलब यह कि तुम्हें किताबें पढ़ने का शौक है, क्या ठीक है न? कौन-कौन सी किताबें पढ़ चुके हो?"

जब वह मुसकराती तो और भी सुन्दर लगती। मैं अचकचा गया और हड़बड़ाहट में जो दो-चार नाम याद आए, गिना दिए।

"इन पुस्तकों में क्या चीज़ तुम्हें अच्छी लगी?" उसने मेज़ को अपनी उँगलियों से बजाते हुए पूछा।

उसके बदन से फूलों की तेज़ और मीठी महक आ रही थी जिसमें घोड़े के पसीने की गंध भी कुछ अजीब ढंग से मिली हुई थी। अपनी लम्बी बरौनियों की ओट में से वह मुझे बड़े ध्यान से परख रही थी। यह पहला अवसर था जब किसीने इस तरह मेरी ओर देखा था।

कमरा इतना छोटा मालूम होता था मानो वह किसी पंछी का घोंसला हो—इस हद तक वह सुन्दर गद्देदार मेज़-कुर्सियों से भरा था। खिड़कियाँ पौधों की घनी हरियाली में छिपी थीं। सांझ की धुंधली गुलाबी रोशनी में तन्दूर के बर्फ़ की भांति सफ़ेद टाइल चमक रहे थे। पास ही में काला प्यानो रखा था। दीवारों पर गिलट के धुंधले चौखटों में जड़ी सनदें लटक रही थीं। सनदों का कागज़ मटमैला पड़ गया था और उन पर स्लाव लिखावट में कुछ लिखा था। प्रत्येक चौखटे से एक डोरी लटकी थी

जिसके छोर में एक बड़ी सी मोहर झूल रही थी। ये सभी चीज़ें, मेरी ही भांति, विनत और श्रद्धाभाव से उसकी ओर देख रही थीं।

मुझसे जितना बन सका, मैंने बताया कि मुसीबतों ने मेरे जीवन को कितना बोझिल और कठिन बना दिया है, और यह कि पुस्तकें पढ़ने से कुछ देर के लिए जी ज़रा हल्का हो जाता है।

"क्या सचमुच?" उठते हुए उसने अचरज से कहा।—"तुमने बहुत ही अच्छे ढंग से अपनी बात कही, और मुझे लगता है कि तुमने जो कहा वह ठीक है... किताबें मैं तुम्हें ख़ुशी से दूँगी, लेकिन इस वक़्त मेरे पास कोई नहीं है... हाँ, याद आया, अगर चाहो तो अभी इसे ले जा सकते हो।"

काउच पर पीली जिल्द की एक पुरानी-सी पुस्तक पड़ी थी। उसे उठाकर उसने मुझे दे दिया।

"जब इसे पढ़ चुको तो इसका दूसरा हिस्सा ले जाना—चार हिस्सों में यह ख़त्म होती है।"

मेश्चेरस्की लिखित "पीतर्सबर्ग के रहस्य" बग़ल में दबाए मैं वहाँ से लौट आया, और बड़े ध्यान से उसे पढ़ने बैठ गया। लेकिन मैं शीघ्र ही उससे उकता गया और मैड्रिड, या लंडन अथवा पेरिस के 'रहस्यों' के मुक़ाबिले में पीतर्सबर्ग के 'रहस्य' मुझे बहुत ही बोझिल मालूम हुए। ले-दे कर पुस्तक में मुझे एक ही चीज़ पसन्द आई। वह चीज़ थी लाठी और आज़ादी के बीच संवाद:

"मैं तुमसे बढ़ कर हूँ," आज़ादी बोली,—"क्योंकि मेरे पास बुद्धि है।"

"ओह नहीं, मैं तुमसे बढ़ कर हूँ, क्योंकि मैं सबल हूँ", लाठी ने तुरन्त जवाब दिया।

कुछ देर तक दोनों बहस करती रहीं और फिर गरमा कर लड़ने पर उतर आईं। लाठी ने आज़ादी की खूब मरम्मत की, और जहाँ तक मुझे याद है घायल हो जाने के कारण उसे अस्पताल ले जाया गया जहां उसने दम तोड़ दिया।

पुस्तक के पात्रों में एक निहिलिस्ट पात्र भी था। मुझे याद है कि पुस्तक के लेखक प्रिन्स मेश्चेरस्की ने इस पात्र को एक ऐसा विषैला हौवा बनाकर पेश किया था जिसकी नज़र पड़ने से चूज़े वहीं-के-वहीं ढेर हो जाते हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो निहिलिस्ट शब्द एक भद्दी गाली हो जिसका इस्तेमाल उस समय किया जाता है जब किसी को नीचे गिराना हो, जब उसे गंदा और भद्दा सिद्ध करना हो। इसके अलावा और कुछ मेरे पल्ले नहीं पड़ा, और इस बात से मेरा जी भारी हो गया। मुझे लगा कि अच्छी पुस्तकों को समझना मेरे बूते से बाहर है। पुस्तक के अच्छी होने में मुझे रत्ती-भर भी सन्देह नहीं था। मैं यह सोच तक नहीं सकता था कि इतनी सुन्दर और रोबदार स्त्री का बुरी पुस्तकों से कभी कोई लगाव हो सकता है।

"क्यों, पसन्द आई?" जब मैं मेश्चेरस्की का उपन्यास लौटाने गया तो उसने पूछा।

मुझसे यह स्वीकार करते नहीं बना कि पुस्तक अच्छी नहीं लगी। डर था कि कहीं वह बुरा न मान जाए।

वह केवल हँस दी और पर्दा उठाकर अपने सोने वाले कमरे में ग़ायब हो गई। कमरे में से वह लौट कर आई तो उसके हाथ में मोरक्को की नीली जिल्द बंधी एक पुस्तक थी।

"यह तुम्हें अच्छी लगेगी। लेकिन इसे गंदा न कर लाना,—समझे!"

इसमें पुश्किन की कविताएँ थीं। एक ही बैठक में मैं सारी

कविताएँ पढ़ गया। किसी अत्यन्त सुन्दर वातावरण में पहुँच जाने पर जैसा मालूम होता है, ठीक वैसा ही मेरे साथ भी हुआ—एक बार में ही सभी कुछ अपने हृदय में समेट कर रखने के लिए मेरा जी ललक उठा। ऐसा मालूम होता मानो दलदल में से निकलने के बाद कोई हरियाली जगह आँखों के सामने आ गई जहाँ सूरज चाँदी बरसा रहा था, और चारों ओर फूल ही फूल खिले थे। लगा, जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। एक क्षण के लिए पाँव ठिठके और फिर, पूर्णतया उन्मुक्त होकर, उस सुन्दर स्थल का चप्पा-चप्पा छान डालने के लिए मचल उठें; ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उन्हें रोक सके। पांव रोके नहीं रुकते, नर्म घास का प्रत्येक स्पर्श हृदय में सिहरन पैदा करता है। खुशी की एक लहर-सी दौड़ जाती है।

पुश्किन की कविताओं ने, उनकी सादगी और संगीत ने, मुझपर कुछ ऐसा जादू किया कि उनके सामने गद्य फीका और अटपटा मालूम होता, उसके पास तक फटकने को जी न चाहता। "रुसलान और लुदमिला" का कथा-प्रवेश तो मानो नानी की श्रेष्ठतम कहानियों का निचोड़ था और कुछ पंक्तियाँ इतनी सुन्दर और पूर्ण थीं कि मेरे रोम-रोम में बस गईं:

> पहुंच न पाया मानव जहाँ और वहां, उन अछूते पथों में,
> दिखाई देते थे पद-चिन्ह अनजाने जन्तुओं के...

इन अद्‌भुत पंक्तियों को मैं बार-बार गुनगुनाता और मेरी आँखों के सामने हर डग पर ओझल हो जाने वाले उन पथों का चित्र मूर्त हो उठता जिनसे कि मैं खूब परिचित था, वे पगडंडियाँ मेरी आँखों के सामने उभर आतीं जिनकी रौंदी हुई घास किसी

के अभी-अभी उधर से गुज़रने की कहानी कहती और घास की दबी-कुचली पत्तियों पर ओस के कण पारे की बूंदों की भांति अभी भी चमकते होते। भरी-पूरी ध्वनि से युक्त पंक्तियाँ सहज ही ज़बान पर चढ़ जातीं; उन्हें बार-बार गुनगुनाने को जी चाहता। शब्दों के साथ भाव नगीने की भांति जड़े होते, हर बात में एक अजीब निखार दिखाई देता। मेरा रोम-रोम ख़ुशी से भर जाता, जीवन अधिक आसान और सुहावना मालूम होता। कविताएँ क्या थीं, असल में नये जीवन की पेशवा थीं। पढ़ना भी कितने आनन्द की चीज़ है!

पुश्किन की पद्यमय गाथाएँ मेरे हृदय और समझ के लिए सब से निकट थीं। मैंने उन्हें इतनी बार पढ़ा कि वे मुझे ज़बानी याद हो गईं। जब मैं सोने के लिए जाता तो चुपचाप लेट कर अपनी आँखें बंद कर लेता, उन्हें मन-ही-मन दोहराता और मुझे पता भी न चलता कि कब नींद आ गई। कभी-कभी मैं अफ़सरों के साईसों-अरदलियों को भी उन्हें सुनाता। उनके चेहरे खिल जाते और वे चकित होकर कसमें खाते,—गालियाँ प्रशंसा के उद्गार बन कर उनके मुँह से प्रकट होतीं। सिदोरोव मेरा सिर थपथपाता और धीमे स्वर में कहता:

"ओह कितनी सुन्दर!"

मालिकों से यह छिपा न रहा कि आजकल मैं किस रंग में डूबा हूँ। बूढ़ी मालकिन मुझे डाँटना-झिड़कना शुरू करती:

"इसने किताबें क्या पढ़ना शुरू किया, नाक में दम कर दिया। चार दिन से समोवर गंदा पड़ा है, लेकिन नवाबज़ादे को तो पढ़ने से ही फ़ुरसत नहीं, उसे साफ़ कौन करे? एक दिन चिमटी से दीदे फोड़ दूंगी, तभी यह पढ़ना छूटेगा!"

लेकिन पुश्किन की कविताओं के सामने चिमटी की भला क्या बिसात? जवाब में मैं उसकी पंक्तियाँ गुनगुना उठता:

—डायनों की नानी
हृदय काला, आत्मा काली
और खाला शैतान की...!

वह सुन्दर स्त्री मेरी नज़रों में और भी ऊँची उठ गयी जो इतनी बढ़िया पुस्तकें पढ़ती थी। कटर की पत्नी की भांति वह चीनी की गुड़िया मात्र नहीं थी!

पुस्तक लौटाने के लिए मैं उसके पास पहुँचा। उसे लौटाते समय मेरा जी भारी हो गया। उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और विश्वास के साथ बोली:

"बोलो, यह तो पसंद आई न? क्या तुमने कभी पुश्किन का नाम सुना है?"

पुश्किन के बारे में एक पत्रिका में मैं कुछ पढ़ चुका था। लेकिन मैंने इसका ज़िक्र तक नहीं किया। मैं ख़ुद उसके मुँह से सुनना चाहता था कि वह क्या कहती है।

पुश्किन के जीवन और मृत्यु का थोड़े में कुछ हाल बताने के बाद ग्रीष्म की उजली धूप की भांति मुसकरा कर उसने पूछा:

"देखा तुमने, किसी स्त्री से प्रेम करना कितना ख़तरनाक होता है?"

अब तक जितनी भी पुस्तकें मैं पढ़ चुका था, उनके हिसाब से तो निश्चय ही ख़तरनाक था—ख़तरनाक, लेकिन साथ ही अच्छा भी!

"ख़तरनाक चाहे जितना हो, फिर भी सब इस बला को अपने हृदय से लगाते हैं," मैंने कहा,—"स्त्रियों को भी इस बला का कुछ कम भुगतान नहीं करना पड़ता!"

पलकें झुका कर उसने मेरी ओर देखा, जैसे कि वह हर चीज़ को देखती थी। फिर गम्भीर स्वर में बोली:

"क्या सचमुच? तुमने जो कहा, क्या सचमुच वैसा ही अनुभव भी करते हो? अगर हाँ तो मैं यही कहूँगी कि इस सत्य को कभी आँखों की ओट न होने देना।"

इसके बाद उसने पूछना शुरू किया कि कौन-कौन सी कविताएँ मुझे ख़ास तौर से अच्छी लगीं।

मैं इसे बताने लगा। कई कविताएँ मैं ज़बानी सुना गया। सुनाते समय उछाह के साथ मैं हाथ भी हिलाता जाता। वह चुपचाप, सन्नाटा खींचे, सुनती रही। फिर वह उठी और कमरे में टहलने लगी। गम्भीर स्वर में बोली:

"मेरे बेशकीमती नन्हे बन्दर, तुम्हें स्कूल में जाना चाहिए। मैं इस बारे में सोचूँगी। जिनके यहाँ तुम काम करते हो, क्या वे तुम्हारे रिश्तेदार हैं?"

जब मैंने बताया कि हाँ, रिश्तेदार हैं, तो उसने कुछ इस अन्दाज़ से 'ओह' कहा मानो यह भी मेरा कोई कसूर हो।

इसके बाद उसने मुझे "बेरान्गेर के गीतों" का एक संग्रह दिया। यह बहुत ही बढ़िया सुनहरी कोर और मोरक्को की लाल जिल्दवाला संस्करण था। गीतों के साथ चित्र भी थे। इन गीतों में तीखी, झुलसा देने वाली कड़ुवाहट भी थी और सभी बाधा-बन्धनों को तोड़ कर बहने वाली ख़ुशी की लहर भी। इन दोनों का हृदय पर छा जाने वाला अद्भुत मेल था। मैं पढ़ता तो एक नशा-सा छा जाता।

"बूढ़ा भिखारी" के तीखे शब्दों से मेरी रगों में रक्त की रवानी रुक गई:

लोगो, छोड़ भलमनसाहत अपनी
कुचल डालो तुम मुझको
कुचला जाता जैसे घिनौना कीड़ा!
आह, अगर सिखाया होता तुमने
मानव जाति की भलाई के लिए श्रम करना
तो बर्फ़ीली आंधियों से लेकर नहीं पनाह
यह कीड़ा भी करता होता चींटी की भांति श्रम
करता तुमसे प्यार बनकर भाई तुम्हारा
लेकिन अब, बूढ़ा और बे घर-बार आवारा
तोड़ता हूँ दम—बनकर दुश्मन तुम्हारा!

इसके शीघ्र बाद ही एक दूसरा गीत था: "रोना पति"। इसे पढ़कर मैं इतना हँसा कि आँखों से पानी निकलने लगा। उसकी यह फबती मुझे ख़ास तौर से याद है:

हैं जो सीधे-सादे लोग
नहीं मन में जिनके कुछ खोट
सीख लेते वे ही जल्दी,
कला हँसने और हँसाने की!

बेरान्गेर के गीत मेरी भावनाओं को मुँहज़ोर बनाते। शैतानी करने, चुटकियाँ लेने तथा फबतियाँ कसने के लिए मुझे उकसाते और अटपटी तथा बुरी लगने वाली बातें करने के लिए मेरा जी ललकता, और शीघ्र ही मैंने यह सब शुरू कर दिया। उसकी

पंक्तियाँ भी मुझे ज़बानी याद हो गईं और जब भी अरदलियों के रसोईघर में जाने का मौक़ा मिलता, बेहद उत्साह के साथ मैं उन्हें सुनाता।

लेकिन, निम्न पंक्तियों की वजह से, मुझे जल्दी ही यह सब छोड़ देना पड़ा:

आयु स्त्री की किसने जानी,
चढ़ी रहती है सदा जवानी।
युवती सत्रह बरस की
मानो हो कली अछूती!

इन पंक्तियों के बाद स्त्रियों को लेकर अत्यन्त घिनौनी चर्चा चल पड़ी। बुरी तरह से उनकी टाँग खींची गई। अपमान की भावना से मेरा दिमाग़ भन्ना गया, गुस्से के मारे मैंने कड़ाही उठाई और उसे सैनिक येरमोखिन के सिर पर दे मारा। फिर क्या था, उसने मुझे दबोच लिया। सिदोरोव और दूसरे अरदलियों ने लपक कर भालू-ऐसे उसके पंजों से मुझे छुड़ाया। इसके बाद अफ़सरों के रसोईघर में जाने का मैंने नाम नहीं लिया।

बाहर घूमने-फिरने की मुझे मनाही थी, और सच तो यह है कि मटरगश्ती के लिए समय भी नहीं मिलता था। पहले से कहीं ज्यादा काम मुझे अब करना पड़ता था। बरतन माँजने, झाड़ू-बुहारी देने और बाज़ार से सौदा-सुलफ़ लाने के अलावा मैं हर रोज़ एक बड़े से चौखटे पर कीलों से कपड़ा कसता, फिर मालिक के खींचे हुए डिज़ाइन उसपर चिपकाता, इमारती तख़मीनों की नकलें उतारता और ठेकेदारों के बिलों की जाँच-पड़ताल करता। मेरा मालिक भी, मशीन की भांति, सुबह से लेकर रात तक काम में जुटा रहता।

मेले के मैदान में सार्वजनिक इमारतों का निर्माण-कार्य उन दिनों सौदागरों के निजी हाथों में था। बाज़ारों को फिर से बनाने के काम में ख़ूब आपाधापी चल रही थी। मेरे मालिक ने भी पुरानी दुकानों की मरम्मत करने और नयी दुकानें बनाने का ठेका लिया था। सीधी मेहराबों, रौशनदानी खिड़कियों और इसी तरह की अन्य चीज़ों के नक्शे उसने बनाए थे। इन नक्शों तथा इनके साथ लिफ़ाफ़े में पच्चीस रूबल का एक नोट लेकर मैं बूढ़े इंजीनियर के पास पहुँचता। वह लिफ़ाफ़ा संभाल कर रख लेता और नक्शों पर लिख देता: "नक्शे सही हैं। सारा काम इनके मुताबिक़ मेरी निजी निगरानी में हुआ है।" अंत में वह अपने दस्तख़त बना देता। कहने की आवश्यकता नहीं कि निर्माण-कार्य नक्शों के मुताबिक़ नहीं हुआ था। जाँच और निगरानी करने का तो सवाल ही नहीं उठता। अगर वह चाहता तब भी शायद ख़ुद मौके पर जाकर जाँच-पड़ताल नहीं कर सकता था। बीमारी ने उसे बेकार कर दिया था, और स्थायी रूप से वह घर के भीतर ही बंद रहता था।

छैल चिकनिया इन्स्पैक्टर तथा अन्य लोगों को भी मैं घूस का पैसा देने जाता और उनसे, अपने मालिक के शब्दों में, 'विभिन्न क़ानूनों को ताक पर रखने का परमिट' ले आता। मेरे इन सब कामों से ख़ुश होकर मालिकों ने मेरी रोक-थाम में कुछ ढिलाई कर दी। सांझ के समय जब कभी वे बाहर घूमने जाएं तो अहाते में बैठ कर मैं उनका इन्तज़ार कर सकता था। ऐस बिरले ही होता, भूले-भटके ही वे घर से बाहर निकलते, लेकिन जब भी जाते तो आधी रात के बाद लौटते। इस तरह मुझे कई घंटे मिल जाते, पोर्च या उसके सामने पड़े लकड़ियों के ढेर पर मैं अड्डा जमाता और अपनी रानी के घर की खिड़कियों पर नज़र जमाए

छलछलाते संगीत, छेड़छाड़ तथा चुहल की उन आवाज़ों को सुनता जो कि वहाँ से आती रहतीं।

खिड़कियाँ खुली होतीं। परदों और अंगूर की बेलों की झिरियों में से मुझे अफ़सरों की सुन्दर आकृतियों की झलक दिखाई देती जो कमरे में इधर-से-उधर मंडराते रहते। अद्भुत सादगी और सौन्दर्य से सदा सज्जित मेरी रानी मानो कमरे में तैरती मालूम होती और गोल-मटोल थलथल मेजर उसके दामन से चिपका लुढ़कता-पुढ़कता रहता।

अपनी ख़ूबसूरत पड़ोसिन को जब मैं देखता, या जब भी मैं उसके बारे में सोचता, रानी मारगोट की याद मुझे हो आती,—फ़्रेंच उपन्यासों की नायिकाएँ मेरी आँखों के सामने तैरने लगतीं। खिड़की पर मेरी आँखें जमी होतीं, और अपने-आप से मैं कहता:

"सो यह है वह इन्द्रधनुषी जीवन जिससे फ्रांसीसी उपन्यासों के पन्ने रंगे रहते हैं!" मेरा जी अदबदा कर भारी हो जाता, और मेरा छोटा-सा हृदय ईर्ष्या से बल खाने लगता जब मैं रानी मारगोट के चारों ओर लोगों को इस तरह मंडराते भनभनाते देखता जैसे फूल के चारों ओर शहद की मक्खियाँ मंडराती हैं।

कभी-कभी, लम्बे क़द और गम्भीर चेहरे वाले एक अफ़सर पर मेरी नज़र पड़ती। अन्य लोगों के मुक़ाबिले में वह बहुत कम आता था। उसके माथे पर घाव का निशान था, और उसकी आँखें ख़ूब गहरी धंसी थीं। वह हमेशा अपनी वायोलीन साथ लेकर आता। वायोलीन बजाने में उसे कमाल हासिल था। तारों को जब वह छेड़ता तो राह चलते लोग ठिठक कर सुनने लगते, मोहल्ले के लोग लकड़ियों के ढेर पर आकर बैठ जाते, यहाँ तक कि मेरे मालिक भी—अगर वे उस समय घर पर होते—खिड़की खोलकर मुग्ध भाव से सुनते, वायोलीन बजाने वाले की सराहना

करते। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उनके मुँह से किसी की तारीफ़ सुनी हो,—केवल गिरजे के पादरी को छोड़कर, और मैं जानता था कि मछली के रसीले मालपूवों पर उनकी राल जितनी टपकती थी, उतनी किसी भी संगीत पर नहीं!

कभी-कभी, भरभरी-सी आवाज़ में, वह गाता या कविताएँ सुनाता। गाते समय वह ज़ोरों से साँस भरता, हाथों को अपनी भौंहों से सटा लेता। एक दिन, उस समय जब मैं खिड़की के नीचे उसकी छोटी लड़की से खेल रहा था, रानी मारगोट ने उससे गाने के लिए अनुरोध किया। कुछ देर तक तो वह टालता रहा, फिर बहुत ही सुनिश्चित अन्दाज़ में उसके मुँह से निकला:

केवल गीत को ही ज़रूरत है सौन्दर्य की—
सौन्दर्य के लिए भला गीत ज़रूरी क्यों हो?

मुझे ये पंक्तियाँ पसंद आईं और, न जाने क्यों, इस अफ़सर पर मुझे तरस आया।

और उस समय तो मैं निहाल हो जाता जब मेरी रानी पियानो पर अकेली बैठी होती, कमरे में उसके सिवा जब और कोई न होता। मेरे मस्तिष्क और हृदय पर संगीत का एक नशा-सा छा जाता, खिड़की के सिवा और कुछ न दिखाई देता, लैम्प की सुनहरी रोशनी में उसके कमनीय शरीर की रेखाएँ और भी उभर आतीं; उसका गर्वीला चेहरा बहुत ही कोमल और सुन्दर मालूम होता, और उसकी चिट्टी उँगलियाँ पक्षियों की भांति पियानो की पर्दों पर फड़फड़ाती रहतीं।

मैं उसे देखता रहता, संगीत की उदास स्वर लहरियाँ मेरे कानों का स्पर्श करतीं और मैं अजीब-अजीब सपनों का ताना-बाना बुनने लगता: मानो कहीं ज़मीन में गड़ा खज़ाना मेरे हाथ लग जाता है और मैं वह सब उसे ही सौंप देता हूँ और मुझे बड़ा अच्छा

लगता है जब सचमुच की राज-रानी की भाँति वह सम्पन्न जीवन बिताती है। कल्पना में नये स्कोबेलेव का रूप धारण कर मैं तुर्कों के ख़िलाफ़ युद्ध करता, भारी रकमें लेकर तुर्क बन्दियों को अपने चंगुल से मुक्त करता, नगर के सब से अच्छे हिस्से—ओत्कोस में—उसके लिए एक घर बनवाता, ताकि उसे हमारे इस घर में न रहना पड़े, हमारे इस मोहल्ले से वह दूर चली जाए जहाँ सब कोई एक स्वर से उसके बारे में गंदी बातें करते और उसपर कीचड़ उछालते हैं।

हमारे अहाते में काम करने वाले सभी नौकर-चाकर और उसमें आबाद सभी लोग, ख़ास तौर से मेरे मालिक, रानी मारगोट के बारे में भी वैसी ही कुत्सित बातें करते जैसी कि वे दर्ज़ी की पत्नी के बारे में करते थे, अन्तर इतना ही था कि इसका ज़िक्र करते समय वे कुछ अधिक चौकन्ने हो जाते थे, धीमे स्वरों और आँख के इशारों से काम लेते थे।

शायद वे उससे डरते थे। कारण कि वह किसी ऊँचे कुल के व्यक्ति की विधवा पत्नी थी। तूफ़ायेव ने एक बार मुझे बताया था,—और वह निरक्षर भट्टाचार्य नहीं, बल्कि पढ़ना जानता था और सदा बाइबल का पाठ करता रहता था,—कि उसकी दीवार पर लटकी सनदें रूस के विभिन्न ज़ारों ने—गोदुनोव, अलेक्सेई और प्योत्र महान ने—उनके पति के दादा-परदादाओं को अता की थीं। लोग शायद इसलिए भी उससे डरते थे कि कहीं वह नीलम की मूठ वाले अपने चाबुक से उनकी ख़बर न लेने लगे। प्रसिद्ध था कि एक बार इस चाबुक से उसने किसी अफ़सर की ख़ूब मरम्मत की थी।

लेकिन फुसफुसा कर और धीमे स्वरों में कहे गए शब्द केवल इस लिए अच्छे नहीं हो जाते कि वे ज़ोरों से नहीं कहे गए। मेरी रानी के चारों ओर कुत्सा और दुश्मनी के बादल मंडराते। वीक्तर

डून की हाँकता कि एक दिन आधी रात के बाद लौटते समय उसने रानी मारगोट के शयनकक्ष की खिड़की में झांक कर देखा। वह काउच पर अधनंगी-सी बैठी थी और मेजर घुटनों के बल झुका हुआ उसके पांव के नाखून काट रहा था और स्पंज से उसके पांव पखार रहा था।

यह सुनकर बूढ़ी मालकिन ने ज़मीन पर थूका और उसे झिड़क दिया। छोटी मालकिन के गाल बुरी तरह लाल हो गए।

"ओह वीक्तर!" वह चीख उठी।—"तुझे ज़रा भी शर्म लिहाज़ नहीं है? और इन बड़े लोगों की चाल-ढाल भी निराली है—सौ घाट का पानी पिये बिना उन्हें चैन नहीं आता!"

मालिक केवल मुसकरा कर रह गया, बोला कुछ नहीं। इसके लिए मन-ही-मन मैंने उसका भारी अहसान माना। लेकिन यह डर बराबर बना रहा कि अपनी ज़बान खोल कर इस नक्क़ारख़ाने में किसी भी क्षण वह अपना स्वर मिला सकता है। स्त्रियों ने ख़ूब सिसकारियाँ भरीं, आह और ओह का अम्बार लगा दिया और खोद-खोद कर एक-एक बात उन्होंने वीक्तर से पूछी: स्त्री ठीक किस तरह बैठी थी, और मेजर ठीक किस प्रकार उसके सामने झुका हुआ था, और वीक्तर चुने हुए निवाले उनके सामने फेंकता रहा:

"मेजर का मुँह एकदम चुकन्दर की भांति लाल था और जीभ बाहर निकल आई थी..."

मुझे इसमें नंगपन की ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी कि मेजर मेरी रानी के पांव के नाख़ून काट रहा था। लेकिन यह बात मेरे मन में नहीं जमी कि उसकी जीभ बाहर निकली हुई थी। मुझे लगा कि यह घिनौना झूठ उसका मनगढ़ंत है।

"अगर यह सचमुच में नंगपन था तो तुम खिड़की के भीतर

नज़र गड़ाए देखते कैसे रहे?" मैंने कहा। — "तुम कोई बच्चे तो हो नहीं!"

झिड़कियों की उन्होंने मुझपर बौछार की, लेकिन उनकी झिड़कियों की मुझे चिंता नहीं थी। मेरे मन में एक ही लगन थी — लपक कर ज़ीने से नीचे उतर जाऊँ और मेजर की भांति अपनी रानी के सामने घुटनों के बल झुक कर कहूँ:

"तुम यहाँ से चली जाओ, इस घर को तुम छोड़ दो, मेरी बात मानो, यह घर तुम्हारे लायक नहीं है।"

दूसरी तरह के जीवन और दूसरी तरह के लोगों को अपनी आँखों से देखने-जानने के बाद यह अहाता और इस अहाते में बसने वाले मुझे और भी ज्यादा घिनौने मालूम होते, उन्हें देखकर मेरा मन और भी भन्ना उठता। कुत्सा का ऐसा जाल यहाँ फैला था कि उसमें सभी फंसे थे, — एक भी माई का लाल ऐसा न था जो उससे बचा हो। फ़ौज का पादरी जो फटे हाल और सदा रोगी-सा आदमी था, उसे भी इन लोगों ने नहीं छोड़ा था — चरित्रहीन पियक्कड़ के रूप में उसे बदनाम कर रखा था। मेरे मालिकों की ज़बान जब चलती तो वे सभी अफ़सरों और उनकी पत्नियों को एक सिरे से पाप के कुण्ड में डुबा देते। सैनिक जब स्त्रियों के बारे में बातें करते तो मुझे उबकाई आने लगती, लेकिन मेरे मालिक उन्हें भी मात कर जाते। उनके फतवों की असलियत, जिन्हें वे दूसरों पर करते थे, मैं खूब अच्छी तरह पहचानता था। दूसरों की छीछालेदर कसना, उनके नुक्स निकाल कर रखना, एक ऐसा मनोरंजन है जिस पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, और बे-पैसे का यह मनोरंजन ही उनका एक मात्र सहारा था। ऐसा मालूम होता मानो ऐसा करके वे खुद अपने जीवन की ऊब और घिसघिस का बदला चुका रहे हों।

रानी मारगोट के बारे में जब वे एक से एक गंदे किस्से बघारने लगते तो मेरा हृदय बुरी तरह उमड़ता-घुमड़ता और ऐसी-ऐसी बातें मुझे झंझोड़ डालतीं जिनसे कि उस आयु में मेरा कोई वास्ता नहीं होना चाहिए था। कुत्सा फैलानेवालों के ख़िलाफ़ मेरे हृदय में इतने ज़ोरों से घृणा सिर उठाती कि मैं अपने को क़ाबू में न रख पाता, जी करता कि उनका मुँह नोच लूँ, उनके लिए जीना हराम कर दूँ और सदा के लिए उनका दुश्मन बन जाऊँ। लेकिन कभी-कभी अपने पर और अन्य सब लोगों पर तरस की भावना मुझे घेर लेती। तरस की यह गुमसुम भावना मुझे घृणा से ज़्यादा असह्य मालूम होती।

रानी के बारे में मैं जितना जानता था, उतना वे नहीं, और मैं मन-ही-मन डरता कि कहीं उन्हें भी वह सब न मालूम हो जाए जो मैं जानता हूँ।

रविवार के दिन सुबह के समय जब घर के लोग गिरजा चले जाते तो मैं अपनी रानी के पास पहुँच जाता। वह मुझे अपने शयनकक्ष में ही बुला लेती, और मैं सुनहरी गद्दियों से सुसज्जित एक आरामकुर्सी पर बैठ जाता, छोटी लड़की उचक कर मेरी गोदी में सवार हो जाती और मैं उसकी माँ से उन किताबों के बारे में बातें करता जिन्हें मैं पढ़ चुका था। अपनी छोटी-छोटी हथेलियों पर गालों को टिकाए वह एक चौड़े पलंग पर लेटी रहती, कमरे की अन्य सभी चीज़ों की भांति उसके बदन पर भी सुनहरे रंग की रज़ाई पड़ी होती, चोटी में गुंथे हुए काले बाल कभी उसके गेहुंवा कंधे पर लटकते और कभी पलंग की पट्टी से खिसक कर फ़र्श तक झूलने लगते।

मेरी बातें सुनते समय कोमल नज़रों से वह मुझे देखती और हल्की-सी मुसकराहट के साथ कहती:

"क्या सचमुच?"

मुझे ऐसा मालूम होता मानो सचमुच की रानी की भांति किसी ऊँचे सिंहासन से वह अपनी मुसकान का दान कर रही हो। गहरी और कोमल आवाज़ में जब वह बोलती तो मुझे ऐसा अनुभव होता मानो वह कह रही हो:

"मैं जानती हूँ कि मैं अन्य लोगों से ऊँची और उत्कृष्ट हूँ, और यह कि वे मेरे लिए किसी मसरफ के नहीं हैं।"

उसकी आवाज़ से सदा यही एक ध्वनि निकलती।

कभी-कभी मैं उसे आईने के सामने एक नीची कुर्सी पर बैठे हुए बाल संवारते देखता। उसके बाल भी उतने ही घने और लंबे थे जितने कि नानी के। वे उसके घुटनों और कुर्सी की बाँहों पर छा जाते, उसकी पीठ पर से झूमते हुए फ़र्श को छूने लगते। आईने में मुझे उसकी गदराई हुई छातियाँ दिखाई देतीं। मेरी मौजूदगी में ही वह अपनी चोली कसती और मोज़े पहनती, लेकिन उसका नंगा बदन मेरे हृदय में शर्मनाक भावनाएँ नहीं जगाता, बल्कि उसका सौन्दर्य एक आह्लादपूर्ण गौरव का मुझमें संचार करता। उसके बदन से सदा फूलों की महक निकलती जो वासना में डूबे विचारों और भावनाओं से कवच की भांति उसकी रक्षा करती।

मैं मज़बूत बदन का और ख़ूब भला-चंगा था। स्त्री-पुरुष के संबंधों के भेद मुझसे छिपे नहीं थे। लेकिन इन संबंधों के बारे में लोगों को मैं इतने गंदे और हृदयहीन ढंग तथा इस हद तक कुत्सित रूप में रस लेते हुए बातें करते सुन चुका था कि इस स्त्री के साथ किसी पुरुष के आलिंगन की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था, मेरे मन में यह बात ख़ूब गहरी पैठ गई थी कि उसके शरीर को अपने निर्लज्ज और दुस्साहसी हाथों से छूने का किसी को अधिकार नहीं है। मुझे पक़्क़ा यक़ीन था कि रसोईघरों और

ओने-कोने वाले प्रेम से रानी मारगोट का कोई वास्ता नहीं हो सकता। वह ज़रूर ही किसी अन्य, ज़्यादा ऊँचे और भले आनन्द का, एक दूसरे ही प्रकार के प्रेम का, भेद जानती होगी।

लेकिन एक दिन काफ़ी दोपहर बीते जब मैंने उसके बैठने के कमरे में पाँव रखा तो उसके खिलखिला कर हंसने और शयनकक्षवाले दरवाज़े पर पड़े पर्दे के पीछे किसी पुरुष के बोलने की आवाज़ सुनकर मैं ठिठक गया।

"अरे ज़रा ठहरो तो!" वह कह रहा था। "तुम भी ग़ज़ब करती हो। कोई क्या कहेगा?"

मुझे लगा कि उलटे पाँव लौट जाना चाहिए, लेकिन मेरे पाँवों ने मानो हिलने से इन्कार कर दिया।

"कौन है?" वह चिल्लाई।—"अरे, तुम हो? भीतर चले आओ!"

कमरा फूलों की महक में डूबा था। खिड़कियों पर परदे खिंचे हुए थे। कमरे में अंधेरा-सा छाया था। रानी मारगोट ठोड़ी तक अपने बदन पर रज़ाई खिंचे पलंग पर लेटी थी। उसके पास ही, दीवार की ओर मुँह किए, वह वायोलीन-वादक अफ़सर बैठा था। वह केवल एक कमीज़ पहने था। कमीज़ का गला खुला था और दाहिने कंधे से लेकर सीने तक घाव का एक निशान था— इस हद तक चटक लाल कि इस अध-उजियाले कमरे में भी साफ़ नज़र आता था। उसके बाल कुछ बहुत ही अटपटे ढंग से बिखरे हुए थे। उसके उदास तथा घाव-लगे चेहरे को मैंने पहली बार मुसकराते हुए देखा। वह अजीब ढंग से मुसकरा रहा था और अपनी बड़ी-बड़ी स्त्रैण आँखों से मेरी रानी की ओर इस तरह देख रहा था मानो उसके सौन्दर्य को उसने पहली बार ही देखा हो।

"यह मेरा मित्र है", रानी मारगोट ने कहा, और मैं समझ नहीं पाया कि किसके लिए उसने इन शब्दों का इस्तेमाल किया था: मेरे लिए अथवा उस अफ़सर के लिए।

"अरे, तुम वहीं ठिठक कर क्यों खड़े-खड़े रह गए?" उसकी आवाज़ जैसे कहीं बहुत दूर से आती मालूम हुई। — "यहाँ नज़दीक आ जाओ न?"

जब मैं निकट पहुँचा तो उसने अपनी उघरी हुई गर्म बाँह मेरे गले में डाल दी और बोली:

"बड़े होने पर तुम भी जीवन के इस सुख का आनन्द ले सकोगे, समझे! अब जाओ!"

किताब को मैंने ताक पर रख दिया, एक दूसरी पुस्तक उठाई, और वहाँ से चला आया।

मुझे लगा जैसे कोई चीज़ मेरे हृदय में कचर गई हो। स्पष्ट ही एक क्षण के लिए भी मैं यह नहीं सोच सकता था कि मेरी रानी भी अन्य साधारण लोगों की भांति प्रेम करती होगी, न ही उस अफ़सर के बारे में ऐसी कोई बात मेरे दिमाग़ में आती थी। मैं उसे मुसकराता देखता रहा। उसकी मुसकराहट में बच्चों ऐसी ख़ुशी छलछला रही थी, अचानक अचरज का पुट उसमें मिला था और उसके उदास चेहरे की जैसे एकदम कायापलट हो गई थी। उसका हृदय, निश्चय ही, उसके प्रेम से जगमगा रहा था। और यह कोई अनहोनी बात नहीं थी — ऐसा भला कौन था जो उसे प्रेम करने से अपने-आप को रोक सकता? और एक ऐसे आदमी पर जो इतने सुन्दर ढंग से वायोलीन बजाता था और भावों में ख़ूब गहरे डूब कर कविताएँ सुनाता था, उसका प्रेम न्योछावर करना भी कोई अनहोनी घटना नहीं था।

अपने मन को समझाने के लिए मैं इस तरह सोच रहा था। यही इस बात का सूचक था कि कहीं कोई फांस है जो हृदय को कुरेदती है, कि जो कुछ मैंने देखा उसे उतने सहज भाव से नहीं पचा सका जितना कि मैं दिखाता था। और यह कि ख़ुद रानी मारगोट के प्रति मेरे लगाव में ज़रूर कहीं न कहीं कोई खोट है जिसे मैं आँखों की ओट करना चाहता था। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई चीज़ खो गई हो। गहरी उदासी ने मुझे घेर लिया। मेरा हृदय दुखता और दिमाग़ पर एक भूत सा सवार रहता।

एक दिन मुझसे नहीं रहा गया। मेरे दिमाग़ पर जैसे शैतान सवार हो गया और मैंने जम कर उत्पात मचाया। पुस्तक लौटाने जब मैं अपनी रानी के पास पहुँचा तो उसने कड़ी आवाज़ में कहा:

"मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि तुम इतना जंगलीपन करोगे। शैतानी की भी एक हद होती है!"

मैं यह बरदाश्त नहीं कर सका, मेरा हृदय भर आया और मैंने उसे बताना शुरू किया कि उस समय जब लोग उसके बारे में वाहीतबाही बकते हैं तो मेरे हृदय पर क्या गुज़रती है, जीवन से कितनी घृणा मैं करने लगता हूँ। वह मेरे सामने खड़ी थी, उसका हाथ मेरे कंधे पर रखा था। पहले तो वह सन्नाटा खींचे चुपचाप सुनती रही, फिर एकाएक खिलखिला कर हँसी और मुझे हल्के हाथ से धकेलते हुए बोली:

"बस-बस, यह कोई नयी बात नहीं है जो तुम बता रहे हो। मैं सब जानती हूँ। समझे, मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है, एक-एक बात मुझे मालूम है!"

इसके बाद मेरे दोनों हाथ उसने अपने हाथों में ले लिए और बहुत ही कोमल आवाज़ में बोली:

"इस खुराफ़ात पर ध्यान न देना ही अच्छा है। तब कोई परेशानी न होगी। लेकिन यह क्या, तुम्हारे हाथ इतने गंदे क्यों हैं?"

भला यह भी कोई पूछने की बात थी, मेरी तरह अगर उसे भी बरतन मांजने, कमरों के फ़र्श झाड़ने-बुहारने और गंदे पोतड़े धोने पड़ते तो उसके हाथ भी मुझसे कोई ख़ास अच्छे न दिखाई देते।

"लोगों का भी अजब हाल है। जब कोई अच्छी तरह से रहना और जीवन बिताना जानता है तो वे उससे कुढ़ते और जलते हैं, और अगर वह नहीं जानता तो उसके मुँह पर थूकते हैं," उसने गम्भीर स्वर में कहा। फिर, मुझे उचका कर अपनी ओर खींचते हुए उसने गहरी नजरों से मेरी आँखों में देखा और मुसकराते हुए बोली:

"क्या तुम मुझे चाहते हो?"

"हाँ।"

"बहुत?"

"हाँ, बहुत।"

"लेकिन — क्यों?"

"न जाने क्यों..."

"शुक्रिया। तुम बहुत ही प्यारे लड़के हो। बड़ा अच्छा लगता है जब मुझे किसी का प्यार मिलता है। यही मैं चाहती हूँ,— कि सब मुझसे प्यार करें।"

वह एक छोटी-सी हँसी हँसी और ऐसा मालूम हुआ मानो वह कुछ कहने जा रही हो, लेकिन एक उसाँस भर कर चुप हो गई। मेरे हाथों को वह अभी भी अपने हाथों में थामे थी।

"तुम्हें यहाँ आने की पूरी छूट है। जब भी मौका मिले, चले आया करो।"

उसके इस बुलावे का मैंने पूरा फ़ायदा उठाया और उसकी मित्रता से मुझे भारी लाभ हुआ। दोपहर का भोजन करने के बाद मेरे मालिक जब झपकी लेते तो मैं तुरंत खिसक जाता और अगर वह घर पर होती तो उसके साथ एकाध घंटा या इससे भी अधिक समय बिताता।

"तुम्हें रूसी किताबें पढ़नी चाहिए। यह ज़रूरी है कि तुम उन्हें पढ़ो और हमारे अपने रूसी जीवन को जानने-पहचानने की आदत डालो।" वह मुझे सीख देती और अपनी चपल गुलाबी उँगलियों से महकते हुए बालों में पिनें खोंसती रहती।

इसके बाद वह रूसी लेखकों के नाम बताती और फिर पूछती:

"इन्हें भूलोगे तो नहीं?"

बहुधा ऐसा होता कि वह सोचने लगती और एकाएक, मानो अपने-आप को झिड़की देते हुए, कह उठती:

"मैं भी कैसी हूँ? तुम यों ही घूमते हो, और मुझे याद तक नहीं रहता कि तुम्हारी पढ़ाई के लिए कुछ करना है।"

कुछ देर उसके पास बैठने के बाद, हाथों में कोई नयी किताब लिए, जब मैं लपक कर वापिस लौटता तो हृदय में एक नये निखार का अनुभव करता।

अकसाकोव की लिखी हुई पुस्तक—"जीवनवृत्त", बढ़िया रूसी उपन्यास "जंगल में", चकित कर देने वाले "शिकारी के संस्मरण" मैं पढ़ चुका था। ग्रेबेन्को और सोल्लोगुब की कितनी ही पुस्तकें और वेनेवितीनोव, ओदोयेवस्की तथा त्युतचेव की कविताएँ भी मैं पढ़ गया था। इन पुस्तकों ने मेरे हृदय को निखारा और उन खरोंचों तथा दाग-धब्बों को साफ़ कर दिया जो कटु और मैली-कुचैली वास्तविकता से रगड़ खाने के कारण मेरे हृदय पर पड़ गए थे। अच्छी किताबों का महत्व, उनके माने, अब मैं समझता

था और जानता था कि मेरे लिए उनका होना कितना ज़रूरी है। उन्हें मैं पढ़ता और एक अडिग आत्मविश्वास से मेरा हृदय भर जाता — मुझे लगता कि दुनिया में मैं अकेला नहीं हूँ और, देर या सवेर, मैं अपना रास्ता खोज ही लूँगा!

नानी मुझसे मिलने आती। मैं उसे रानी मारगोट के बारे में बताता। मुग्ध कर देने वाले शब्द मेरे मुँह से निकलते। नानी सुनती, और चुटकी में भरपूर नास लेकर सूंघते हुए कहती:

"जी खुश हो गया सुनकर। भले लोगों की इस दुनिया में कमी नहीं। आँखें उठा कर ज़रा देखने भर की ज़रूरत है, यह नहीं हो सकता कि वे न मिलें।"

एक बार उसने कहा:

"कहो तो मैं भी उससे मिल जाऊँ। तुम्हारी ओर से उसका शुक्रिया ही अदा कर आऊँगी।"

"नहीं, तुम्हारा जाना ठीक नहीं।"

"अच्छी बात है, मैं नहीं जाऊँगी। यह दुनिया भी कितनी सुन्दर है, ऐ मेरे भगवान! मैं तो इससे कभी बिदा न लूँ!"

मुझे स्कूल भेजने की अपनी इच्छा को रानी मारगोट पूरा होते नहीं देख सकी। ईस्टर के बाद सातवें रविवार को, त्योहार के दिन, एक ऐसी दुःखद घटना घटी कि उसने मेरा बण्टाढार ही कर दिया होता।

त्योहार से बहुत पहले ही मेरी पलकें सूज गई थीं और मेरी आँखें क़रीब-क़रीब पूरी पट हो गई थीं। मेरे मालिक घबराए कि कहीं मेरी आँखें न जाती रहें। खुद मेरे हृदय में भी यही डर समाया था। वे मुझे जान-पहचान के एक डाक्टर के पास ले गए। हेइनरिख रोदज़ेविच उसका नाम था। मेरी पलकों को उलट कर उसने रोहों को फोड़ दिया और आँखों पर पट्टी बांधे निपट अंध-

कार में अंधा बना कई दिन तक मैं दुःख से कराहता रहा। त्योहार के दिन पट्टी खुली और बिस्तरे से उठते समय ऐसा मालूम हुआ मानो मैं क़ब्र में से उठ रहा हूँ जिसमें मुझे ज़िन्दा ही दफ़ना दिया गया था। अंधा होने से बढ़कर भयानक और कुछ नहीं। यह एक ऐसी मुसीबत है जिसका नाम लेते जुबान काँपती है। जिसके सिर यह मुसीबत पड़ती है, उसके लिए दस में से नौ हिस्से दुनिया चौपट हो जाती है।

त्योहार का दिन था। आँखों की वजह से दोपहर में ही मुझे सब कामों से छुट्टी मिल गयी और अरदलियों से मिलने के लिए मैं एक के बाद एक सभी रसोईघरों के चक्कर लगाने लगा। गम्भीर तूफ़ाएव को छोड़कर अन्य सब नशे में धुत्त थे। सांझ हो आई थी। एकाएक येरमोखिन ने सिदोरोव के सिर पर लकड़ी का ऐसा कुन्दा जमाया कि वह दरवाज़े पर ही ढेर हो गया। येरमो-खिन की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई, जान बचाने के लिए वह भागा और घाटी में कहीं छिप गया।

सिदोरोव की हत्या के शोर और अफवाहों से सारा अहाता गूंज उठा। बरांडे की सीढ़ियों के पास एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गई जहाँ, रसोई और फाटक के बीच, सिदोरोव निश्चल पड़ा हुआ था। लोग दबे स्वरों में कानाफूसी कर रहे थे कि पुलिस को बुलाना चाहिए, लेकिन न तो कोई पुलिस बुलाने गया और न ही किसी ने उसके बदन को हाथ लगाने का साहस किया।

तभी नतालिया कोज़लोवस्काया, जो कपड़े धोने का काम करती थी, वहाँ आई। वह बैंगनी रंग की नई फ्राक पहने थी और अपने कंधों पर एक सफ़ेद रूमाल डाले थी। तमतमा कर लोगों को इधर-उधर करती और भीड़ को चीरती वह फाटक पर लाश के पास पहुँची और झुक कर उसे देखने लगी।

"काठ के उल्लुओ, यह ज़िन्दा है!" उसने ज़ोरों से चिल्ला कर कहा। — "जल्दी से ठंडा पानी लाओ!"

"अरे, तुम क्यों बीच में टाँग अड़ाती हो?" उन्होंने चेतावनी दी। — "कहीं ऐसा न हो कि लेने के देने पड़ जाएँ!"

"बक नहीं, पानी लाओ, पानी!" उसने इस तरह चिल्ला कर कहा मानो उसे आग बुझाने के लिए पानी की ज़रूरत हो। इसके बाद, बहुत ही व्यावहारिक ढंग से, उसने अपनी नयी फ्राक खींच कर घुटनों पर चढ़ा ली, झटक कर अपना पेटीकोट नीचे खिसका लिया और सैनिक का ख़ून से लथपथ सिर अपनी गोद में रख लिया।

डरपोक लोग जो वहाँ खड़े तमाशा देख रहे थे, भुनभुनाते और भला-बुरा कहते धीरे-धीरे छंट गए। फाटक के अध-उजियाले में कपड़े धोने वाली स्त्री की छलछलाती हुई आँखों पर मेरी नज़र पड़ी जो उसके गोल-मटोल चिट्टे चेहरे पर चमक रही थीं। लपक कर मैं एक डोल पानी ले आया। वह मुझसे बोली कि इसे सिदोरोव के सिर और छाती पर उँडेल दो।

"लेकिन मुझे तर न कर देना, मैं मिलने जा रही हूँ।" चेताते हुए उसने कहा।

सैनिक को होश आ गया, उसने अपनी आँखें खोलीं और कराह उठा।

"इसे ज़रा उठाओ तो," नतालिया ने कहा। उसने उसकी बगल में हाथ डाले और एक हाथ दूर रह कर जिससे उसके कपड़े खराब न हों, उसने उसे थाम लिया। हम दोनों उसे उठा कर रसोईघर में ले गए और बिस्तर पर लेटा दिया। फिर एक गीले कपड़े से उसने उसका मुँह साफ़ किया, और बाहर जाते हुए बोली :

"कपड़ा गीला करके इसके माथे पर रखते रहना। मैं बाहर जाती हूँ और उस दूसरे उल्लू को अभी खोज कर लाती हूँ। शैतान कहीं के! अभी क्या है, जब जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी, तब सारा नशा उड़ जाएगा!"

ख़ून के दाग़ लगा अपना पेटीकोट खिसका कर उसने नीचे उतार दिया और ठोकर मार कर उसे एक कोने में कर दिया। फिर सावधानी से थपथपाकर कलफचढ़ी अपनी नयी फ्राक की सलवटों को ठीक किया। इसके बाद वह बाहर चली गई।

सिदोरोव ने अपना बदन लम्बा फैला लिया, एक हिचकी सी ली और दर्द से कराह उठा। काले रंग का ख़ून अभी भी उसके सिर से टपक-टपक कर मेरे पांव पर गिर रहा था। मुझे बड़ी घिन आई, लेकिन डर के मारे मुझसे अपना पाँव हटाते नहीं बना।

मुझे बड़ी घुटन मालूम हुई। बाहर हर चीज़ त्योहार के रंग में रंगी थी और ख़ुशी से छलछला रही थी, बरांडे और दरवाज़े नवजात बर्च वृक्षों से सजे थे, हर खम्बे पर मेपल और रोवन वृक्ष की पत्तियों का सिंगार था, मोहल्ले में ख़ुशी की एक लहर हिलोरें ले रही थीं और प्रत्येक चीज़ नयी तथा यौवन से इठलाती मालूम होती थी। सबेरे तड़के से ऐसा मालूम हो रहा था मानो बसन्त का यह उल्लास जल्दी ही विदा न होगा और जीवन अब अधिक उजला, कूड़े-करकट से साफ़ और ख़ुशी से छलछलाता बी-तेगा।

सैनिक ने उबकाई लेकर उल्टी कर दी। गर्म वोडका और प्याज़ के टुकड़े उसके पेट से बाहर निकल आए, और उनकी दमघोट गंध से रसोईघर भर गया। जब-तब धुंधले तथा चपटे चेहरे और पिचकी नाकें खिड़की के शीशों से सटी हुई दिखाई देतीं, और

चेहरे के दोनों ओर फैली हुई उनकी हथेलियाँ भयावने, बेडौल और बेढंगे कानों की भांति मालूम होतीं।

दिमाग़ कुछ हल्का होने पर सैनिक बड़बड़ाया:

"यह क्या? क्या मैं गिर पड़ा था? येरमोखिन? ओह, कितना मारू दोस्त मिला मुझे भी।"

वह खांसा, ख़ुमारी में उसने आँसू बहाए और रोने-झींकने लगा:

"मेरी प्यारी बहन, मेरी नन्ही-मुन्नी ग़रीब बहन!"

पानी में भीगा, कीच में सना और गंधाता, वह उठा और अपने पांवों पर खड़े होने का उसने प्रयत्न किया, लेकिन चकरा कर फिर बिस्तरे पर ही ढह गया, और भय से आँखों को टेरते हुए बोला:

"कम्बख़्त ने मुझे तो मार ही डाला था।"

यह सुनकर मुझे हँसी आ गई।

"इसमें हँसने की क्या बात है, शैतान के पूत?" धुंधली आँखों से मेरी ओर देखते हुए उसने कहा।—"तुम हँसते हो—मेरी इस हत्या पर—कम्बख़्त ने मेरा तो एकबारगी, कयामत तक के लिए, काम ही तमाम कर दिया था..."

और बड़बड़ाते हुए वह मुझे अपने दोनों हाथों से धकेलने लगा:

"पहले तोफ़ेत में पैगम्बर इल्या, दूसरे आड़े वक़्त में घोड़े पर सवार सन्त जार्ज, और तीसरे हट जा शैतान मेरे रास्ते से!"

"बस-बस, बहुत न बड़बड़ाओ," मैंने कहा।

गुस्से से दहाड़ते हुए उसने अपना पांव उठा कर ज़मीन पर पटका।

"मुझे मार डाला गया, और तुम..."

उसने अपने भारी, गंदे और ढीले हाथ से मेरी आँखों पर ज़ोरों से प्रहार किया। मैं चिल्ला कर अंधे की भांति बाहर अहाते में भागा जहां नतालिया येरमोखिन की बाँह पकड़े उसे खींचती हुई ला रही थी और चिल्ला कर कह रही थी:

"चलता है कि नहीं, लद्दू घोड़े?"

तभी उसने मुझे देखा। बोली:

"यह क्या हुआ?"

"उसके सिर पर तो अब लड़ने का भूत सवार है।"

"लड़ने का भूत सवार है!" नतालिया ने अचरज से कहा। फिर येरमोखिन के टहोका मारते हुए बोली:

"शुक्राना भेजो भगवान को, उसने तुम्हें इस बार बचा लिया!"

मैंने अपनी आँखों पर ठंडे पानी के छींटे दिए, फिर रसोईघर के दरवाज़े पर वापिस लौट आया और बाहर से ही भीतर झांक कर देखा: दोनों सैनिक गले से लिपटे हुए नशीले मेल-मिलौवल में एक-दूसरे का मुँह चूम-चाट रहे थे और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। इसके बाद वे नतालिया को गले से लगाने के लिए लपके, लेकिन थप्पड़ से खबर लेते हुए वह चिल्लाई:

"कुत्ते नहीं तो, खबरदार जो मेरी ओर ज़रा भी अपने पंजे फैलाए! मुझे भी क्या तुमने बबुवाइन समझा है, या मैं कोई तितली हूँ जिसे तुम अपनी चुटकियों में मसल डालोगे। खैर इसी में है कि अपने मालिकों के आने से पहले एकाध झपकी लेकर भले आदमी बन जाओ। समझ में आया कुछ—या मुझे समझाना पड़ेगा?"

छोटे बच्चों की भांति उसने दोनों को लेटा दिया, एक को पलंग पर, दूसरे को फ़र्श पर। जब दोनों खर्राटे भरने लगे तो वह बाहर फाटक पर निकल आई।

"ज़रा मेरी फ्राक को तो देखो, क्या चुरमुर हो गई है, और मैं थी कि लोगों से मिलने-जुलने के लिए घर से निकली थी। क्या उसने तुम्हें मारा? बेवकूफ़ कहीं का! वोडका जो न कराए थोड़ा है। तुम कभी न पीना, मेरे बच्चे, इसकी लत कभी न डालना!"

दरवाज़े पर एक बेंच पड़ी थी। मैं भी उसके पास ही उसपर बैठ गया। मैंने पूछा:

"तुम्हें शराबियों से डर नहीं लगता?"

"मैं किसी से नहीं डरती—न शराबियों से, न शराब के विरोधियों से। दोनों को मैं इससे क़ाबू में रखती हूँ!" कस कर बंधी अपनी लाल मुट्ठी दिखाते हुए उसने कहा।—"एक आदमी था,—आदमी क्या, मेरा पति था,—एक मुद्दत हुई वह मर-खप गया—वह इतनी पीता था कि हर घड़ी तर रहता था, एकदम धुत्त! मैं उसके हाथ और पांव, उसका सारा बदन, रस्सी से जकड़ देती। जब उसका नशा उतर जाता तो उसकी पतलून खींच कर मोटी-ताज़ी और मज़बूत संटियों से उसकी मरम्मत करती: 'खबर-दार जो फिर कभी मुँह से लगाई, अगर फिर कभी उल्टांग होते देखा तो जीता न छोड़ूँगी। तूने समझ क्या रखा है? जब घर में बीबी मौजूद है तो क्यों नहीं उससे अपना दिल बहलाता?' मतलब यह कि मैं उसकी खूब खबर लेती और जब तक मेरे हाथ जवाब न देते, तड़ातड़ संटियाँ जड़ती रहती। बस, फिर क्या था। संटियों की मार से वह इतना नर्म हो जाता कि चाहो तो चिथड़े की भांति उँगली पर लपेट लो!"

"तुम सचमुच में ताकतवर हो," मैं कहता, और मुझे हौवा का ध्यान हो आता जिसके सामने खुद खुदा को भी मात खानी पड़ी।

नतालिया ने साँस खींचते हुए कहा:

"स्त्री को पुरुष से भी ज़्यादा ताक़त की जरूरत है,—उसके पास दो पुरुषों के बराबर ताक़त होनी चाहिए, लेकिन खुदा ने यहीं उसे धोखा दिया और पुरुषों को ज़्यादा बलवान बना दिया। लेकिन पुरुषों का यह बल भी निरा धोखा है, कोई स्त्री उसपर भरोसा नहीं कर सकती।"

वह बहुत ही इत्मीनान से, बिना किसी जलन या कुढ़न के, बोल रही थी। उसकी कोहनियाँ मुड़ी हुई थीं और उसके हाथ उसकी भरी-पूरी छातियों पर बंधे हुए थे। उसकी पीठ बाड़े से सटी थी और उसकी आँखें कूड़ा-करकट छितरे बांध पर उदास भाव से जमी थीं। उसकी चुभती हुई बातों में कितना समय निकल गया, कितना नहीं, मुझे कुछ ध्यान न रहा। सहसा, बांध के दूसरे छोर के पास, अपने मालिक पर मेरी नजर पड़ी। पत्नी के साथ, उसे अपनी बाँह का सहारा दिए, वह इधर ही आ रहा था। धीमे डगों से, रौब के साथ, मुर्ग़ और मुर्ग़ी के जोड़े की भांति तिर्छी गरदन किए वे चले आ रहे थे। वे हमारी ही ओर देख रहे थे, और आपस में कुछ बातें कर रहे थे।

मैंने लपक कर फाटक का दरवाज़ा खोला। जब हम ज़ीने पर चढ़ रहे थे तो मेरी मालकिन ने तीखी आवाज़ में कहा:

"क्यों, उस कपड़ा धोने वाली के साथ बैठ कर क्या घुसर-पुसर कर रहे थे? निचली मंज़िल वाली तुम्हारी रानी क्या यही सब तुम्हें सिखाती है?"

बात इतनी बे सिर पैर की थी कि उसने मेरे हृदय को छुआ तक नहीं। लेकिन जब मालिक ने भी हल्की हँसी हँसते हुए फिकरा कसा तो मुझे दुख हुआ। अपनी पत्नी के स्वर में स्वर मिलाते हुए वह बोला:

"इसका नहीं, यह इसकी उम्र का कसूर है,—क्यों, ठीक है न?"

अगले दिन सुबह के समय जब मैं लकड़ी लेने सायबान में गया तो वहाँ दरवाज़े में नलकी डालने के छेद के पास, मुझे एक खाली बटुवा पड़ा हुआ मिला। इस बटुवे को सिदोरोव के हाथों में मैं बीसियों बार देख चुका था। सो मैं उसे लेकर तुरन्त सिदो-रोव के पास पहुँचा।

"इसमें जो धन था, वह कहाँ है?" अपनी उँगलियों से बटुवे के भीतर टटोलते हुए उसने पूछा।—"एक रूबल और तीस कोपेक थे। चुपचाप लौटा दो!"

उसने अपने सिर से एक तौलिया लपेट रखा था। उसका चेहरा पीला और खिंचा हुआ सा था। अपनी सूजी हुई आँखों को मिचमिचा कर उसने मेरी ओर देखा और इस बात पर विश्वास करने से इन्कार कर दिया कि मुझे जब बटुवा मिला तो वह ख़ाली था।

तभी येरमोखिन भी आ गया और उसपर अपना रंग चढ़ाते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश करने लगा कि मैं चोर हूँ।

"इसी ने बटुवा ख़ाली किया है," मेरी ओर सिर हिलाकर इशारा करते हुए उसने कहा,—"कान पकड़ कर इसे इसके मालिक के पास ले जाओ। कोई भी सैनिक किसी दूसरे सैनिक भाई की चोरी नहीं करेगा।"

उसके शब्दों से साफ़ मालूम होता था कि यह सब उसकी ही करतूत है, पैसा निकाल कर उसने बटुवा हमारे सायबान में डाल दिया। मैंने आव देखा न ताव, उसके मुँह पर ही कहा:

"यह सफ़ेद झूठ है। बटुवा ख़ुद तुमने चुराया!"

मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा यह अन्दाज़ सही है।

मेरी बात सुनते ही डर और झुंझलाहट से उसका चेहरा तिकोनिया बन गया। वह चीखा:

"कुछ सबूत भी है तुम्हारे पास, या यों ही बकते हो?"

लेकिन मैं सबूत कहाँ से देता। येरमोखिन ने चीख़ कर मुझे पकड़ा और खींचता हुआ बाहर अहाते में ले गया। सिदोरोव भी चीख़ता हुआ पीछे-पीछे लपका। शोर सुनकर पड़ोसियों के सिर खिड़कियों से बाहर निकल आए। रानी मारगोट की माँ भी दम साधे, निश्चल भाव से देखती थी और मरने के बाद भी मुँह से अलग न होने वाली अपनी सिगरेट से धुआँ छोड़ रही थी। यह सोचकर कि अपनी रानी की नज़रों में मेरी अब कोई साख न रहेगी, मेरा सिर एकदम चकरा गया।

मुझे याद है कि सैनिकों ने मेरे हाथ जकड़ रखे थे। खींचते हुए वे मुझे लाए और मालिकों के सामने मेरी पेशी हुई। मालिकों ने ख़ूब सिर हिला-हिला कर मेरा जुर्म सुना। छोटी मालकिन चिहुंक उठी:

"यह इसी की करतूत है। कल रात, फाटक के पास, यह कपड़े धोने वाली स्त्री से लिपट-चिपट रहा था। सुनी-सुनाई नहीं, मेरी अपनी आँखों देखी बात है। इसकी जेब न खनखनाती होती, तो वह इसे हाथ तक न धरने देती।"

"ज़रूर यही बात है!" येरमोखिन चिल्लाया।

मेरा सिर सन्ना गया। सारे बदन में आग लग गई। झल्ला कर मैं मालकिन पर झपटा और इसके बाद बुरी तरह मार खाई।

लेकिन चोट से मेरा हृदय इतना घायल नहीं हुआ जितना इस बात से कि रानी मारगोट मेरे बारे में अब क्या सोचेगी।

उसकी नज़रों में अपने को अब मैं कैसे ऊँचा उठा सकूँगा? मेरा बस चलता तो मैं धरती में समा जाता।

देखते-देखते सारे अहाते और मोहल्ले के समूचे ओर-छोर में चोरी की यह घटना तेज़ी से फैल गई। और यह अच्छा ही हुआ। सांझ होते न होते, उस समय जबकि मैं तिदरी में मुंह छिपाए पड़ा था, मुझे नतालिया कोज़लोवस्काया के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी:

"बड़े नवाबज़ादे हो जो मैं अपना मुँह बंद रखूँ? बस, सीधी तरह से चले आओ, मैं कहती हूँ न कि चले आओ, ज़्यादा ना-नुकर न करो। मैं छोड़ने वाली नहीं हूँ, बस कान दबोचे चले आओ, नहीं तो जानते हो कि तुम्हारे अफ़सर के सामने सारा भंडा फोड़ कर दूंगी और तुम खिंचे-खिंचे फिरोगे!"

मैं फ़ौरन भांप गया कि हो न हो, यह तड़प-झड़प मुझसे ही संबंध रखती है। वह हमारे फाटक के पास ही खड़ी थी और चिल्ला रही थी, और उसकी आवाज़ अधिकाधिक तेज़ होती और अधिकाधिक ज़ोर पकड़ती जा रही थी।

"कल भी तो तुमने अपना बटुवा दिखाया था,—तब कितने पैसे थे तुम्हारे पास? और अब वे इतने कैसे हो गए? ज़रा बताओ तो सही?"

खुशी के मारे मेरा गला रुंध-सा गया। सिदोरोव का मिन-मिनाना भी सुनाई पड़ रहा था:

"ओह येरमोखिन, येरमोखिन!"

नतालिया कह रही थी:

"और सिर पर पड़ी इस लड़के के—चोर भी बना, मार भी खाई?"

मेरा मन हुआ कि लपक कर फ़ौरन नीचे पहुँच जाऊँ और

खुशी से झूम कर कपड़े धोने वाली इस स्त्री के हाथ चूम लूँ। लेकिन तभी, शायद खिड़की में से, मुझे अपनी मालकिन के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी:

"चुप रह छिनाल! लड़के को चोर किसीने नहीं समझा, न ही इसके लिए वह पिटा। उसने मार खाई अपनी बदतमीज़ी के लिए!"

"बुरा न मानना मालकिन, छिनाल तुम खुद हो, और ऊपर से मोटी गाय भी जो सिर्फ़ देखने और हाथ फेरने के काम आती है।"

उनकी तड़प-झड़प का यह संगीत मुझे बड़ा सुहावना मालूम हुआ। नतालिया के प्रति कृतज्ञता के आँसू मेरे हृदय में उमड़-घुमड़ आए और उन्हें रोकने के प्रयत्न में दम घुटने लगा।

मेरा मालिक, धीमे डगों से, तिदरी में आ गया और मेरे पास ही बाहर को निकली एक कड़ी पर बैठ गया।

"तुम भी जाने कैसी तकदीर लेकर आए हो, पेश्कोव!" अपने बालों को सहलाते हुए उसने कहा।—"करे कोई, और भुगते कोई!"

कोई जवाब दिए बिना ही मैंने मुँह फेर लिया।

कुछ रुक कर उसने फिर कहा:

"लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि तुम बेहद मुँहफट हो!"

"घबराइये नहीं, मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा," निश्चल स्वर में मैंने कहा।

कुछ देर तक उसने कुछ नहीं कहा, चुपचाप बैठा सिगरेट का धुआँ उड़ाता रहा। इसके बाद, अपनी सिगरेट के छोर पर अपनी नज़र गड़ाए, बोला:

"जैसा तुम ठीक समझो। तुम कोई बच्चे तो नहीं, अपना भला-बुरा खुद सोच सकते हो।"

वह उठ खड़ा हुआ और ज़ीने से नीचे उतर गया। सदा की भांति मुझे फिर उसपर तरस आया।

चार दिन बाद मैंने वह जगह छोड़ दी। मेरे मन में गहरी इच्छा थी कि एक बार रानी मारगोट के पास जाकर उससे विदा ले आऊँ, लेकिन उसतक पहुँचने का साहस न बटोर सका और, सच बात तो यह है कि, मन-ही-मन मैं यह उम्मीद बांधे था कि वह ख़ुद मुझे बुलाएगी।

छोटी लड़की से विदा लेते समय मैंने कहा:

"अपनी माँ से कहना कि मैं उनका कृतज्ञ हूँ और उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। कहोगी न?"

"हाँ," बहुत ही कोमल और प्यारी मुसकान के साथ उसने वचन दिया। फिर बोली: "विदा, कल तक के लिए!"

बीस वर्ष बाद उससे फिर मेरी भेंट हुई। तब वह फ़ौजी पुलिस के एक अफ़सर की पत्नी थी...।

११

एक बार फिर मैंने जहाज़ के बावर्चीघर में बरतन धोने का काम संभाला। इस जहाज़ का नाम था 'पेर्म', बड़ा और तेज़ रफ़्तार, हंस की भांति एकदम सफ़ेद। इस बार मेरा ओहदा भी बड़ा था—बरतन धोने वालों का नायक, या किचन ब्वाय। मेरा काम बावर्ची का हाथ बंटाना था। वेतन सात रूबल महीना।

जहाज़ का मैनेजर एक मोटा गावदुम आदमी था। बद-दिमाग़ी से वफरा हुआ, और रबर की गेंद की भांति गंजा। हाथों

को कमर के पीछे बाँधे सुबह से साँझ तक वह डैक पर चक्कर लगाता, उस सूअर की भांति जो गर्मी और धूप से बौखला कर किसी ठंडे कोने की खोज में भटक रहा हो। उसकी पत्नी खान-पान-घर की शोभा बढ़ाती। उम्र चालीस से ऊपर, किसी ज़माने में सुन्दर रही होगी, लेकिन अब घिस-पिट कर चिथड़ा हो गई थी। पाउडर इतना पोतती कि गालों पर से झड़ने लगता और सफ़ेद चिपचिपी धूल की भांति उसके भड़कीले कपड़ों पर जमा होता रहता।

बावर्चीघर की बागडोर खानसामें इवान इवानोविच के हाथों में थी जिसे सब नाटा भालू कहते। नाटा कद, फूले हुए गाल, तोते ऐसी हुकदार नाक और सबको ठेंगे पर रखने वाली आँखें। तबीयत का शौकीन, हमेशा कलफ़दार कालर लगाता, रोज़ दाढ़ी छीलता, इस हद तक कि उसके गालों की खाल में अब नीलापन झलकता था। उसकी बलदार काली मूछें ऊपर को खड़ी रहतीं; जब भी खाली हाथ होता अपनी तपी हुई लाल उँगलियों से उन्हें बराबर ऐंठता और एक छोटे-से गोल दस्ती शीशे में देख-देख कर गर्व से तन जाता।

कोयला झोंकने वाला याकोव शूमोव जहाज़ के लोगों में सब से ज़्यादा दिलचस्प था। चौकोर काठी, चौड़े कंधे, बज्र देहाती। चपटी नाक, चेहरा भी वैसा ही फावड़े की भांति चपटा, घनी भौंहों के जंगल में छिपी भालू ऐसी आँखें, दलदल की काई की भांति छल्लेदार दाढ़ी गालों को घेरे हुए, सिर पर घुंघराले बाल, इतने घने कि अगर वह चाहता तो भी अपनी टेढ़ी-मेढ़ी उँगलियों को कभी उनके बीच से न गुज़ार पाता।

वह पक्का जुआरी था और खाने पर इस बुरी तरह टूटता कि देख कर अचरज होता। भूखे कुत्ते की भांति वह बावर्चीघर के

आस-पास ही लटका रहता। कभी बोटी के लिए हाथ फैलाता, और कभी हड्डियों के लिए। साँझ को वह नाटे भालू के साथ चाय पीता और अपने जीवन के अजीब-गरीब किस्से सुनाता।

बचपन में वह रियाज़ान नगर में किसी गड़रिये के साथ गुज़र करता था। एक दिन कोई ईसाई साधु उधर से गुज़रा और उसके कहने-फुसलाने से वह मठ में भर्ती हो गया। नये साधु के रूप में वह चार साल तक मठ में रहा।

"आज दिन भी मैं साधु ही होता,—खुदा का एक काला सितारा," लनतरानी के अपने अन्दाज़ में वह कहता,—"लेकिन एक स्त्री ने सब गड़बड़ कर दिया। वह पेंज़ा की रहने वाली थी। साधु-सन्तों के दर्शन करने के लिए वह हमारे मठ में आई थी। क्या बताऊँ, इस नन्ही-सी स्त्री ने मेरा दिमाग़ ही पलट दिया। 'ओह कितना अच्छा, ओह कितना मजबूत!'—मुझे देख कर वह चहकी। फिर बोली: 'एक मैं हूँ, बेदाग विधवा, एकदम अकेली। चलो न मेरे साथ? घर-बाहर का काम करना। मेरा अपना घर है, मुर्ग़-मुर्गियों के परों का धंधा करती हूँ। बोलो, क्या कहते हो?' मुझे भला क्या उज्र होता? मैं उसके साथ हो लिया। वह मुझे अपना सेवक बनाना चाहती थी, पर मैं उसका प्रेमी बन गया। तीन साल तक उसके साथ मौज की और..."

नाटा भालू अपनी नाक पर निकले मस्से को व्यग्र भाव से देखता हुआ उसकी लनतरानी सुन रहा था। आखिर वह झुंझला उठा।

"सफ़ेद झूठ बोलना कोई तुमसे सीखे!" बीच में ही उसने कहा।—"झूठ बोलने से अगर सोना बरसता तो तुम कारूँ का खज़ाना बटोर लेते!"

याकोव जुगाली-सी करता मुँह चला रहा था। उसकी छल्लेदार सफ़ेद दाढ़ी जबड़े के साथ ऊपर-नीचे हरकत कर रही थी, और उसके

छाज से कान फड़फड़ा रहे थे। बावर्ची के चुप हो जाने पर उसकी जुबान फिर सम गति से कैंची की भांति चलने लगी:

"उम्र में वह मुझसे बड़ी थी। जल्दी ही मैं उससे उकता गया। सच जानो, मैं उससे तंग आ गया और उसे छोड़ उसकी भतीजी पर मैंने डोरे डाले। एक दिन उसे इसका पता चल गया। फिर क्या था, उसने मेरी गरदन दबोची और लात मार कर घर से बाहर निकाल दिया।"

"यानी बाकायदा हिसाब चुकता करके उसने तुम्हें विदा कर दिया!" बावर्ची ने भी याकोव की ही भांति सहज भाव से कहा।

कोयला झोंकने वाले खलासी याकोव ने चीनी की एक डली अपने मुँह में डाली और फिर कहना जारी रखा:

"इसके बाद सूखे पत्ते की भांति हवा के साथ मैं इधर-उधर उड़ता और भटकता रहा। फिर व्लादिमीर के एक बूढ़े व्यापारी के साथ मेरा गठबन्धन हुआ। उसके साथ मैंने आधी दुनिया नाप डाली—बाल्कन पहाड़ों का नाम सुना है? मैं वहाँ गया। सभी तरह के रंग-बिरंगे लोगों को देखा—तुर्कों और रूमानियाइयों, यूनान के निवासियों और आस्त्रियाकों, दुनिया-भर के लोगों से वास्ता पड़ा। कभी हम उनके हाथ अपना माल बेचते, कभी उनसे माल खरीदते।"

"क्या तुम चोरी भी करते थे?" बावर्ची ने पूरी गम्भीरता से पूछा।

"बूढ़े व्यापारी ने किसी पर कभी हाथ साफ़ नहीं किया,—नहीं, कभी नहीं। और वह मुझसे बोला: अपने देश में चाहे जो करना, लेकिन पराये देशों में किसी चीज़ पर हाथ न डालना। उन देशों का रिवाज़ था कि अगर कोई मामूली से मामूली चीज़ भी चुराता तो उसका सिर साफ़ धड़ से अलग कर दिया जाता। लेकिन यह न समझना कि मैंने चोरी करने की कोशिश नहीं की। कोशिश

तो मैंने की, लेकिन कुछ बना नहीं। एक दिन मैं एक व्यापारी के अस्तबल से घोड़ा खोल कर भागा। लेकिन भाग नहीं सका, उन्होंने मुझे पकड़ लिया, और यह समझ लो कि ख़ूब मारा। मारने से जब उनका जी भर गया तो मुझे खींचते हुए थाने में ले गए। थाने वालों ने मुझे बंद कर दिया। वहाँ हम दो थे—एक असली और ख़ूब खरा घोड़ा-चोर था, दूसरा मैं जिसे घोड़ा चुराने का केवल शौक़ चर्राया था कि देखो, इसमें क्या मज़ा आता है। हाँ तो उस व्यापारी ने उन दिनों एक नया हम्माम बनवाया था और मैं उसमें चूल्हा बना रहा था। अब हुआ यह कि वह बीमार पड़ गया और बुरे-बुरे सपने देखने लगा। इन सपनों में वह मुझे देखता और उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती। घबरा कर वह बड़े अफसर के पास गया और उससे भिनभिना कर बोला: 'उसे छोड़ दो। मैं खुद कहता हूँ कि उसे छोड़ दो। सपनों में भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। अगर मैं उसे माफ़ नहीं करूँगा तो कौन जाने, वह मेरी जान ही ले ले। कम्बख़्त जादू जानता है, मुझे सपनों में परेशान करता है।' हां तो अफसर ने उसकी बात मान ली। मानता क्यों नहीं, वह बहुत बड़ा व्यापारी जो था। सो मैं थाने से बाहर निकल आया।"

"वे चूक गए। तुम्हें हर्गिज़ नहीं छोड़ना चाहिए था। तुम इस लायक थे कि गले से पत्थर लटका कर तीन दिन तक तुम्हें नदी में छोड़ देते। देखते-देखते सारी खुराफ़ात तुम्हारे दिमाग से निकल जाती!" बावर्ची ने कहा।

याकोव को तुरत एक नयी बात सूझी। बोला:

"खुराफ़ात?—खुराफ़ात तो मुझमें कम नहीं है। सच पूछो तो इतनी खुराफ़ात मुझमें भरी है कि सारा गांव एक तरफ़ और मैं एक तरफ़!"

बावर्ची ने अपने कालर में उँगली गड़ाई और झुंझला कर उसे झटका। फिर सिर हिला कर मुँह बिचकाते हुए बोला:

"ऊँह, यह भी कोई आदमी है! पुराना पापी, यहाँ-वहाँ मुँह मारने और लम्बी तानने के सिवा यह और क्या जानता है? तुम्हीं बताओ, तुम्हारे जीने का मक्सद क्या है?"

याकोव ने अपने होंठों पर जीभ फेरी और बोला:

"यह तो मैं नहीं जानता। जैसे सब रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपना जीवन बिताता हूँ। कुछ एक जगह लेटे रहते हैं, कुछ के पाँव में सनीचर होता है और कुर्सी ही तोड़ते हैं। कोई कुछ भी करे, अपना दोज़ख भरे बिना किसी को चैन नहीं पड़ती। क्या कोई ऐसा भी है जो खाने से जी चुराता हो?"

यह सुन बावर्ची और भी झुंझला उठा:

"तू इतना सूअर है कि कुछ कहते नहीं बनता। जानता है, सूअर क्या खाते हैं? तू बस वही है!"

याकोव की आँखें अचरज से फैल गईं। उसकी समझ में नहीं आया कि इसमें गुस्सा होने की क्या बात है। बोला:

"नाराज़ क्यों होते हो? तुम और मैं, गाँव के सभी लोग, एक ही पेड़ की गुठलियाँ हैं। तुम्हारे मुँह लाल करने से मैं और कुछ नहीं बन जाऊँगा। बेकार गुस्सा करते हो।"

यह आदमी मुझे बहुत अच्छा लगा, और शीघ्र ही मेरा उससे गहरा मेल-मिलाप हो गया। चकित भाव से मैं उसकी ओर देखता और मुँह बाये उसकी बातें सुनता। मेरा जी उससे कभी न उकताता। ऐसा मालूम होता मानो वह जीवन के अनुभवों की एक मज़बूत और मुजस्सिम इमारत हो। वह हरेक से, बिना किसी बनावट के खुलकर बातें करता और उतना ही खुल कर अपनी फरफराती हुई भौंहों के नीचे से सब की ओर देखता। उसके लिए कोई नीचा नहीं था—

कप्तान, मैनेजर, और ऊपर फर्स्ट क्लास के बड़े-बड़े मुसाफ़िर भी उसके लिए वैसे ही थे जैसे अन्य जहाज़ी, भोजनघर के बैरे, तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर और वह खुद।

कभी-कभी बनमानुष ऐसी अपनी लम्बी बाँहों को कमर के पीछे किए, कप्तान या चीफ़ इंजीनियर के सामने खड़ा वह उनकी झिड़कियाँ सुनता। काहिली अथवा ताश के खेल में बेरहमी से किसी की जेब खाली करने पर वे उसे डांटते-डपटते और वह चुपचाप सुनता रहता। साफ़ मालूम होता कि डांट-डपट का उसपर कोई असर नहीं पड़ रहा है और अगले पड़ाव पर उसे जहाज़ से उतार देने की उनकी धमकियाँ उसके कानों से टकरा कर हवा में छितर रही हैं।

'वाह भई ख़ूब' की भांति याकोव में भी एक अपना निराला-पन था। वह अन्य लोगों से कुछ भिन्न, उनसे कुछ अलग कोटी का, मालूम होता था। और जैसे ख़ुद उसे भी इस बात का विश्वास था कि वह औरों से अलग, उनकी पहुँच और समझ से बाहर है।

इस आदमी को मैंने कभी उदास होते या मुँह फुलाते नहीं देखा। न ही वह मुझे, एक लम्बे अर्से तक, कभी गुमसुम दिखाई दिया। शब्दों की एक अंतहीन धारा, वह चाहे या न चाहे, उसके मुँह से निकलती रहती। जब भी उसपर डांट-डपट पड़ती, या वह कोई दिलचस्प क़िस्सा सुनता, तो उसके होंठ इस तरह हिलते मानो वह सुनी हुई बात को दोहरा रहा हो। हर रोज़ अपना काम ख़त्म करने के बाद जब वह बाहर निकलता तो उसका सारा शरीर पसीने और तेल से लिथड़ा होता। नंगे पाँव और बिना पेटी का गीला ब्लाउज़ वह पहने होता जिसका गला खुला रहता और घने घुंघराले बालों से घिरा उसका सीना उसके भीतर से झांकता दिखाई देता।

फिर मुँह से गहरी और एकरस आवाज़ निकलती और वर्षा की बूंदों की भांति डैक पर शब्दों की बौछार होने लगती।

"कहो, बूढ़ी अम्मा, तू कहाँ जा रही है? क्या कहा, चिस्तो-पोल? मैं भी वहाँ रह चुका हूँ। एक धनी तातार किसान के यहाँ काम करता था। हाँ, याद आया, अहसान गुबैदूलिन उसका नाम था। खुर्राट कहीं का, तीन-तीन बीवियाँ रखता था। मज़बूत काठी, और चुकन्दर सा लाल चेहरा। उसकी सबसे छोटी बीबी बस एक ही थी, जैसे गुड़िया हो। जी करता कि गोदी में उठा लो। छोटे कद की इस तातार स्त्री के साथ मैंने ख़ूब मज़े किये।"

कोई जगह ऐसी नहीं थी जहाँ वह न गया हो, और कोई स्त्री ऐसी नहीं थी जिसके साथ उसने मज़े न किए हों। बड़ी शान्ति और थिरता के साथ वह यह सब बातें बताता, मानो कडुवाहट और मान-अपमान का उसने अपने जीवन में कभी अनुभव न किया हो। पलक झपकते वह जहाज़ के पिछले हिस्से में पहुँच जाता और वहाँ से उसकी आवाज़ सुनाई देती:

"है कोई ताश का खिलाड़ी? पत्ता-पटक छक्का, पंजा,— चले आओ जिसे ताश खेलना हो। ताश से बढ़िया चीज़ इस दुनिया में कोई नहीं है। मज़े से बैठ कर पत्ते फटकारो, और बड़े सौदागर की भांति आराम से धन बटोर लो!"

'भला', 'बुरा', या 'कमीना'—ऐसे शब्द उसके मुँह से शायद ही कभी निकलते थे। उसके लिए हमेशा हर चीज़ 'लुभावनी' या 'आरामदेह' अथवा 'अजीब' होती थी। जब वह किसी सुन्दर स्त्री का ज़िक्र करता तो उसे "गुड़िया सी सुन्दर" कहता, धूप निखरा रुपहला दिन उसे "आरामदेह दिन" मालूम होता। उसका सब से प्रिय सम्बोधन था:

"गोली मारो!"

सब उसे काहिल समझते, लेकिन मुझे लगता कि दमघोट और सड़ांध-भरे भट्टी-घर में वह भी उतनी ही लगन से जान तोड़ मेहनत करता था जितना कि अन्य। यह बात दूसरी थी कि कोयला झोंकने वाले अन्य खलासियों की भांति न तो वह कभी रोता-झींकता था, न ही वह काम के बोझ को लेकर कभी तोबा-तिल्ला मचाता था।

एक दिन मुसाफ़िरों में से किसी बूढ़ी स्त्री का बटुवा चोरी चला गया। शान्त और साफ़ साँझ थी। सभी उमंग से भरे थे। कप्तान ने बुढ़िया को पाँच रूबल दिए और मुसाफ़िरों ने भी उसके लिए चन्दा जमा किया। जब उसे धन दिया गया तो उसने क्रास का चिन्ह बनाया और कमर तक झुकते हुए बोली:

"मेरे बेटो, मुझे तीन रूबल ज़्यादा दे दिए। मेरे बटुवे में तो इतने रूबल थे भी नहीं!"

कोई प्रसन्न भाव से चिल्लाया:

"ले लो, बूढ़ी माँ, भगवान तुम्हारा भला करे। यह अच्छा ही है कि पास में कुछ पड़ा रहे। वक़्त पर काम देगा।"

किसी अन्य ने एक बढ़िया फबती कसी:

"धन आदमियों से बढ़ कर है। उसे कोई नहीं ठुकराता!"

लेकिन याकोव ने बुढ़िया के सामने एक निराला ही सुझाव रखा:

"फालतू धन मुझे दे दो। मैं इससे ताश खेलूँगा!"

सब हँसने लगे। समझे कि वह मज़ाक कर रहा है। लेकिन वह पूरी गम्भीरता से बुढ़िया के पीछे पड़ा था:

"लाओ, बूढ़ी माँ! एक पाँव तो तुम्हारा क़ब्र में लटका है, तुम धन का क्या करोगी?"

यह देख सब उसपर बमक पड़े और उसे बुढ़िया के पास से दूर खदेड़ दिया। अचरज में आँखें फाड़ते हुए उसने मुझसे कहा:

"अजीब लोग हैं ये भी! भला ये क्यों बीच में टाँग अड़ाते हैं? वह खुद कहती थी कि उसे फालतू धन नहीं चाहिए। ओह, तीन रूबल पाकर मेरी तबीयत हरी हो जाती।"

ऐसा मालूम होता मानो उसे धन की, सिक्कों की, शक्ल-सूरत से प्रेम हो। किसी एक सिक्के को वह अपने हाथ में लेता और उसे अपनी पतलून पर रगड़ता रहता, फिर पकौड़ा-सी अपनी नाक के पास ले जाकर मुग्ध भाव से उसकी चमक देखता। लेकिन वह लालची नहीं था।

एक बार उसने पत्ता-पटक खेलने के लिए मुझे बुलाया। लेकिन मैं खेलना नहीं जानता था।

"अरे, यह क्या—तुम किताबें पढ़ लेते हो," उसने अचरज से कहा,—"लेकिन पत्ता-पटक खेल नहीं जानते। अच्छी बात है, मैं तुम्हें सिखाऊँगा। आओ, पहले ऐसे ही खेलें, चीनी की डली की बाज़ी लगा कर।"

उसने आधा पौंड चीनी मुझसे जीती। वह जीतता जाता और चीनी की डली मुँह में रखता जाता। जब उसने देखा कि मैं अब खेलना सीख गया तो बोला:

"अब हम सचमुच का खेल खेलेंगे, धन की बाज़ी लगा कर। जेब में कुछ है?"

"पाँच रूबल हैं।"

"मेरे पास भी ऐसे ही दो-एक रूबल होंगे।"

देखते-देखते मैं सभी कुछ हार गया। उसे वापिस लौटाने की धुन में पाँच रूबल के बदले मैंने अपने गर्मकोट की बाज़ी लगा दी, और उसे भी गंवा बैठा। फिर अपने नये जूतों को दांव पर रखा और उन्हें भी खो दिया। इसके बाद याकोव ने चिड़चिड़ा कर क़रीब-क़रीब गुस्से में, कहा:

"तुम खेलते हो या अपने दिमाग़ का बुखार उतारते हो? तुम्हारा दिमाग़ बेहद गर्म है, तुम कभी खिलाड़ी नहीं बन सकते। यह लो अपना कोट, और यह रहे तुम्हारे जूते! संभालो इन्हें, मुझे कुछ नहीं चाहिए, और यह लो अपनी पूंजी — चार रूबल — एक मेरी फीस का, अगर तुम्हें बुरा न लगे तो!"

मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया।

"गोली मारो!" मेरी कृतज्ञता के जवाब में उसने कहा। — "खेल खेल है — मतलब, मन बहलाव। लेकिन तुम तो बाक़ायदा मल्लयुद्ध करने लगे, मानो जान की बाज़ी लगी हो! और तुम्हारी यह गर्म दिमाग़ी तो लड़ाई में भी काम नहीं देगी, — ख़ूबी इस बात में है कि विरोधी को ठंडे दिमाग़ से चित्त करो। जिसका दिमाग़ गरमा गया, वह तो जैसे ख़ुद उलटा हो गया। फिर, गरम होने की बात भी क्या है? तुम जवान हो, और तुम्हें अपने को क़ाबू में रखना चाहिए। एक बार चूके, समझो कि पाँच बार चूके, सात बार चूके! गोली मारो इस गरम दिमाग़ी को! एक डग पीछे हटो, दिमाग़ को ठंडा करो, और फिर जूझ पड़ो। समझे, खेल इस तरह खेला जाता है!"

वह मुझे बराबर अच्छा लगता, और साथ ही मुझे उसपर झुंझलाहट भी आती। कभी-कभी जब वह बोलता तो मुझे अपनी नानी की याद हो आती। उसमें बहुत कुछ था जो मुझे अपनी ओर खींचता, लेकिन लोगों के प्रति उदासीनता की इतनी मोटी परत उसपर चढ़ी थी कि मैं उससे घबरा जाता। जीवन के समूचे दौरान में जमते-जमते यह परत इतनी मोटी हो गई थी।

दूसरे दर्जे के मुसाफ़िरों में पेर्म का निवासी एक मोटा सौ-दागर था। एक दिन सूरज छिपे उसने इतनी पी ली कि लड़खड़ा कर जहाज़ से नीचे पानी में जा गिरा। वह बुरी तरह हाथ-पाँव

पटक रहा था और छिपते हुए सूरज की लाली से लाल जहाज़ से कटी पानी की लीक में बहा जा रहा था। जहाज़ के इंजन तुरत बन्द कर दिए गए और वह एकदम स्थिर हो गया। पहियेनुमा चप्पुओं ने भागों को अंधाधुंध उछाला जो छिपते सूरज की लाली से खून की भांति लाल हो उठे थे। रक्तिम लाली के इस उमड़ते सागर में एक काला शरीर जो अब काफ़ी पीछे छूट गया था, छट-पटा रहा था और पानी में से हृदयवेधी चीखें उठ रही थीं। मुसा-फ़िर भी चिल्लाते और एक-दूसरे को धकियाते हुए जहाज़ के पिछले हिस्से में जमा हो रहे थे। डूबने वाले आदमी का गंजे सिर और ताम्बे ऐसे रंग वाला एक साथी जो ख़ुद भी नशे में धुत्त था, भीड़ को चीरता आगे बढ़ने के लिए चिल्ला रहा था:

"रास्ता छोड़ दो! मैं पानी में कूद कर उसे पकड़ लाऊँगा!"

दो जहाज़ी पानी में पहुँच चुके थे और तैर कर डूबते हुए आदमी की ओर बढ़ रहे थे। जान बचाने वाली एक नाव नीचे उतारी जा रही थी। जहाज़ियों की चिल्लाहट और स्त्रियों की चिल्लपों को बेध कर याकोव की शान्त और गदाराई हुई आवाज़ सुनाई दे रही थी:

"वह कोट पहने है, डूबने से भला कैसे बचेगा। अगर बदन पर भारी लबादा हो तो डूबना निश्चित है। स्त्रियों को लो,—पुरुषों के मुक़ाबिले वे क्यों इतनी जल्दी पानी की तह में बैठ जा-ती हैं? यह उनके घाघरों की करामात है। स्त्री पानी में गिरी नहीं कि ढाई मन के पत्थर की भांति सीधी तलहटी को छूकर ही दम लेती है। देखो, वह डूब भी चुका है। मैंने ठीक कहा था न?"

वह सचमुच डूब चुका था। क़रीब दो घंटे तक वे उसकी लाश की खोज करते रहे लेकिन बेकार, लाश नहीं मिली। उसका

साथी जो अब होश में था, जहाज़ के पिछले हिस्से में उदास बैठा बुदबुदा रहा था:

"देखो न, यह क्या हो गया? अब क्या होगा? उसके घर-वालों के सामने क्या मुंह लेकर मैं जाऊँगा, उनसे क्या कहूँगा? अच्छा होता अगर उसके घरवाले न होते..."

पीठ के पीछे अपने हाथ बांधे याकोव उसके सामने खड़ा था और ढारस बंधा रहा था:

"और चारा भी क्या था, सौदागर! कोई नहीं जानता कि मौत से किस भेष में मुठभेड़ होगी? कभी-कभी ऐसा होता है कि एक आदमी अच्छा-बिच्छा कुकुरमुत्ता खा रहा है और फट बुलबुला फूट जाता है और वह सीधे कब्र की राह लेता है। हज़ारों आदमी कुकुरमुत्ता खाकर मोटे-ताज़े बन जाते हैं, लेकिन वह है कि उसे मौत दबोच लेती है। और यह कुकुरमुत्ता भी आखिर है क्या?"

वह सौदागर के सामने खड़ा था—चौड़ा-चकला, चक्की के पत्थर की भांति ठोस, भूसी की भांति अपने शब्दों को बिखेरता हुआ। पहले सौदागर धीमे-धीमे रो रहा था और अपनी चौड़ी हथे-ली से दाढ़ी पर ढुरक आए आँसुओं को पोंछता जाता था। लेकिन याकोव के शब्दों के अर्थ ने जब उसके हृदय को छूना शुरू किया तो वह फुक्का मार कर चीख उठा:

"चले जाओ यहाँ से, शैतान के पूत! मेरा हृदय पहले ही दु:ख रहा है, तुमने आकर उसे और कुरेदना शुरू कर दिया। भले लोगो, इसे ले जाओ यहाँ से! नहीं तो जाने मैं क्या कर बैठूँ!"

याकोव खुद ही चुपचाप खिसक गया। बोला:

"लोग सचमुच में अजीब हैं। चाहे कितनी भली बात कहो, उनकी समझ में कुछ नहीं आता।"

कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि याकोव भोले दिमाग़ का आदमी है, लेकिन बहुधा ऐसा अनुभव होता कि वह केवल बनता है। मेरा जी बुरी तरह ललकता कि उसके मुँह से उन जगहों का हाल सुनूँ जहाँ वह हो आया है, उन चीज़ों के बारे में जानूँ जिन्हें वह देख चुका है। लेकिन वह हमेशा उड़ती हुई सी बातें करता जिनसे मुझे ज़रा भी सन्तोष न होता। अपना सिर वह पीछे की ओर तान लेता, भालू ऐसी आँखों को आधा मूँद लेता, अपने थल-थल चेहरे को थपथपाता और लनतरानी के स्वर में अपने संस्मरण सुनाना शुरू करता:

"आदमी ही आदमी, जहाँ भी जाओ, चींटियों के दल की भांति आदमी ही आदमी दिखाई देते हैं। यहाँ भी आदमी, वहाँ भी आदमी —ढेर के ढेर। उनमें भी ज़्यादातर किसान, पतझड़ के पत्तों की भांति सारी दुनिया में बिखरे हुए। बल्गार? सच, बल्गारिया के लोगों को मैंने देखा, और यूनानियों को भी, और सर्बिया तथा रूमानिया के लोगों और सभी प्रकार के, जिप्सियों को भी देखने का मुझे अवसर मिला। ये सब कैसे थे? ऊँह, कैसे क्या होते? नगरों में शहरी लोग थे, और गाँवों में देहाती। ठीक हमारी ही भांति, एकदम मिलते-जुलते। कुछ की तो बोली भी हमारी ही जैसी थी, यों ही थोड़े से फेर-फार के साथ। मिसाल के लिए जैसे तातार और मोर-दोविया के निवासी। यूनानी हमारी तरह नहीं बोल सकते, पता नहीं वे क्या ऊल-जलूल बोलते हैं। सुनने में तो लगता है कि शब्द उनके मुँह से निकल रहे हैं, लेकिन मतलब समझना चाहो तो कुछ पल्ले नहीं पड़ता। खाक-धूल जो भी दिमाग़ में आता है उसे ही मुँह से उगलने लगते हैं। उनसे हाथ के इशारों से बात करनी पड़-ती है। और वह बूढ़ा खुर्राट जिसके साथ मैं काम करता था, यह दिखाने के लिए कि वह यूनानियों की बोली समझता है, हर घड़ी

'कालामारा, कालमारू' बड़बड़ाता रहता। वह सचमुच में खुर्राट था, बड़ा ही चलता पुर्ज़ा। उलटे उस्तरे से उनकी हजामत बनाता। क्या कहा तुमने? यह कि वह कैसे थे? बार-बार यही सवाल तुम दोहराते हो! मेरे बुद्धू, यह भी कोई जानने की बात है? निश्चय ही उनका रंग काला होता है, और ऐसे ही रूमानियाइयों का भी—ये सब एक ही मज़हब मानते हैं। बल्गार भी काले होते हैं, लेकिन उनका मज़हब हमारे जैसा है। और यूनानी—वे तुर्कों की भांति होते हैं।"

मुझे लगता कि वह सब कुछ नहीं बता रहा है, कोई चीज़ है जिसे वह छिपा रहा है।

पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों से मैं जानता था कि यूनान की राजधानी एथेन्स है जो एक बहुत ही पुराना और सुन्दर नगर है। लेकिन याकोव ने अविश्वास से सिर हिलाया और एथेन्स के अस्तित्व से इन्कार करते हुए बोला:

"पत्र-पत्रिकाओं में दुनिया-भर का झूठ छपता है, मेरे भाई? एथेन्स नाम की कोई चीज़ नहीं है, केवल एथोन है, और वह भी नगर न होकर एक पहाड़ है जिस पर एक मठ बना है। बस, इसके सिवा और सब झूठ है। इसे लोग पवित्र एथोन पर्वत कहते हैं। एक बूढ़ा आदमी इस पर्वत की तस्वीरें भी बेच रहा था। दान्यूब नदी के किनारे बेलगोरोद नामक का एक नगर ज़रूर है, हमारे यारोस्लावल या निजनी से मिलता-जुलता। उनके नगर किसी काम के नहीं हैं, लेकिन उनके गाँव—उनकी तो बात ही दूसरी है। और उनकी स्त्रियाँ भी,—बस, कुछ न पूछो, जी करता कि गोदी में उठा लो! ऐसी ही एक स्त्री के चक्कर में मैं वहाँ फंस गया। भला क्या नाम था उसका?"

उसने अपनी हथेलियों को तेज़ी से गालों पर रगड़ा और उस-

की दाढ़ी के बाल धीमे से चरचरा उठे। फिर, फूटी हुई घंटियों की भांति, उसके गले के भीतर से इस तरह आवाज़ निकली मानो वह किसी अंधे कुएँ में से बोल रहा हो:

"देखो न, आदमी भी कितनी जल्दी भूल जाता है। वह मेरे पीछे पागल थी और मैं उसके... जब मैं वहाँ से चला तो वह फूट-फूट कर रोई, और तुम सच मानो चाहे झूठ, मेरी आँखों से भी आँसू बहने लगे। लेकिन अब सोचता हूँ तो उसका नाम तक याद नहीं आता...।"

इसके बाद, पूरी बेशर्मी से, उसने मुझे सिखाना शुरू किया कि स्त्रियों के साथ कैसे क्या करना चाहिए, किस तरह उनके साथ पेश आना चाहिए।

जहाज़ के पिछले हिस्से में हम बैठे थे। सुहावनी और चांदनी खिली रात बाँहें पसारे हमारी ओर बढ़ रही थी। बाईं ओर रुपहले पानी के उस पार चरागाहों की भूमि आँखों से ओझल हो चली थी, दाहिनी ओर पहाड़ियों पर जहाँ-तहाँ पीली रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो आकाश के तारों को यहाँ लाकर किसी ने बन्दी बना दिया हो। हर चीज़ गतिवान, सजग और स्पन्दनशील थी, शान्त किन्तु जीवन की गहराई से भरपूर। और उसके भरभराते हुए शब्द मधुर और उदास निस्तब्धता में से छन कर गिर रहे थे:

"हुआ यह कि वह बाँहें फैला कर मेरी ओर लपकी..."

याकोव के क़िस्सों में उघड़ापन होता, लेकिन घिनौनापन नहीं, उसमें न शेखी का पुट होता, न क्रूरता का। वे अनगढ़ और किसी हद तक घर की याद तथा कसक में डूबे होते। ऊपर आकाश में चाँद तैरता होता,—बिना किसी आवरण के, उतना ही उघड़ापन लिए, और हृदय में उतने ही उदास भावों का संचार करने वाला। मुझे

केवल उन्हीं चीज़ों की याद आती जो अच्छी थीं; सब से अच्छी: रानी मारगोट, और सचाई से भरी ये पंक्तियाँ जिन्हें कभी नहीं भूला जा सकता:

केवल गीत को ही ज़रूरत है सौन्दर्य की — सौन्दर्य के लिए
भला गीत ज़रूरी क्यों हो?

सोच-विचार की अपनी मुद्रा को मैं झटक कर उसी तरह दूर करता जैसे कि नींद या ऊँघ के दौरे को दूर भगाया जाता है, फिर उसपर दबाव डालता कि वह अपने जीवन और जो कुछ उसने देखा-सुना है उसके बारे में बताए। वह कहता:

"तुम भी अजीब जनावर हो! तुम्हें मैं क्या-क्या बताऊँ? सभी कुछ तो मैंने देखा है। मठ? — हाँ, मैंने मठ देखा है। और दारूखाना? — हाँ, दारूखाना भी। शहरी लोगों का जीवन भी मैंने देखा है और दहकानों का जीवन भी। इतना कुछ मैंने देखा और पाया, और इतना कुछ मैंने खोया। बोलो, तुम्हें मैं क्या बताऊँ?"

फिर धीरे-धीरे, मानो वह किसी गहरी नदी के चरर-मरर करते पुल पर से गुज़र रहा हो, वह अपने अतीत का ज़िक्र करता:

"मिसाल के लिए एक इसी घटना को लो, थाने वाली घटना को, घोड़ा चुराने के बाद जब मैं हवालात में बंद था। मुझे लगा कि अब जान नहीं बचेगी, निश्चय ही काली कोसों साइबेरिया के लिए बिस्तर गोल करना पड़ेगा। तभी पुलिस अफ़सर पर मेरी नज़र पड़ी। वह अपने नये घर के चूल्हों को कोस रहा था जो खूब धुआँ देते थे। मैंने उससे कहा: 'सरकार, अगर हुक्म हो तो मैं उन्हें ठीक कर सकता हूँ।' पंजे पैने कर वह मुझ पर झपटा। बोला: 'तुम्हारी यह हिमाकत? नगर का सबसे अच्छा चूल्हा बनाने वाला तो उन्हें ठीक नहीं कर सका, और तुम डींग मारते हो कि ठीक कर दोगे!' लेकिन मैं भी डटा रहा। कहा: 'कभी-कभी निरा बुद्धू भी काज़ी को

पछाड़ देता है।' काली कोसों साइबेरिया मेरे सिर पर मंडरा रहा था। सो मैं ज़रा भी नहीं दबा। आख़िर उसने कहा: 'अच्छी बात है। तुम भी कोशिश कर देखो। लेकिन तुम्हारे हाथ लगाने के बाद अगर उन्होंने ज़्यादा धुआँ देना शुरू किया तो समझ लो, तुम्हारा कचूमर ही निकाल दूँगा!' झटपट दो दिन के भीतर मैंने चूल्हों को ठीक कर दिया। अफ़सर अचरज में पड़ गया। उसकी समझ में न आया कि बात क्या है। सो वह फिर मुझ पर झपटा: 'अरे काठ के उल्लू! छछून्दर की दुम! तू इतना बड़ा कारीगर, और घोड़े चुराता-फिरता है? आख़िर क्यों?' मैंने कहा: 'यही तो मेरा पागलपन है, सरकार!' वह बोला: 'ठीक कहते हो। यह पागलपन है। कितने दुःख की बात है। मुझे तुझ पर तरस आता है।' सुना तुमने? एक पुलिस अफसर, जिसके पेशे में तरस और रहम के लिए कोई जगह नहीं होती, लेकिन वह है कि मुझपर तरस खा रहा है!"

"हाँ तो फिर क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"कुछ भी नहीं। बस, उसका हृदय पिघला, उसने मुझपर तरस खाया। तुम्हें और क्या चाहिए?"

"लेकिन तुम तो चट्टान की भांति मज़बूत और हट्टे-कट्टे हो। तुम्हें देख कर क्या कोई तरस खा सकता है?"

याकोव बहुत ही भली हँसी हँसा।

"तुम भी अजीब जीव हो। क्या कहा तुमने—एक चट्टान की भांति? लेकिन चट्टान भी मान रखने की चीज़ है। वह भी अपना काम करती है। चट्टान के पत्थरों से सड़कें बनती हैं। हर चीज़ का एक अपना मान है, उसका एक अपना उपयोग है। रेत को ही लो। रेत आख़िर होता क्या है? लेकिन उसमें भी घास उगती है।"

याकोव जब ऐसी बातें करता तो मुझे ख़ास तौर से अनुभव होता कि उसके ज्ञान की पहुँच मेरी समझ से बाहर है।

"बावर्ची के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?" एक दिन मैंने उससे पूछा।

"कौन — क्या नाटे भालू के बारे में पूछते हो?" याकोव ने उपेक्षा से कहा। — "उसके बारे में भला मेरा क्या ख्याल हो सकता है? ख्याल करने की उसमें कोई बात भी तो हो!"

उसका कहना ठीक था। इवान इवानोविच इतना सपाट और चिकना, और कुछ इतना ठीकोंठीक था कि ख्याल नाम की चीज़ लटकाने लायक खूँटियाँ उसमें नहीं थीं। उसमें केवल एक ही चीज़ थी जो मुझे दिलचस्प मालूम होती थी: वह याकोव से घृणा करता था और जब देखो तब उसे डांटता रहता था, लेकिन चाय फिर भी सदा उसके साथ ही पीता था।

एक दिन उसने याकोव से कहा:

"अगर तू मेरा दास और मैं तेरा स्वामी होता तो सप्ताह में सात दिन तेरी चमड़ी रंगता, लोफरों के सरदार!"

"सप्ताह में सात दिन तो कुछ ज़्यादा हैं," याकोव पूरी गम्भीरता से जवाब देता।

इस निरन्तर डांट-डपट के बावजूद, न जाने क्यों, बावर्ची बराबर उसके पेट का कुआँ भरता रहता। खाने की कोई-न-कोई चीज़ वह उसे देता और कहता:

"यह ले, पेट्ठू की दुम!"

"इवान इवानोविच, तू न होता तो मैं इतनी ताक़त भला कैसे बटोर पाता। यह सब तुम्हारा ही जम्हूड़ा है!" खाने की चीज़ को अलस भाव से चबाते हुए याकोव कहता।

"लेकिन अपनी इस ताक़त का करोगे क्या, काहिलों के सिरताज!"

"क्यों, अभी सारा जीवन सामने पड़ा है।"

"सारा जीवन सामने पड़ा है! — किस काम का है तुम्हरा जीवन, पुराने चंडूल?"

"मरना कोई नहीं चाहता — पुराना चंडूल भी नहीं। या फिर तुम्हें जीवन बेरस मालूम होता है? जीवन बहुत ही मज़ेदार चीज़ है, इवान इवानोविच!"

"वाह मूर्खाधिराज?"

"मूर्खाधिराज?"

"हाँ, मू-र्खा-धि-रा-ज!"

"क्या शब्द है यह भी!" याकोव अचरज से कहता, और नाटा भालू मुझसे कहता:

"ज़रा इसे देखो। तुम और मैं इन भट्टियों में सिर दिए — सत्यानास हो इनका — अपना खून-पसीना एक करते हैं, लेकिन वह है कि आराम से बैठा जुगाली कर रहा है, देखो न, क्या सूअर की भांति जबड़ा चला रहा है!"

"अपना भाग्य अपने हाथ," उसने निश्चिन्त भाव से, बिना किसी विघ्न-बाधा के, अपना जबड़ा चलाते हुए कहा।

मैं जानता था कि भट्टियों के ऊपर खड़े होने के मुक़ाबिले उनमें कोयला झोंकना कहीं अधिक जानलेवा और हाड़ झुलसा देने वाला काम है, एक या दो बार मैं खुद याकोव के साथ काम करके यह देख चुका था, लेकिन इस बात को वह कभी पलट कर नहीं कहता था। यह मेरी समझ में न आता और मेरा यह विश्वास और भी ज़्यादा दृढ़ होता जाता कि वह अपने भीतर कोई ख़ास गुण छिपाए है, कोई ऐसा ज्ञान उसके पास है जिसे पकड़ सकना मेरे बूते से बाहर है।

उसकी सभी शिकायत करते — कप्तान भी, मिस्त्री-मिकेनिक भी, सारंग भी — वे सब जिनका उससे कुछ भी वास्ता पड़ता। मुझे

अचरज होता कि फिर भी वह जहाज़ पर कैसे बना हुआ है? लात मार कर वे उसे निकाल क्यों नहीं देते? कोयला झोंकने वाले अन्य खलासी उसके साथ कुछ अधिक नर्मी से पेश आते, हालांकि वे सिर-पैर के उसके बकवास और उसकी पत्तेबाज़ी का वे भी खूब मज़ाक उड़ाते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा:

"क्या याकोव अच्छा आदमी है?"

"याकोव बिल्कुल ठिकाने का आदमी है। कभी नाराज़ नहीं होता। कितना ही उसे उलटो-पलटो, चाहे उसकी कमीज़ के भीतर जलते हुए कोयले ही क्यों न छोड़ दो, उसका दिमाग़ कभी नहीं गड़बड़ाता।"

कोयला झोंकने का थका कर चूर कर देने वाला जानलेवा काम करने और अपने पेट का कुआँ ठसाठस भर लेने के बाद भी याकोव बहुत कम सोता। अपनी पाली का काम ख़त्म होते ही वह डैक पर आ जाता, गंदा और पसीने में बुरी तरह तर, बहुधा वही काम के काले-चीकट कपड़े पहने, और सारी रात बैठा रहता, मुसाफिरों के साथ बतियाता या ताश खेलता।

मेरे लिए वह तालेबन्द सन्दूक के समान था। मुझे लगता कि उसके भीतर अवश्य कोई ऐसी चीज़ बन्द है जिसके बिना काम नहीं चल सकता, और इस ताले को खोलने वाली कुंजी पाने के लिए मैं बेहद बेचैन हो उठता।

भौंहों की ओट में खूब गहरी छिपी आँखों से वह देखता। फिर कहता:

"तुम्हारे सिर पर तो भूत सवार है, भाई! मेरी समझ में नहीं आता कि तुम चाहते क्या हो? तुम दुनिया के बारे में जानना चाहते हो? यह सच है कि मैंने दुनिया छानी है। लेकिन इससे क्या? तुम भी अजीब पंछी हो, आसानी से पीछा नहीं छोड़ोगे। अच्छा तो सुनो, एक दिन की बात मैं तुम्हें बताता हूँ।"

और जो किस्सा उसने मुझे सुनाया, वह इस प्रकार है:

"बहुत दिन हुए, किसी सूबाई नगर में एक युवक जज रहता था। वह तपेदिक का मरीज़ था। किसी जर्मन लड़की से उसने शादी की थी: हट्टी-कट्टी, न कोई बाल न बच्चा। उसका हृदय एक सौदागर के लिए कुड़मुड़ाने लगा जो तीन बच्चों का बाप था, और जिसकी पत्नी काफ़ी ख़ूबसूरत थी। सौदागर ने जब यह देखा कि जर्मन स्त्री उसपर न्योछावर होने के लिए तैयार है तो उसने उसके साथ एक मज़ाक करने का निश्चय किया। कहा कि बाग में रात को आकर मुझसे मिलो और अपने दो साथियों को झुरमुटों में छिपा दिया।

"इसके बाद वह नाटक हुआ कि कुछ न पूछो। जर्मन स्त्री आई, गरमागरम और उबक-चुबक करती, इशारा पाते ही उसके सामने बिछ जाने को तैयार। लेकिन उसने कहा: 'नहीं श्रीमतीजी, मैं तुम्हें गले से नहीं लगा सकता। मैं शादीशुदा हूँ। लेकिन तुम्हारे लिए मेरे दो साथी मौजूद हैं—एक कुंवारा है, और दूसरा रंडुवा।' इसपर स्त्री ने एक ऐसी चीख भरी और सौदागर के एक ऐसा धौल जमाया कि वह कलाबाज़ी खाकर बैंच पर से उलट गया और उसने ठोकरें मार-मार कर उसका तोबड़ा ठीक कर दिया। मैं जज के यहाँ काम करता था और उस स्त्री को लेकर मैं ही पहुँचाने बाग में आया था। बाड़े के पीछे झिर्रियों में से मैंने यह सारा तमाशा देखा। उसके दोनों साथी उछल कर झुरमुटों में से निकल आए और स्त्री की ओर झपटे, और उसके बाल पकड़ कर खींचते हुए ले चले। अब क्या था, बाड़े को फाँद मैं उनसे भिड़ गया। 'यह भी कोई तरीक़ा है,' मैंने कहा,—'स्त्री ने उसका विश्वास किया और यहाँ चली आई, लेकिन वह उसकी मिट्टी पलीद करने पर उतर आया।' स्त्री को उनके चंगुल से छुड़ा कर मैं अपने साथ ले

चला। पीछे से उन्होंने मेरी खोपड़ी का निशाना साधा और एक ईंट फेंक कर मारी जो सनसनाती हुई निकल गई। स्त्री का बुरा हाल था। घर लौट कर वह अहाते में बेचैनी से टहलने लगी। अगर उसे सूझ जाता तो वह अपने को नोंच डालती। लेकिन उसे कुछ सुझाई नहीं दे रहा था। अन्त में बोली: 'मैं चली जाऊँगी यहाँ से, मैं जर्मनी, अपने लोगों के बीच, चली जाऊँगी, याकोव! मेरा पति दो-दिन का मेहमान है, उसके मरते ही मैं यहाँ से चल दूँगी।' मैं क्या कहता। बोला: 'यह ठीक है। यहाँ रह कर तुम करोगी भी क्या?' और हुआ भी ऐसा ही। जज मर गया और वह चली गई। वह बहुत ही भली थी, और समझदार भी कम न थी। और जज भी बहुत भला था, खुदा उसकी रूह को शान्ति दे।"

उसकी इस कहानी का मतलब मेरी समझ में नहीं आया। मैंने उसे सुना और चुपचाप बैठा रहा। उसमें मुझे कुछ वैसी ही क्रूरता और निरर्थकता दिखाई दी जिससे कि मैं परिचित था। बस इतना ही, और कुछ नहीं।

"क्यों, कहानी पसंद आई?" याकोव ने पूछा।

झुंझलाहट से मैं कुछ बुदबुदाया, लेकिन वह शान्त भाव से मुझे समझाते हुए बोला:

"उस तरह के खाते-पीते और निश्चिन्त जीवन बिताने वाले लोग भी कभी-कभी नंगे नाच से अपना जी बहलाने के लिए उतावले हो उठते हैं, लेकिन पांसा सदा सीधा नहीं पड़ता। नंगा नाच करना कोई मज़ाक थोड़े ही है। वे इस कला को क्या जानें? वे तो बस थले पर जम कर डंडी मारना या कलम घिसना जानते हैं। इसमें दिमाग़ लगता है, और चौबीसों घंटे दिमाग़ी काम करते-करते जब जी उकता जाता है, तो तबीयत करती है कि कुछ रंग-पानी होना चाहिए।"

जहाज़ पानी को चीरता और मथता, पानी में बल डालता और झागों के बादल उड़ाता, आगे बढ़ रहा था। पानी के उबलने-उफनने की आवाज़ आ रही थी और काले नदी-तट धीरे-धीरे दूर होते जा रहे थे। डैक पर से मुसाफिरों के घर्राटों की आवाज़ आ रही थी। काले कपड़े पहने एक लम्बी और दुबली-पतली स्त्री बैंचों और सोते हुए लोगों के बीच से सपक सुई सी गुज़र रही थी। उसका सिर अनढका था और उसके सफ़ेद बाल चमक रहे थे। याकोव ने मुझे कोहनियाया और बोला:

"इसे देखो, मालूम होता है, वह दुःखी है।"

मुझे लगा कि दूसरों का हृदय खुदबुदाता देखने में उसे आनंद मिलता है।

वह हमेशा कोई न कोई किस्सा सुनाता और मैं बड़े चाव से सुनता। मुझे उसके सभी किस्से याद थे, लेकिन उनमें ऐसा एक भी नहीं था जो खुशी से सराबोर हो। किताबों के मुक़ाबिले वह कहीं ज्यादा असंलग्न और तटस्थ मालूम होता था। किताबें पढ़ते समय बहुधा साफ़ पता चल जाता था कि लेखक की भावनाएं क्या हैं—न उसकी खुशी छिपी रहती, न उसका गुस्सा। साफ़ झलक जाता कि यहाँ वह दुःख प्रकट कर रहा है, और यहाँ हँसी उड़ा रहा है। लेकिन याकोव न कभी मज़ाक उड़ाता था, न किसी पर भले या बुरे का लेबुल लगाता था। वह कोई ऐसी बात न प्रकट करता जिससे उसकी नाराज़ी या खुशी का पता चलता। वह एक तटस्थ गवाह की भांति अदालत में बोलता, उस आदमी की भांति जिसके लिए अपराधी, सरकारी वक़ील और जज सभी एक समान हों। पत्थर के बुत की भांति उसकी यह तटस्थ असंलग्नता मुझे बुरी और बोझिल मालूम होती, उससे मेरा दम घुटता और विरोधी भावनाओं का वह मुझमें संचार करती।

बायलरों की भट्टियों में उठने वाली लपटों की भांति जीवन उसकी आँखों के सामने नाचता रहता और वह, भालू ऐसे अपने पंजे में लकड़ी की हथौड़ी दबोचे, भट्टी के पास खड़ा हुआ चुपचाप उस पुर्ज़े को ठकठकाता रहता जिससे ईंधन के प्रवाह को घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

"क्या तुम्हें किसीने चोट पहुँचाई है?"

"मुझे भला कौन चोट पहुँचा सकता है? मेरा यह शरीर नहीं देखते, एक ही घूंसे में काम तमाम कर दूँ...।"

"मेरा यह मतलब नहीं था। मेरा मतलब भीतर की, हृदय और आत्मा की, चोट से था।"

"आत्मा को भला कोई कैसे चोट पहुँचा सकता है," उसने कहा,—"वह अपमन से परे है। उसे कोई चीज़ नहीं छू सकती—नहीं, कोई भी नहीं।"

डैक के मुसाफ़िर, जहाज़ पर काम करने वाले और अन्य सभी लोग, आत्मा के बारे में भी उसी तरह बातें करते नहीं अघाते थे जिस तरह कि वे ज़मीन या अपने धंधे, रोटी-पानी अथवा स्त्रियों के बारे में बातें करते नहीं अघाते। आम लोगों के शब्द-भंडार में आत्मा शब्द एक चलता हुआ सिक्का था। पाँच कोपेक के सिक्के की भांति उसका व्यापक प्रचार और चलन था। मुझे यह देख कर बड़ा बुरा मालूम होता कि यह शब्द चिपचिपाती चीज़ों से इस हद तक चिपक कर रह गया है, और जब कोई किसान गंदे शब्दों की बौछार करते-करते एकाएक, मज़ाक में या गंभीर भाव से, आत्मा की दुहाई देने या उसे कोसने लगता तो मुझे ऐसा मालूम होता मानो किसीने मेरे सीने पर सीधा आघात किया हो।

मुझे अच्छी तरह से याद था कि मेरी नानी जब भी आत्मा का, प्रेम और आल्हाद तथा सौन्दर्य की इस रहस्यमय तालिका का,

ज़िक्र करती तो श्रद्धा से उसका माथा झुक जाता, और मुझे पक्का विश्वास था कि जब कोई भला आदमी मरता है तो सफ़ेद बुर्राक फ़रिश्ते उसकी आत्मा को नीले आसमान में नानी के नेकदिल खुदा के पास ले जाते हैं और वह बड़े ही प्यार और दुलार से उसका स्वागत करता है :

"आह मेरी प्यारी आत्मा, सुन्दर सलोनी और पवित्र आत्मा, वहाँ इन्सानों की दुनिया में तुम्हारी ज़िन्दगी बुरी तरह तो नहीं गुज़री, तुम्हें बहुत दुःख तो नहीं झेलने पड़े?"

और वह आत्मा को फरिश्तों ऐसे छै सफ़ेद पंख अता कर देता है।

याकोव शूमोव भी, नानी की भांति, उतनी ही श्रद्धा से उतनी ही कम मात्रा में और उतने ही अनमने भाव से आत्मा के बारे में बात करता। वह आत्मा को कभी न कोसता, न ही कसम खाते समय इस शब्द का प्रयोग करता, और जब कभी वह दूसरों को ऐसा करता सुनता या देखता तो वह चुप हो जाता, अपना सिर नीचे झुका लेता। लाल भभूका और सांड की भांति मज़बूत उसकी गरदन लटक जाती। जब मैं उससे पूछता कि आत्मा क्या है तो वह जवाब देता :

"आत्मा एक हवा है, ईश्वर की सांस।"

मुझे इससे सन्तोष न होता और अन्य सवालों की मैं झड़ी लगा देता। आँख झुका कर वह कहता :

"आत्मा का भेद तो पादरी भी नहीं जानते, मेरे भाई। वह एक गुप्त रहस्य है...।"

मैं बराबर उसके ही बारे में सोचता रहता, और उसे समझने में अपनी सारी कोशिश लगा देता। लेकिन बेकार। मुझे याकोव के

सिवा और कुछ दिखाई न देता, उसके भारी-भरकम शरीर की ओट में मानों सभी कुछ छिप जाता।

मैनेजर की पत्नी का इधर मेरी ओर कुछ ज़रूरत से ज़्यादा झुकाव हो गया था। हर रोज़ सुबह वह मुझसे ही नहाने-धोने के लिए पानी भरवाती, हालांकि यह काम क़ायदे से मेरा नहीं बल्कि दूसरे दर्जे की साफ़-सुथरी, प्रसन्नमुख, टुइयांसी परिचारिका लूशा का था। छोटे से संकरे केबिन में कमर तक नंगी इस स्त्री के पास जब मैं खड़ा होता तो खट्टे खमीर की भांति लिजबिज उसके पीले शरीर से मुझे बड़ी घिन मालूम होती और अनजाने ही, रानी मारगोट के पुष्ट और ताम्बे की भांति दमकते बदन से मैं उसकी तुलना करने लगता। मैनेजर की पत्नी की जुबान बराबर चलती रहती, कभी वह कोसती और शिकायत-सी करती, और कभी गुस्से में बड़बड़ाने और धज्जियाँ-सी बिखेरने लगती।

उसका यह बमकना और बड़बड़ाना मुझे बड़ा बेतुका मालूम होता। उसकी बात मेरे पल्ले न पड़ती, हालांकि मन-ही-मन मैं उसका मतलब समझता था जो निकृष्ट और शर्मनाक था। लेकिन मेरा मन जरा भी नहीं डिगा। मेरे और मैनेजर की पत्नी के बीच, और हर उस चीज़ के बीच जो जहाज़ पर घटती या होती थी, एक दूरी थी। एक भीमाकार काई चढ़ी चट्टान मुझे अपने चारों ओर की दुनिया से अलग किए थी। और यह दुनिया स्थिर नहीं, गतिशील थी — दिन-प्रति-दिन समय के साथ तैरती और हर घड़ी आगे बढ़ती हुई।

"मैनेजर की पत्नी तुमपर बुरी तरह लट्टू है!" खिल्ली उड़ाने वाली लूशा की आवाज़ गूँज उठती और मुझे इस तरह सुनाई देती मानो वह सपने में बोल रही हो। — "अब क्या है, मज़े से गोते लगाओ, घर बैठे गंगा बड़े भाग्य से आती है!"

मेरी खिल्ली उड़ाने वालों में अकेली वही नहीं थी। भोजन घर के सभी कर्मचारी इस स्त्री के लगाव से परिचित थे। बावर्ची मुँह बिचका कर आवाज़ कसता:

"अन्य सब चीज़ों का ज़ायका तो देवी जी ले चुकीं, सो अब फ़ान्स की मिठाई चखने का शौक चर्राया है! औरत क्या है पूरी हर्राफा है। संभल कर पाँव रखना, पेश्कोव, नहीं तो गड़गच्च हो जाओगे!"

याकोव ने भी, पिता के अन्दाज़ में, सलाह दी:

"अगर तुम दो या तीन साल और बड़े होते तो निश्चय ही तब मैं दूसरे ही अन्दाज़ में बातें करता। लेकिन इस उम्र में— अच्छा है कि अछूते ही रहो। लेकिन मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं, जो अच्छा लगे सो करो।"

"मारो गोली," मैंने कहा,—"मुझे तो घिन आती है।"

"ठीक, गोली मारो!"

लेकिन, कुछ क्षण बाद ही, अपने उलझे हुए बालों में वह उँगलियाँ फेरता और अपने छोटे-छोटे गोल-मटोल शब्दों को बीज की भाँति बिखेरना शुरू कर देता:

"लेकिन जीवन के इस पहलू पर भी नज़र डालनी चाहिए, और यह उसका बेरस, पाला-मारा पहलू है। कुत्ता तक यह चाहता है कि उसे कोई थपथपाए, मानव को तो इसकी और भी ज़रूरत है। प्यार-दुलार पर ही तो स्त्री जीती है, जैसे कुकुरमुत्ता वर्षा की बूंदों पर जीता है। यह ज़रूर है कि वह कुछ बेशर्म है, लेकिन वह करे भी क्या? सारा छिनाला इस शरीर में ही भरा है, बस और कुछ नहीं।"

उसकी रहस्यमयी आँखों में आँखें गड़ा कर मैंने देखा। फिर पूछा:

"क्या तुम्हें उसपर तरस आता है?"

"मुझे? मेरी क्या वह माँ लगती है? फिर कुछ लोग तो अपनी माँ पर भी तरस नहीं खाते। सचमुच, तू भी अजीब पंछी है!"

वह अपनी कोमल हँसी हँसता, फूटी हुई घंटियों की आवाज़ की भांति।

कभी-कभी जब मैं उसकी ओर देखता तो ऐसा मालूम होता मानो मैं निस्तब्ध शून्य में, किसी अंधेरे अतल गढे में, डूबा चला जा रहा हूँ।

"अन्य सभी विवाह करते हें, याकोव! तुम क्यों नहीं करते?"

"किस लिए? औरत के लिए मुझे कभी तड़पना नहीं पड़ता,—भला हो भगवान का, आसानी से मिल जाती है। विवाह के बाद आदमी घर से बंध जाता है, उसे खेती-बाड़ी करनी पड़ती है। मेरे पास ज़मीन है, लेकिन किसी करम की नहीं, और बहुत ही कम, और इस थोड़ी-बहुत ज़मीन को मेरे चाचा ने हथिया लिया। मेरा भाई जब फ़ौज से लौटा तो उसने चाचा से झगड़ा शुरू किया, उसे कानून का डर दिखाया, और उसका सिर फोड़ दिया। खूब खून-खराबा हुआ। इसके लिए वह पकड़ा गया, पूरे एक साल और छै महीने की उसे सज़ा हुई, और इसके बाद—सज़ा-काटे आदमी के लिए एक ही रास्ता रह जाता है जो उसे फिर जेल पहुँचा देता है। वह विवाहित था और, गुड़िया-सी बहुत ही सुन्दर उसकी पत्नी थी। लेकिन कोई क्या करे? एक बार शादी करने के बाद यही अच्छा है कि घर बसा कर बैठो और बीवी-बच्चों पर हुक्म चलाओ और उनकी बागाडोर अपने कब्ज़े

में रखो। लेकिन एक सैनिक तो अपनी ज़िन्दगी का भी मालिक नहीं है।"

"क्या तुम खुदा की प्रार्थना करते हो?"

"क्या सवाल किया है पंछी ने। निश्चय ही करता हूँ।"

"किस तरह करते हो?"

"कई तरह से।"

"तुम्हें कौनसी प्रार्थनाएँ याद हैं?"

"मैं कोई प्रार्थना-व्रार्थना नहीं जानता। बस, सीधे कहता हूँ, महाप्रभु ईसा, जीवितों पर तरस खा, मरों को शान्ति दे, बीमारी-चकारी से हमारी रक्षा कर और ऐसी ही कुछ और बातें कहता हूँ।"

"कुछ और बातों से क्या मतलब?"

"ओह, मैंने कोई उनकी फेहरिस्त थोड़े ही बना रखी है! मतलब यह कि जो कुछ भी कहना हो, वह महाप्रभु ईसा के पास पहुँच जाता है।"

वह मेरे साथ बड़ी नर्मी बरतता और एक प्रकार के कौतुक में भर कर मुझे देखता, मानो मैं कोई चतुर पिल्ला हूँ जो मज़ेदार करतब दिखा सकता है। साँझ को मैं उसके पास बैठ जाता, उसके बदन से तेल, आग और प्याज़ की गंध आती रहती,—प्याज़ उसे बहुत पसंद थी, और उसे सेब की भांति कच्चा ही खा जाता। बैठे-बैठे उसे न जाने क्या सूझती कि एकाएक कहता:

"हाँ तो आल्योशा, अब कुछ कविताएँ ही सुनाओ!"

मुझे ढेर सारी कविताएँ जुबानी याद थीं। उनके अलावा मेरे पास एक मोटी कापी भी थी जिसमें मैं वे सभी कविताएँ उतार लेता था जो मुझे अच्छी लगती थीं। मैं उसे पुश्किन की कविता

"रूसलान और लुदमिला" सुनाता और वह निश्चल सुनता रहता—न उसकी आँखें हरकत करतीं, न जुबान—सांस लेने की अपनी घरघराहट तक को वह रोक लेता। अन्त में धीमे स्वर में कहता :

"कितनी प्यारी कहानी है यह—गुड़िया-सी सुन्दर! क्या खुद तूने इसे गढ़ा है? क्या कहा, पुश्किन ने इसकी रचना की थी? एक बड़े कुलीन आदमी को तो मैं भी जानता हूँ। मुखिन-पुश्किन उसका नाम था।"

"वह नहीं, यह दूसरा पुश्किन है। बहुत दिन हुए तब उन्होंने उसे मार डाला था।"

"किस लिए?"

थोड़े में मैंने उसे पुश्किन के जीवन और मौत की कहानी बता दी जो मुझे रानी मारगोट ने सुनाई थी। जब मैं सुना चुका तो उसने शान्त स्वर में कहा :

"स्त्रियों के पीछे न जाने कितने लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं।"

मैं बहुधा उसे किताबों में पढ़ी कहानियाँ सुनाया करता। ये कहानियाँ, सब की सब, मेरे दिमाग़ में कुछ इतनी उलट-पुलट और गड्ड-मड्ड हो जातीं कि वे आपस में गुंथ-गुंथ कर एक लम्बी-चौड़ी धारा का रूप धारण कर लेतीं, एक ऐसी धारा का जिसमें गहरी उथल-पुथल होती और सौन्दर्य भी, प्रेम और वासना की लपलपाती लपटें होतीं और गरदन-तोड़ साहसिक कृत्य भी, नेक नायक, चकित कर देने वाली सौभाग्य की अद्‌भुत वर्षा, द्वन्द्व-युद्ध और मौत, बढ़िया-बढ़िया शब्द और कुटिलता में सिर से पाँव तक डूबे खल नायक,—सभी इस धारा में गुंथ जाते। कहानियों के पात्रों

ओर लोगों को स्याह से सफ़ेद और सफ़ेद से स्याह करने में भी बड़ा मुझे आनन्द आता। रोकाम्बोल को मैं लामोल, हनीबाल और कोलोन्ना का शौर्य अता करता, ग्यारहवें लुई को पिता ग्रांडे के गुणों से लैस कर देता; और कोरनेट ओतलेतायेव की मैं ऐसी कायापलट करता कि उसे देखकर हैनरी चतुर्थ का धोखा होता। मुझे नयी से नयी बात सूझती। लोगों के चरित्रों में मैं फेर-फार करता और घटनाओं को नये सिरे से सजा देता,—एक ऐसी दुनिया आबाद करता जिसका मैं एक मात्र शासक होता, अपने नाना के खुदा की भांति जो लोगों के साथ मनमाने खेल करता था। लेकिन इस दुनिया में मैं खो नहीं जाता, चारों ओर फैली हुई जीवन की वास्तविकता आँखें की ओट नहीं हो जाती, न ही लोगों के पास जाने और उन्हें समझने की मेरी इच्छा को पाला मारता, बल्कि किताबी दुनिया का यह ऊहापोह पारदर्शी और अभेद्य रक्षा-कवच बन कर जीवन में व्याप्त विषैली गंदगी और सड़ांध से, हर घड़ी ताक में रहने वाले अनगिनती घातक कीड़ों से, मेरी रक्षा करता।

कितनी ही चीज़ों से किताबों ने मेरी रक्षा की, मुझे ऐसा बना दिया कि वे कभी मुझपर हावी न हो पातीं। यह जान लेने के बाद कि लोग किस तरह प्रेम करते और मुसीबतों को झेलते हैं, भूलकर भी मैं किसी चकले में पाँव नहीं रखता। यह मेरे लिए असम्भव था। छिनाले का यह सस्ता रूप देख मैं घिन्ना उठता और मेरा हृदय उन लोगों के प्रति घृणा से भर जाता जो इसमें रस लेते। रोकाम्बोल ने मुझे सिखाया कि परिस्थितियों की ताकत से लोहा लो, उन के सामने कभी न झुको। ड्यूमा के नायकों ने किसी ऊँचे और महत्वपूर्ण लक्ष्य के लिए जीवन अर्पित करने की मुझे सीख दी। और सब से अधिक मुग्ध किया मुझे राजा हेनरी

चतुर्थ के मौजी चरित्र ने। मुझे ऐसा लगता मानो उसी को लक्ष्य में रख कर बेरान्गेर ने अपनी इन पंक्तियों की रचना की हो:

> था वह मौजी
> जम कर पीता और पिलाता—
> जो भी आता छक कर जाता
> नहीं किसी से वह कतराता!
> क्यों कहते ऐयाशी इसके
> जिस राजा की जनता खुश हो
> क्यों न वह मौज उड़ाए
> खुशहाली छलके छलकाए!

उपन्यासों में हेनरी चतुर्थ एक नेक और जनता के हृदय में घर कर लेने वाले आदमी के रूप में चित्रित था। सुनहरी धूप की भांति उजला और मौजी उसका स्वभाव था। इसके बारे में जब मैंने पढ़ा तो यह बात मेरे दिल में अडिग भाव से जम कर बैठ गई कि सामन्ती आन-बान के केन्द्र फ़ान्स से बढ़िया देश इस दुनिया में और कोई नहीं है जहाँ किसानों के कपड़े पहने लोग भी उतने ही नेक और अच्छे हैं जितने कि वे जो शाही तामझाम में रहते हैं। आंगे पितोय भी उतना ही आन-बान वाला था जितना कि दआर्तनान। जब हेनरी मारा गया तो मेरा हृदय भारी हो गया, आँखों से आँसू बहने लगे और गुस्से के मारे रैवेलाक पर मैंने खूब दाँत पीसे। हेनरी क़रीब-क़रीब उन सभी कहानियों का हीरो होता जो मैं याकोव को सुनाता, और मुझे लगता कि उसके हृदय में भी हेनरी और फ़ान्स ने अपना स्थान बना लिया है।

"मज़े का आदमी है, तुम्हारा यह हेनरी बादशाह भी!" उस ने कहा।—"एकदम यार बाश, चाहो तो उसके साथ मछली मार सकते हो, या ऐसा ही कोई और प्रोग्राम बना सकते हो!"

कहानी सुनते समय न कभी वह उल्टा होता था, न बीच में टोकता या सवालों की झड़ी लगाता था। वह चुपचाप सुनता रहता,— भौंहें तनी हुईं, चेहरे पर वही एक भाव जो कभी नहीं बदलता था,— काई-जमी पुरानी चट्टान की भांति। लेकिन अगर किसी वजह से मैं बीच में रुक जाता तो वह तुरत कहता:

"क्या ख़त्म हो गई?"

"अभी नहीं।"

"तो रुको नहीं, कहे जाओ।"

एक दिन फ़्रान्स के लोगों के बारे में जब हम बातें कर रहे थे तो उसने लम्बी साँस भरी और बोला:

"मज़े का जीवन है उनका—बढ़िया और ठंडा!"

"बढ़िया और ठंडा कैसा?"

"हां, बढ़िया और ठंडा," उसने कहा,—"एक हम-तुम हैं जो हर वक़्त दहकते रहते हैं, काम की गर्मी एक घड़ी ठंडा नहीं होने देती। लेकिन वे बस प्याले छनकाते और सैर-सपाटा करते हैं। जीवन का यह ढंग भी ख़ूब है!"

"लेकिन काम तो वे भी करते हैं।"

"करते होंगे, तुम्हारी कहानियों से इसका पता नहीं चलता," याकोव ने जवाब दिया। बात सही थी और मैंने एकाएक अनुभव किया कि ढेर की ढेर किताबें जो मैं पढ़ चुका था, इस मामले में वे सभी कोरी थीं। उन्हें पढ़ कर यह पता नहीं चलता था कि किस तरह लोग श्रम करते या अपने श्रम से किस प्रकार वे ऊँचे कुलों में जन्मे नायकों को हरा-भरा रखते हैं।

"अच्छा तो अब एक नींद ले ली जाए," याकोव कहता और कमर के बल वहीं पसर जाता। इसके बाद, अगले ही क्षण, वह मज़े से घर्राटे लेता दिखाई देता।

पतझड़ के दिनों में जब कामा नदी के किनारों पर लाल-कत्थई रंग छाया था, पेड़ों के पत्ते पीले पड़ चुके थे और सूरज की तिर्छी किरनें फ़ीकी हो चली थीं, याकोव एकाएक जहाज़ से अलग हो गया। इससे एक ही दिन पहले उसने मुझसे कहा था:

"एक दिन बाद, यानी परसों, हम-तुम पेर्म पहुँच जाएंगे, आल्योशा! सब से पहले किसी हम्माम में जाकर हम दोनों खूब वाष्प-स्नान करेंगे, फिर सीधे कहवेखाने की राह लेंगे जहाँ गाना-बजाना भी होता हो। क्यों, क्या तू समझता है कि हथ-बाजे को बजाते-बजाते जब वे दोहरे-तिहरे हो जाते हैं तो मुझे अच्छा नहीं लगता?"

लेकिन सारापूल में मोटा गावदुम, दाढ़ी सफ़ाचट और स्त्रियों ऐसे फूले हुए चेहरे वाला एक आदमी जहाज़ पर सवार हुआ। लम्बे कोट और फ़रवाले कनटोप में उसे देख कर और भी ज़्यादा धोखा होता कि पुरुष न होकर वह स्त्री है। आते ही रसोईघर के पास वह एक मेज़ पर बैठ गया। यहाँ काफ़ी गरमाई थी और इसी लिए उसने यह कोना चुना था। चाय के लिए उसने आर्डर दिया और अपना कोट या कनटोप उतारे बिना ही गरम चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। देखते-देखते उसका सारा बदन पसीने में तर हो गया।

बाहर पतझड़ की महीन बौछारें पड़ रही थीं। जब वह अपने चेकदार रूमाल से माथे का पसीना पोंछता तो मानो बौछारें भी साँस लेने के लिए रुक जातीं, इसके बाद जब फिर तेज़ी से पसीना निकलता तो बौछारें भी उतनी ही तेज़ हो जातीं।

कुछ ही देर बाद याकोव भी उसके पास जाकर बैठ गया और दोनों मिलकर जन्तरी में एक नक्शे को बड़े ध्यान से देखने लगे। मुसाफ़िर नक्शे की रेखाओं पर उँगली फेर कर कुछ बता रहा था। आखिर याकोव ने शान्त स्वर में कहा:

"छोड़ो इसे। मेरे जैसे आदमी के लिए सब बाएँ हाथ का खेल है। गोली मारो!"

"ठीक," मुसाफ़िर ने ऊँची आवाज़ में कहा और जन्तरी को उठा कर चमड़े के एक खुलेमुँह थैले में खोंस दिया जो उसके पाँव के पास रखा था। इसके बाद वे चाय पीते और चुपचाप बातें करते रहे।

याकोव की पाली शुरू होने से ठीक पहले मैंने उससे पूछा कि यह कौन है। हल्की हँसी के साथ उसने जवाब दिया:

"देखने में तो ज़नख़ा मालूम होता है। मतलब यह कि इसने अपने-आप को बधिया कर लिया है। दूर साइबेरिया का रहने वाला है। लेकिन है कुछ अजीब पंछी—हर चीज़ का नक्शा बना कर चलता है।"

इसके बाद, काली और खुर की भांति सख़्त अपनी नंगी एड़ियों से डैक को झनझनाता, वह मेरे पास से चल दिया। फिर वह एकाएक मुड़ा और अपनी पसलियों को खुजलाता हुआ बोला:

"मैंने उसकी चाकरी मंजूर कर ली है। पेर्म पहुँचते ही मैं जहाज़ की नौकरी को धता बताऊंगा और तुझसे विदा लूंगा, आल्योशा। बड़ी दूर है वह जगह जहाँ, उसके साथ मैं जाऊँगा। पहले हम रेलगाड़ी पर सवार होंगे, फिर पानी के जहाज़ पर, और उसके बाद घोड़ों पर। वहाँ पहुँचने में पूरे पाँच सप्ताह लग जाएंगे। देखो न, लोगों ने भी कितनी दूर-दूर तक अपने घोंसले बनाए लिए हैं!"

"क्या तुम्हारी उससे जान-पहचान है?" याकोव के इस आकस्मिक फैसले से चकित होकर मैंने पूछा।

"जान-पहचान कैसी? पहले कभी उसकी, और उस जगह की भी जहाँ वह रहता है, शक्ल तक नहीं देखी।"

अगले दिन, सुबह के समय, याकोव ने जहाज़ की वर्दी उतार दी और अपने कपड़े पहन लिए—भेड़ की खाल की एक चीकट जाकेट जो उसके बदन पर अट नहीं पाती थी, सिर पर एक खस्ताहाल सींकों का हैट जिसके किनारे दगा दे चुके थे और जो किसी ज़माने में नाटे भालू की सम्पत्ति था, और नंगे पांवों में पेड़ के बक्कल की घिसी-पिटी चप्पलें। लोहे जैसी अपनी उँगलियों में मेरा हाथ दबोचते हुए उसने कहा:

"क्यों, तू भी मेरे साथ चलो न? अगर मैं उससे कहूँ तो सच वह तुझे भी रख लेगा। बोलो, क्या कहता है? चलो न, बड़ा मज़ा रहेगा। और अगर तू वह चीज़ कटवाने के लिए तैयार हो गया जिसके बिना भी आदमी ज़िन्दा रह सकता है, तब तो तेरे गहरे हैं। बड़ी धूम-धाम से वे लोगों को खस्सी करते हैं, और इसके लिए अच्छी रकम तक भी देते हैं।"

ज़नखा कटहरे के पास खड़ा था और बगल में एक सफ़ेद पोटली दबाए चुंधी-सी आँखों से याकोव की ओर देख रहा था। उसका बदन उतना ही भारी और फूला हुआ था जितना कि पानी में डूबे हुए आदमी का। मैंने मन-ही-मन उसे कोसा, वह एक बार फिर मेरा हाथ दबोचते हुए बोला:

"गोली मारो! हर आदमी खुदा को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के ढंग अपनाता है। ये लोग खस्सी होकर खुदा को प्रसन्न करते हैं। इसमें परेशान होने की क्या बात है? अच्छा तो मैं अब चलता हूँ। मज़े से रहना, समझे!"

इसके बाद एक बड़े भालू की भांति झूमता और झकोले खाता याकोव विदा हो गया और परस्परविरोधी भावनाएँ मेरे हृदय को झंझोड़ने लगीं: दुःख का भी मैं अनुभव कर रहा था और झुंझलाहट

का भी, और मुझे याद है कि उसे इतनी दूर एक अनजानी जगह जाते देख ईर्ष्या और भय का भाव भी मेरे हृदय को मथ रहा था, मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि उसने वहाँ जाने का क्यों तय किया,—और सौ बातों की एक बात यह कि आख़िर वह, यानी याकोव शूमोव, आदमी किस कैंड़े का था?

१२

पतझड़ के दिन बीत चले और पानी में जहाज़ों का चलना अब बंद हो गया। जहाज़ की नौकरी से अलग हो मैंने फिर एक कारख़ाने में काम सीखने के लिए नौकरी शुरू की। यहाँ देव-प्रतिमाओं को रंगा-चुना और उन्हें कारख़ाने की दुकान में बेचा जाता था। काम सीखना शुरू करने के दूसरे ही दिन मेरी मालकिन ने जो एक छोटे क़द की ढीलीढाली बूढ़ी स्त्री थी, और जिसे शराब पीने की आदत थी ऐलान किया:

"अब दिन छोटे और साँझ बड़ी होने लगी हैं, सो तुम हर रोज़ दिन में तो दुकान पर रहोगे और वहाँ बिक्री आदि में हाथ बंटाओगे, और साँझ को कारख़ाने में काम सीखोगे।"

और उसने मुझे दुकान के मुंशी के हवाले कर दिया। वह एक तेज़-तर्रार युवक था, देखने में सुन्दर, लेकिन चिपचिपाहट लिए हुए। दुकान लोअर मार्केट की बारादरी में दूसरी मंज़िल पर थी। अंधेरे-मुँह हम, वह और मैं, उठते और ठंड में कलाबत्तू बने नींद में उँघाते इलिन्का स्ट्रीट को पार कर दुकान पहुँचते। दुकान, जो पहले किसीका स्टोर रूम थी, छोटी और अंधेरी थी। लोहे का उसमें दरवाज़ा लगा था और एक छोटी-सी खिड़की थी जो टीन की छतवाली बालकनी की ओर खुलती थी। हमारी दुकान

देव-प्रतिमाओं से भरी पड़ी थी। छोटी, बड़ी और मंझोली, सभी आकार-प्रकार और काट-छांट की प्रतिमाएँ थीं। साथ ही देव-प्रतिमाओं के चौखटे भी हम बेचते थे, सादे भी और कामदार भी, जो तरह-तरह के बेल-बूटों से सजे हुए थे। चमड़े की पीली जिल्द चढ़ी और प्राचीन स्लाव लिखावट की धार्मिक पुस्तकों का स्टाक भी दुकान में मौजूद था। हमारे बगल में ही देव-प्रतिमाओं और धार्मिक पुस्तकों की एक और दुकान भी थी। इस दुकान का मालिक एक काली दाढ़ी वाला सौदागर था। वोल्गा के उस पार केर्जीनेत्स नदी के समूचे इलाक़े में प्रसिद्ध एक कट्टर पुरानपंथी परिवार का वह नातेदार था। मेरी ही उम्र का उसका एक लड़का था,—काजू-बाजू, बचकाना शरीर और बूढ़ों-ऐसा चेहरा, उल्लू ऐसी गोल आँखें जिन्हें वह हर घड़ी तरेरता रहता था।

दुकान खोलते ही मेरी दौड़ शुरू हो जाती। सब से पहले मैं निकटतम कहवेखाने का रास्ता नापता और चाय के लिए वहाँ से खौलता हुआ पानी लाता। चाय के बाद मैं दुकान लगाता और माल की गर्द झाड़ कर उसे साफ़-सुथरा करके रखता। दुकान को खूब चौचक बनाने के बाद मैं बरांडे में जा खड़ा होता। मेरा काम था कि ग्राहकों को अपने हाथ से न निकलने दूं, यह न हो कि वे हमारी दुकान में न आकर बराबर वाली दुकान में चले जाएँ।

"ग्राहक तो काठ के उल्लू हैं," दुकान का मुंशी कहता,—"दुकान से उन्हें क्या गरज़, वे तो वहीं मुँह मारते हैं जहाँ सस्ती चीज़ मिलती है। गधा-घोड़ा उनके लिए सब बराबर हैं।"

उसके हाथ तेजी से चलते रहते। देव-प्रतिमाओं को वह उठाता और सटा-सटा कर रखता। व्यापार-सम्बन्धी अपना ज्ञान बघारने में ज़रा भी नहीं चूकता और मुझे सबक़ पढ़ाना शुरू करता:

"देखो न, यह कितनी बढ़िया चीज़ है—और बहुत सस्ती, तीन बाई चार साइज़, और दाम कुछ भी नहीं; और यह देखो,

छै बाई सात साइज़, और दाम भी कितने माकूल... सन्तों के बारे में कुछ जानते हो? एकाध का नाम तो लो: यह सन्त बोनिफ़ाती है—उन पियक्कड़ों के लिए जो बार-बार तोबा करते और उसे तोड़ते हैं; और यह शहीद वारवारा की प्रतिमा है—दांत-दाढ़ के दर्द और अकाल मृत्यु के लिए; और यह पहुँचे हुए सिद्ध वसीली हैं—बुखार और सरसाम के दौरों के लिए। और मरियमों के बारे में कुछ जानते हो? देखो, यह प्रतिमा शोक-ताप हरती है। इसीसे खुद भी कितनी उदासी में डूबी है; और यह तीन बाँहों वाली मरियम है; और इसे देखो इसकी आँखों से सदा आँसू बहते रहते हैं, और यह मेरा-शोक-दूर-करो मरियम है, इसके अलावा कज़ान, पोकरोव और सेमिस्त्रेलनाया मरियमों की प्रतिमाएँ...।"

बड़ी-छोटी और कारीगरी के हिसाब से किस प्रतिमा के कितने दाम हैं, यह सब मैंने बड़ी जल्दी याद कर लिया, और विभिन्न मरियमों को पहचानने में भी मुझे अब कोई दिक्कत नहीं होती, लेकिन यह याद रखना मुझे एक अच्छा-खासा जंजाल मालूम होता कि किस सन्त की प्रतिमा किस तरह के शोक-ताप हरती या किस तरह के वरदान देती है।

दुकान का मुंशी अक्सर मेरा इम्तहान लेता। दुकान के दरवाज़े पर खड़ा मैं न जाने किस खयाली पुलाव में मगन होता कि उसकी आवाज़ आती:

"बोलो, बच्चा जनने की पीड़ा कम करना किसके हाथ में है?"

अगर मेरा जवाब ग़लत निकलता तो उसकी भौंहें चढ़ जातीं:

"आख़िर तुम्हारी यह खोपड़ी किस काम आएगी?"

ग्राहकों को पटाना और भी ज़्यादा मुश्किल मालूम होता। प्रतिमाओं के भौंडे चेहरे मुझे बुरे मालूम होते और मेरी समझ में न आता कि उन्हें किसीके हाथ कैसे बेचा जाए। नानी से कहा-

नियाँ सुन-सुन कर मेरे मन में यह बात बैठ गई थी कि मरियम कम-उम्र, भली और सुन्दर थी। पत्रिकाओं में मरियम के जो चित्र मैंने देखे थे, वे भी ऐसे ही थे। लेकिन प्रतिमाओं में वह बूढ़ी और कुत्सित मालूम होती थी, लम्बी और नोक-नुकीली नाक तथा बेजान हाथ मानो उन्हें काठ मार गया हो।

बुध और शुक्रवार के दिन बाज़ार लगता और हमारी अच्छी बिक्री होती। किसानों और बूढ़ी स्त्रियों का हमारी दुकान में तांता लगा रहता, और कभी-कभी तो बच्चों के साथ पूरा परिवार-का-परिवार आ धमकता — सब के सब कट्टर पुरानपंथी, भौंहें चढ़ाए और आँखों में अविश्वास भरे, वोलगा के जंगलों में गुज़र करने वाले। मेरी नज़र बालकनी की छान-बीन करती और मैं देखता कि हाथ के कते-बुने मोटे कपड़ों और भेड़ की खालों से लदा-फदा एक भारी-भरकम पोट सामने से चला आ रहा है। वह धीरे-धीरे आ रहा था, मानो डरता हो कि कहीं ढह न जाए। मुझे बड़ा अटपटा मालूम होता। एकाएक उसके पास जाने और उसे अपनी दुकान में घसीट लाने का साहस नहीं होता। आख़िर, भारी उलझन के बाद, मैं उसके रास्ते में जम जाता और उसके खम्बों जैसे भारी-भरकम पावों के पास नाचता हुआ मच्छर की भांति भनभनाने लगता:

"कुछ लेना है, बाबा? सभी कुछ हमारे यहाँ है — धर्म की पोथियाँ, प्रार्थना की पुस्तकें, टीका-टिप्पणी और अर्थ सहित बाइबल के गीत, येफ़्रेम सिरिन और किरिल की बनाई हुई पुस्तकें। एक बार चल कर ज़रा देख न लो। और सभी तरह की देव-प्रतिमाएँ — सस्ती से सस्ती और महँगी से महँगी, इतनी बढ़िया कारीगरी कि कुछ न पूछो, और गहरे रंग जो कभी न छूटें। हम प्रतिमाएँ तैयार भी करते हैं। जो भी सन्त या मरियम तुम्हें पसन्द हो, हमसे बनवा लो। और देखो न, कुछ लोगों के अपने ख़ास सन्त

होते हैं जो उनकी या उनके परिवार की रक्षा करते हैं। तुम्हें तो किसी ऐसे सन्त की प्रतिमा नहीं बनवानी? हम तुरत बना देंगे। हमारा कारख़ाना समूचे रूस में बेजोड़ है। नगर में इससे बढ़िया दुकान ढूंढ नहीं मिलेगी!"

ग्राहक लोहे की अभेद्य दीवार की भांति खड़ा रहता और बुत बरोला-सा इस तरह मुझे घूर कर देखता मानो मैं कोई कुत्ता हूँ। इसके बाद, एकाएक भारी हाथ से वह मुझे धकियाता और बराबर वाली दुकान में घुस जाता। दुकान का मुंशी यह देखता, ग्राहक को हाथ से निकलते देख अपने छाज से कानों को मलता और गुस्से से भुनभुना उठता:

"क्यों, उसे निकल जाने दिया न? अच्छे चौपट दुकानदार हो तुम?"

और पास वाली दुकान से मुलायम तथा शहद में लिपटे शब्दों की वर्षा होने लगती:

"भगवान तुम्हारा भला करे, हम भेड़ों की खाल नहीं बेचते, न ही हम चमड़े के जूतों का धंधा करते हैं। हमारे यहाँ तो केवल दैवी न्यामतें हैं, जिनका न चांदी से मोल आँका जा सकता है न सोने से, वे अनमोल हैं, दुनिया की हर चीज़ उनके सामने हेच है...।"

दुकान का मुंशी सुनता और ईर्ष्या तथा प्रशंसा से कलाबत्तू बन जाता:

"देखो न कम्बख़्त को, भोले देहाती के कानों में क्या मीठा ज़हर उँडेल रहा है। ग्राहकों को ऐसे पटाया जाता है, समझे!"

ग्राहकों को पटाने की कला सीखने के लिए मैं जी जान से प्रयत्न करता। सोचता कि जब काम हाथ में लिया है तो उसे अच्छी तरह करना चाहिए। लेकिन ग्राहकों पर डोरे डालने और उनके माथे चीज़ें मढ़ने की दिशा में मेरी प्रतिभा ने मानो उजागर

होने से इन्कार कर दिया। तोबड़ा-चढ़े गुम्म-सुम्म देहातियों और चूहों की भांति खुदफुद करती, भय से त्रस्त तथा दीन चेहरे वाली बूढ़ी स्त्रियों को जब भी मैं देखता, मुझे उनपर बड़ा तरस आता, मेरा जी करता कि चुपके से उनके कानों में इन प्रतिमाओं का असल राज़ खोल दूँ ताकि गाढ़ी कमाई के जो दस-बीस कोपेक उनकी गांठ में पड़े हैं, वे उनके पास ही बने रहें। वे सब इतने फटे हाल, इतने ग़रीब और भूखे मालूम होते कि मैं चकरा जाता, और मेरी समझ में न आता कि बाइबल के गीतों की पुस्तक के लिए, जो सब से ज़्यादा बिकती थी, उनकी गांठ से साढ़े तीन रूबल कैसे निकल आते थे।

किताबों के बारे में उनकी परख और सराहना करने की क्षमता देख कर मैं दंग रह जाता। एक दिन सफ़ेद बालों वाला एक बूढ़ा आदमी आया। मैंने उसपर भी अपना मंत्र चलाना शुरू किया। मेरा भनभनाना सुनने के बाद बोला:

"नहीं, बेटा, तुम जो कहते हो वह सच नहीं है। यह ग़लत है कि रूस में सब से अच्छी प्रतिमाएँ तुम्हारे यहाँ बनती हैं। सब से अच्छी तो मास्को में रोगोजिन की वर्कशाप है।"

सकपका-कर मैं एक ओर हट जाता और वह पड़ौसी की दुकान को भी पार करता हुआ, आगे बढ़ जाता।

"क्यों, उसे जवाब तक नहीं दे सके,—एकदम सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई?" दुकान के मुंशी ने जल-भुन कर कहा।

"मैं क्या करता? तुमने तो रोगोजिन के बारे में कभी कुछ नहीं बताया।"

मुंशी झुंझलाहट उतारने लगा:

"देखने में कितना चुप्पा, और किस तरह गरदन झुकाए चलता था मानो कुछ जानता ही नहीं। लेकिन ऐसे लोग बड़े

सपोलिये होते हैं, दिन-भर इसी तरह ताक-झांक करते घूमते हैं, दुनिया-भर की बातें सुनते-बटोरते हैं, और फिर चटखारे ले लेकर सब की चिन्दियां उड़ाते हैं। इनसे खुदा ही बचाए!"

दुकान का मुंशी जो बाहर से चिकना-चुपड़ा और भीतर से खाली कारतूस की भांति खोखला तथा बनावट में सिर से पांव तक डूबा था, देहाती किसानों को नीची नज़र से देखता और उनसे चिढ़ता। एक दिन कहने लगा:

"भगवान ने मुझे बुद्धि दी है, मैं चतुर हूँ, साफ़-सुथरी चीज़ें और बढ़िया खुशबू मैं पसंद करता हूँ—अगरबत्तियाँ, गुलाबजल, तेल-फुलेल और इसी तरह की अन्य चीज़ें। अब तुम्हीं सोचो कि मेरी जैसी रुचिवाले आदमी को इन दहकानों के सामने झुकना और उनके तलुवे चाटना पड़ता है, और यह इसलिए कि मालकिन की जेब में दो-चार कोपेक पड़ जाएँ! मैं ही जानता हूँ कि मेरे दिल पर कैसी-क्या गुज़रती है। आखिर ये दहकान हैं क्या? मरी हुई लोमड़ी की खाल जिसमें कीड़े पड़ गए हैं, जो बुरी तरह गंधाती है। जूं की भांति रेंगने के लिए भगवान ने इन्हें धरती पर छोड़ दिया है। और मैं...।"

अन्त में परेशान हो कर वह खुद ही चुप हो जाता।

मुझे दहकान पसंद थे। उन्हें जब भी मैं देखता, मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे अपने भीतर कोई बहुत बड़ा रहस्य छिपाए हों, ठीक वैसे ही जैसे याकोव को देख कर मुझे अनुभव होता था।

भेड़ की खाल के ऊपर भारी लबादा लादे कोई एक दहकान लस्टम-पस्टम दुकान में चला आता। चिथड़ा हुई अपनी बालदार टोपी को वह सिर से उतारता, और देव-प्रतिमा के कोने में जल रहे दीये की लौ पर आँखें जमाए अपनी दो उँगलियों से क्रास का

चिन्ह बनाता। फिर बिक्री के लिए रखी देवत्वशून्य प्रतिमाओं से अपनी नज़र बचाते हुए वह तेज़ी से मुड़ कर कहता:

"मुझे बाइबल के गीतों की पुस्तक चाहिए, टीका-टिप्पणी सहित।"

इसके बाद अपने लबादे की आस्तीनें ऊपर चढ़ा कर, मुखपृष्ठ के अक्षरों के साथ वह देर तक सिर खपाता, और उसके फटे हुए मटियाले होंठ बिना कोई आवाज़ निकाले हरकतें करते रहते। अन्त में वह कहता:

"तुम्हारे पास इससे पुरानी प्रति भी तो होगी?"

"है क्यों नहीं, लेकिन पुरानी प्रतियाँ एक हज़ार रूबल से कम में नहीं मिलतीं,—तुम तो जानते ही हो।"

"हाँ, मैं जानता हूँ।"

फिर थूक से अपनी उँगली को नम कर वह पन्ना पलटता जिससे हाशिये पर मैली-कुचैली उँगलियों का काला धब्बा पड़ जाता। मुंशी मन-ही-मन उफनता और दहकान की खोपड़ी की ओर गुस्से से घूरता रहता। फिर कहता:

"धर्म ग्रंथों की उम्र में भी क्या कोई भेद-भाव होता है? पुराने हों चाहे नये, सब एक ही उम्र के होते हैं। खुदा अपने शब्दों को नहीं बदलता।"

"यह सब हम भी जानते हैं। खुदा अपने शब्दों को नहीं बदलता, लेकिन सुधार का दम भरने वाले निकोन* ने तो उन्हें बदल दिया न?"

---

*निकोन ज़ार अलेक्सी के शासन-काल में रूस का सबसे बड़ा पादरी था। उसने धर्मग्रंथों तथा देवमाला में संशोधन करने का बीड़ा उठाया था। कट्टर पुरानपंथी उसके विरुद्ध थे जो रासकोलनिकी (सनातनी) कहलाते थे।

और ग्राहक ग्रंथ को बन्द करते हुए, चुपचाप, दुकान से बाहर हो जाता।

बस्ती से दूर जंगलों के ये निवासी कभी-कभी दुकान के मुंशी से बहस करने लगते और मैं साफ़ देखता कि धर्मग्रंथों और पुरानी प्रतियों की जितनी ज़्यादा जानकारी उन्हें है, उतनी उसे नहीं।

"दलदल के कीड़े, ईंट-पत्थरों को पूजने वाले!" मुंशी बड़बड़ाता।

यह जानते और देखते हुए भी कि दहकान आधुनिक ग्रंथों को पसंद नहीं करता, मुझे लगता कि उसके हृदय में उनके प्रति भी श्रद्धा का भाव है, हालांकि उन्हें छूता हुआ वह कुछ सकपकाहट का अनुभव करता, मानो डरता हो कि कहीं वे उसके हाथ से पक्षी की भांति उड़ कर भाग न जाएँ। यह देख कर मुझे बड़ा आनन्द आता, कारण कि पुस्तकें मेरे लिए अद्भुत चीज़ थीं जिनमें उनके रचयिताओं की आत्माएँ बंद थीं। जब मैं उन्हें पढ़ता तो पन्नों में बंद उनकी आत्माएँ, मानो उन्मुक्त हो जातीं और रहस्यमय ढंग से मेरे साथ घुल-मिल जातीं।

अक्सर ऐसा होता कि ये बूढ़े पुरुष और स्त्रियाँ सुधारक निकोन के समय से भी पहले की पुरानी प्रतियाँ हमारे पास बेचने के लिए आते, या इस तरह की प्रतियों की केवल सूची लेकर आते। इरगीज़ या केर्जीनेत्स के भिक्षुओं के हाथ की लिखावट बहुत ही सुन्दर मालूम होती। वे सन्तों की जीवनी के मूल दिमीत्री रोस्तोवस्की द्वारा असंशोधित संस्करण की प्रतियाँ, प्राचीन देव-मूर्तियाँ, इनामेल चढ़े, तटवर्ती देशों के कारीगरों द्वारा बनाए गए पीतल के त्रिपाद और क्रास, मास्को के शाहों द्वारा सरायों और कहवाखानों के मालिकों को खुश होकर भेंट किए गए चांदी के चमचे आदि लेकर आते। इन सब चीज़ों को वे चोरी के माल की

भांति छिपा कर लाते और अगल-बगल कनखियों से देखते रहते कि कहीं किसी की नज़र तो नहीं पड़ रही है।

हमारी दुकान का मुंशी और पड़ौसी दुकानदार दोनों ही इस तरह के माल के लिए जीभ लपलपाते रहते और उन्हें कम दामों में हथियाने में एक-दूसरे को मात देने की कोशिश करते। प्राचीन से प्राचीन निधियों के लिए वे कभी दस रूबल से ज़्यादा नहीं देते और धनी पुरानपंथियों के हाथ उन्हें बेच कर खुद सैकड़ों रूबल झटकारते।

"देखना, कोई बूढ़ा शैतान या कोई बुढ़िया भुतनी नज़र बचा कर न निकल जाए," वह मुझसे कहता।—"ये कम्बख़्त अपने थैलों में नकद हुँडियाँ लिए घूमते हैं!"

जब भी कोई अच्छा सौदा सामने आता, वह मुझे सिद्धान्त-शास्त्री प्योत्र वसीलीयेविच के पास दौड़ाता कि उसे बुला लाओ। प्राचीन पुस्तकों, देव-प्रतिमाओं और इस तरह की अन्य चीज़ों का वह पक्का जानकार था।

वह एक लम्बे कद का बूढ़ा आदमी था। उसकी आँखों में समझदारी की चमक थी, चेहरे पर प्रसन्नता झलकती थी और उसकी लम्बी दाढ़ी देखकर सन्त वसीली का धोखा होता था। उसके एक पांव की उँगलियाँ, पूरा पंजा, गायब था और हमेशा लकड़ी का सहारा लेकर वह चलता था। गर्मी हो चाहे सर्दी, पादरी के लबादे की भांति वह हमेशा एक हल्का कोट और सिर पर मखमल की तसलेनुमा टोपी पहने रहता था। आम तौर से जब वह चलता तो काफ़ी सीधा-सतर और फुर्तीला मालूम होता, लेकिन दुकान में पाँव रखते ही वह अपने कंधे ढीले छोड़ देता, हल्की सी आह भरता और पुरानपंथियों के रिवाज के अनुसार दो उँगलियों से क्रास का चिन्ह बनाता, मुँह से प्रार्थना और धर्म गीतों के शब्द बुदबुदाता।

बुढ़ापे और धार्मिकता की यह नुमाइश दुर्लभ चीज़ें बेचनेवालों के हृदयों में भय और विश्वास का संचार करती।

"कहो, किस काम के लिए बुलाया था मुझे?" बूढ़ा कहता।

"यह आदमी एक प्रतिमा लाया है, और कहता है कि यह स्त्रोगानोव प्रतिमा है।"

"क्या-आ-आ-आ?"

"स्त्रोगानोव प्रतिमा।"

"मुझे कुछ कम सुनाई देता है, और यह अच्छा ही है। भगवान ने मुझे बहरा बना कर उस झूठ और पाखंड को सुनने से बचा लिया जिसे निकोन के चेले-चाटी फैला रहे हैं।"

वह अपनी टोपी उतार कर रख देता, और प्रतिमा को दोनों हाथों में आड़ा उठा कर उसके रंग की परतों का मुआयना करता, फिर अगल-बगल से उलट-पलट कर देखता और उसके जोड़ों पर नज़र डालता। साथ ही, आँखें सिकोड़े, बुदबुदाता भी जाता:

"निकोन के ये चेले-चाटी न ईश्वर की परवाह करते हैं, न दीन-ईमान की, लेकिन जब इन्होंने देखा कि लोगों पर प्राचीन कारीगरी का असर है, वे उसे पसंद करते हैं, तो शैतान ने उन्हें कुरेदा और उन्होंने देव-प्रतिमाओं की झूठी और विकृत नक़लें उतरवाना शुरू कर दीं। और यह काम इतनी अद्‌भुत होशियारी से आजकल किया जा रहा है कि एक बार अगर खुद ईश्वर भी देखे तो धोखा खा जाए। पहली नज़र में यही मालूम होता है मानो यह असली स्त्रोगानोव या उस्तयुग प्रतिमा है। इतना ही नहीं, बल्कि वे सुज़्दाल प्रतिमाओं तक की इतनी सच्ची नक़्ल उतारते हैं कि असल का धोखा होने लगता है। लेकिन भीतरी नज़र से देखने पर तुरत सारा भेद खुल जाता है, साफ़ मालूम हो जाता है कि यह झूठी और विकृत नक़्ल है!"

जब वह किसी प्रतिमा को 'झूठी और विकृत' कहता तो इसका अर्थ सिवा इसके और कुछ न होता कि वह एक दुर्लभ और कीमती चीज़ है। इस तरह के शब्दों की एक बाक़ायदा फेहरिस्त उन्होंने बना रखी थी जिससे मुंशी को पता चल जाता कि किस चीज़ का कितना दाम उसे लगाना चाहिए। मैं जानता था कि 'शोक और निराशा' शब्दों के प्रयोग का अर्थ है कि दस रूबल से ज़्यादा नहीं देने चाहिए। इसी प्रकार 'निकोन शेर' का अर्थ था कि पच्चीस रूबल तक दाम दिए जा सकते हैं। बेचने वाले को इस तरह धोखा देना बड़ा शर्मनाक मालूम होता, लेकिन बूढ़ा इतनी चालाकी से यह खेल खेलता कि हृदय में कौतुक का भाव लिए मैं उसे देखता ही रह जाता।

"निकोन के चेले-चाटी, निकोन शेर के ये चपड़ कनाती, शैतान की पाठशाला में पढ़े हुए हैं और इतनी चालाकी से काम लेते हैं कि पकड़ना मुश्किल। मिसाल के लिए इसे ही देखो, कौन कह सकता है कि इस प्रतिमा का आधार सच्चा नहीं है, अथवा यह कि इसके कपड़ों पर उन्हीं हाथों ने रंग नहीं किया है? मगर ज़रा चेहरे को तो देखो—यह दूसरी ही कूची से बनाया गया है। साइमन उशकोव जैसे पुराने उस्ताद,—आस्तिक या ईश्वर द्रोही चाहे कुछ भी वे क्यों न हों,—समूची छवि को खुद ही रंगते थे। उसके कपड़े भी वे अपने ही हाथों से रंगते थे, और उसका चेहरा भी, यहाँ तक कि उसका आधार भी वे खुद ही रंगते-चुनते थे। लेकिन हमारे आज के ये टकियल चेले-चाटी तो टें बोल गए हैं। इनके बस का कुछ नहीं है। एक ज़माना था जब प्रतिमाएँ तैयार करना ईश्वर की सेवा करना था। लेकिन आज तो वह पेट भरने का एक धंधा बन गया है।"

अन्त में वह प्रतिमा को काउण्टर पर खड़ी कर देता, और टोपी को सिर पर रखते हुए कहता:

"ख़ुदा इन पापियों को कभी माफ़ नहीं करेगा।"

इसका मतलब था: आँखें बन्द कर के ख़रीद लो!

सिद्धान्तशास्त्री के सरपट शब्दों से अभिभूत होकर और उसकी जानकारी के रौब में आकर बेचनेवाला श्रद्धा से पूछता:

"तो इस प्रतिमा के बारे में क्या राय है, बाबा?"

"यह निकोन के चेले-चांटियों की कृति है।"

"लेकिन यह हो कैसे सकता है? हमारे दादा-परदादा, बल्कि लकड़दादा के वक्तों की यह प्रतिमा है। वे सब इसीकी पूजा-प्रार्थना किया करते थे।"

"इससे क्या हुआ? निकोन तुम्हारे लकड़दादा से भी पहले हुआ था।"

इसके बाद बूढ़ा देव-प्रतिमा को फिर अपने हाथों में उठाता और उसे बेचने वाले के मुँह के सामने ले जाते हुए प्रभावशाली आवाज़ में कहता:

"देखते हो, कितनी तड़क-भड़क और रंगीनी है इसमें? क्या देव-प्रतिमाएँ भी कभी इतनी रंगीन होती हैं? यह तो निरी सजावटी चीज़ है, वासना में डूबी कला, निकोन के चेले-चाटियों की लालसाओं का मूर्त रूप। ऐसी कृति में आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं होती! क्या तुम समझते हो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ? मेरे बाल पक कर सफ़ेद हो गए हैं। दीन-ईमान के पीछे न जाने कितनी यंत्रणाएँ मैंने सही हैं? दो दिन बाद खुदा के दरबार में मुझे हाज़िर होना है। तुम्हीं बताओ, ऐसी हालत में अपनी आत्मा को बेचने से मेरे पल्ले क्या पड़ेगा?"

बुढ़ापे के बोझ से डगमगाता, कांखता और कराहता, दुकान

से वह बालकनी में आ जाता, और ऐसा दिखाता मानो उसकी बातों पर अविश्वास प्रकट करके उन्होंने उसके हृदय को घायल कर दिया है। मुंशी कुछ रूबल देकर प्रतिमा खरीद लेता और बेचने वाला दुकान से बिदा लेता, प्योत्र वसीलीयेविच की ओर मुड़ते हुए खूब झुक कर अभिवादन करता और अपना रास्ता पकड़ता। इसके बाद मुझे दौड़ाया जाता कि कहवेखाने से खौलता हुआ पानी ले आओ। लौटने पर मैं देखता कि बूढ़े का चेहरा खिला हुआ है, बुढ़ापे का कांखना-कराहना गायब हो गया है, और वह एक बार फिर प्रसन्न तथा फुर्तीला बन गया है। ख़रीदी हुई प्रतिमा को वह चाव से देखता और मुंशी से कहता:

"देखो न, इसके रंगों में कितनी सफ़ाई और सादगी झलकती है, प्रत्येक रेखा में खुदा का भय और उसके प्रति सम्मान झलकता है—वासना या अन्य किसी दुनिया की भावना का लेश मात्र भी नहीं दिखाई देता...।"

मुंशी की आँखें चमकने और उसका रोम-रोम थिरकने लगता। खुशी से उछलता हुआ पूछता:

"यह किस कारीगर के हाथों का चमत्कार है?"

"तुम अभी बच्चे हो। यह सब जान कर क्या करोगे?"

"अगर कोई कद्र करने वाला हो तो इसके लिए उससे क्या कुछ झपटा जा सकता है?"

"यह बताना मुश्किल है। दो-चार लोगों को दिखाकर मालूम करूँगा...।"

"आह, प्योत्र वासीलीयेविच...।"

"और अगर खरीदार मिल गया तो पचास रूबल तुम्हरे और इससे जो भी अधिक होगा वह मेरा।"

"आह...।"

"क्यों, इस में आह् करने की क्या बात है?"

वे चाय पीते, पूरी बेशर्मी से सौदेबाज़ी करते और मक्कारी भरी नज़रों से एक-दूसरे का जायज़ा लेते। साफ़ मालूम होता कि मुंशी का पलड़ा बेहद कमज़ोर है, बूढ़े के सामने उसकी एक नहीं चल सकती। जब बूढ़ा चला जाता तो मुंशी कहता:

"देखो, तुम अपनी ज़बान बंद रखना। मालकिन के कानों में इस सौदे की भनक तक नहीं पड़नी चाहिए, — समझे!"

प्रतिमा को बेचने के बारे में जब सब कुछ तय हो जाता तो मुंशी कहता:

"और सुनाओ, प्योत्र वसीलीयेविच, नगर में और क्या-कुछ हो रहा है, कोई नयी खैर-खबर?"

बूढ़ा पीले हाथ से अपनी दाढ़ी सहलाता, तेल-चुपड़े-से उसके होंठ दिखाई देने लगते और वह धनी सौदागरों की ज़िन्दगी, व्यापार करने के उनके कारगर हथकण्डों, बीमारी-चकारियों, व्याह-शादियों, रास-रंग और ऐयाशियों, पति को उल्लू बनाने वाली पत्नियों और पत्नियों को चकमा देने वाले पतियों के किस्से बयान करता। कुशल बावर्चियों की भांति वह इन कहानियों में बघार लगाता और बढ़िया पकवान की भांति, अपनी फुसफुसी हँसी की चाशनी चढ़ा कर, फुर्ती से उन्हें परोसता। मुंशी के गोल चेहरे पर रश्क और ईर्ष्या की लाली दौड़ जाती, और उसकी आँखों में सपने तैरने लगते। आह भर कर वह कहता:

"कितना रास-रंग है उनके जीवन में, और एक मैं हूँ कि...।"

"जैसा जिसका भाग्य," बूढ़ा बमकता, — "एक भाग्य वह है जिसे खुद फरिश्ते चांदी की नन्हीं-नन्हीं हथौड़ियों से गढ़ते हैं, और दूसरा वह जिसे शैतान अपनी कुल्हाड़ी की खुट्टल नोक से गढ़ता है।"

कड़ियल और मज़बूत मांस-पेशियों वाला वह बूढ़ा मानो चलता-फिरता अख़बार था और हर चीज़ की ख़बर रखता था: समूचे नगर का जीवन, सौदागरों के गुप्त से गुप्त भेद, दफ़्तरों के बाबुओं, पादरियों और कारीगर पेशा लोगों की छिपी-ढंकी बातें, सभी कुछ उसे मालूम था। उसकी नज़र गिद्ध की भांति तेज़ थी, भेड़िये और लोमड़ी का अंश उसके रक्त में मिला हुआ था। उसे कोचने के लिए मेरा जी सदा ललकता, लेकिन आँखें सिकोड़ कर कुछ इस धुंधले अन्दाज़ से वह मेरी ओर देखता कि मैं निरस्त्र हो जाता। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वह चारों ओर गहरी खाई से घिरा था जो निकट आने का दुस्साहस करने वाले हर व्यक्ति को निगल जाने के लिए मुँह बाए थी, और मुझे लगता कि कोयला झोंकने वाला खलासी याकोव शूमोव और वह मानो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इन दोनों में मुझे एक अजीब समानता का अनुभव होता।

मुंशी बूढ़े की चतुराई का कायल था और मुग्धभाव से उसे दाद देता था। बूढ़े के मुँह पर ही नहीं, उसकी पीठ पीछे भी वह उसकी तारीफ़ करता। लेकिन कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते जब वह बूढ़े को कोचने और उसकी पगड़ी उछालने के लिए ललक उठता।

एक दिन, चित्त कर देने वाली नजर से बूढ़े की ओर देखते हुए, कहने लगा:

"लोगों की आँखों में धूल झोंकना और उन्हें धोखा देना कोई तुमसे सीखे!"

"केवल खुदा ही ऐसा है जो कभी लोगों को धोखा नहीं देता," अलस भाव से हँसते हुए वह जवाब देता।—"बाकी सब उल्लुओं की भांति जीवन बिताते हैं। अगर तुम उल्लुओं को उल्लू नहीं बना सकते तो और क्या उनका अचार डालोगे?"

मुंशी गुस्से का दामन पकड़ता।

"सभी दहकान उल्लू नहीं होते। व्यापारी लोग क्या आसमान से टपकते हैं? वे भी तो इन्हीं दहकानों के बीच से आते हैं।"

"उन दहकानों की बात छोड़ो जो व्यापारी बन गए हैं। ठगने के लिए जितने बड़े दिमाग़ की ज़रूरत है, वह उल्लू दहकानों के पास कहाँ से आ गया? वे तो निरे बुद्धू — बिना दिमाग़ के सन्त — होते हैं।"

लनतरानी के अन्दाज़ में शब्दों की वह इतने निश्चल भाव से कुल्लियाँ करता कि तबीयत बुरी तरह झुंझला उठती। ऐसा मालूम होता मानो वह मिट्टी के एक सूखे ढूह पर खड़ा हो और उसके चारों ओर दलदल फैली हो। उसे परेशान करना या चिढ़ाना असम्भव था। या तो गुस्सा उसके हृदय को छूता नहीं था, या गुस्सा छिपाने की कला में उसे कमाल हासिल था।

बहुधा वह खुद चिढ़ाना शुरू करता। अपनी थूथनी को मेरे नज़दीक लाकर वह अपनी दाढ़ी के भीतर ही भीतर हँसता और कहता :

"हाँ तो फ़्रांस के उस लेखक का जाने क्या भला-सा नाम बताया था तुमने — पोस्तीन?"

वह कुछ इस अन्दाज़ से नामों को तोड़ता-मरोड़ता कि मैं भन्ना उठता, लेकिन मैं अपने को संभाल लेता और कहता :

"पौनसोन-द-तैरेल।"

"किधर तैरा?"

"तुम बच्चे नहीं हो। शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उनके साथ खिलवाड़ न करो।"

"ठीक कहते हो। भला मुझे बच्चा कौन कहेगा? तुम्हारे हाथ में यह कौनसी पुस्तक है?"

"येफ़्रेम सिरिन की पुस्तक है।"

"कौन ज़्यादा अच्छा लिखता है — वह या यह किस्सा-कहानी गढ़ने वाले?"

मैं कोई जवाब न देता। वह फिर पूछता:

"ये कहानी-किस्सा वाले ज़्यादातर क्या लिखते हैं?"

"उन सभी चीज़ों के बारे में जो दुनिया में मौजूद हैं।"

"कुत्तों और घोड़ों के बारे में? ये भी तो इस दुनिया में मौजूद हैं।"

मुंशी के पेट में बल पड़ जाते और मैं भीतर ही भीतर उफनता। मेरे लिए वहाँ बैठे रहना असम्भव हो जाता, और जैसे ही मैं खिसकना शुरू करता मुंशी चिल्ला उठता:

"किधर चले? बैठो यहीं पर!"

बूढ़ा मुझे कुरेदना जारी रखता:

"तुम्हें अपने लम्बे दिमाग़ पर गर्व है। ज़रा यह पहेली तो बुझाओ। तुम्हारे सामने एक हज़ार लोग खड़े हैं, एकदम मादरज़ात नंगे। पाँच सौ मर्द, और पाँच सौ स्त्रियाँ। और उन्हीं के बीच आदम और हौवा छिपे हैं। बोलो, उन्हें तुम कैसे पहचानोगे?"

कुछ देर मेरा सिर चकराने के बाद अन्त में वह विजयी अन्दाज़ से कहता:

"बेवक़ूफ़ की दुम, उन्हें खुद खुदा ने अपने हाथों से गढ़ा था, किसी स्त्री के पेट से वे पैदा नहीं हुए थे। इसका मतलब यह कि उनके बदन में नाफ की घुंडी नहीं हो सकती।"

बूढ़ा इस तरह की अनगिनती पहेलियों की खान था और मुझे परेशान करने के लिए उन्हें पेश करता रहता था।

दुकान पर आने के बाद, शुरू-शुरू में, अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों के कुछ किस्से मैंने मुंशी को सुनाए थे। वे किस्से अब मेरे जी का जंजाल बन गए। हुआ यह कि अपनी ओर से मनमाना नमक-मिर्च

लगा कर तथा खूब गंदा बना कर मुंशी उन किस्सों को प्योत्र वसीलीयेविच को सुनाता। बूढ़ा खोद-खोद कर घिनौने सवाल करता और उसे उकसाता। नतीजा इसका यह कि अपनी गंदी ज़ुबान से वे मेरे प्रिय पात्रों—युजेनी ग्रांडे, लुदमिला और हैनरी चतुर्थ की खूब छीछालेदर करते।

मैं यह जानता था कि किसी कुत्सित इरादे से नहीं, बल्कि दो घड़ी दिल बहलाने या जीवन की ऊब कम करने के लिए वे ऐसा करते थे, फिर भी मुझे बड़ा बुरा मालूम होता और उनका ऐसा करना मेरे लिए असह्य हो उठता। वे सूअरों की भांति अपनी ही पैदा की हुई कीचड़ में लोटते और सुन्दर कृतियों को कीचड़ में लथेड़ कर खुश होते, इसमें उन्हें आनन्द आता। किसी चीज़ का सुन्दर और असाधारण होना ही उनके लिए काफ़ी था। ऐसी चीज़ उन्हें अजीब, समझ में न आनेवाली और इसी लिए हास्यास्पद मालूम होती, और वे उसकी खिल्ली उड़ाते।

अगल-बगल के सभी दुकानदार और व्यापारी निराले ढंग का जीवन बिताते थे। उन्हें बड़ा मज़ा आता जब वे किसी को बनाते। उनके मज़ाक बहुत ही बेहूदा, बचकाना और कुत्सापूर्ण होते। अगर कोई दहकान पहली बार नगर में आता और किसी जगह का रास्ता पूछता तो वे अदबदा कर उसे उलटा रास्ता बताते। लेकिन, यह मज़ाक इतना घिसपिट गया था कि उसमें अब उन्हें कोई रस नहीं मिलता था। नये मज़ाकों का अब आविष्कार हो रहा था। सौदागर दो चूहों को पकड़ते, उनकी दुमों को एक-दूसरे से बांध देते, इसके बाद अलग खड़े होकर उन्हें दाँत-पंजे चलाते और विरोधी दिशाओं में एक-दूसरे को खींचते हुए देखते। कभी-कभी वे उनके ऊपर मिट्टी का तेल उँडेल कर दियासलाई भी दिखा देते। या वे कुत्ते की दुम में टीन बांध देते, कुत्ता घबरा कर जीभ नि-

काले भागता। पीछे से टीन खड़खड़ करता, और लोग हँसी के मारे दोहरे हो जाते।

इस तरह, आए दिन, वे कोई न कोई तमाशा करते रहते। ऐसा मालूम होता कि हर व्यक्ति—और ख़ास तौर से गाँव से आने वाले किसान—मानो बाज़ारवालों का दिल बहलाव करने के लिए ही पैदा हुए हैं। सौदागर और उनके कर्मचारी इस बात की ताक में रहते कि कोई आए और उसका मज़ाक बनाया जाए या उसे छेड़ा और नोंचा-खरोंचा जाए,—जैसे भी हो, उसे परेशान किया जाए और उसे रुला कर खुद हँसा जाए। और सब से अजीब बात तो यह थी कि जो पुस्तकें मैं पढ़ता था, उनमें इन सब चीज़ों का कोई ज़िक्र नहीं होता था।

बाज़ार की इन घटनाओं में से एक मुझे खास तौर से घिनौनी मालूम हुई।

हमारी दुकान के नीचे ऊन और नमदों की दुकान थी। इस दुकान का कर्मचारी इतना अधिक खाता था कि इस छोर से लेकर उस छोर तक समूचे बाज़ार में प्रसिद्ध था। दुकान का मालिक अपने कर्मचारी की भोजन चट करने की अद्‌भुत क्षमता का उतनी ही शेखी और गर्व के साथ ऐलान करता जितने गर्व के साथ लोग अपने शिकारी कुत्तों की खूंख्वारी या अपने घोड़ों की ताकत का बखान करते हैं। अक्सर अपने पड़ौसियों से वह शर्त तक बदता:

"बोलो, है कोई दस रूबल लगाने को तैयार? मेरा दावा है कि मीशा पाँच सेर माँस दो घंटे के भीतर चट कर जाएगा।"

सभी जानते थे कि मीशा पाँच सेर माँस चट कर जाएगा। यह इसके लिए मुश्किल नहीं है। बोले:

"शर्त तो हम नहीं बदते। लेकिन माँस हम अपनी जेब से ख़रीद देंगे। वह खाना शुरू करे, और हम तमाशा देखेंगे।"

"लेकिन पाँच सेर माँस ही माँस होना चाहिए, कहीं हड्डियाँ न उठा लाना, — समझे!"

कुछ देर बहस होती रही, मसले को उलट-पलट कर देखा गया, अन्त में अंधेरे गोदाम में से एक दुबला-पतला आदमी प्रकट हुआ। उसका चेहरा सफ़ाचट था, जबड़े की हड्डियाँ उभड़ी हुई थीं। वह एक लम्बा कोट पहने और कमर में लाल पटका कसे हुए था। आगे और पीछे, अगल और बगल, कोट में ऊन के गुच्छे बुरी तरह लिपटे हुए थे। उसका छोटा-सा सिर था जिस पर वह टोपी पहने थे। सम्मान के साथ उसने अपनी टोपी उतारी और अपने मालिक के गोल, माँसल तथा घास की भांति दाढ़ी उगे चेहरे की ओर धुंधली-सी आँखों से देखा।

मालिक ने पूछा:

"इस माँस को हज़म कर सकते हो?"

"कितनी देर में?" पतली और काम-काजी आवाज़ में मीशा ने सवाल किया।

"दो घंटे में।"

"मुश्किल है।"

"मुश्किल है — और तुम्हारे लिए?"

"बीयर के बिना नहीं चलेगा। वह और होनी चाहिए।"

"अच्छी बात है, शुरू करो!" मालिक ने कहा और फिर अपने पड़ौसियों की ओर मुड़ कर शेखी बघारते हुए बोला: "यह न समझना कि इसका पेट खाली है! अरे नहीं, एक सेर पाव रोटी तो इसने आज सवेरे ही नाश्ते में चट की, इसके बाद खूब छक कर दोपहर का भोजन किया!"

माँस लाकर उसके सामने रख दिया गया, दर्शकों की एक भीड़ इर्द-गिर्द जमा हो गई। ये सब के सब सौदागर और व्यापारी

थे। जाड़ों का भारी लबादा लादे थे और कमर में पटका कसे थे। ऐसा मालूम होता था मानो वे ऊनी कम्बलों में लिपटे हुए भारी पोट हों। उनकी तोंदें निकली हुई थीं, बेरस छोटी-छोटी आँखें, चुंधी सी, गालों की चर्बी में धंसी हुई झांक रही थीं।

हाथों को अपनी आस्तीनों में खोंसे, कसकर घेरा बनाए, वे मीशा के चारों ओर खड़े थे। हाथ में एक चाकू और राय की एक बड़ी सी पाव रोटी लिए मीशा भी तैयार था। तेज़ी से, जल्दी-जल्दी कई बार क्रास का चिन्ह बनाने के बाद, वह ऊन के एक ढेर पर बैठ गया। माँस के लोथड़े को उसने एक पेटी पर रख लिया और कोरी आँखों से उसे अन्दाज़ने लगा।

इसके बाद उसने पाव रोटी में से एक पतला-सा टुकड़ा तराशा, फिर माँस का मोटा-सा टुकड़ा काट कर बड़ी सफ़ाई से एक को दूसरे के ऊपर रखा और दोनों हाथों से उन्हें पकड़ कर अपने मुँह तक ले गया। कुत्ते की भांति उसकी लम्बी जीभ बाहर निकली, काँपते हुए अपने होंठों को चाट कर उसने साफ़ किया, उसके छोटे-छोटे तेज़ दाँतों की एक झलक दिखाई दी। फिर, कुत्ते की ही भांति, माँस को उसने अपने जबड़ों में दबोच लिया।

"अरे इसने थूथनी चलाना शुरू कर दिया!"

"घड़ी देख कर समय नोट कर लो!"

सबकी आँखें उसके चेहरे, चप-चप की आवाज़ करते उसके जबड़ों, कानों के पास उभर आने वाली गुल्लियों, और समगति से उठने और गिरने वाली उसकी नुकीली ठोड़ी पर जमी थीं। रह-रह कर वे आपस में टिप्पणियाँ भी करते जाते थे:

"मुँह तो देखो कैसे भालू की भांति चल रहा है!"

"कभी देखा भी है भालू को मुँह चलाते हुए?"

"मैं क्या जंगल में रहता हूँ? यह तो एक कहावत है: भालू की भांति मुँह चलाना।"

"नहीं, कहावत यह नहीं है। कहावत है: सूअर की भांति मुँह मारना।"

"सूअर क्या सूअर का माँस खाते हैं?"

सब हँसने लगे, इस तरह मानो हँसना ज़रूरी था,—एकदम उल्लासहीन हँसी। तभी कोई लाल बुझक्कड़ बोला:

"सूअर सभी कुछ खा सकता है—चाहे उसके अपने बच्चे-कच्चे या भाई-बहन ही क्यों न हों।"

देखते-देखते मीशा का चेहरा लाल हो गया, कान नीले पड़ गए। उसके दीदे कोटरों से बाहर झांकने लगे, और उसकी साँस बाजा-सी बजाने लगी। लेकिन उसका मुँह था कि लगी-बंधी रफ़्तार से चल रहा था, जबड़ा समगति से ऊपर-नीचे उठ-गिर रहा था।

"जल्दी करो मीशा, तुम्हारा समय ख़त्म हुआ जा रहा है!" वे उसे उकसाते। बाक़ी माँस को वह बेचैनी से अन्दाज़ता, बीयर का घूंट चढ़ाता और जबड़े चलाना जारी रखता। दर्शकों की उत्तेजना बढ़ती जाती, उचक-उचक कर और लम्बी गरदनें करके वे मीशा के मालिक के हाथ में बंधी घड़ी पर नज़र डालते, और एक-दूसरे को चेताते हुए कहते:

"इस बात का ध्यान रखना कि कहीं वह घड़ी की सुई को पीछे न कर दे। अच्छा यह हो कि घड़ी इसके हाथ से ले ली जाए!"

"मीशा पर भी नज़र रखना। नहीं तो आँख बचा कर वह माँस अपनी आस्तीन में छिपा लेगा!"

"देख लेना, समय के भीतर वह कभी इसे ख़त्म नहीं कर सकता!"

"मैं अब भी पच्चीस रूबल की शर्त बदने के लिए तैयार हूँ!" मीशा के मालिक ने आवेश में आकर कहा।—"मीशा, मुझे नीचा न दिखाना!"

उकसावा और बढ़ावा देने के लिए दर्शक चिल्लाए तो बहुत, लेकिन शर्त बदने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

मीशा का जबड़ा चलता रहा, एक क्षण के लिए नहीं रुका, चला सो बराबर चलता ही रहा। उसका चेहरा भी माँस जैसा ही बन गया, उसका चेहरा और माँस दोनों एकाकार हो गए। उसकी नुकीली दर्रेदार नाक ख़तरे की सीटी बजाने लगी। उसे देख कर डर मालूम होता, लगता कि उसके चीख उठने में अब देर नहीं है। किसी भी क्षण उसके मुँह से आवाज़ निकल सकती है:

"मुझपर रहम करो!"

या फिर, माँस के गले तक अट जाने के कारण वह दर्शकों के सामने ही ढेर हो जाएगा, और उसकी जान निकल जाएगी।

आखिर उसने सारा माँस ख़त्म कर दिया। दीदे टेरते हुए दर्शकों की ओर उसने देखा, और हांफता हुआ सा बोला:

"पीने के लिए कुछ दो!"

उसके मालिक ने घड़ी पर नज़र डाली और बड़बड़ा उठा:

"चार मिनट ऊपर हो गए, कुत्ते की दुम।"

"चूक गए, अगर शर्त बद ली होती बड़ा मज़ा आता," दर्शकों ने चिढ़ाना शुरू किया।—"तुम सोलहों आना चित्त हो जाते।"

"लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि है यह पूरा सांड!"

"इसे तो किसी सरकस में भर्ती हो जाना चाहिए।"

"खुदा भी कभी-कभी बड़े अजूबे तैयार करता है!"

"इस वक़्त अगर चाय भी हो जाए तो क्या हर्ज है?"

और वे सब, नदी में तैरते हुए डोंगों की भांति, कहवेखाने की ओर चल देते।

मेरी समझ में न आता कि क्या बात है जो गंभीर और भारी-भरकम ये लोग एक बेहाल जीव के चारों ओर इस तरह जमा हो जाते हैं मानो वह कोई तमाशा हो, और फिर किसी को घिनौनेपन के साथ ठूंस-ठूंस कर खाते हुए देखने में उन्हें क्या मजा मिलता है?"

बाज़ार की अंधेरी और उदास गैलरी ऊन की गाँठों, भेड़ की खालों, सन, रस्सों, ऊन के जूतों और काठियों से अटी थी। समय की मार से जर्जर और सड़क की धूल-कीचड़ से काले पड़े ईंटों के मोटे-मोटे बदनुमा खम्बे गैलरी और पक्की पगडंडी के बीच सीमा-रेखा का काम देते। रोज़, हर घड़ी, इन खम्बों पर मेरी नज़र पड़ती और मुझे ऐसा मालूम होता मानो उनकी एक-एक ईंट और एक-एक दरार को हज़ारों बार मैंने गिना और देखा-भला है, यहाँ तक कि उनका समूचा बदनुमा ढाँचा, भोंडी बनावट और दाग-धब्बों का आल-जाल, मेरी स्मृति में खूब गहरे उतर कर पूरी तरह से नक्श हो गया है।

पक्की पगडंडी पर लोग अलस भाव से आते जाते, और उतने ही अलस भाव से माल से लदे ठेले और इज़वोज़चिकी गाड़ियाँ सड़क पर से गुज़रतीं। सड़क के आख़िरी छोर पर बीच में एक चौक के इर्द-गिर्द लाल ईंटों की दो मंज़िला दुकानें बनी थीं। यहाँ, ज़मीन पर, माल भरने की पेटियाँ, भूसा और बण्डल बांधने के कागज़, गंदी बर्फ़ में रौंदे हुए सब गड्ड-मड्ड पड़े थे।

निरन्तर और हर घड़ी की इस हलचल के बावजूद ऐसा मालूम होता मानो यहाँ सब,—मय लोगों और घोड़ों के,—

निश्चल और स्थिर है, किसी अदृश्य जंजीर से बंधे कोल्हू के बैल की भांति सब एक ही जगह पर चक्कर लगा रहे हैं। मुझे लगता कि ध्वनियों की निर्धनता ने जीवन को इतना पस्त बना दिया है कि इसे गूंगों-बहरों की पाँत में रखा जा सकता है। बर्फ़ की गाड़ियों के दौड़ने की आवाज़ें आतीं, दुकानों के दरवाज़े झनझनाते और खटपट करते, पाव रोटी और बिस्कुट बेचने वाले चिल्लाते, लेकिन आदमियों की आवाज़ें इतनी बेरस, जीवन शून्य और एक-जैसी होतीं कि कान शीघ्र ही उनकी ओर ध्यान देना बंद कर देते, उनका होना या न होना बराबर हो जाता।

गिरजे की घंटियाँ इस तरह बजतीं मानो मातम मना रही हों। उनकी भयानक आवाज़ मेरे रोम-रोम में सरसराती और ऐसा मालूम होता कि उससे उम्र-भर पीछा नहीं छूटेगा। घंटियों की आवाज़ सुबह से लेकर रात तक बाज़ार के वायुमण्डल में मंडराती रहती, दिल व दिमाग़ में घुस कर हर विचार और हर भावना से चिपक जाती, और हर चीज़ पर धातु कणों की एक धूल सी जम जाती।

जानलेवा ठंडी उदासी तथा ऊब को गहरा बनाने में हर चीज़ हाथ बंटाती — गंदी बर्फ़ का कम्बल ओढ़े धरती, छतों पर जमा भूरे बर्फ़ के ढेर, इमारतों और दुकानों की माँस-ऐसी लाल ईंटें उदासी को बढ़ाने में सभी एक-दूसरे से होड़ लेती प्रतीत होतीं। चिमनियों से निकलने वाला भूरा धुवाँ भी इसी उदासी से कसमसाता और नीचे लटक आए भूरे सूने आकाश में रेंगने लगता। घोड़ों की पसलियों और लोगों के नथुनों में भी इसी उदासी की धौंकनी चलती। एक अजीब गंध — पसीने, चर्बी, धुवें, तेल और चिकनाई में डूबे पकौड़ों की बेरस और बोझिल गंध से यह उदासी सराबोर होती। ऐसा मालूम होता जैसे किसी ने दिमाग़ को ऊनी

पट्टी से कस कर जकड़ दिया हो। एक-एक रेशे में वह प्रवेश करती और दिमाग़ पर एक तरह का पागलपन-सा सवार हो जाता। जी करता कि आँखें बंद कर लो, अपनी पूरी ताकत से दहाड़ो और सिर को पत्थर की पहली दीवार से टकरा कर चकनाचूर कर दो।

सौदागरों के चेहरों को मैं अक्सर बड़े ध्यान से देखता — अति तृप्त, बढ़िया खून की लाली से दमकते, पाला-काटे, और इस प्रकार निश्चल मानो नींद में डूबे हुए हों। रह-रह कर वे जमुहाइयाँ लेते और सूखे तट पर पड़ी हुई मछली की भांति उसके मुँह भट्टा-से खुल जाते।

जाड़ों में बाजार ठंडा रहता और वह सजग हिसाब-किताबी चमक भी सौदागरों की आँखों से गायब हो जाती जो गर्मियों में उनकी आँखों में दौड़ती रहती थी और उन्हें पूरी तरह से अपने रंग में रंग लेती थी। भारी लबादा अब हाथ-पाँव हिलाने में बाधक होता और वे धरती के साथ जाम हो जाते। अलसाहट में वे बातें करते, लेकिन जब झुंझला उठते तो एक-दूसरे को खूब लम्बी झाड़ पिलाने से भी न चूकते। मुझे ऐसा मालूम होता कि वे जान-बूझकर इस तरह गुल-गपाड़ा मचाते हैं — एक-दूसरे को जताने के लिए कि वे ज़िन्दा हैं, उनकी रगों का खून ठंडा नहीं पड़ गया है।

लेकिन, इन सब बातों के बावजूद, साफ़ मालूम होता कि सभी कुछ चट कर जाने वाली उदासी उन्हें खोखला बना रही है, भीतर और बाहर से उन्हें ख़त्म कर रही है। उससे बचने या उसे आँखों की ओट करने के लिए वे हाथ-पांव पटकते, क्रूर और बेमानी हरकतों और मन बहलाव का सहारा लेते। मुझे लगता कि उनके ये प्रयत्न उस आदमी के प्रयत्नों की भांति हैं जो डूबने से

बचने के लिए तिनके का सहारा पकड़ना चाहता है, इसके लिए आखिरी बार हाथ-पाँव पटकता है।

कभी-कभी प्योत्र वसीलीयेविच से मैं इसका ज़िक्र करता। यों ताने-तिश्ने कसने और मुझे चिढ़ाने में उसे मजा आता था, लेकिन किताबें पढ़ने की ओर मेरा झुकाव उसे पसंद था और भूले-भटके, काफ़ी गम्भीरता और सीख-भरे अन्दाज़ में, वह बातें करता था। एक दिन मैंने उससे कहा:

"ये सौदागर भी क्या जीवन बिताते हैं? मुझे उनका ढर्रा ज़रा भी अच्छा नहीं लगता।"

दाढ़ी के छोर को उसने अपनी उँगली में लपेटा और कहने लगा:

"तुम्हें क्या मालूम कि वे कैसा जीवन बिताते हैं? क्या तुम उनके घरों में कभी गए हो? यह तो बाज़ार है, मेरे लड़के, और लोग बाज़ार में जीवन नहीं बिताते। बाज़ार में तो वे व्यापार करते हैं, या घर पहुंचने की जल्दी में तेज़ी से डग उठाते हुए गुज़र जाते हैं! बाज़ार में लोग कपड़ों से लदे-फदे रहते हैं और कुछ पता नहीं चलता कि भीतर से वे कैसे हैं। केवल घर ही एक ऐसी जगह है जहाँ, अपनी चार दीवारों के भीतर, आदमी उन्मुक्त जीवन बिताता है। अब तुम्हीं बताओ, क्या तुमने वह जीवन देखा है? क्या तुम्हारे पास उस जीवन को देखने के साधन मौजूद हैं?"

"लेकिन उनके विचारों और भावनाओं में तो इससे अन्तर नहीं पड़ता? घर हो चाहे बाहर, वे एक से रहते हैं।"

"यह कोई कैसे बता सकता है कि हमारा पड़ौसी किस समय क्या सोचता है?" बूढ़े ने कड़ी नज़र से मुझे घूर कर देखा और वज़नदार आवाज़ में बोला।—"विचार भी क्या जुंवों की भांति हैं जो उन्हें सिर में उँगली डाल कर चुना-गिना जा सके?

जुंवों को चुनने-गिनने की कहावत सुनी है न? बड़े बूढ़ों ने इस कहावत को यों ही नहीं गढ़ा। तुम्हीं देखो, एक आदमी है। संभव है जब वह घर लौटता हो तो देव-प्रतिमा के समने घुटनों के बल बैठ कर मिनमिनाता या आँसू बहाते हुए प्रार्थना करता हो: 'मुझे माफ़ करना, महाप्रभु, आज तुम्हारा पवित्र दिन था, लेकिन अपने जीवन को संवारने के लिए मैंने कुछ नहीं किया। आज भी पाप की उसी दलदल में फंसा रहा!' या संभव है आदमी के लिए घर ही मठ के समान हो। प्रभु के सिवा अन्य किसी चीज़ से उसका लगाव नहीं। हर मकड़ी को खुदा ने एक कोना दिया है—खूब जाल बुनो, लेकिन अपना वज़न पहचानते हुए, ऐसा न हो कि वह तुम्हारा बोझ न संभाल सके!"

जब वह गम्भीरता से बातें करता तो उसकी आवाज़ में एक अजीब गहराई पैदा हो जाती, ऐसा मालूम होता मानो वह किसी महत्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन कर रहा हो।

"देखो न, इतनी छोटी उम्र में ही तुमने बाल की खाल निकालना शुरू कर दिया। दिमाग़ के सहारे नहीं, इस उम्र में तुम्हें आँखों के सहारे जीना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कि देखो, और दिमाग़ में बटोर कर रखो, और जुबान पर लगाम कसे रहो। दिमाग़ व्यापार के लिए है, विश्वास और श्रद्धा आत्मा के लिए। किताबें पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन हर चीज़ की एक अपनी सीमा होती है। कुछ लोग इतना पढ़ते हैं कि न उनका अपना कोई दिमाग़ रहता है, न खुदा रहता है। वे इन दोनों से हाथ धो बैठते हैं।"

मुझे ऐसा मालूम होता कि वह जीवन और मौत के चक्कर से बरी है। मुझे लगता कि वह सदा ऐसा ही रहेगा—न कभी बदलेगा, न कभी और बूढ़ा होगा। वह बड़े चाव से किस्से

सुनाता — सौदागरों के, डाकुओं के, नामी जालसाज़ों के। अपने नाना से भी मैं इस तरह के किस्से सुन चुका था। केवल कहने के ढंग में फ़र्क था। नाना का ढंग उससे कहीं अच्छा था। बाकी सब बातें — कहानी की मूल भावना — वही थी। वह यह कि खुदा और मानव को रौंदे बिना धन नहीं बटोरा जा सकता। धन आदमी को पाप की दलदल में फंसाता है। प्योत्र वसीलीयेविच के हृदय में लोगों के लिए कोई दया नहीं थी, वह उनपर कभी तरस नहीं खाता था, लेकिन खुदा का बड़े चाव और लगन से ज़िक्र करता, उसकी पलकें झुक जातीं और हृदय से उसाँसें निकलने लगतीं।

"देखो न, लोग किस तरह खुदा को धोखा देते नहीं अघाते। लेकिन प्रभु ईसा यह सब देखता और उनके लिए आँसू बहाता है: 'आह मेरे बच्चो, नासमझ बच्चो, तुम्हें नहीं मालूम कि अपने लिए किस नरक की तुम तैयारी कर रहे हो!'"

एक दिन, साहस बटोर, मैंने उससे पूछा:

"तुम भी तो दहकानों को धोखा देते हो?"

उसने ज़रा भी बुरा न माना। बोला:

"ऊँह, उससे उन्हें ज़्यादा नुक़सान नहीं पहुँचता। मुश्किल से चार या पाँच ही रूबल तो मैं अपने लिए उनसे झटकता हूँ। बस इतना ही, और कुछ नहीं!"

जब वह मुझे कुछ पढ़ते हुए देखता तो पुस्तक मेरे हाथ से ले लेता, उसमें लिखी बातों के बारे में पूछता-ताछता और सन्देह तथा अचरज में भरकर मुंशी की ओर मुड़ते हुए कहता:

"देखो न इस उम्र में ही यह नन्हा बन्दर किताबों में लिखी बातें समझ लेता है!"

इसके बाद नपे-तुले और कभी न भूलनेवाले अन्दाज़ में वह मुझे सीख देता:

"मेरे शब्द ध्यान से सुनना — वक़्त पर तुम्हारे काम आएंगे। किरिल नाम के दो आदमी हुए हैं, दोनों ही पादरी, एक अलैक्सान्द्रिया का रहने वाला, और दूसरा येरुशलम का। पहले ने ईश्वर-द्रोही नेस्तर को आड़े हाथों लिपा जो लोगों में इस तरह की गंदी बातों का प्रचार करता था कि मरियम हमारी-तुम्हारी भांति इसी दुनिया की एक स्त्री थी जिसने ख़ुदा को नहीं बल्कि हमारे-तुम्हारे जैसे ही ईसा नाम के एक आदमी को जन्म दिया था। यह आदमी दुनिया का तारनहार बना। इसका मतलब यह कि मरियम को ख़ुदा की माँ न कह कर ईसा की माँ कहना चाहिए। समझे, यही वह चीज़ है जिसे लोग धर्म-द्रोह कहते हैं। इसी प्रकार येरुशलम के किरिल ने धर्म-द्रोही एरिया की धज्जियाँ उड़ाईं...।"

गिरजे के इतिहास की उसे अद्भुत जानकारी थी। इसका मुझपर गहरा असर पड़ता। हल्के और मुलायम हाथ से वह अपनी दाढ़ी सहलाता और कहना शुरू करता:

"इन विषयों का मैं सेनापति हूँ और अनेक मोर्चे मैंने सर किए हैं। ईस्टर के दिनों में मैं मास्को गया और निकोन के किताबचाटू चेले-चांटियों, पादरियों और दूसरे संपोलियों की विष-भरी बातों का मुँह तोड़ जवाब दिया। बड़े से बड़े तीसमार खां के मैंने छक्के छुड़ा दिए। एक धर्मशास्त्री को मैंने अपनी जुबान के ऐसे कोड़े पिलाए कि उसकी नाक से ख़ून तक बहने लगा। देख कर सब दंग रह गए!"

उसके गाल लाली से दमकने लगे और आँखों में चमक दौड़ गई। विरोधी की नकसीर क्या फूटी मानो उसे बहुत बड़ी रियासत मिल गई, उसके गौरव के सुनहरी ताज में मानो किसीने चमकता हुआ लाल जड़ दिया। बड़े ही उल्लास और विजय के गर्व के साथ उसने कहना शुरू किया:

"बहुत ही रोबदार और ख़ूबसूरत आदमी था वह—पूरा देव ही समझो। मंच पर वह खड़ा था और उसकी नाक ख़ून के आँसू रो रही थी—टपाटप टपाटप—ख़ून नीचे टपक रहा था। और मज़ा यह कि उसे पता तक नहीं था कि उसकी नाक क्या गुल खिला रही है। बापरे, वह शेर की भांति झपटता था और उसकी आवाज़ ऐसे गूंजती थी जैसे कोई बहुत बड़ा घंटा बज रहा हो। लेकिन मैं भी मोर्चे पर डटा था और उसकी आत्मा को खंजर की भांति अपने शब्दों से छलनी कर रहा था। शान्ति से, ख़ूब निशाना साध कर, ठीक उसकी पसलियों की सीध में मैं अपने शब्दों की मार कर रहा था। ईश्वर-द्रोही कुत्सित बातों की खिचड़ी पकाते-पकाते वह तन्दूर की भांति गरमा गया था...। ओह, क्या दिन थे वे भी!"

हमारी दुकान पर अन्य सिद्धान्तशास्त्री भी आते थे। इनमें एक पाखोमी था जिसे देख कर ऐसा मालूम होता मानो उसमें रुई भरी हो। भारी तोंद और केवल एक आंख। वह बोलता क्या था, मानो घर्राटे लेता था। हमेशा वही एक पुराना चीकट कोट पहने रहता। उसके अलावा बूढ़ा लूकियान भी हमारी दुकान पर आता था। नाटा कद, चूहे की भांति चिकना-चुपड़ा, देखने-सुनने और तौर-तरीकों में बहुत ही भला, और उत्साह से छलछलाता। वह जब भी आता, अपने साथ एक और आदमी को लाता जो देखने में कोचवान सा मालूम होता—भारी-भरकम, तोबड़ा चढ़ा हुआ, काली दाढ़ी, निश्चल आँखें और खोया हुआ-सा सूना चेहरा जो ख़ूबसूरत होते हुए भी अच्छा नहीं मालूम होता था।

वे खाली हाथ कभी न आते। हमेशा कोई न कोई चीज़ बेचने के लिए लाते: पुरानी पुस्तकें, प्रतिमाएँ, धूपदान, पूजा के बरतन। कभी-कभी, चीज़ें बेचने के लिए, वोल्गा प्रदेश के किसी अन्य

बूढ़े पुरुष या बूढ़ी स्त्री को भी अपने साथ ले आते। जब सौदा पट जाता तो सब काउंटर पर इस तरह बैठ जाते जैसे मुंडेर पर कौवे। चाय पीते और खाने की चीज़ों पर हाथ साफ़ करते। बातों का सिलसिला चलता और वे निकोन पंथी धर्माधिकारियों के ज़ुल्मों का ज़िक्र करते। अमुक जगह पुलिस ने खानातलाशी ली और धर्मग्रंथों को उठा कर ले गई; अमुक जगह पुलिस ने उनके प्रार्थना-घरों को बंद कर दिया, उनकी देख-भाल करनेवालों को पकड़ कर अदालत में पेश किया, और धारा १०३ का उल्लंघन करने के अपराध में उनपर मुकदमा चलाया। धारा १०३ पर वे खूब बातें करते। यह उनका प्रिय विषय था। लेकिन वे इसका उल्लेख निस्संग भाव से करते, मानो यह कोई अनिवार्य और उनके वश से बाहर की चीज़ हो, ठीक वैसे ही जैसे जाड़ों में पाला।

पुलिस, खानातलाशी, जेल, अदालत, साइबेरिया जैसे शब्दों का वे बार-बार प्रयोग करते, और ये शब्द दहकते अंगारों की भांति मेरे हृदय से आकर टकराते। इन बूढ़े लोगों के प्रति जो अपने विश्वास की वजह से इतनी मुसीबतें झेल रहे थे, मेरे हृदय में सहानुभूति और शुभ कामनाओं की लौ जाग उठती। नैतिक साहस की मैं कद्र करता और उन लोगों के आगे मेरा सिर झुक जाता जो अपने लक्ष्य की पूर्ति में डिगना नहीं जानते। यह मैंने पुस्तकों से सीखा था।

पुराने धर्म के इन अलमबरदारों की व्यक्तिगत त्रुटियाँ मेरी आँखों से ओझल हो जातीं, मुझे केवल उस शान्त लगन का ध्यान रहता जिसके पीछे — मेरी समझ में — वह अडिग विश्वास छिपा था जो अपने लक्ष्य के सही और न्यायसंगत होने पर पैदा होता है और जो उन्हें लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में आनेवाली तमाम कठि-नाइयों और मुसीबतों को खुशी से झेलने का बल प्रदान करता है।

आगे चल कर, बुद्धिजीवियों तथा आम लोगों के बीच इस तरह के अनेक व्यक्तियों से मिलने के बाद, मुझे लगा कि जिसे मैं उनकी लगन और धीरज समझे था, वह वास्तव में एक तरह की निष्क्रियता थी। यह उन लोगों की निष्क्रियता थी जो एक नुक्ते पर पहुँच कर रुक गए थे, जिन्हें उस नुक्ते से आगे और कुछ नहीं दिखाई देता था और जिनमें, असंदिग्ध रूप में उससे आगे बढ़ने की कोई इच्छा भी नहीं थी। वे घिसे-पिते और जड़ शब्दों तथा जर्जर मान्यताओं के जाल में उलझ कर रह गए थे। उनकी इच्छाशक्ति इतनी निर्जीव और अक्षम हो गई थी कि भविष्य की ओर आगे बढ़ना उनके लिए सम्भव नहीं रहा था, इस हद तक कि अगर उन्हें एकाएक उन्मुक्त कर दिया जाता तो वे यंत्रवत नीचे लुढ़कना शुरू कर देते, ठीक वैसे ही जैसी पहाड़ी ढलुवान पर से पत्थर लुढ़कता है। पीछे की ओर देखने की जीवनहीन शक्ति और यंत्रणा तथा दमन सहने के विकृत प्रेम ने उन्हें मृत विचारों की कब्र में बंद कर दिया था। यंत्रणा सहने का अवसर हाथ से निकलते ही जैसे वे निर्जीव हो जाते, उनमें कोई तत्व बाक़ी न रहता और वे उसी तरह गायब हो जाते जैसे कि तेज़ हवा बादलों के टुकड़ों को उड़ा ले जाती है।

जिस विश्वास के लिए इतनी तत्परता और कृत्रिम गर्व के साथ वे अपने को बलिदान करते थे, उसकी दृढ़ता से इन्कार नहीं किया जा सकता, लेकिन इस दृढ़ता में भी कोई जीवन नहीं था, वह उन पुराने कपड़ों की भांति थी जिनपर धूल और गर्द की इतनी मोटी तह जम गई थी कि हवा-पानी का अब उनपर कोई असर नहीं होता था। उनके विचार और भावनाएँ अंधविश्वासों और जड़ सूत्रों के चौखटे में कसे रहने की आदी हो गई थीं, भले ही इन चौखटों ने उन्हें विकृत और पंगु बना दिया हो। इससे उन्हें ज़रा भी परेशानी नहीं होती थी।

जिस चीज़ के आदी हैं उसीपर विश्वास करना — यह हमारे जीवन की एक अत्यन्त कुत्सित और दुःखद घटना है। इस विश्वास के दमघोट चौखटे के भीतर, पत्थर की दीवार के नीचे उगे पौधों की भांति, कोई नयी चीज़ नहीं पनप पाती — पनपती भी है तो धीरे-धीरे, विकृत और लुंजपुंज रूप में, बिना किसी जीवन-तत्व के। इस अंधे विश्वास में प्रेम की किरनें बहुत कम चमकतीं और घृणा की — बदले की भावना, कुत्सा और ईर्ष्या की लपटें उठतीं। इस विश्वास की दमक असल में उस हवाई दमक के सिवा और कुछ नहीं थी जो कि हड्डियों के गलने-सड़ने से उत्पन्न फ़ास्फ़ोरस के कारण छलावे की भांति केवल अंधेरे में ही चमकती है और सूरज की रोशनी में गायब हो जाती है।

लेकिन इस सत्य तक मैं योंही, आसानी से, नहीं पहुँच गया। वर्षों तक पापड़ बेलने और मुसीबतें झेलने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा और इसकी गहराई को मैंने समझा। अनेक बुतों को जिनकी मैं पहले पूजा करता था, और अनेक विचारों तथा मान्यताओं को जिन्हें मैं पहले बहुत अच्छा समझता था, मुझे तोड़ना और जड़मूल से उखाड़ कर फेंकना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि बोझिल, बेरस और ग़ैर-ज़िम्मेदारी से भरे जीवन के बीच जो मेरे चारों ओर फैला था, पुराने धर्म के इन अलमबरदारों और ज़िन्दा शहीदों को जब पहली बार मैंने देखा तो मुझे लगा कि वे अद्‌भुत नैतिक साहस के धनी, बल्कि कहना चाहिए कि इस धरती की जान हैं। मुसीबतें सहने में सभी एक से एक बढ़ कर थे। सभी, किसी न किसी समय, अदालत में घसीटे जा चुके थे, जेल की चक्की पीस चुके थे, नगरों से बाहर खदेड़े और अन्य अपराधियों के साथ जलावतनी का जानलेवा रास्ता नाप चुके थे। सभी, चौबीसों घंटे, सांसत में जीवन

बिताते, पुलिस पीछे पड़ी रहती थी और वे लुक-छिप कर अपना काम करते थे।

लेकिन, यह सब होने पर भी, मैंने देखा कि एक ओर जहाँ वे निकोनपंथियों के अत्याचारों और इस बात का रोना रोते कि वे शिकारी कुत्तों की भांति उनकी आत्मा के पीछे पड़े रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर ये खुद बूढ़े लोग भी बड़ी तत्परता और उछाह के साथ शिकारी कुत्तों की भांति एक-दूसरे पर झपटते रहते थे।

एक आँख वाला पाखोमी, जब कभी वह तरंग में होता, बड़े चाव से अपनी अद्‌भुत याददाश्त के करतब दिखाता। कुछ धर्म-ग्रंथ तो उसकी ज़बान पर चढ़े थे और वह उन्हें उसी तरह पढ़ता था जिस तरह यहूदी पुजारी तालमुद पढ़ते हैं। वह ग्रंथ खोलता, आँख बन्द कर किसी भी शब्द पर अपनी उँगली टिका देता और जो भी शब्द पकड़ में आता, उसके बाद से मुलायम और गुनगुनी आवाज़ में वह ज़ुबानी सुनाना शुरू कर देता। उसकी नज़र हमेशा फ़र्श की ओर झुकी होती और उसकी अकेली आँख बड़ी तत्परता से अगल-बगल लपकती-झपकती, मानो वह किसी बहुमूल्य चीज़ की टोह में हो। अपना करतब दिखाने के लिए वह ज़्यादातर राजकुमार मिशेत्स्की की पुस्तक "रूस का अंगूर" से काम लेता। "भारी धीरज और साहस से ओतप्रोत वीर और निडर शहीदों की कुरबानियाँ" उसे सब से अच्छी तरह याद थीं। प्योत्र वसीलीयेविच उसकी गलतियाँ निकालने के लिए हमेशा पंजे पैनाए रहता।

"ग़लत! यह घटना सन्त डेनिस के साथ घटी थी, सन्त किप्रियान के साथ नहीं!"

"डेनिस? यह नाम शायद तुम्हारी घरेलू टकसाल की ईजाद है? डेनिस नहीं, सही नाम है डिओनिसीयस, समझे?"

"नाम को लेकर मेरे साथ चपोड़बाज़ी न करो!"

"तो तुम भी मुझे सबक पढ़ाने की कोशिश न करो!"

लेकिन यह तो शुरूआत ही थी। कुछ क्षण बीतते न बीतते उनके चेहरे गुस्से से तमतमा जाते, वे एक-दूसरे को नीचे गिरानेवाली नज़रों से ताकते और चुने हुए शब्दों के गोले दागने लगते:

"गावदुम, बेशर्म, अपनी इस तोंद को तो देख क्या मटके सी फूलती जा रही है!"

पाखोमी ज़रा भी गर्म न होता। जमा-बाकी का हिसाब लगाने वाले मुनीम की भांति तटस्थ भाव से जवाब देता:

"बकरे की दुम, फिसड्डी और नीच, घाघरे के पिस्सू!"

आस्तीनों के भीतर अपने हाथों को खोंसे मुंशी उन्हें देखता, उसके चेहरे पर कुत्सापूर्ण मुसकराहट नाचने लगती और प्राचीन धर्म के इन रक्षकों को वह इस तरह उकसाता मानो वे स्कूली बच्चे हों:

"अरे, देखता क्या है, लिपट जा! तू क्या उससे कम है। हाँ, अब ठीक, बिल्कुल ठीक!"

एक दिन बूढ़े सचमुच में लड़ पड़े। प्योत्र वसीलीयेविच ने पाखोमी के मुँह पर ऐसा थप्पड़ रसीद किया कि वह मैदान छोड़ कर भाग निकला। प्योत्र ने फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। थके हुए भाव से उसने अपने माथे का पसीना पोंछा और भागते हुए पाखोमी को लक्ष्य कर चिल्लाया:

"ज़रा ठहर तो, दुम दबा कर भागता क्यों है? इस पाप का भुगतान तुझे ही करना पड़ेगा। तूने ही मेरे इस हाथ को आज यह पाप करने के लिए उत्तेजित किया! थूफ़ है तुझपर!"

वह अपने साथियों पर विश्वास की कमी और 'नकारवाद' के चक्कर में फंसने का आरोप लगाकर ख़ास तौर से खुश होता:

"आखिर तुमने भी उसी ईश्वर-द्रोही कौवे अलेक्सान्दर की बोली बोलना शुरू कर दिया न!"

लेकिन जब उससे पूछा जाता कि जिस 'नकारवाद' से वह इतना चिढ़ता और भय खाता है, वह आख़िर है क्या बला, तो उससे कोई साफ़ जवाब देते न बनता:

"नकारवाद सब से तीखा और घातक ईश्वर-द्रोह है जो ख़ुदा को जहन्नुम रसीद कर उसकी जगह बुद्धि को बैठाता है। बुद्धि के सिवा वह और किसी चीज़ को नहीं मानता! मिसाल के लिए कज़ाकों को लो। वे केवल बाइबल को मानते हैं। और यह बाइबल सरातोव में जर्मनों से—लूथर से—उनके हाथ लगी। यह लूथर नाम भी किसीने ख़ूब छांट कर रखा है। तभी तो लोग कहते हैं: 'लुटेरा-लूथर, रंगीला लूथर, शैतान लूथर!' जर्मनों के कबीले का मतलब है खरहा-दिमागों या फिर शटूनडी। यह सारी अलाय-बलाय पश्चिम से, वहाँ के ईश्वर-द्रोहियों के पास से, आई है।"

अपना लंगड़ा पाँव वह ज़मीन पर पटकता और ठंडी वज़न-दार आवाज़ में कहता:

"असल में ये लोग हैं जिनका उन्हें हुलियातंग करना चाहिए, बीन-बीन कर जिन्हें पकड़ना और टिकटियों जिन्हें भूनना चाहिए। असल में दमन इनका होना चाहिए, न कि हमारा। हम जो रूसी हैं—पुश्त दर पुश्त से, जब से दुनिया बनी है तब से हमारा विश्वास और दीन-ईमान एकदम पूर्वीय, सच्चे मानी में रूसी है। लेकिन वे और उनकी विकृत आज़ाद ख्याली—वह सब पश्चिम की देन है, एक दम विदेशी। जर्मनी और फ़्रांस से उधार ली हुई। नुक़सान के सिवा उससे और क्या पल्ले पड़ेगा? ज़रा पीछे मुड़ कर देखो, १८१२ में...।"

जोश में उसे इस बात का भी ध्यान न रहता कि किसी बड़े

आदमी से नहीं, बल्कि कच्ची उम्र के एक लड़के से वह बातें कर रहा है। अपने मज़बूत हाथ में मेरी पेटी दबोचे झटका देकर कभी वह मुझे अपनी ओर खींचता, कभी दूर धकेल देता। उसकी आवाज़ एक अजीब, बिल्कुल युवकों ऐसे, उत्साह और उछाह से भरी थी। वह कह रहा था:

"आदमी का दिमाग़ शैतान का घर है। ख़ुद ही वह एक हवाई जंगल खड़ा करता है और फिर अंधे की भांति उसमें मंडराता है। आदमी न होकर जैसे वह ख़ूंख्वार भेड़िया हो। शैतान के हाथों में उसकी नकेल होती है और उसकी आत्मा, ख़ुदा का उच्चतम वरदान, नष्ट हो जाती है। शैतान के इन चेलों के दिमाग़ में शैतानी के सिवा और हो भी क्या सकता है? नकारवाद के ये कठमुल्ला कहते हैं: शैतान भी ख़ुदा का बेटा और प्रभु ईसा का बड़ा भाई है! बोलो, इससे बढ़ कर बदतमीज़ी और क्या होगी? और वे लोगों को पाठ पढ़ाते हैं: अधिकारियों का कहना न मानो, काम-धंधे की हड़ताल करो, अपने बीवी-बच्चों को धता बताओ। हर ज़िम्मेदारी से वे इन्कार करते हैं, कायदे-कानूनों और व्यवस्था के वे ख़िलाफ़ हैं। बस, आदमी को सरकारी सांड की भांति छुट्टा छोड़ देना चाहते हैं। चाहे जहाँ वह मुँह मारे, चाहे जैसे वह रहे। यही तो शैतान चाहता है। मिसाल के लिए नरक के कीड़े उस अलेक्सान्दर को ही लो, कम्बख़्त...।"

कभी-कभी, बीच में ही, कोई काम करने के लिए मुंशी मुझे बुला लेता। पोर्च में वह अब अकेला ही रह जाता, लेकिन उसका बोलना फिर भी बंद न होता, वृद्ध के मुँह से निकले शब्द शून्य में बिखरते रहते:

"ओह, पर-कटी आत्माओ, ओह अंधे पिल्लो, न जाने कब तुमसे छुटकारा मिलेगा!"

फिर, पीछे की ओर अपने सिर को फेंक और हथेलियों को अपने घुटनों पर टिका कर, जाड़ों के भूरे आकाश पर नज़र गड़ाए, वह एकटक देखता रहता।

मेरे साथ उसका बरताव, धीरे-धीरे, अधिक नरम होता गया और मेरा काफ़ी ध्यान वह रखने लगा। जब वह मुझे कोई पुस्तक पढ़ते देखता तो मेरे कंधों को थपथपाते हुए कहता:

"यह ठीक है, मेरे लड़के, पढ़ो और ख़ूब पढ़ो। वक़्त पर काम आएगा। ख़ुदा ने तुम्हें अच्छा दिमाग़ दिया है। लेकिन यह बहुत बुरा है कि तुम बड़ों का कहना नहीं मानते, और हर किसी के सामने अड़ जाते हो । जानते हो, यह शैतानी तुम्हें कहाँ ले जाएगी? जेल में, मेरे लड़के, जेल में। यह अच्छी बात है कि तुम किताबें पढ़ते हो। पढ़ो, ख़ूब पढ़ो, लेकिन यह न भूलो कि किताब आख़िर किताब ही है। ऐसा न हो कि तुम्हारा अपना दिमाग़ ठप हो जाए। जानते हो, डेनियल नाम का एक पादरी था। उसने अपना अलग ही ख्रिस्ती पंथ चलाया। वह किताबों से नफ़रत करता था। नयी हों चाहे पुरानी, सभी को वह बुरा कहता और उन्हें बटोर कर नदी में डुबा देता। यह भी ग़लत है। फिर शैतान का गुर्गा वह अलेक्सान्दर है जो लोगों को उलटा पाठ पढ़ाता है और उनके दिमाग़ों को ख़राब करता है...।"

अलेक्सान्दर का वह अक्सर ज़िक्र करता और बात-बात में उसका नाम लेता। ऐसा मालूम होता जैसे उसके दिमाग़ पर उसका भूत सवार हो। एक दिन जब वह दुकान में आया तो उसका चेहरा बेहद परेशान था। तेज़ स्वर में मुंशी से बोला:

"कुछ सुना तुमने, अलेक्सान्दर यहाँ, हमारे नगर में ही मौजूद है—कल ही आया है। सुबह से घूम रहा हूँ, कोई जगह मैंने नहीं छोड़ी, लेकिन कुछ पता नहीं चला। जाने कहाँ चोर की

भांति छिपा है। सोचा, कुछ देर तुम्हारी दुकान पर चल कर बैठूं। शायद यहीं टकरा जाए।"

"रोज़ ही सैकड़ों ऐरे-गैरे आते रहते हैं। मेरा उनसे क्या वास्ता!" मुंशी ने कुढ़ कर कहा।

बूढ़े ने सिर हिलाया। बोला:

"ठीक है — तुम केवल खरीदने और बेचने वालों को ही जानते हो। उनके सिवा दुनिया में तुम्हारे लिए अन्य किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं है। लेकिन जाने दो, तुम एक गिलास चाय तो पिला ही सकते हो?"

खौलते पानी से भरी पीतल की एक बड़ी सी केतली लेकर जब मैं लौटा तो देखा कि दुकान में कुछ और मेहमान भी मौजूद हैं। इनमें बूढ़ा लूकियान भी था। ख़ुशी के मारे उसकी बत्तीसी खिली थी। दरवाज़े के पीछे अंधेरे कोने में एक अजनबी बैठा था। वह किरमिच के उँचे जूते, हरे पटके से कसा गरम कोट और सिर पर टोपी पहने था जिसे नीचे खींचकर उसने अपनी आँखों को ढंक लिया था। उसका चेहरा मुझे अच्छा नहीं लगा, हालांकि वह काफ़ी शान्त, और विनम्र जीव मालूम होता था। उसका मुँह बुरी तरह लटका हुआ था, दुकान के उस कर्मचारी की भांति जिसे अभी-अभी नौकरी से निकाल दिया गया हो और इस कारण जैसे उसकी जान ही निकल गई हो।

उसकी ओर नज़र तक डालने की चिन्ता न करते हुए प्योत्र वसीलीयेविच कुछ कह रहा था। उसकी आवाज़ में विरोधी को चित्त कर देने वाली सख्ती, वज़न और ज़ोर था। अजनबी का दाहिना हाथ, यंत्रवत, अपनी टोपी से खेल करने में जुटा था। वह बाँह उठाता, इस तरह मानो क्रास का चिन्ह बनाने जा रहा हो, और हल्का-सा झटका देकर टोपी को पीछे की ओर खिसका देता।

एक बार, दो बार, तीन बार, अन्त में टोपी इस हद तक खिसक जाती कि लगता, अब गिरी, अब गिरी। लेकिन वह उसे गिरने न देता। छोर पकड़ कर तुरत उसे खींचता और फिर अपनी आँखों पर जमा लेता। उसकी इन यंत्रवत और अवश हरकतों को देख कर मुझे "जेब-में-मौत" वाले पागल ईगोशा की याद हो आई।

"ये गंदी मछलियाँ हमारी नदियों और ताल-तलैयों में किलबिला रही हैं और दिन-दिन दूनी गंदगी उछाल रही हैं!" प्योत्र वसीलीयेविच ने अन्त में कहा।

अजनबी ने, जो किसी दुकान का नौकर मालूम होता था, शान्त और निश्चल आवाज में पूछा:

"यह सब क्या तुम मेरे बारे में कह रहे थे?

"तुम्हारे बारे में ही सही। तुम कौन दूध के धुले हो?"

अजनबी ने, उतने ही निश्चल अन्दाज़ और आत्मिकता से फिर पूछा:

"और खुद अपने बारे में तुम क्या कहते हो, मेरे भाई?"

"अपने बारे में मैं केवल खुदा से ही कहता हूँ — वह मेरा निजी मामला है।"

"ओह नहीं, मेरे भाई, अकेले तुम्हारा ही नहीं, वह मेरा मामला भी है," अजनबी ने ज़ोरदार और विजयी आवाज़ में कहा। — "सचाई से आँखें चुराने और अपने में ही भरमाए रहने से काम नहीं चलेगा। खुदा और मानव के सामने हमें अपने भारी पापों का जवाब देना है। इससे नहीं बचा जा सकता।"

मुझे यह अच्छा लगा कि प्योत्र वसीलीयेविच को उसने 'मेरे भाई' कह कर सम्बोधित किया। उसकी शान्त और शुभ्र आवाज़ ने भी मुझपर गहरा असर किया। वह उसी तरह बोल रहा था जैसे कि कोई अच्छा पादरी धर्मग्रंथ का पाठ करता है: "सबका स्वामी,

इस दुनिया का सिरजनहार..."। वह बोलता जाता था और कुर्सी पर आगे की ओर खिसकता जाता था। एक दम किनारे पर वह अब आ गया था। अपने हाथ को मुँह के सामने लाकर हिलाते हुए बोला:

"तुम मुझपर फतवा क्यों कसते हो? मैंने क्या तुमसे ज़्यादा पाप किए हैं?"

प्योत्र वसीलीयेविच ने चिढ़ कर कहा:

"बड़ी देर से समोवर खौल रहा है!"

अजनबी ने उसके शब्दों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और बोला:

"केवल खुदा ही यह बता सकता है कि पवित्र आत्मा के सोतों को कौन गंदा कर रहा है। हो सकता है कि यह पाप तुमने ही किया हो,—तुमने या तुम्हारे जैसे दूसरे लोगों ने जो किताबों में डूबे रहते हैं, जो अपने को पढ़ा-लिखा कहते हैं। मेरा न तो किताबों से वास्ता है, न मैं पढ़ा-लिखा हूँ। मैं तो एक सीधा-सादा जीव हूँ।"

"सीधा-सादा जीव,—अपनी इस सादगी का जादू किसी और पर चलाना, मैं तुम्हारी एक-एक रग पहचानता हूँ।"

"जादू चलाने का काम मैं नहीं, तुम करते हो। तुम्हारे जैसे किताब-चाटू, दिखावटी चीज़ों के पीछे मरने और सीधी-सच्ची भावनाओं को विकृत करने वाले जीव ही लोगों के दिमाग़ को भरमाते और बरगलाते हैं। जहाँ तक मेरा सम्बंध है,—क्या तुम बता सकते हो कि मैं किस चीज़ का प्रचार करता हूँ?"

"ईश्वर-द्रोह का!" प्योत्र वसीलीयेविच ने कहा। अजनबी ने जैसे कुछ नहीं सुना और अपने हाथ की हथेली को आँखों के सामने लाकर इस तरह देखा मानो उसपर लिखी लिखावट पढ़ रहा हो। फिर व्यग्र भाव से बोला:

"तुमने लोगों को एक गंदगी से निकाल कर दूसरी गंदगी में डाल दिया है और सोचते यह हो कि इससे उनका जीवन सुधर गया। लेकिन मैं कहता हूँ कि तुम धोखे में हो! मैं तुमसे कहता हूँ, मेरे भाई, अपने को उन्मुक्त करो, अपने बन्धनों को तोड़ कर आज़ादी से साँस लो! ख़ुदा के सामने न घर की कुछ हस्ती है, न बीवी-बच्चों और ढोर-डंगरों की! मेरे भाई, अपने को मुक्त करो, उन सभी चीज़ों को छोड़ दो जो हिंसा और मार-काट की ओर ले जाती हैं—सोने-चांदी और धन-दौलत के सारे बन्धनों को तोड़ दो जो सड़ांध और गंदगी का ही दूसरा नाम हैं। इस लम्बी-चौड़ी धरती पर चाहे जितना भटको, कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति तो केवल स्वर्ग की घाटियों में मिलती है। किसी चीज़ का मोह न करो। हर चीज़ से इन्कार करो। मैं कहता हूँ, उन सभी नातों-बन्धनों से इन्कार करो जो तुम्हें इस दुनिया से बांधे हुए हैं। कारण कि यह दुनिया रहने की जगह नहीं है, प्रभु ईसा के दुश्मनों ने उसे ग्रस लिया है। मेरा रास्ता सीधा और संकरा है, लेकिन मेरी आत्मा अजेय और अडिग है, इस अंधी दुनिया को मानने से इन्कार करती है और सदा करती रहेगी...।"

"रोटी, पानी और तन ढंकने के लिए कपड़ा,—ये सब भी तो इसी दुनिया की चीज़ें हैं? क्या तुम इनसे भी इन्कार करते हो?" वृद्ध प्योत्र ने घृणा से पूछा।

अलेक्सान्दर पर इन शब्दों का कोई असर नहीं हुआ। वह और भी लगन से बोलता गया। उसकी आवाज़ धीमी थी, लेकिन मालूम ऐसा होता था जैसे पीतल की तुरही गूँज रही हो:

"ओह मानव, तेरी असली निधि का स्रोत क्या है? तेरी निधि का स्रोत है ख़ुदा, वही तेरी असली दौलत है। निष्कलंक बन कर उसके सामने जा, अपनी आत्मा को इस दुनिया के

बंधनों से मुक्त कर और अपने ख़ुदा की ओर देख—तू अकेला है और वह अकेला है। इसी तरह तुझे ख़ुदा के पास जाना है, इसके सिवा उसके पास पहुँचने का और कोई रास्ता नहीं है। कहा है: मुक्ति के लिए पिता और माँ को छोड़, हर चीज़ का त्याग कर और उस आँख को निकाल डाल जो हृदय को मोहक चीज़ों से उलझाती है। ख़ुदा के लिए इस नश्वर शरीर का नाश और अनश्वर आत्मा का वरण कर, जिससे तेरी आत्मा में दैवी प्रेम का आलोक जगे जिसकी जोत कभी मंद नहीं पड़ती...।"

प्योत्र वसीलीयेविच से नहीं रहा गया। उठते हुए झुंझलाकर बोला:

"पूह, कुत्ते की दुम! मैं तो समझा था कि पिछले साल के मुक़ाबिले अब तुम कुछ ज़्यादा समझदार हो गए होगे, लेकिन लगता है कि तुम्हारा रोग दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है।"

बूढ़ा डगमग करता दुकान से बाहर पोर्च में निकल गया। यह देख अलेक्सान्दर चौंका। तेज़ी से और कुछ अचरज में भर कर बोला:

"अरे, क्या जा रहे हो? भला यह कैसे हो सकता है?"

शराफ़त के पुतले लुकियान ने आँख के इशारे से लेप चढ़ाते हुए कहा:

"ठीक तो है। तुम्हारे लिए मैदान साफ़ छोड़ गया।"

लेकिन अलेक्सान्दर ने उसे भी आड़े हाथों लिया:

"और तुम अपने को क्या समझते हो? घिसे-पिटे कुछ शब्द रट लिए हैं, उन्हें उगलते और लोगों को बेवकूफ़ बनाते रहते हो। वे समझते हैं कि तुम्हीं मुक्तिदाता हो, तुम्हारे मुँह से निकले

घिसे-पिटे शब्दों का जाप कर के वे भी इस दुनिया से तर जाएंगे..!"

लुकियान ने मुसकरा कर उसकी ओर देखा और ख़ुद भी पोर्च में चला गया। अजनबी ने अब दुकान के मुंशी की ओर रुख किया और विश्वास-भरी आवाज़ में बोला:

"देखा, मेरी आत्मा की शक्ति के सामने न टिक सके। धुआँ उसी समय तक मंडराता है जब तक लपटें नहीं उठतीं!"

दुकान के मुंशी ने पलकों के नीचे से नज़र उठा कर देखा, और रूखे स्वर में बोला:

"मेरे लिए सब बराबर हैं।"

अलेक्सान्दर इन शब्दों को सुनकर चौंका। अपनी टोपी को आँखों पर खींचते हुए बोला:

"यह क्या, बराबर कैसे हैं? साफ़ मालूम होता है कि तुम बात को टालना चाहते हो।"

कुछ क्षण तक वह सिर लटकाए चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद प्योत्र वसीलीयेविच और लुकियान ने उसे आवाज़ दी और तीनों चले गए। जाते समय उन्होंने सिर उठा कर देखा तक नहीं।

अंधेरे में जिस तरह आग जलती है, कभी लपक तेज़ होती और कभी मंद पड़ जाती है, ठीक वैसे ही यह अजनब मेरी आँखों के सामने प्रकट हुआ, और मुझे लगा कि इस दुनिया से उसका इन्कार करना एकदम अकारण ही नहीं है, एक हद तक वह सही भी है।

रात को, मौका पा कर, भारी उत्साह के साथ ईवान लारिओनोविच से मैंने उसका ज़िक्र किया। वह एक बहुत ही शान्त और भला आदमी था और हमारे कारख़ाने का मुखिया मास्टर था। मेरी बात सुनने के बाद बोला:

"वह हरकारा होगा,—यह भी एक पंथ है जिसे मानने वाले किसी चीज़ को स्वीकार नहीं करते।"

"वे कैसे रहते हैं?"

"वे बस हरकारों की भांति सदा दौड़ते रहते हैं,—किसी एक जगह नहीं टिकते, सदा घूमते रहते हैं। इसीलिए उनका नाम भी हरकारा पड़ गया। उनका मत है कि यह धरती और इसकी हर चीज़ रद्द करनी चाहिए। पुलिस उन्हें नुक्सानदेह समझती है, और उनके पीछे पड़ी रहती है।"

अपने जीवन में काफ़ी कटुता मैंने देखी थी, फिर भी यह बात मेरे हृदय में नहीं जमी कि कोई उसकी हर चीज़ को ठुकरा कैसे सकता है। सब कुछ होते हुए भी अपने चारों ओर के जीवन में मुझे अच्छी और दिलचस्प चीज़ें दिखाई देती थीं। नतीजा इसका यह कि दिन बीतते न बीतते अलेक्सान्दर का चित्र धुंधला पड़ कर मेरी स्मृति से गायब हो गया!

लेकिन, कभी-कभी, बुरे क्षणों में जब मेरा हृदय दुखी और उदास होता, उसकी याद ताज़ा हो जाती और मुझे लगता जैसे खेतों के बीच से भूरे पथ को पार करता वह जंगल की ओर बढ़ा जा रहा हो। श्रम के दाग-धब्बों से अछूता उसका सफ़ेद और साफ़-सुथरा हाथ यंत्रवत हरकत करता और डंडे को आगे धकेल देता, और उसके मुँह से निकले शब्द शून्य में बिखरते रहते:

"मेरा पथ सीधा और संकरा है और हर चीज़ से इन्कार करने तथा हर बन्धन को तोड़ने का मैं आह्वान करता हूँ...।"

और उसके साथ-साथ पिता का चित्र भी मेरी आँखों के सामने मूर्त हो उठता,—ठीक वैसा ही जैसा कि मेरी नानी को सपनों में दिखाई देता था: अखरोट की लकड़ी हाथ में लिए, और एक चित्तीदार कुत्ता, जीभ मुँह से बाहर निकाले, उसके कदमों के साथ लपकता-झपकता हुआ...।

देव-प्रतिमाओं का कारख़ाना आधी पत्थर की एक पक्की इमारत के दो कमरों में था। एक कमरे में तीन खिड़कियाँ सहन की तरफ़ खुलती थीं और दो बगीचे की तरफ़; दूसरे कमरे में एक खिड़की का रुख बगीचे की ओर था और एक का सड़क की ओर। खिड़कियाँ छोटी और चौकोर थीं; और उनका काँच ज़माने के रंग देखते-देखते खुद भी बुरी तरह रंग गया था। जाड़ों की धुंधली और छितरी हुई रोशनी मुश्किल से उसे वेध कर भीतर पहुँच पाती थी।

दोनों कमरों में मेज़ें-ही-मेज़ें भरी थीं। हर मेज़ पर, कमर दोहरी किए, एक या दो मुर्तिसाज़ बैठते। पानी से भरी काँच की गेंदें छत से लटकतीं ताकि लैम्पों की रोशनी उनके स्पर्श से और भी अधिक उजली तथा शीतल हो कर देव-प्रतिमाओं के चौरस चौखटों को आलोकित करे।

कारख़ाने के गर्म वातावरण में दम घुटता। मूर्तिनिर्माण के लिए प्रसिद्ध पालेख, खोलुई और मुस्तेरा के करीब बीस कारीगर—देव प्रतिमाओं के जनक — सब यहीं भरे रहते। खुले गले की जिंघम की कमीज़ें और टिकन के पायजामे वे पहनते, और जूतों के नाम पर बदनुमा लीतरे होते या एकदम नंगे पाँव ही रहते। माखोरका तम्बाकू का कड़ुवा धुवाँ उनके सिरों के चारों ओर मंडराता और वार्निश ,लाख, तथा सड़े अंडों की गंध से हवा भारी हो जाती। व्लादिमीर जनगीत के स्वर, गर्म तारकोल की भांति तरल और भारी, तैरते रहते:

पाप पंक में लथपथ दुनिया
रही न लाज कुलाज
लड़के लड़की सब बेकाबू
नाचें नंगा नाच ...

वे अन्य गीत भी गाते, सब इसी कैंडे के, जी हल्का करने के बजाय उसे भारी बनाने वाले। लेकिन यह उनका प्रिय गीत था। गीत के अलस बोल, उनके विचारों या काम में कोई बाधा दिए बिना, गूँजते रहते। गिलहरी के महीन बालों वाले ब्रुश, बिना किसी भूल-चूक के, सहज गति से चलते, चित्र की रेखाओं को उभारते, सन्तों के चोगों की सलवटों में रंग भरते या उनके सूखे हुए हड्डियाँ-निकले चेहरों में वेदना की रेखाएँ डालते। खिड़की में से कारीगर गोगोलेव की हथौड़ी की खटखट सुनाई देती जो छेनी से खोद कर बेल-बूटे बनाता। पकौड़े-सी नीली उसकी नाक थी और नशे में वह धुत्त रहता था। हथौड़ी की तेज़ खटखट गीत के अलस स्वरों के साथ ताल देती और ऐसा मालूम होता मानो कोई कीड़ा पेड़ की लकड़ी कुतर रहा हो।

देव-प्रतिमाओं की साज-सज्जा के इस काम में किसी का मन न लगता। जाने किस शैतान-दिमाग़ ने इस काम को अंग-भंग कर अलग-अलग टुकड़ों में बांट दिया था। नतीजा यह कि अब इस काम में न कोई आकर्षण रहा था, न सौन्दर्य — सभी कुछ खंडित हो कर बिखर गया था। उससे गहरा लगाव पैदा करना या उसके प्रति हृदय में कोई दिलचस्पी जगाना असम्भव था। ऐंची-तानी आँखों वाला बढ़ई पनफ़ील सरो और लिण्डेन लकड़ी के छोटे-बड़े तरह-तरह के आकार के टुकड़े लाता, रंदे से उन्हें साफ़ करता और उनमें गोंद लगाता। वह बहुत ही कमीना आदमी था और उसका हृदय द्वेष से भरा रहता था। इसके बाद दावीदोव टुकड़ों को जोड़ कर प्रतिमा की नींव डालता। वह अभी लड़का ही था और तपेदिक का मरीज़ मालूम होता था। सोरोकिन रंग-रोगन की तैयारी करता; मिल्याशिन पेन्सिल से देव-प्रतिमा की तस्वीर बनाता जो किसी मूल चित्र की नकल होती; बूढ़ा गोगोलेव रंग-रोगन भरता और सुनहरी

ज़मीन पर बेल-बूटों के डिज़ाइन बनाता; 'छोटे चित्रकार' सीन-सीनरी बनाते और सन्तों के कपड़ों में रंग भरते। इसके बाद प्रतिमा को, बल्कि कहना चाहिए कि प्रतिमा के धड़ को क्योंकि उसमें अभी न सिर लगा होता और न हाथ, दीवार के सहारे खड़ा कर दिया जाता। चेहरा बनाने का बाकी काम दूसरे कारीगर करते।

गिरजे की वेदी या दरवाज़े की शोभा बढ़ाने वाली इन बड़ी बड़ी प्रतिमाओं को इस तरह बिना चेहरे-मोहरे, हाथ या पांव के — केवल चोगा, कवच या फ़रिश्तों की छोटी जाकेट पहने — दीवार के सहारे टिका देख कर बहुत ही अटपटा मालूम होता। उनके शोख़ और भड़कीले रंग मौत की भावना का संचार करते, ऐसा मालूम होता कि वह चीज़ जो जीवन फूंकती, उनमें नहीं है, या कहिए कि वह चीज़ उनमें कभी मौजूद थी, लेकिन रहस्यमय ढंग से विदा हो गई और अब बोझिल लबादे के सिवा उनके पास और कुछ नहीं बचा है।

जब चेहरा-मोहरा बनाने वाले अपना काम ख़त्म कर लेते तो एक अन्य कारीगर सुनहरी बोर्डर के डिज़ाइन में एनामेल का काम करता। परिचय और स्तुति आदि लिखने का काम किसी दूसरे विशेषज्ञ के सुपुर्द था। इन सब के हाथों से गुज़रने के बाद तैयार प्रतिमा पर खुद ईवान लारिओनोविच, कारखाने का शान्त स्वभाव मुखिया, लुकर की वारनिश चढ़ाता।

उसका चेहरा भूरा था और भूरी ही उसकी दाढ़ी थी — महीन और रेशम की भांति मुलायम। उसकी आँखों की अतल गहराई में उदासी छाई रहती। वह बहुत ही भले ढंग से मुसकराता, लेकिन जाने क्यों उसकी मुसकराहट के जवाब में मुसकराना कुछ अटपटा और गलत-सा मालूम होता। उसे देख कर खम्बेवाले सन्त

सिमियोन की प्रतिमा की याद हो आती — उतना ही दुबला-पतला और क्षीण, और उसी की भांति अपने चारों ओर के वातावरण तथा आसपास के लोगों से बेखबर।

कारख़ाने में काम शुरू किए अभी मुझे दो-चार ही दिन हुए थे कि झंडियाँ बनानेवाला कारीगर नशे की हालत में काम पर चला आया। वह दोन प्रदेश का कज़ाक था। नाम कापेन्दियूखिन, ख़ूबसूरत और खूब हट्टा-कट्टा। दाँतों को भींच कर और सुन्दर स्त्रियों-ऐसी आँखों को सिकोड़ते हुए, बिना किसी से कुछ कहे या सुने, एक सिरे से वह सभी पर आहनी घूंसों की बौछार करने लगा। उसका चपल शरीर जो डील-डोल में ज़्यादा बड़ा नहीं था, कारख़ाने में सब पर उसी तरह झपट रहा था जैसे चूहों से आबाद तहख़ाने में बिलाव झपटता है। घबरा कर सब ओनों-कोनों की ओर लपके, और वहीं दुबके हुए एक-दूसरे से चिल्लाकर कहने लगे:

"पकड़ लो टांग मरदूद की!"

आखिर चेहरा-मोहरा बनानेवाले कारीगर येवगेनी सितानोव ने बेकाबू हुए इस सांड को सन्न करने में सफलता प्राप्त की। स्टूल उठा कर उसने कज़ाक के सिर पर दे मारा, और वह वहीं फ़र्श पर ढह गया। देखते-देखते सबने उसे पकड़ा और चित्त लिटा कर तौलियों से बांध दिया। लेकिन अपने नुकीले पंजों और दाँतों से वह तौलियों को नोंचता और झीर-झीर करता रहा। यह देख येवगेनी का गुस्सा सीमा पार कर गया। उछल कर वह मेज़ पर चढ़ गया और कज़ाक की छाती पर कूदने की धुन में दोनों कोहनियों को बाजुओं से सटा कर अपना वज़न तौलने लगा। अपने भारी-भरकम वज़न के साथ अगर वह कापेन्दियूखिन की छाती पर कूद पड़ता तो उसका कचूमर ही निकल जाता। लेकिन तभी, हेट और कोट पहने, लारिओनोविच उसके बराबर में आकर खड़ा हो

गया। सितानोव को उसने उँगली के इशारे से बस में किया, और शान्त तथा दो टूक स्वर में अन्य सब से बोला:

"इसे बाहर हवा में ले जाकर डाल दो। नशा उतरने पर ठीक हो जाएगा।"

कज़ाक को खींच कर वे कारख़ाने से बाहर ले गए, फिर मेज़-कुर्सियों को ठीक ठिकाने से लगाया और अपने काम में जुट गए। साथ ही वे टीका-टिप्पणी भी करते जाते—कापेन्दियूखिन के बारे में उन्होंने भविष्यवाणी की कि एक दिन अपनी ताकत के ज़ोम में वह किसी से लड़ता हुआ मारा जाएगा।

"उसे मारना हँसी-खेल नहीं है," सितानोव ने, बहुत ही शान्त स्वर में, गहरे जानकार की भांति, अपनी राय ज़ाहिर की।

मैंने लारिओनोविच की ओर देखा और यह पता लगाने की कोशिश करने लगा कि उसमें ऐसी क्या बात है जो सब लोग, अपने जंगलीपन के बावजूद, उसका इतना कहना मानते हैं।

वह हरेक को, बिना किसी भेद-भाव के, काम करने के गुर सिखाता। पुराने-से-पुराने और दक्ष कारीगर भी उससे सलाह लेते। कापेन्दियूखिन को तैयार करने पर वह अन्य सब से ज्यादा समय और शब्द खर्च करता।

"चित्रकार—तुम चित्रकार हो कोपेन्दियूखिन। और अच्छा चित्रकार वही है जिसके चित्रों में जान हो, इटली के चित्रकारों की भाँति। सुहावने रंगों का सामंजस्य तेल-चित्रों की जान है, लेकिन देखो न, तुमने यहाँ निरा सफ़ेदा पोत कर रख दिया है। यही वजह है जो मरियम की आँखें इतनी बेजान और ठिठुरी-सी मालूम होती हैं। इसके गाल गोल हैं, उनमें लाली भी खूब है, लेकिन आंखों का उनसे कोई मेल नहीं खाता। फिर आँखें यथास्थान भी नहीं हैं—एक नाक के इतनी नज़दीक है और दूसरी कनपटी

की ओर भागी जा रही है। नतीजा यह कि जिस चेहरे पर दैवी आभा, निश्छलता और पवित्रता झलकनी चाहिए, उससे अब मक्कारी और दुनियादारी टपकती है । असल बात यह है कि तुम मन लगा कर काम नहीं करते, कापेन्दियूखिन।"

कज़ाक पहले तो मुँह सिकोड़े सुनता, स्त्रियों ऐसी अपनी सुन्दर आँखों से बेशर्मी के साथ मुसकराता और फिर अपनी सुहावनी आवाज़ में जो नशे के कारण कुछ भारी पड़ गई थी, कहता:

"तुम भी क्या बात करते हो, ईवान लारिओनोविच! भला यह भी कोई काम है? भगवान ने मुझे संगीत के लिए पैदा किया था, लेकिन आ फंसा हूं मैं यहाँ—देव-प्रतिमाओं के इस जेलखाने में!"

"जी में लगन और मेहनत करने की सकत हो तो हर चीज़ में दक्ष बना जा सकता है।"

"लानत है मुझ पर—कहां मैं और कहाँ यह काम... हवा से बातें करने वाले घोड़े जुती त्रोइका हांकने में जो मज़ा है... वाह...!"

और भट्टा-सा मुँह फाड़ कर लम्बे और हड़कम्पी स्वर में गाने लगता:

> त्रोइका मेरी रंग-बिरंगी
> सरपट दौड़ी जाय रे
> सजनी मेरी सोलह बरस की
> सौ-सौ बल खाय रे!

ईवान लारिओनोविच उसकी ओर देख कर मुसकराता, अपनी भूरी नाक पर चश्मे को ठीक से बैठाता और चुपचाप वहां से

खिसक जाता। फिर, एक साथ मिलकर, बीसों आवाज़ें गीत के बोल उठातीं और एक बलशाली धारा का रूप धारण कर समूची वर्कशाप को ऊपर हवा में उठा लेती। गीत के स्वरों के साथ वर्कशाप भी हिंडोले की भांति झूलने लगती:

त्रोइका मेरी रंग बिरंगी
जोबन की बहार रे...

पाश्का ओदिन्तसोव, जो अभी काम सीख रहा था, अंडों की ज़र्दी निकालना बंद कर देता, और दोनों हाथों में अंडे के छिलके थामे, बढ़िया तेज़ आवाज़ में कोरस की पंक्तियाँ पकड़ता, अन्य सब उसका अनुसरण करते।

गीत की ध्वनि नशा बन कर सब पर छा जाती, अन्य किसी बात की उन्हें सुध नहीं रहती। एक साथ मिल कर सब के हृदय धड़कते, एक ही रागिनी में सब बहते और एकटक उस कज़ाक की ओर देखते जो गाते समय वर्कशाप का एकछत्र स्वामी और मालिक होता। वह सभी को, एक सिरे से, मंत्र मुग्ध कर लेता और वे एकटक उसकी बाँहों की हर हरकत का अनुसरण करते। उसकी बाँहें इस तरह लहरातीं मानो वह अभी हवा में तैरने लगेगा। उसका जादू यहाँ तक बढ़ता कि अगर वह, एकाएक अपने गीत को रोक कर, बीच में ही चिल्ला उठता: "आओ साथियो, वर्कशाप की चिन्दियाँ उड़ा दें!" तो सब के सब, मय उन कारीगरों के जो अत्यन्त नफासतपसन्द और भले थे, पाँच मिनट के भीतर निश्चय ही समूची वर्कशाप को मल्वे का एक ढेर बना कर रख देते!

वह बिरले ही गाता, लेकिन उसके बनैले गीतों में सदा इतनी अदम्य शक्ति होती कि उनके सामने कोई टिक न पाता,

सभी को वे अपने साथ बहा ले जाते। चाहे हृदय कितना ही बुझा हुआ क्यों न हो, उसके गीत की आवाज़ सुन सभी चेतन हो जाते, एक अजीब जोश और उछाह उनमें लहराने लगता, और उनकी बिखरी हुई ताकतें एक स्वर-लय में गुंथ कर किसी बलशाली साज़ का रूप धारण कर लेतीं।

गीतों को सुन कर मुझे गायक पर और लोगों को मंत्र-मुग्ध करने की उसकी अद्‌भुत शक्ति पर ईर्ष्या होती। कम्पनशील आतंक का मुझमें संचार होता, इस हद तक मैं उमड़ता-घुमड़ता कि हृदय दुखने लगता, खूब खुलकर रोने और गाते हुए लोगों के सामने अपना हृदय चीर कर रख देने के लिए जी ललक उठता:

"ओह, तुम सब मुझे कितने प्यारे लगते हो!"

तपेदिक के मरीज़ दावीदोव का भी मुँह, जिसका रंग पीला पड़ गया था और जिसके शरीर पर बाल ही बाल नज़र आते थे, अंडा फोड़ कर अभी-अभी बाहर निकले कौवे की भांति खुल जाता।

केवल कज़ाक ही अकेला ऐसा था जिसके गीत इतने आल्हादपूर्ण और इतने तूफ़ानी होते थे। अन्यथा मूर्तिसाज़, आम तौर से, उदासी में डूबे और बोझिल गीत गाते थे, जैसे—'पत्थर हो गए दिल लोगों के', 'आह, घेर लिया जंगल ने, नन्हें जंगल ने', अथवा अलेक्सान्दर प्रथम की मृत्यु का वर्णन करने वाला गीत—'फिर आया वह, हमारा अलेक्सान्दर, और डाली नज़र उसने अपने वीर सैनिकों पर'।

कभी-कभी कारखाने के सब से अच्छे चेहरासाज़ जिखरेव के कहने से वे गिरजे के गीत भी गाते, लेकिन उन्हें गाने में वे भूले-भटके ही सफल हो पाते। जिखरेव हमेशा ऐसी धुनों और रागिनियों

के पीछे सिर धुनता जिन्हें सिवा उसके और कोई न समझ पाता। दूसरों का गाना उसे पसन्द न आता और वह उनके गाने की बराबर आलोचना करता रहता।

वह एक दुबला-पतला आदमी था। आयु पेंतालीस के करीब, बालों की एक आवारा लट अर्द्धचक्र ऊर्धचन्द्र की भांति ग़ंजी खोपड़ी पर फैली हुई, भारी और काली भौंहें जो मूछों की भांति मालूम होती थीं। ताम्बे से तपे और बढ़िया नाक नक्शेवाले उसके गैर-रूसी चेहरे पर घनी और नुकीली दाढ़ी खूब फबती थी। लेकिन यह फबन उसकी दाढ़ी में ही थी, तोते ऐसी नाक के नीचे उग आई मूछों में नहीं जो उसकी भौंहों के सामने बिल्कुल फालतू मालूम होती थीं। उसकी नीली आँखें एक-दूसरे से भिन्न थीं—बाईं आँख दाहिनी से बड़ी नज़र आती थी।

"पाश्का!" मेरी ही भांति काम सीखने वाले साथी से ऊँचे स्वर में वह कहता।—"ज़रा शुरू तो करो 'हे दयामय दीनबंधु!' देखो, सब चुप हो कर सुनो!"

कमीज़ पर बंधे गमछे से हाथ पोंछते हुए पाश्का शुरू करता:

"हे दयामय..."

"दी-ई-ई-ई-न ब-अ-अ-अ-न्धु..."—अनेक अवाज़ें एक साथ मिल कर 'दीन बन्धु' को ऊपर उठातीं और विचलित जिखरेव चिल्लाना शुरू करता:

"मेढ़क की भांति न टर्राओ, सितानोव! अपनी आवाज़ नीची करो जिससे मालूम हो कि आत्मा की गहराई में से वह निकल रही है।"

सितानोव ऐसी आवाज में 'हे दयामय' की खिचड़ी पका रहा था मानो बैरल को उलट कर वह उसे ढपाढप बजा रहा हो:

"हम हैं दास तिहारे..."

"पूह, यह भी कोई ढंग है! 'दयामय' का नहीं, मानो भूकम्प का आवाह्न किया जा रहा हो जिससे धरती कांपने लगे, दरवाज़े और खिड़कियाँ खड़खड़ाने लगें!"

जिखरेव का रोम-रोम किसी रहस्यमय आवेश में फड़कने लगता, उसकी अजीब-गरीब मूंछनुमा भौंहें उठतीं और गिरतीं, उसकी आवाज़ लड़खड़ाने लगती, और उसकी उँगलियाँ किसी अदृश्य साज़ के तारों को झनझनाती मालूम होतीं।

"हम हैं दास तिहारे—क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि यह बात ढोल बजा कर ऐलान करने की नहीं है?" भेदभरे अन्दाज़ में वह कहता।—"ऊपर का खोल उतार कर, एकदम भीतर से आवाज़ निकालनी चाहिए। लेकिन तुम हो कि प्रभु की छाती पर सवार होकर चिल्लाते हो: हम हैं दास तिहारे! भगवान तुम्हारा भला करे, क्या तुम इतना भी नहीं समझते?"

"यह सब समझते तो फिर कहना ही क्या था!" सितानोव किसी तरह बात बनाता।

"तो जाने दो। यह गीत तुम्हारे बस का नहीं!"

वह खीज कर कहता और अपने काम में जुट जाता। वह हम सबसे अच्छा कारीगर था। वह हर तर्ज़ के चेहरे बना सकता था—यूनानी, फ़्रीयाजस्की या इतालवी। देव-प्रतिमा का आर्डर मंजूर करने से पहले लारिओनोविच हमेशा उससे सलाह लेता। मूल देव-प्रतिमाओं का वह बहुत बड़ा प्रेमी और पारखी था। चमत्कार दिखाने वाली बहुमूल्य देव-प्रतिमाएँ—जैसे फ़ेओदोरोव, स्मोलेन्स्क और कज़ान मरियमों की प्रतिमाएँ उसको दी जातीं। लेकिन, मूल प्रतिमाओं या उनके नमूनों का ध्यान से अध्ययन करते हुए, वह ज़ोरों से झुंझला उठता:

"मूल प्रतिमाएँ क्या हैं, मानो खूंटे हैं जिनसे हम बंधे हैं! देखो न, ज़रा भी इधर-उधर नहीं हो सकते। बस, मक्खी पर मक्खी मारे जाओ!"

कारख़ाने में सभी उसे मानते थे और उसका दर्जा सब से बड़ा था। फिर भी, अन्य सब की भांति, वह किसी पर रौब नहीं गांठता और काम सीखने वालों के साथ—पावेल और मेरे साथ—बड़ी नरमी से पेश आता। ले-देकर वही एक ऐसा था जो हमें अपना हुनर सिखाने में आनाकानी नहीं करता था।

वह एक अच्छी-खासी पहेली था। कुल मिला कर वह कोई मौजी आदमी नहीं था। कभी-कभी, पूरे सात दिन तक, वह मुँह न खोलता और गूँगे-बहरे की भांति काम में जुटा रहता। वह नज़र उठा कर हमारी ओर देखता भी तो इस तरह मानो कहीं दूर से किसी अजीब और अनजानी चीज़ को पहली बार देख रहा हो। यों गाने का वह बहुत शौकीन था, लेकिन जब गाने का अवसर आता तो वह गुमसुम बन जाता, और ऐसा मालूम होता मानो वह बहरा हो गया हो। न वह खुद गाता, न दूसरों के गाने की आवाज़ उसके कानों को छूती प्रतीत होती। एक-एक कर सभी उसपर अपनी नज़र डालते और उसकी पीठ पीछे कनखियों का आदान-प्रदान करते। लेकिन वह था कि प्रतिमा-बोर्ड को आड़ा कर उसका एक सिरा अपने घुटनों पर और दूसरा मेज़ के किनारे पर साधे हुए अपने काम में डूबा रहता, एक क्षण के लिए भी वह अपना सिर न उठाता और जान खपाकर महीन ब्रुश से प्रतिमा के नाक-नक्शा उभारता। काम करते समय खुद उसका चेहरा भी उतना ही अजीब और अजनबी मालूम होता जितना कि प्रतिमा का।

सहसा, बहुत ही दो टूक और आहत से स्वर में, वह बड़-बड़ा उठता:

"'प्रेदतेचा'—क्या मतलब है इसका? प्राचीन स्लाव भाषा में 'तेच' का अर्थ है 'जाना' और 'प्रेद' का 'आगे', तो प्रेदतेचा का अर्थ हुआ वह जो आगे जाए,—अर्थात आगे जानेवाला, या अग्रदूत, बस इतना ही और कुछ नहीं!"

उसकी बड़बड़ाहट सुन सब चुपचाप हँसते, छिपी हुई नज़रों से उसे अपनी हँसी का निशाना बनाते और उसके मुँह से निकले अजीब शब्द ख़ामोशी में गूँजते रहते:

"और भेड़ की खाल का लबादा इसे पहनाया गया है। अग्रदूत और भेड़ की खाल का लबादा। नहीं, इसे तो परों से लैस होना चाहिए!"

तभी किसी कोने में से आवाज़ आती:

"क्या हवा से बातें कर रहे हो?"

लेकिन वह कुछ जवाब न देता, या तो वह सुनता नहीं या सुन कर भी अनसुना कर देता। उसके शब्द, निस्तब्धता के गर्भ को वेध कर, एक बार फिर प्रकट होने लगते:

"हमें उनकी जीवनियों से परिचित होना चाहिए, लेकिन उन्हें, उन पवित्र पुस्तकों को, क्या कोई समझता है? हम क्या जानते हैं? पर कटे पक्षी की भांति हमारा जीवन बीतता है... चेतनाविहीन, आत्माविहीन... मूल कृतियों के नमूने ही हमारे पास हैं, लेकिन हृदय नहीं।"

इस तरह बड़बड़ा कर जब वह अपने विचार प्रकट करता तो सितानोव को छोड़ अन्य सब के होठों पर मुसकराहट दौड़ जाती और उनमें से कोई एक, अदबदा कर, बहकना शुरू करता:

"देख लेना, शनिवार के दिन यह शराब के प्याले में गड़गच्च नज़र आएगा!"

लम्बा और कड़ियल सितानोव जो बाईस साल का बछेरा था, अपना गोल-मटोल और अभी तक दाढ़ी-मूंछ, बल्कि भौंहों तक से

अछूता चेहरा उठा कर उदास और सोच में डूबी नज़र से कोने की ओर देखता।

मुझे याद है कि एक बार, फेओदोरोव मरियम की प्रतिलिपि तैयार करने के बाद उसे मेज़ पर रखते समय, जिखरेव बुरी तरह विचलित हो उठा था और ज़ोरों से उसने कहा था:

"काम सम्पन्न हुआ, जगत जननी, तुम वह घट हो जिसमें आश्रय पाने के लिए पीड़ित मानवता का हृदय उमड़ता-घुमड़ता है और उसके आँसुओं की धारा बहने लगती है...।"

फिर, जो कोट हाथ लगा उसी को अपने कंधे पर डाल वह बाहर निकल गया—शराबखाने की ओर। युवकों ने खुशी से उछल कर हँसते हुए सीटियाँ बजाई, बूढ़ों ने ईर्ष्या से लम्बी साँसें भरीं, लेकिन सितानोव चुपचाप उठ कर देव-प्रतिमा के पास पहुँचा, ध्यान से उसे देखा, फिर बोला:

"नशे में गड़गच्च होने के सिवा और चारा भी क्या है? कलाकृति से विदा होने का दुःख शराब के प्याले में डूब जाएगा। उसके इस दुःख को भला हर कोई कैसे समझ सकता है?"

जिखरेव हमेशा शनिवार के दिन अपना रंगपानी शुरू करता। और उसका यह रंगपानी, नशे के आदी अन्य मज़दूरों के खुल खेलने जैसा नहीं, बल्कि असाधारण होता। उसके रंगपानी की शुरूआत इस तरह होती: सुबह वह एक पुर्ज़ा लिखता और उसे पावेल के हाथ रवाना कर देता, उसके बाद ठीक भोजन के समय से कुछ पहले, लारिओनोविच से कहता :

"आज मुझे हम्माम जाना है।"

"कब तक लौटोगे?"

"सो तो..."

"अच्छी बात है। लेकिन मंगल तक ज़रूर आ जाना!"

जिखरेव अपनी गंजी खोपड़ी हिला कर हामी भरता, और उसकी भौंहें थिरकने लगतीं।

हम्माम से लौटने के बाद सज-सजा कर वह पूरा सांवरिया बन जाता—कलफ़चढ़ी बढ़िया कमीज़, गले में रूमाल और रेशमी जाकेट की जेब से चांदी की लम्बी चेन लटकती हुई। फिर, चलते समय, पावेल और मुझे डांट पिलाता:

"देखो, आज रात वर्कशाप की खूब मेहनत से सफ़ाई करना। लम्बी मेज़ को रगड़-रगड़ कर धोना। ऐसा न हो कि कोई दाग-धब्बा रह जाए!"

देखते-न-देखते कारखाने में छुट्टी का समा छा जाता। कारीगर अपनी मेज़ों को झाड़-पोंछ कर कायदे से लगाते, फिर हम्माम जाकर गुसल करते और जल्दी से साँझ का भोजन पेट में डालते। भोजन के बाद बीयर, मदिरा और खाना लेकर जिखरेव प्रकट होता। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री आती, आकार-प्रकार और डील-डौल में पूरी बावनग़ज़ी, साढ़े छै फ़ुट ऊंची। जब वह आती तो उसके अनुपात में हमारी सारी कुर्सियाँ और स्टूल खिलौनों की भांति मालूम होते, यहाँ तक कि लम्बा सितानोव भी उसके सामने निरा बच्चा-सा दिखाई देता। उसकी काठी मजबूत और सुघड़ थी, एक छातियों को छोड़ कर जिनका बेतुका उभार उसकी ठोड़ी को छूता था। उसकी चाल-ढाल भोंडी और ढीली-ढाली थी। आयु हालांकि चालीस की सीमा लांघ चुकी थी, फिर भी घोड़े ऐसी बड़ी-बड़ी आँखों वाले उसके भावशून्य चेहरे पर अभी तक चिकनाई और ताज़गी मौजूद थी, और उसका छोटा-सा मुँह बाज़ारू गुड़िया की भांति रंगा-चुना था। होठों पर हँसी लाकर वह सब से अपना चौड़ा और गर्म हाथ मिलाती, और बेमतलब की बातें मुँह से निकालती:

"मज़े में तो हो न? आज बहुत ठंड है। ओह, तुम्हारा कमरा कितना गंधाता है?—रंग-रोगन की गंध मालूम होती है। और सब तो ठीक-ठाक हैं न?"

यों देखने में वह अच्छी लगती—चौड़े पाट में बहने वाली नदी की भांति सबल और शान्त, लेकिन जब वह बोलती तो उबकाई आने लगती। हमेशा बेरस और बेकार की बातें उसके मुँह से निकलतीं। कुछ कहने से पहले वह अपने गुलाबी गालों को फुलाती जिससे उसका चेहरा और भी गोल-मटोल हो जाता।

युवक खिलखिलाते और एक-दूसरे से कानाफूंसी करते:

"औरत हो तो ऐसी,—जाने किस सांचे में ढालकर खुदा ने इसे तैयार किया है!"

"अच्छी-खासी किसी गिरजे की मीनार मालूम होती है!"

होंठों को भींच कर और हाथों को छातियों के नीचे जोड़ कर वह समोवर के पीछे वाली मेज़ पर बैठ जाती, और अपनी घोड़े ऐसी भली आँखों से एक-एक करके सब पर नज़र डालती।

सभी उसका मान करते, और युवकों के हृदय उसे देखकर सहमे-सहमे-से हो जाते। ललचाई नज़रों से वे उसके भीमाकार शरीर की टोह लेते, लेकिन उसकी सर्वव्यापी नज़र की लपेट में आते ही उनके गाल लाल हो उठते और वे अपनी गरदन झुका लेते। जिखरेव भी उसके साथ अदब से पेश आता, 'हमारी पड़ोसिन' कह कर कायदे से उसे सम्बोधित करता और मेज़ से उठ कर जब कोई चीज़ उसे देता तो झुक कर दोहरा हो जाता।

"ओह, इतनी तकलीफ़ क्यों करते हो?" वह अलस भाव से मीठे अन्दाज़ से कहता।—"सच, तुम मेरे लिए बहुत परेशान होते हो!"

उसके हर अन्दाज़ से फ़ुरसत का भाव टपकता। उसे कभी भी किसी काम की जल्दी नहीं मालूम होती। उसके हाथ केवल कोहनियों

तक हरकत करते। कारण कि कोहनियों से ऊपर का हिस्सा वह दोनों बाज़ू कस कर सटाए रहती। उसके बदन से तन्दूर से अभी-अभी निकली ताज़ी पाव रोटी की गंध आती जो दिल व दिमाग़ पर छा जाती।

बूढ़ा गोगोलेव उसे देख कर उलटा हो जाता और उसकी तारीफ़ करता कभी न अघाता जिसे वह, गरदन को श्रद्धाभाव से झुकाए, इस तरह सुनती मानो किसी पादरी के मुँह से धर्म-पाठ सुन रही हो। जब कभी वह शब्दों में उलझ जाता तो उसकी इस कमी को वह खुद पूरा कर देती:

"अरे नहीं, जवानी में हम इतनी सुन्दर नहीं थीं, यह सौन्दर्य तो खेलने-खाने और अनुभवों में बढ़ती होने के साथ-साथ फूटा है। तीस वर्ष की होते न होते हम बिल्कुल चुम्बक बन गईं, बड़े-बड़े सफ़ेद पोश तक मेरी तांक-झांक में रहते, और एक नवाब साहब तो इतने मुग्ध हुए कि हमको अपनी घोड़ा गाड़ी ही भेंट करने लगे...।"

कापेन्दियूखिन जो अब तक नशे में धुत्त और हाल-बेहाल हो चुका था, तीखी नज़र से उसे देखते हुए पूछता:

"किस चीज़ के बदले में?"

"यह भी कोई बताने की बात है?" वह कहती।—"निश्चय ही हमारे प्रेम के बदले में!"

कापेन्दियूखिन कुछ सकपका जाता। भुनभुनाते हुए कहता:

"प्रेम...प्रेम...क्या मतलब है तुम्हारा?"

"बहुत बनो नहीं," सहज भाव से वह जवाब देती,—"भला यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारे जैसे खूबसूरत आदमी से प्रेम की बारहखड़ी छिपी रहे?"

कारख़ाना कहकहों की आवाज़ में डोलने लगता और सितानोव कापेन्दियूखिन के कान में बुदबुदाता:

"मूर्ख है या उससे भी बदतर। सच कहता हूँ, ऐसी स्त्री से प्रेम करना जान-बूझ कर जंजाल मोल लेना है।"

नशे से उसका चेहरा फ़क पड़ गया था, कनपटी पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं और उसकी चतुर-चपल आँखों में आग की लपटें मानो खतरे का सिगनल दे रही थीं। खर्राटे के साथ अपनी भोंडी नाक को घुमाते और पनीली आँखों को ऊँगलियों से पोंछते हुए वृद्ध गोगोलेव ने पूछा:

"तुम्हारे कितने बच्चे हुए?"

"केवल एक।"

एक लैम्प मेज़ के ऊपर लटका था और दूसरा तन्दूर के उधर कोने में। उनकी धीमी रोशनी उन्हीं तक सीमित रहती और कारखाने के कोनों में गहरा अंधेरा छाया रहता जिनमें चेहरे-मोहरे-विहीन आकृतियाँ नज़र आतीं। हाथों और चेहरों की जगह अंधकार के सूने धब्बों को देख कर भूत-प्रेतों की दुनिया का गुमान होता और यह भावना और भी ज़ोरों से सिर उभारती कि सन्तों के शरीर, इन धुंधले कमरों में अपने रंगीन कपड़ों को छोड़ कर, किसी रहस्यमय ढंग से निकल भागे हैं। काँच की गेंदें ऊपर खींच कर छत में लगे हुकों से अटका दी गयी थीं और वे, धुवें के बादलों के बीच, नीली-नीली-सी चमक रही थीं।

जिखरेव को जैसे चैन नहीं था। सबकी ख़ातिर-तवाज़ा करता वह मेज़ के चारों ओर मंडरा रहा था। उसकी गंजी खोपड़ी कभी एक की ओर झुकती तो कभी दूसरे की ओर। उसकी पतली उँगलियाँ, जिनमें केवल चमड़ी ही दिखाई देती थी, बराबर हरकत कर रही थीं। वह अब और भी दुबला हो गया था और उसकी तोते सी नाक और भी नुकीली हो गई थी। प्रकाश के सामने से आड़ा होकर

जब वह गुज़रता तो उसके गाल पर नाक की काली लम्बी छाया फैल जाती।

गूंजती हुई आवाज़ में वह कहता:

"साथियो, खूब छक कर खाओ और पियो!"

और स्त्री, मालकिन की भांति, गुनगुनाती:

"तुमने भी हद कर दी, पड़ोसी! इतना तकल्लुफ़ भी किस काम का? हरेक के पास उसके अपने हाथ और उसका अपना पेट मौजूद है। जिसमें जितनी समात है, उतना ही तो वह खाएगा।"

"परवाह न करो, साथियो! खूब जी भर कर खाओ!" जिखरेव विचलित स्वर में चिल्लाता।—"हम सब उसी एक खुदा के बन्दे हैं। आओ, मिलकर उसका गुण-गान करें: 'हे दयामय'...।"

लेकिन 'हे दयामय' का स्वर आगे न बढ़ पाता। सब खाने-पीने में इतना व्यस्त थे कि 'हे दयामय' बहुत पीछे छूट गए। कापेन्दियूखिन ने अपना हरमोनियम संभाला और युवक वीक्तर सलाऊतीन, जो कौवे की भांति काला और गम्भीर था, तम्बूरिन से गहरी घन्नाटेदार आवाज़ निकालने लगा। जो कसर रह गयी उसे तम्बूरिन के इर्द-गिर्द पड़े मंजीरों की आल्हादपूर्ण ध्वनि ने पूरा कर दिया।

"रूसी नृत्य हो जाय!" जिखरेव ने आदेश दिया। फिर बोला: "पड़ोसिन! अब आप भी उठने की कृपा कीजिए!"

"ओह, मेरे पड़ोसी!" स्त्री ने एक लम्बी सी सांस ली और अलस भाव से उठते हुए कहा:—"तुम भी कितना तकल्लुफ़ करते हो!"

उठ कर वह कमरे के बीचों बीच जाकर ठोस घंटाघर की भांति वहाँ खड़ी हो गयी। किशमिशी रंग का चौड़ा घाघरा, पीले

रंग की महीन चोली वह पहने थी और सिर पर लाल रंग का रूमाल बांधे थी।

हरमोनियम की सुरीली आवाज़ आती, उसकी छोटी-छोटी घंटियाँ टुनटुनातीं और तम्बूरिन भारी तथा बेरस उसाँसें छोड़ती जो सुनने में बड़ी बुरी मालूम होती मानो कोई पागल आदमी सुबकियाँ और आहें भरता हुआ दीवार से सिर टकरा रहा हो।

जिखरेव नाचना नहीं जानता था। न उसे ताल का कुछ ज्ञान था, न सुर का। बस योंही अपने पाँव उठाता, चमचमाते जूतों की एड़ियों को फ़र्श पर ठकठकाता, छोटे डग भर कर बकरी की भांति इधर-से-उधर कूदता। ऐसा मालूम होता मानो उसने किसी दूसरे के पाँव लगा लिए हों या उसके पाँवों ने शरीर का साथ न देने का इरादा कर लिया हो। मकड़ी के जाले में फंसी मक्खी या मछियारे के जाल में फंसी मछली की भांति, बहुत ही भद्दे ढंग से, उसका बदन बल खाता, तुड़ता और मुड़ता। लेकिन सभी, वे लोग भी जो नशे में धुत्त थे, बड़े ध्यान से उसकी इस उछल-कूद का अनुसरण करते। उनकी आँखें, एकटक, उसके चेहरे और हाथों पर जमी रहतीं। जिखरेव के चेहरे का भाव इतनी तेज़ी से बदलता कि देख कर अचरज होता: कभी कोमल और लजीला, कभी गर्व से भरा, कभी तेज़ और तीखा, कभी चिंगारियाँ-सी छोड़ता। सहसा ऐसा मालूम होता जैसे किसी चीज़ ने उसे आहत कर दिया हो—दर्द से वह चीख उठता और अपनी आँखें बंद कर लेता। जब वह आँखें खोलता तो गहरी उदासी में डूबा दिखाई देता। वह अपनी मुट्ठियाँ भींच लेता और रेंगता हुआ स्त्री के पास पहुँचता। फिर, फर्श पर पाँव पटक कर घुटनों के बल बैठते हुए वह बाँहें फैलाता और भौहें उठा कर प्रेम में पगी मुसकराहट का उसे अर्घ्य चढ़ाता। गरदन झुका कर वह

उसकी ओर देखती, मुसकरा कर उसे कृतार्थ करती, और अपने शान्त अन्दाज़ में उसे चेताती:

"यह क्या, पड़ोसी? इस तरह अपने साथ ज़्यादती न करो!"

मोम की भांति पिघल कर वह अपनी आँखें बन्द करने का प्रयत्न करती, लेकिन उसकी सिक्काशाही आँखें इतनी बड़ी थीं कि बंद होने से इन्कार कर देतीं, और इसके फलस्वरूप पड़ी झुर्रियाँ उसके चेहरे को केवल बदनुमा बनातीं।

नाचने के मामले में वह भी काफ़ी कच्ची थी। उसका भारी-भरकम शरीर केवल धीरे-धीरे झूमता और बिना आवाज़ किए इधर-से-उधर थिरकना जानता था। उसके बाएँ हाथ में एक रूमाल था जिसे वह अनमने भाव से हिलाती। उसका दाहिना हाथ कूल्हे से चिपका रहता और ऐसा मालूम होता मानो वह कोई भीमाकार जग हो।

और जिखरेव इस बुत-बरोला स्त्री के चारों ओर मंडराता रहता। उसके चेहरे पर विरोधी भाव आते और एक-दूसरे को काटते हुए विलीन हो जाते। ऐसा मालूम होता मानो वह अपने भीतर एक साथ दस आदमी छिपाए हो और उनमें से प्रत्येक अपना एक अलग स्वभाव रखता हो: एक संकोची और छुईमुई की भांति लजीला, दूसरा एकदम जंगली और डरावना, तीसरा खुद डरा और सहमा हुआ, ऐसा मालूम होता मानो इस घिनौनी हिडम्बा के चंगुल से निकल भागने के लिए हाथ-पांव पटकते हुए चिचिया रहा हो। सहसा एक दूसरा ही चेहरा नज़र आता—घायल कुत्ते का चेहरा जिसके दाँत निकले थे और जिसका बदन रह-रह कर बल खा रहा था। यह बदरंग और भद्दा नाच देख कर मेरा हृदय भारी हो गया और सैनिकों, बावर्चियों, धोबिनों तथा कुत्ते-कुत्तियों के निहंग घिनौनेपन की मुझे याद आयी।

सिदोरोव के शान्त शब्द मेरे दिमाग़ में घूमते:

"ऐसी चीज़ों के बारे में सभी झूठा ढोंग रचते हैं। उन्हें शर्म मालूम होती है, क्योंकि असल में प्रेम-व्रेम कुछ नहीं होता, केवल मौज की खातिर वे यह सब करते हैं।"

मेरे मन में यह बात नहीं जमती कि 'ऐसी चीज़ों के बारे में सभी झूठा ढोंग रचते हैं'। क्या रानी मारगोट भी झूठा ढोंग रचती थी? और जिखरेव?—निश्चय ही उसे ढोंगियों की पांत में नहीं रखा जा सकता। और मुझे यह भी मालूम था कि सितानोव राह-चलती किसी हरजाई से प्रेम करता था और इस प्रेम के बदले में वह एक शर्मनाक बीमारी का शिकार भी हो गया था। उसके साथियों ने सलाह दी कि वह उस हरजाई को मार-पीट कर ठिकाने लगा दे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, उल्टे एक कमरा किराये पर लेकर उसे दे दिया, डाक्टर से उसका इलाज कराया, और उसके बारे में बातें करते समय वह हमेशा भारी लगाव और कोमलता का परिचय देता था।

लम्बे-चौड़े डील-डौलवाली स्त्री अभी भी मटक रही थी, और अपने हाथ में लिए रूमाल को हिला रही थी। उसके चेहरे पर वही एक पेटेन्ट मुसकान जड़ी थी। जिखरेव भी, इलहामी अन्दाज़ में, उसके इर्द-गिर्द उछल रहा था। उन्हें देख कर मुझे खयाल आया: क्या यह घोड़नी भी उसी हौवा की औलाद है जिसने खुद खुदा तक को चकमा दिया था! मेरा हृदय घृणा से भर गया।

भयावनी प्रतिमाएँ, आकृति और चेहरे-मोहरे से शून्य, अंधेरे कोनों में से अभी भी झाँक रही थीं, खिड़कियों से बाहर अंधेरी रात घिरती आ रही थी और कारखाने के ऊमस-भरे कमरों के लैम्प अंधेरे को दूर करने के बजाय उसे और भी घना बना रहे थे। पाँवों की थपथपाहट और आवाज़ों की भुनभुनाहट के बीच हाथ-मुँह धोने के

ताम्बे के बरतन के नीचे रखी बाल्टी में पानी के गिरने की टपाटप आवाज़ भी सुनाई दे रही थी।

पुस्तकों में चित्रित जीवन से यह सब कितना भिन्न था—भयानक रूप से भिन्न! शीघ्र ही सब ऊबने लगे। तभी कोपेन्दियूखिन ने हरमोनियम तो सलाऊतीन के हाथों में पटका और चिल्ला कर बोला:

"हाँ तो साथियो, अब अगिया बैताली नाच के लिए तैयार हो जाओ!"

वह वान्का त्सिगानोक की भांति नाचता था, ऐसा मालूम होता मानो हवा में उड़ रहा हो। पावेल ओदिन्त्सोव और सोरोकिन के पाँव की थापों ने भी तेज़ी पकड़ी। यहाँ तक कि तपेदिक का मारा दावीदोव भी बीच में आ कूदा। धूल और धुवें, वोडका और जले हुए सासेजों की चमड़े ऐसी तीखी गंध के मारे खाँसता और खखारता, और इसके बाद फिर थिरकने लगता।

नाचने, गाने और हा-हा-ही-ही का यह सिलसिला चलता रहा। ऐसा मालूम होता मानो वे जीवन की इस घड़ी को आह्लादपूर्ण बनाने पर तुले हों और एक-दूसरे को उकसाते हुए ज़िन्दादिली, चपलता और सहनशक्ति की कसौटी पर कस रहे हों।

सितानोव, नशे में धुत्त, एक-एक के पास जाकर लड़खड़ाते से स्वर में पूछता:

"ज़रा बताओ तो सही, इस घोड़नी के प्रेम में वह कैसे फंस गया?"

लारिओनोविच अपने कड़ियल कंधों को बिचकाता। जवाब में कहता:

"क्यों, इसके पास क्या वह चीज़ नहीं है जो अन्य स्त्रियों के पास है? पर तुम क्यों औंधे मुँह गिरे जा रहे हो!"

और जिनके बारे में वे बातें कर रहे थे, इस बीच न जाने कब वे दोनों गायब हो गए। और मैं जानता था कि जिखरेव दो-तीन दिन से पहले नहीं लौटेगा। लौटने पर हम्माम में जाकर पहले वह गुसल करेगा और फिर, करीब दो सप्ताह तक, अपने कोने में जम कर बैठ जाएगा। किसी से न बोलेगा, न चलेगा, बस चुपचाप और अकेला, रोब के साथ अपने काम में जुटा रहेगा।

"क्या वे चले गये?" उदासी में डूबी अपनी भूरी नीली आँखों से समूचे कमरे को छानते हुए सितानोव ने कहा। उसका चेहरा अभी से बूढ़ा हो गया था, और वह ज़रा भी ख़ूबसूरत नहीं मालूम होता था, लेकिन उसकी आँखें बहुत ही स्वच्छ और भली थीं।

वह मेरे साथ मित्रता से पेश आता। इसका कारण कविताओं से भरी मेरी नोटबुक थी। वह खुदा में विश्वास नहीं करता था, और सच तो यह है कि एक लारिओनोविच को छोड़ यहाँ ऐसा और कोई नहीं था जिसके बारे में यह कहा जा सके कि वह खुदा में विश्वास करता है, खुदा के साथ उसकी लौ लगी है। खुदा के बारे में भी वे सब उसी तरह ताने-तिश्नों के लहजे में बातें करते जैसे कि नौकर अपने मालिकों के बारे में बातें करते हैं। लेकिन जब वे दोपहर या साँझ का भोजन करने बैठते तो क्रास का चिन्ह बनाना न भूलते, और रात को सोने से पहले बिला नागा खुदा का नाम लेते, उसके भजन गाते। रविवार के दिन, सब के सब, गिरजा जाते।

सितानोव इनमें से एक भी बात नहीं करता और इसी लिए सब उसे नास्तिक कहते।

"खुदा जैसी कोई चीज़ नहीं है," वह अपनी बात पर बल देते हुए कहता।

"खुदा नहीं है तो यह सारी दुनिया पैदा कैसे हुई?"

"मुझे नहीं मालूम।"

एक दिन मैंने उससे पूछा:

"यह तुम कैसे कहते हो कि खुदा नहीं है?"

"देखो न, खुदा का मतलब है ऊँचाई," अपनी लम्बी बाँहों को सिर से ऊँचा उठाते हुए उसने कहा और फिर फर्श की ओर इशारा करते हुए बोला: "और मानव का मतलब है निचाई। क्यों, ठीक है न? लेकिन धर्मग्रंथ कहते हैं कि खुदा ने मानव को अपनी छवि के अनुरूप बनाया है। अब तुम्हीं बताओ, गोगोलेव में किसकी छवि दिखाई देती है?"

मुझसे कोई जवाब देते न बना। गंदा और पियक्कड़ गोगोलेव, इतना बूढ़ा हो जाने के बाद भी, 'हस्तलाघव' की कुटेव नहीं छोड़ता था। नानी की बहन, येरमोखिन और व्यात्का निवासी वह सैनिक— एक-एक कर सभी मेरी आँखों के सामने घूम गए। इन लोगों में खुदा की छवि का भला कौन सा अंश देखा जा सकता था?

"सभी इन्सान सूअर हैं!" सितानोव कहता और फिर तुरत ही मुझे सँभालता:

"लेकिन चिन्ता न करो, मक्सिमोविच, अच्छे लोग उनमें भी मिल जाएंगे, निश्चय ही मिल जाएंगे!"

इसके साथ बैठने में मुझे ज़रा भी परेशानी न मालूम होती। जब कोई ऐसी बात आती जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता तो खुले हृदय से उसे स्वीकार करता।

"मैं नहीं जानता," वह कहता,— "मैंने कभी इस बारे में नहीं सोचा।"

यह भी उसकी एक असाधारण विशेषता थी। जिन लोगों से मैं अब तक मिल चुका था, वे सब यही दिखाते कि कोई चीज़

ऐसी नहीं है जिसकी उन्हें जानकारी न हो। हर चीज़ के बारे में वे राय देते, भले या बुरे फ़तवे कसते।

उसके पास भी एक नोटबुक थी जिसमें हृदय को मथने वाली अत्यन्त प्रभावशील कविताओं के साथ-साथ ऐसी तुकबंदियाँ भी दर्ज थीं जिन्हें पढ़ कर गाल जलने लगते और आँखें शर्म से नीची हो जातीं। यह देख कर मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। जब मैं उससे पुश्किन के बारे में बातें करता तो वह 'गावरीलियादा' की ओर इशारा करता जिसे उसने अपनी कापी में उतार रखा था।

"पुश्किन? हल्का-फुल्का कवि है। लेकिन बेनेदीक्तोव,—ओह, मक्सिमोविच, उसे तुम आँखों की ओट नहीं कर सकते,—वह बरबस ध्यान खींचता है। देखो न..."

वह अपनी आँखें बंद कर लेता और धीमे स्वर में गुनगुनाता:

उन्नत उरोज उसके
अद्भुत, अति सुन्दर...

निम्न पंक्तियों को वह बड़े ही प्रेम और गर्वपूर्ण आह्लाद से ज़ोर देते हुए बार-बार दोहराता:

उन्नत उरोज
सजग चौकन्ने प्रहरी
हृदय की गुप्त निधि के!

"क्यों कुछ समझ में आया?"

मुझे यह स्वीकार करते बड़ा संकोच मालूम होता कि मैं नहीं समझता वह क्यों इतना खुश हो रहा है।

कारख़ाने में मेरे ज़िम्मे कोई बहुत उलझन पैदा करने वाला काम नहीं था। तड़के ही, उस समय जब कि सब सोते होते, कारीगरों की चाय के लिए मैं समोवर गर्म करता। जागने पर रसोई में जाकर सब चाय पीते और मैं तथा पावेल कमरों को झाड़ते-बुहारते, अंडों की सफ़ेदी से ज़र्दी अलग करते जो रंग में मिलाने के काम आतीं, और इसके बाद मैं दुकान के लिए रवाना हो जाता। साँझ को मैं रंग घोल कर रोग़न तैयार करता और अपने उस्तादों के पास बैठ कर उनके काम करने के ढंग का 'अध्ययन' करता। शुरू-शुरू में तो इस अध्ययन में मेरा बड़ा जी लगता, लेकिन शीघ्र ही मैंने अनुभव किया कि करीब-करीब सभी कारीगर टुकड़ों में काम करना पसंद नहीं करते, और यह कि एक असह्य कुंठा उन्हें भीतर ही भीतर खाए जा रही है।

मेरा काम जल्दी ही निबट जाता और सांझ के खाली समय में मैं कारीगरों को अपने जहाज़ी जीवन के किस्से या पुस्तकों में पढ़ी कहानियाँ सुनाता। इस प्रकार, एकदम अनजान में ही, कारख़ाने में मैंने एक विशेष स्थान ग्रहण कर लिया,—एक तरह से मैं कारख़ाने का किस्सागो और पुस्तकें पढ़ कर सुनानेवाला बन गया।

मुझे यह मालूम करने में देर न लगी कि मैंने जितना कुछ देखा और जाना है, उतना इन लोगों ने नहीं। इनमें से अधिकांश, एकदम कच्ची उम्र में ही, अपने धंधों के तंग पींजरों में बंद हो गए थे और तब से उसी में बंद चले आ रहे थे। कारख़ाने में जितने भी लोग थे, उनमें केवल जिखरेव ही एक अकेला ऐसा था जो मास्को हो आया था और बड़े रोब के साथ, भौंहों में बल दे कर, वह इसका ज़िक्र करता था :

"मास्को पर आँसुओं का कोई असर नहीं होता। वहाँ एकदम चौकस रहना पड़ता है। ज़रा चूके नहीं कि गए!"

अन्य किसी को शूया या व्लादिमीर से आगे पाँव रखने का कभी मौका नहीं मिला था। मैं जब कज़ान का ज़िक्र करता तो वे पूछते:

"क्या वहाँ काफ़ी रूसी आबाद हैं? और वहाँ गिरजे भी हैं या नहीं?"

वे पेर्म को साइबेरिया समझते और उनके लिए यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि साइबेरिया युराल के भी उस पार है।

"युराल की पर्च और स्टर्जन मछलियाँ वहाँ से—कास्पियन सागर से—ही तो आती हैं? इसका मतलब यह कि युराल कास्पियन सागर में ही कहीं होगा।"

कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि वे मुझे जान-बूझ कर चिढ़ा रहे हैं। मिसाल के लिए ऐसे मौकों पर जब वे कहते कि इंगलैंड समुद्र के बीच एक जज़ीरा नहीं बल्कि उस पार है, और यह कि नैपोलियन का जन्म कलूगा के किसी कुलीन घराने में हुआ था। जब मैं उन्हें खुद अपनी आँखों देखी सच्ची चीज़ों के बारे में बताता तो वे बिरले ही यक़ीन करते, लेकिन रोंगटे खड़ी कर देने वाले किस्से और पेचीदा प्लाट वाली कहानियाँ वे बड़े चाव से सुनते। यहाँ तक कि बड़े-बड़े लोग भी सत्य की बजाय काल्पनिक कहानियाँ ज़्यादा पसंद करते। मैं साफ़ देखता कि कहानी जितनी ही अधिक अनहोनी तथा अघट घटनाओं से भरी होती, उतना ही अधिक ध्यान से वे उसे सुनते। मोटे तौर से यह कि वास्तविकता में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। सब भविष्य के रंगीन सपने देखना और वर्तमान के भोंडेपन तथा गरीबी पर भविष्य की सुनहरी चादर डाल कर उसे आँखों की ओट करना चाहते।

उनका यह रवैया मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। इसलिए और भी अधिक कि सत्य और कल्पना को एक-दूसरे से अलग करके देखने की भावना मुझमें तेज़ी से घर करती जा रही थी। मैं उस भेद को अब तेज़ी से पकड़ने लगा था जो मुझे आए दिन के जीवन और किताबी जीवन के बीच दिखाई देता था। मेरी आँखों के सामने असली, जीते-जागते, लोग मौजूद थे, लेकिन किताबों के पन्नों में वे कहीं नहीं दिखाई देते थे,—किताबों में न कहीं स्मूरी नज़र आता था, न कोयला झोंकने वाला याकोव, न अलेक्सान्दर, न जिखरेव, न नतालिया जैसी कपड़े धोने वाली स्त्रियां।

दावीदोव के ट्रंक में गोलित्सिन्स्की की कहानियों का एक फटा हुआ सा संग्रह, बुल्गारिन कृत "ईवान विजीगिन" और बैरन ब्राम्बियस की रचनाओं का एक संग्रह पड़ा था। ये सब पुस्तकें मैंने कारीगरों को पढ़ कर सुनाईं और वे सुनकर बहुत खुश हुए। लारिओनोविच ने कहा:

"किताबें पढ़ने से तू-तू मैं-मैं का शोर और आपस में लड़ना-झगड़ना सब साफ़ हो जाता है, और यह एक अच्छी बात है।"

मैं अब किताबों की टोह में घूमता, और जो भी पुस्तक मेरे हाथ लगती उन्हें पढ़ कर सुनाता। साँझ की वे बैठकें कभी नहीं भूलतीं। कारख़ाने में आधीरात का सन्नाटा छाया रहता, छत से लटकी काँच की गेंदें सफेद शीतल सितारों की भांति चमकतीं और उनकी किरनें मेज़ पर झुके हुए गंजे या बिखरे हुए बालों वाले सिरों पर पड़ती रहतीं। शान्त और गम्भीर भाव से वे पुस्तक सुनते, बीच-बीच में लेखक या पुस्तक के नायक की तारीफ़ में एकाध शब्द कहते जाते। पुस्तक सुनते समय वे एकदम बदल जाते, उनके सहमे और ध्यान-मग्न चेहरे बहुत ही भोले और भले मालूम होते। वे दिन से सर्वथा भिन्न रूप धारण कर लेते। मैं उनसे, और

वे मुझ से, पूर्ण अपनत्व का अनुभव करते। मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मैंने अपनी जगह पा ली हो।

एक दिन सितानोव बोला:

"पुष्तकें वसंती हवा के उस पहले झोंके के समान हैं जो बंद कमरे की खिड़की खोलने पर शरीर के रोम-रोम में समा जाता है।"

पुस्तकें पाना कठिन काम था। पुस्तकालय से पुस्तकें मिल सकती थीं, लेकिन यह चीज़ हमारी कल्पना से बाहर थी। ऐसी हालत में एक ही रास्ता था। वह यह कि जो भी मिलता, उसी से भिखारी की भांति पुस्तकें मांग कर काम चलाता। एक बार आग बुझानेवाली दमकल के मुखिया ने मुझे लेर्मन्तोव की कविताओं की एक पुस्तक दी। कविता भी कितनी शक्तिशाली चीज़ होती है, और किस हद तक वह लोगों को प्रभावित कर सकती है, यह मैंने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद बहुत ही सजीव रूप में जाना।

मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय जब मैंने "राक्षस" शीर्षक कविता पढ़नी शुरू की तो सितानोव ने उचक कर पहले किताब पर नज़र डाली, फिर मेरे चेहरे की ओर देखा। इसके बाद उसने अपना ब्रुश उठा कर नीचे रख दिया और अपनी लम्बी बाँहों को घुटनों के बीच खोंस कर, चेहरे पर मुसकराहट लिए, हिंडोले की भांति आगे-पीछे झूलने लगा। झकोलों के साथ-साथ उसकी कुर्सी भी चरचराती जाती।

"सुनो भाइयो, चुप होकर सुनो!" लारिओनोविच कहता और अपने हाथ का काम अलग रखते हुए वह भी सितानोव की मेज़ के पास आ जाता जहाँ मैं पुस्तक पढ़ कर सुना रहा था। कविता मेरे हृदय के तार झनझना देती, मेरी आवाज़ भर्रा जाती और आँखों में आँसू आ जाने की वजह से अक्षरों को

साफ़-साफ़ देखना मुश्किल हो जाता। लेकिन कविता से भी अधिक प्रभावित करता मुझे कमरे का निस्तब्ध वातावरण। ऐसा मालूम होता मानो चारों ओर की हर चीज़ गहरी उसाँसें लेर फैलती और बढ़ती जा रही हो, मानो कोई शक्तिशाली चुम्बक इन लोगों को मेरी ओर खींच रहा हो। पहला भाग समाप्त करते न करते सभी कारीगर अपनी जगह से उठ कर मेज़ से सट जाते। उनके चेहरे मुसकराते और भौंहें तन जातीं, और अपनी बाँहों को वे एक-दूसरे के गले में डाल लेते।

"रुको नहीं, पढ़े जाओ," पुस्तक के पन्ने पर मेरा सिर धकेलते हुए जिख़रेव कहता।

जब मैं पढ़ना समाप्त करता तो वह पुस्तक को अपने हाथ में उठा लेता, आँखों के पास ले जाकर उसका नाम पढ़ता और फिर उसे अपनी बगल में खोंसते हुए कहता:

"तुम्हें इसे एक बार फिर पढ़ना होगा। कल सुनाना। तब तक पुस्तक को मैं अपने पास चौकस रखूंगा।"

यह कह कर वह खिसक जाता, अपनी मेज़ की दराज़ खोलता, लेर्मन्तोव को उसमें बंद कर बाहर से ताला लगा देता और इसके बाद वह फिर अपने काम में जुट जाता। कारख़ाने में एक अजीब निस्तब्धता छा जाती। सब चुपचाप अपनी-अपनी जगहों पर पहुँच जाते। सितानोव खिड़की के पास जाकर निश्चल खड़ा हो जाता। उसका सिर खिड़की के शीशे से सटा रहता। जिखरेव एक बार फिर अपना ब्रुश नीचे रखता और कठोर स्वर में कहता:

"खुदा के बंदो, यही है वह चीज़ जिसे मैं जीवन कहता हूँ,—हाँ, जीवन इसी को कहते हैं!"

वह अपने कंधे बिचकाता, सिर नीचे झुका लेता और फिर कहता:

"राक्षस" की तस्वीर क्या मैं नहीं बना सकता? तवा-सा काला रंग, बेडौल बदन, आग की लपटों ऐसे पंख—एक दम सिन्दूरी, और चेहरा, हाथ और पाँव नीले, कुछ पीलापन लिए हुए, ठीक वैसे ही जैसे चांदनी रात में बर्फ़ होती है!"

भोजन के समय तक, बेचैनी से बल खाता, वह अपने स्टूल से बंधा रहता। उँगलियों से मेज़ बजाते हुए वह राक्षस के बारे में, हौवा और स्त्रियों के बारे में, और स्वर्ग तथा सन्तों के गुनाहों में फंसने के बारे में, न जाने क्या-क्या बुदबुदाता रहता।

"इसमें ज़रा भी झूठ नहीं!" वह बल देकर कहता। —"जब सन्त तक पाप में डूबी स्त्रियों के साथ मुँह काला करने से नहीं चूकते तो राक्षस को भला-बुरा कहना निश्चय ही फिजूल है। उसका तो काम ही रंगीन डोरे डाल कर अछूती आत्माओं को अपने जाल में फंसाना है।"

जवाब में कोई कुछ न कहता। शायद अन्य भी, मेरी ही भांति, अभी तक इतने मंत्रमुग्ध थे कि उन्हें बोलना अखरता था। वे काम कर रहे थे, लेकिन बेमन से, घड़ी पर एक आँख जमाए; और नौ का घंटा बजते ही सब तुरत काम बंद कर देते।

सितानोव और जिखरेव बाहर सहन में निकल आते। मैं भी उनके पास पहुँच जाता। सितानोव सिर ऊँचा उठा कर तारों की ओर देखता, और फिर गुनगुनाने लगता:

है यह कारवाँ
भटका हुआ, खोया हुआ
अथाह शून्य के विस्तार में!

"ज़रा सोचो, कैसी-कैसी पंक्तियाँ लिखते हैं!"

और तेज़ सर्दी में कुड़-मुड़ाते हुए जिखरेव कहता:

"नहीं, मुझे तो कुछ याद नहीं पड़ता—कुछ याद नहीं। लेकिन दिखाई सब कुछ पड़ता है। कितनी अजीब बात है कि मानव शैतान पर भी तरस खाने के लिए बाध्य कर देता है। क्यों, ठीक कहता हूँ न?"

"हाँ," सितानोव सहमति प्रकट करता।

"बस, यही है मनुष्य!" जिखरेव कभी न भूलने वाले अन्दाज़ में कहता।

लौट कर फाटक पर पहुँचते समय वह मुझे ताकीद करता:

"देखो, दुकान पर इस किताब का किसी से ज़िक्र तक न करना। निश्चय ही यह उन किताबों में से है जो ज़ब्त हो चुकी हैं।"

यह सुन कर मेरी खुशी का वारपार न रहता। सो ऐसी होती हैं वे वर्जित पुस्तकें जिनके बारे में पाप-स्वीकारोक्ति के समय धर्म-पिता ने मुझसे पूछ-ताछ की थी!

सांझ के भोजन के समय भी सब खोये-खोये-से रहते। वह चहल-पहल और नोक-झोंक गायब हो जाती जो नित्य दिखाई देती थी। ऐसा मालूम होता जैसे किसी अनहोनी और भारी घटना ने सब के दिमाग़ों को उलझा लिया हो। भोजन के बाद जब अन्य सब सोने के लिए चले जाते तो जिखरेव पुस्तक निकालता और मुझसे कहता:

"यह लो, इसे फिर पढ़ कर सुनाओ। लेकिन धीरे-धीरे पढ़ना, बिना किसी उतावली के!"

भनभनाहट सुन उनमें से कितने ही अपने विस्तरों से चुपचाप उठते और मेज़ के पास आकर उसके इर्द-गिर्द फ़र्श पर ही पसर जाते। उनके बदन अधनंगे होते और घुटनों को मोड़कर वे बैठे रहते।

और जब मैं पढ़ना ख़त्म करता तो जिखरेव, अपनी उँगलियों से मेज़ को बजाते हुए, एक बार फिर कह उठता:

"इसे कहते हैं जीवन! ओह राक्षस, मेरे राक्षस... तेरे साथ भी बहुत बुरी बीती, मेरे भाई!"

सितानोव मेरे कंधों पर से उचक कर उन पंक्तियों को पढ़ने की कोशिश करता जिन्हें सुन कर वह उछल पड़ा था। फिर कहता:

"इन्हें मैं अपनी नोटबुक में उतार लूँगा।"

पुस्तक अपने हाथ में लेकर जिखरेव उठता और अपनी मेज़ की ओर चल देता। लेकिन एकाएक रुक कर आहत और विचलित से स्वर में कहता:

"जीवन की दलदल में हम उन पिल्लों की भांति घिसटते हैं जिनकी आँखें कभी नही खुलतीं। क्यों और किस लिए, यह कोई नहीं जानता। न खुदा को हमारी ज़रूरत है, न शैतान को। और कहा यह जाता है कि हम खुदा के बन्दे हैं। जीव खुदा का बन्दा था, और खुदा उससे बातें करता था, उसकी देख-भाल करता था। यही बात मूसा के बारे में भी थी। लेकिन हम... ज़रा बताओ तो सही कि हम किस खेत की मूली हैं?"

किताब को वह मेज़ की दराज़ में बंद कर देता और कपड़े पहनते हुए सितानोव से कहता:

"शराबख़ाने चलते हो?"

"नहीं, मैं अपनी छोकरी के पास जा रहा हूँ," निश्चल आवाज़ में वह जवाब देता।

उनके चले जाने के बाद मैं दरवाज़े के निकट फ़र्श पर लेट जाता। पावेल ओदिन्तसोव भी वहीं, मेरे बराबर में ही, पसर जाता। कुछ देर तक तो वह कांखता-कराहता और करवटें बदलता, फिर एकाएक दबे स्वर में रोना शुरू कर देता।

"क्यों, क्या बात है?"

"अब नहीं सहा जाता," वह कहता,—"मुझे इन सब पर रोना आता है। चार साल से मैं इनके साथ जीवन बिता रहा हूँ। कुछ भी मुझसे छिपा नहीं है। सभी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

मुझे भी इन लोगों पर तरस आता और मेरा हृदय दु:ख से उमड़ने-घुमड़ने लगता। काफ़ी रात बीत जाती, लेकिन हमारी आँखें नहीं लगतीं। देर तक, फुसफुसा कर, हम उनके बारे में बातें करते रहते। उनमें से हरेक के हृदय में छिपी भलमनसाहत और अच्छाइयों की हम याद करते और, दया के बचकाने आवेश में, न जाने कितने नये गुणों का आविष्कार कर डालते।

पावेल ओदिन्तसोव और मैं गहरे मित्र बन गए। आगे चल कर वह बहुत ही बढ़िया कारीगर सिद्ध हुआ, लेकिन इस धंधे में वह ज़्यादा दिनों तक काम नहीं कर सका। तीस वर्ष का होते न होते वह पक्का पियक्कड़ बन गया। इसके कुछ समय बाद मास्को की खित्रोव मार्केट में वह मुझे दिखाई दिया, एक आवारा के रूप में। फिर कुछ ही दिन बीते होंगे कि सुनने में आया, मियादी बुखार ने उसकी जान ले ली। कितने ही अच्छे लोगों से इस जीवन में मेरा वास्ता पड़ा और उनके जीवन को, बिला किसी मकसद के, धूल में मिलते हुए मैंने देखा। उनकी जब याद आती है तो रूह काँप उठती है। यों मरने-खपने को तो लोग सभी जगह मरते-खपते हैं। और यह स्वाभाविक भी है। लेकिन जिस तेज़ी और बेतुके ढंग से वे रूस में मरते-खपते और बरबाद होते हैं, उतने अन्य कहीं नहीं...।

उन दिनों पावेल गोल-मटोल चेहरे वाला लड़का था। मुझसे कोई दो साल बड़ा होगा। चुस्त, चतुर और ईमानदार। कलाकार

की प्रतिभा से सम्पन्न। बिल्ली, कुत्ते और पक्षियों के चित्र बनाना तो जैसे वह माँ के पेट में ही सीख कर आया था। साथी-कारीगरों के व्यंग-चित्र बनाने में वह कमाल करता और हमेशा परदार पक्षियों के रूप में वह उन्हें चित्रित करता। सितानोव को वह उदासी में डूबा खुटबढ़ई पक्षी बनाता जो एक टाँग पर खड़ा होता, जिखरेव को वह एक ऐसा मुर्ग़ा समझता जिसकी कलगी छितरा गई थी और खोपड़ी के बाल झड़ गए थे, और मरियल दावीदोव को वह उदास पीविट पक्षी के रूप में चित्रित करता। लेकिन सब से बढ़िया व्यंग-चित्र बूढ़े गोगोलेव का होता जो खुदाई के बेल बूटे बनाता था। उसे वह चमगादड़ के रूप में चित्रित करता—खूब बड़े-बड़े कान, डरावनी नाक और छोटे-छोटे पाँव जिनमें छै-छै नुकीले नाखून निकले होते। और उसके गोल चेहरे में, जिसे वह काला पोत देता, आँखों के सफ़ेद घेरे दूर से दिखाई देते। घेरों के भीतर पुतलियाँ बनी होतीं। ऐसा मालूम होता मानो लालटेन उलट कर रख दी गयी हो जिससे उसका चेहरा और भी उचक्का तथा शैतानी से भरा दिखाई देता।

कारीगरों को जब वह अपने व्यंग-चित्र दिखाता तो वे बुरा न मानते, लेकिन गोगोलेव का चित्र उन सभी को घिनौना मालूम होता। उसे देख कर वे कहते:

"अच्छा यही है कि इसे फाड़ डालो। अगर बूढ़े ने इसे देख लिया तो तुम्हारी जान खा जाएगा।"

यह बूढ़ा जो ऊपर से नीचे तक गंदगी और कमीनेपन में डूबा था और चौबीसों घंटे नशे में धुत्त रहता था, देवता बनने का ढोंग रचता, दूसरों की कुत्सित निन्दा करते कभी न थकता, दुकान के मुंशी के पास जा कर कारखाने के लोगों की चुगली

खाता। मालकिन की भतीजी से दुकान के मुंशी की शादी होने वाली थी और इसलिए वह अभी से अपने आप को कारख़ाने और उसमें काम करने वाले सभी लोगों का मालिक समझता था। सभी उससे डरते थे और घृणा भी करते थे, और इसी वजह से उसके गुर्गे गोगोलेव की भी सब दूर से ही कन्नी काटते थे।

पावेल ने तो जैसे इस बूढ़े को परेशान करने का इरादा ही कर लिया था। एक क्षण के लिए भी वह गोगोलेव का पीछा न छोड़ता, और उसे ज़रा भी चैन से न बैठने देता। इस काम में मैं भी काफ़ी दक्षता का परिचय देता और उसका खूब हाथ बंटाता। जब भी हम कोई हरकत करते, जो हमेशा कड़कदार और अनगढ़ होती, तो कारख़ाने में सभी को उसका पता चल जाता। कारीगर मन-ही-मन खुश होते, बल्कि चेतावनी देते:

"संभल कर रहना! 'कुज़मा तिलचट्टा' तुम्हें छोड़ेगा नहीं!"

दुकान के मुंशी को कारख़ाने में सब 'कुज़मा तिलचट्टा' कहते थे।

इन चेतावनियों को हम सुना-अनसुना कर देते। बूढ़ा गोगोलेव जब सोता होता तो हम अक्सर उसका मुँह रंग देते। एक बार उस समय जब कि वह नशे में धुत्त पड़ा था, हमने उसकी पकौड़े-सी नाक पर सुनहरी रोग़न कर दिया जो पूरे तीन दिन तक नाक के रोमों में समाया रहा। लेकिन हमारी शैतानी हरकतों से जब उसके सिर पर गुस्से का भूत सवार होता तो मुझे जहाज़ और व्यात्का के टुइयां सैनिक की याद हो आती, मेरी आत्मा मुझे कचोटती और एक घड़ी चैन न लेने देती। बूढ़ा होने के बावजूद गोगोलेव दम-खम में हम से बढ़ कर था। वह अक्सर औचक में हमें पकड़ लेता और इतनी मरम्मत करता कि तबीयत हरी हो जाती। इतना ही नहीं, बल्कि पीटने के बाद, मालकिन के पास जाकर वह हर बात की शिकायत भी करता।

मालकिन को भी नशे की लत थी, और नशे की तरंग में हमेशा खिलखिलाती और मग्न रहती थी। अपना फुसफुसा हाथ मेज़ पर पटक कर और चिल्ला कर वह हमें डराने का प्रयत्न करती। कहती:

"शैतान के बच्चो, तुम अपनी शरारत से बाज़ नहीं आओगे? इतना भी नहीं देखते कि वह बूढ़ा आदमी है, और तुम्हें उसकी इज़्ज़त करनी चाहिए। बोलो, उसके शराब के गिलास में स्याही किसने उँडेली?"

"हमने!"

मालकिन ने आँखें मिचमिचा कर देखा।

"हाय भगवान, कैसे शैतानों से पाला पड़ा है। देखो न, किस तपाक से कहते हैं कि हमने! क्यों, ऐसा कहते तुम्हारी जीभ कट कर नहीं गिर जाती? क्या तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि बड़े-बूढ़ों की इज़्ज़त करनी चाहिए?"

उस समय तो वह हमें धता बताती और रात को दुकान के मुंशी से हमारी शिकायत करती। मुंशी कठोर स्वर में मुझे डांटता:

"यह क्या हरकत है? तुम पुस्तकें पढ़ते हो, बाइबल तक तुम पढ़ लेते हो, फिर भी इस तरह की हरकतें करने से बाज़ नहीं आते? ज़रा संभल कर चलो भाई, नहीं तो नुक्सान उठाओगे!"

मालकिन का न कोई संगी था न साथी, अकेले सूना जीवन बिताती और उसे देख कर बड़ी दया आती। कभी-कभी, नशे की मात्रा कुछ ज़्यादा हो जाने पर, वह खिड़की पर बैठ जाती और उदास तथा उम्र की मार से डांवांडोल स्वर में गुनगुनाती:

नहीं कोई ऐसा जो पूछे अपनी बात
नहीं कोई ऐसा जो खोले दिल की गांठ

एक दिन मैंने देखा कि दूध से भरा जग हाथ में लिए वह ज़ीने से नीचे उतर रही थी। सहसा उसके घुटनों ने जवाब दे

दिया। वह वहीं ढेर हो गई और एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर गेंद की भांति उछलती नीचे आने लगी। अपने फैले हुए हाथों में वह जग को मज़बूती से पकड़े थी, दूध छलक-छलक कर उसके कपड़ों पर गिर रहा था, और वह जग को बाकायदा डांट पिला रही थी:

"देखता नहीं शैतान, किस बुरी तरह छलक रहा है?"

वह मोटी नहीं थी, किन्तु मुलायम और फुसफुसी थी, उस बूढ़ी बिल्ली की भांति जिसके लिए चूहे पकड़ना बीते दिनों की एक यादगार मात्र रह गया हो और जो, गले तक खूब ठसाठस भोजन करने के बाद, अलस भाव से एक जगह पड़ कर केवल अतीत के सुहावने रास-रंगों, दावतों और कटाक्षवाणों का ताना-बाना बुन सकती थी।

भौंहों में बल डाल कर सितानोव पुराने दिनों की याद करता:

"ऊँह, उस ज़माने में यहाँ का रंग देखते तो दंग रह जाते। यह एक बहुत ही बड़ा कारबार था। कारखाना भी खूब बढ़ा-चढ़ा था और उसकी देख-भाल का काम एक बहुत ही कुशल कारीगर के ज़िम्मे था। लेकिन अब वह बात कहाँ। अब तो सब कुछ वही चट कर जाता है। सब कुछ 'कुज़मा तिलचट्टे' के हाथों में चला गया। हम चाहे जितना सिर खपाएँ, चाहे जितना खून-पसीना एक करें, घूम-फिर कर अकेले उसी की चांदी गरम होती है। सोचकर हृदय बल खाने लगता है, जी करता है कि काम को धता बता कर छत पर चढ़ जाओ और समूची गर्मियाँ आकाश की ओर ताकते हुए बि-ता दो।"

सितानोव के विचारों ने पावेल ओदिन्तसोव को भी ग्रस लिया। बड़ों की भांति सिगरेट का धुवाँ उड़ाते हुए वह भी खुदा, शराब-

खोरी, स्त्रियों और श्रम की व्यर्थता के बारे में लम्बी-चौड़ी बातें करता :

"कुछ लोग दिन-रात खून-पसीना एक कर के चीज़ें बनाते हैं और दूसरे, बिना कुछ सोचे-समझे, केवल उन्हें नष्ट करने की ताक में रहते हैं। श्रम करना या न करना सब बराबर हो जाता है।"

जब वह इस तरह की बातें करता तो उसके बच्चों ऐसे चपल सुन्दर और तेज़ चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आतीं और ऐसा मालूम होता मानो वह बूढ़ा हो गया हो। रात के समय फ़र्श पर बिछे अपने बिस्तरे पर वह बैठ जाता, घुटनों को अपनी बाँहों में दबोच लेता और उसकी आँखें खिड़की के नीले चौखटों को पार कर शीत-कालीन आकाश में छितरे तारों और सायबान की छत की टोह लेतीं जो अब बर्फ़ के बोझ से दबी रहती थी।

कारीगर घर्राटे भरते और नींद में बड़बड़ाते रहते। कोई इस तरह चिल्ला उठता मानो दुःस्वप्न देख रहा हो। सब से ऊपर वाले तख्ते से दावीदोव अपनी ज़िन्दगी का बचा-खुचा अंश खाँसी और बलगम के रूप में थूकता रहता। उधर सामने वाले कोने में 'खुदा के बन्दे' कापेन्दियूखिन, सोरोकिन, और पेर्शिन नशे तथा नींद में नि-ढाल बोरों की भांति एक-दूसरे से सटे पड़े रहते। बे-सिर, बे-हाथ और बे-पाँव वाली प्रतिमाएँ दीवारों के साथ टिकी ताकती रहतीं। तेल, सड़े-गले अंडों और फ़र्श की दरारों में भरे कूड़े-कचरे की गंध साँस तक लेना दूभर कर देती।

पावेल फुसफुसा कर कहता :

"हे भगवान, इनकी हालत पर मुझे कितना तरस आता है!"

तरस की इस भावना से मेरा हृदय भी भारी और उदास रहता। हम दोनों को, जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, ये लोग

अच्छे मालूम होते, लेकिन जिस तरह का जीवन वे बिताते थे वह बुरा, उनके लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा कठोर, बेहद बेरस और बोझिल मालूम होता। जब गिरजे की घंटियाँ श्मशानी अन्दाज़ से बजतीं, बर्फ़ीली आँधियाँ सनसनातीं और घर, पेड़ तथा धरती की हर चीज़ काँपने, कराहने और सुबकने लगती, तब सीसे की भारी चादर की भांति कारख़ाने पर गहरी उदासी छा जाती। कारीगरों का दम घुटता और ऐसा मालूम होता मानो यौवन का कोई चिन्ह उनमें शेष नहीं रहेगा, सभी कुछ पाले में झुलस और मुरझा जाएगा। घबरा कर वे बाहर निकलते, शराबख़ाने की ओर लपकते, या स्त्रियों की बाँहों में दुबक जाना चाहते जो, वोडका की बोतल की भांति, उदासी को भूलने में उनका हाथ बंटातीं।

इस तरह के क्षणों में पुस्तकें पढ़ने का कोई असर नहीं होता, पुस्तकों का जादू कुछ काम न करता और मैं तथा पावेल जी बहलाने के अन्य साधनों का सहारा लेते। रंग-रोगन और काजर से हम अपने चेहरों को पोतते, सन की दाढ़ी और मूछें लगाते, अपनी सूझ-बूझ के अनुसार तरह-तरह का हास्याभिनय करते और उदासी के विरुद्ध वीरतापूर्ण संघर्ष करते हुए लोगों को हंसने के लिए बाध्य करते। "एक सैनिक ने किस प्रकार प्योत्र महान की जान बचाई" वाली कहानी मुझे याद थी। इस कहानी को मैंने कथोपकथन के रूप में ढाल लिया। जिस तख्ते पर दावीदोव सोता था, उसे हम अपना मंच बनाते और बड़े उछाह के साथ कल्पित स्वीडनों के सिर कलम करते। इस प्रकार समूची कहानी का हम अभिनय करते और दर्शक हंसते-हंसते दोहरे हो जाते।

चीनी शैतान त्सिंगी-यु-तोंग की कहानी कारीगर बेहद पसंद करते। पाश्का अभागे शैतान का अभिनय करता जिसके मन में, बावजूद इसके कि वह शैतान था, भलाई करने की धुन समा गई

थी। बाक़ी सारा अभिनय मैं खुद करता। मुझे स्त्री भी बनना पड़-ता और पुरुष भी, कभी मैं किसी पेड़ का तना बन कर खड़ा हो-ता और कभी किसी भले आदमी की रूह, यहाँ तक कि मुझे वह पत्थर भी बनना पड़ता जिसपर कि शैतान, भलाई करने के अपने हर प्रयत्न की विफलता के बाद, निराश हो कर बैठता था।

देखनेवाले खूब हंसते, और उन्हें इतनी आसानी से खुश देख मुझे अचरज भी होता और दुःख भी। वे चीख़ते और होते चिल्लाते:

"वाह, मुँह मटकाने में तुम कमाल करते हो! मज़ा आ गया!"

लेकिन इस सब के बावजूद रह-रह कर यह सब बात आँखों के सामने उभरे बिना न रहती कि इन लोगों का रंज से जितना वास्ता था, उतना खुशी से नहीं।

हंसी-खुशी या रंगरलियाँ हमारे जीवन में केवल दो घड़ी की मेहमान बनकर आतीं और फिर विदा हो जातीं। अधिक दिनों तक वे कभी नहीं टिकतीं, न ही अपने आप में उनका कोई मूल्य होता। रंज में डूबे रहने के आदी रूसी हृदय को भरमाने के लिये एक कठिन प्रयास के रूप में, उनका उपयोग किया जाता। उस हँसी-खुशी का क्या भरोसा जिसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व न हो, अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की जिसमें कोई कामना तक न हो, और केवल जीवन की भयानकता को आँखों की ओट करने के लिए ही जिसकी याद की जाती हो!

और इसीलिए रूसियों की हंसी-खुशी और उनकी रंगरलियाँ, आशा के प्रतिकूल और एकदम अनजान में ही, अक्सर क्रूर और निर्मम नाटक का रूप धारण कर लेतीं। नाचते-नाचते, ठीक उस समय जब कि नृत्यकार अपने बन्धनों को तोड़ कर उन्मुक्त भाव से हवा में तैरता और लहराता मालूम होता, एकाएक उसके भीतर का

पशु जाग उठता और रस्सा तुड़ा कर हर व्यक्ति और हर चीज़ पर टूट पड़ता — गरजता, उबलता-उफनता और सभी कुछ मटियामेट करता हुआ...।

ज़बर्दस्ती के और एकदम बाहरी अवलम्बनों पर टिकी इस हंसी-खुशी से मैं इतना भन्ना जाता और इस बुरी तरह झुंझला उठता कि धुन में आकर सभी कुछ ताक पर रख देता, और उसी क्षण जो भी उल्टा-सीधा मन में आता, वही मुंह से उगलने लगता। अभिनय करने में भी मैं इसी तरह पूरी मनमानी का परिचय देता। उन्मुक्त और स्वतःस्फूर्त खुशी का उनमें संचार करने के लिए मैं पागल-सा हो उठता। मेरी कोशिशें पूर्णतया बेकार भी न जातीं। कारीगर चकित हो जाते, मुग्ध भाव से प्रशंसा करते; लेकिन वह निराशा और उदासी जिसे मैं समझता कि गायब हो गई है, वापिस लौट आती और घनी तथा गहरी होती हुई पहले की भांति फिर उन्हें दबोच लेती।

चूहेनुमा लारिओनोविच कोमल स्वर में कहता :

"सच, तुम भी एक कयामत हो। खुदा तुम्हें लम्बी उम्र दे!"

"जी हल्का हो जाता है," जिखरेव स्वर में स्वर मिलाता। — "तुम किसी सरकस या नाटक-कम्पनी में क्यों नहीं भर्ती हो जाते? मेरा विश्वास है कि तुमसे बढ़िया जोकर उन्हें ढूंढे न मिलेगा!"

कारख़ाने में काम करने वालों में केवल कापेन्दियूखिन और सितानोव ही ऐसे थे जो नाटक देखने जाते थे। यह बात दूसरी है कि वे साल में दो बार ही नाटक देखते थे — एक तो बड़े दिन के अवसर पर, दूसरे श्रोवटाइड के अवसर पर। जब वे नाटक देख कर लौटते तो बूढ़े कारीगर इस पाप का प्रायश्चित करने पर ज़ोर देते। कहते कि बर्फ़ में बपतिस्माई गढ़ा खोदकर जब तक जौर्डान

नदी में डुबकी नहीं लगाओगे, खुदा तुम्हें माफ़ नहीं करेगा। लेकिन सितानोव था कि बार-बार मुझसे कहता:

"तुम भी कहाँ आ फंसे? छोड़ो यह सब, और नाटक-कम्पनी में भर्ती हो जाओ!"

वह मुझे "अभिनेता याकोवलेव के जीवन" की दर्दभरी कहानी सुनाता और अन्त में कहता:

"तुम भी वैसे ही बन सकते हो!"

मेरी स्टुअर्ट का, जिसे वह 'लोमड़ी' कहता था, बड़े चाव से ज़िक्र करता और "स्पेन का बांका वीर" का ज़िक्र करते समय तो उसके उछाह का वारापार न रहता। कहता:

"दोन सिज़ार द-बज़ान बांके खानदान का एक बांका वीर था, मक्सिमोविच! सचमुच में असाधारण!"

अपने-आप में वह खुद भी कुछ कम बांका वीर नहीं था। एक दिन, चौक वाले घंटाघर के सामने, आग बुझाने वाले स्टेशन के तीन कर्मचारी मिल कर किसी दहकान पर टूट पड़े। चारों ओर क़रीब चालीस लोगों की भीड़ जमा हो गई। दहकान को बचाना तो दूर, भीड़ ने पीटने वालों की पीठ थपथपाना और उन्हें खूब उकसाना शुरू कर दिया। सितानोव ने आव देखा न ताव, लपक कर वहाँ पहुंचा और अपनी लम्बी बाँहों से हमलावरों को मार भगाया। इसके बाद दहकान को उठा कर उसने भीड़ के ऊपर धकेल दिया और चिल्ला कर बोला:

"ले जाओ इसे!"

अकेला ही वह डटा रहा, तीन-तीन से उसने लोहा लिया और अन्त में सबको उसने मार भगाया। आग बुझाने का स्टेशन पास ही था, केवल बीस-एक क़दम पर। आग बुझानेवाले अगर मदद के लिए चिल्लाते तो उन्हें साथी मिलने में ज़रा भी कठिनाई

न होती, और वे सितानोव को ऐसी मार पिलाते कि वह भी याद रखता। गनीमत यही थी कि उनके औसान खता हो गए और वे उलटे पाँव भागते नज़र आए।

"हरामी कुत्ते!" उन्हें भागता हुआ देख सितानोव चिल्लाया।

रविवार के दिन कारख़ाने के युवक कारीगर पेतरोपाव्लोव्स्क क़ब्रिस्तान के उस पार इमारती लकड़ी की टाल में जाते और सफ़ाई दल के लोगों और आसपास के गाँवों के दहकानों से घूंसेबाज़ी का खेल खेलते। सफ़ाई दल में मोरदोविया निवासी एक प्रसिद्ध घूंसेबाज़ था—देव की भांति डील-डौल, छोटा-सा सिर, और चुंधी आँखें। उसे ही वे सब से आगे खड़ा करते और वह, फैली हुई अपनी टाँगों को मज़बूती से धरती पर जमाए, गंदी कमीज़ की आस्तीन से अपनी रिसती हुई आंखों को पोंछता और सहज भाव से शहरी भाइयों को ललकारता:

"चले आओ जिसे आना हो। जल्दी करो, अभी मामला गर्म है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी बाट देखते-देखते मैं ठंडा पड़ जाऊँ!"

कापेन्दियूखिन आगे बढ़ता। हमारी ओर से एक वही उससे भिड़ता और मोरदोविया निवासी हर बार उसके अंजर-पंजर ढीले कर देता। खून और मिट्टी में वह रंग जाता और हाँफता हुआ चिल्ला कर कहता:

"देख लेना, एक दिन मैं भी ऐसे दाँत खट्टे करूंगा कि मोरदोवियाई सारी उम्र याद रखेगा!"

और अन्त में मोरदोविया निवासी के दाँत खट्टे करना ही उसके जीवन का लक्ष्य हो गया। इसके लिए, पूरी सख़्ती से वह अपने को साधता और तैयार करता। वह अब शराब न पीता, ज़्यादातर मांस ही खाता और हर साँझ को सोने से पहले, बर्फ़ से अपना बदन रगड़ता, बाँहों की मछलियाँ निकालने के लिए

दोहरा होकर मन-भर पक्का बोझ उठाता। लेकिन मोरदोविया निवासी को वह फिर भी नहीं पछाड़ सका। अन्त में अपने दस्तानों में उसने सीसे के टुकड़े भर लिए, और सितानोव से शेखी बघारते हुए बोला :

"अब उसका अन्त ही समझो!"

सितानोव की भौंहों में बल पड़ गए। कड़े स्वर में बोला:

"सीसे के टुकड़े निकाल डालो, नहीं तो मैं भिड़न्त से पहले ही सारा भंडा फोड़ कर दूंगा।"

कापेन्दियूखिन को विश्वास नहीं हुआ कि वह ऐसा करेगा। लेकिन ठीक भिड़न्त से पहले सितानोव ने एकाएक मोरदोविया निवासी से चिल्ला कर कहा:

"ज़रा ठहरो, वसीली ईवानोविच। कापेन्दियूखिन से पहले मेरी भिड़न्त होगी!"

कज़ाक का चेहरा लाल पड़ गया। चिल्ला कर बोला:

"मैं तुमसे नहीं लड़ूँगा! चले जाओ यहाँ से!"

"लड़ोगे कैसे नहीं?" सितानोव ने कहा और निरस्त्र कर देने वाली नज़र गड़ाए उसकी ओर बढ़ चला। एक क्षण के लिए कापेन्दियूखिन सकपकाया, फिर तेज़ी से उसने अपने दस्ताने उतार डाले और उन्हें अपने कोट के भीतर वाली जेब में खोंसता हुआ वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

दोनों पक्षों में से एक भी इस तरह की घटना के लिए तैयार नहीं था। उन्हें अचरज भी हुआ और दुःख भी। भिड़न्त का सारा मज़ा ही किरकिरा हो गया। भली-सी शक्ल के एक आदमी ने सितानोव से झुंझला कर कहा:

"यह कायदे के खिलाफ़ है। सार्वजनिक खेल में तुम निजी झगड़ों का भुगतान नहीं कर सकते!"

सितानोव पर चारों ओर से बौछार होने लगी। काफ़ी देर तक तो वह चुप रहा। फिर भली-सी शक्लवाले आदमी से बोला:

"तुम्हारा मतलब यह कि खेल में खून-खराबा हो तो उसे भी होने दिया जाए,—क्यों?"

भली-सी शक्लवाला आदमी तुरत सारा मामला समझ गया, और टोपी उतार कर मुसकराते हुए बोला:

"अगर ऐसी बात है तो अपने पक्ष की ओर से हम तुम्हें धन्यवाद देते हैं।"

"लेकिन इस बात का ढोल पीटने की ज़रूरत नहीं। अपनी जुबान बंद ही रखना।"

"मैं जुबान का ढीला नहीं हूं। कापेन्दियूखिन क्या कोई मामूली घूंसेबाज़ है? और कोई होता तो इतनी बार मात खाने के बाद भाग खड़ा होता। यह उसकी हिम्मत है जो डटा हुआ है। हम यह सब समझते और उसकी कद्र करते हैं। लेकिन अब हम, भिड़न्त से पहले, उसके दस्तानों को ज़रूर देख लिया करेंगे।"

"यह तुम जानो, जो ठीक समझो, करो!"

भली-सी शक्ल वाला आदमी जब चला गया तो हमारे पक्ष के लोगों ने सितानोव को आड़े हाथों लेना शुरू किया:

"तुम भी निरे चुगद हो! आखिर तुम्हें बीच में टाँग अड़ाने की क्या ज़रूरत थी? कापेन्दियूखिन ने आज सारी कसर निकाल ली होती। लेकिन अब... तुमने हम सब के मुंह पर कालिख पोत दी!"

देर तक और बिना दम लिए, रस ले-लेकर, सब सितानोव को कोंचते रहे।

सितानोव केवल लम्बी साँस खींच कर रह गया और बोला:

"आह, कमीने...।"

इसके बाद, एकाएक, मोरदोविया निवासी को ललकार कर उसने सभी को चकित कर दिया। चुनौती सुनते ही मोरदोविया निवासी आगे आ कर जम गया और घूंसा हिलाते हुए हंस कर बोला :

"अच्छी बात है। आओ, आज तुम्हारे साथ ही बदन को थोड़ा गरमा लिया जाए!"

पास खड़े लोगों में कई ने हाथ-में-हाथ डाल कर एक बड़ा-सा घेरा बना लिया। भीड़ घेरे से बाहर हो गई, और लड़ने वाले उसके भीतर।

इसके बाद घूंसों की कुश्ती शुरू हो गई। एक-दूसरे के चेहरे पर नजर गड़ाए, बाएँ हाथ की बंधी मुट्ठी सीने पर रखे और दाहिने हाथ का घूँसा ताने, भंवर की भांति वे घेरे के भीतर चक्कर काटने लगे। पारखी दर्शकों ने तुरत भांप लिया कि सितानोव की बाँहें मोरदोविया निवासी की बाँहों से ज़्यादा लम्बी हैं। सभी पर सन्नाटा-सा छा गया। लड़ने वालों के पाँवों के नीचे बर्फ़ के कचरने के सिवा अन्य कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। तभी किसी ने, सन्नाटे के तनाव से उकता कर, शिकायती स्वर में बड़बड़ाते हुए कहा :

"इतनी देर से खाली चक्कर लगा रहे हैं...।"

सितानोव का दाहिना घूँसा घूम गया, मोरदोविया निवासी ने अपने बचाव में बायाँ घूँसा उठाया और तभी, एकाएक, सितानोव ने बाएँ घूँसे से सीधे उसके पेट में प्रहार किया। कराहता हुआ वह पीछे हटा और मुग्ध भाव से बोला :

"मैं तुम्हें कच्ची उम्र का ही समझा था, लेकिन तुम तो छिपे रूस्तम निकले!"

इसके बाद अखाड़ा गरमा गया। घूँसे ज़ोरों से हवा में झूलते और एक-दूसरे की पसलियाँ चूर-चूर करने के लिए लपलपाते। देखते-

देखते, दोनों पक्षों के दर्शकों में, एक हल-चल-सी मच गई। जोश और उछाह में भरकर वे चिल्लाते और लड़ने वालों को बढ़ावा देते:

"देखते क्या हो, मूर्तिसाज़! उसका ऐसा बुत बना दो कि वह भी याद रखे!"

मोरदोविया निवासी सितानोव से कहीं तगड़ा था, लेकिन चपल नहीं था। वह उतनी ही फुर्ती और तेज़ी से वार नहीं बचा पाता और हर प्रहार के बदले में दो या तीन प्रहार का उसे भुगतान करना पड़ता। लेकिन प्रहारों का उसपर कोई खास प्रभाव न होता। अपने प्रतिद्वन्द्वी पर वह उसी तरह गरजता और उसकी खिल्ली उड़ाता रहा। अन्त में, एकाएक उछल कर ,उसने इतने ज़ोरों से घूँसा जमाया कि सितानोव की दाहिनी बाँह चूल से बाहर निकल आई।

"अरे, इन्हें छुड़ा कर एक-दूसरे से अलग करो! बराबर की जोड़ रही, न कोई हारा न जीता!" एक साथ कई आवाज़ें चिल्ला उठीं। दर्शक लपककर आगे बढ़े, और लड़ने वालों को छुड़ा कर अलग कर दिया।

"मूर्तिसाज़ में ताकत तो इतनी नहीं है, लेकिन चपल खूब है!" मोरदोविया निवासी ने हँसते हुए कहा।—"सच, एक दिन यह अच्छा घूँसेबाज़ बन जाएगा। यह स्वीकार करने में मुझे ज़रा भी लज्जा नहीं है।"

युवकों ने जो अब तक दर्शक बने हुए थे, एक-दूसरे को खुलकर चपतियाने का खेल शुरू कर दिया। सितानोव को लेकर मैं हड्डी बैठाने वाले के पास पहुँचा। जिस साहस का उसने परिचय दिया था, उससे मेरे हृदय में उसकी इज्ज़त और भी बढ़ गयी। वह मुझे अब और भी ज़्यादा अच्छा लगता, और मैं उसका और भी ज़्यादा सम्मान करता।

वह सदा न्याय और ईमानदारी का पक्ष लेता, और ऐसा मालूम होता मानो यह सब करना उसका कर्तव्य मात्र था। लेकिन कापेन्दियूखिन जब भी मौका मिलता उसका मज़ाक उड़ाता।

"वाह सितानोव, तुमने तो अब ज़मीन पर चलना ही छोड़ दिया, हमेशा हवा में ही उड़ते रहते हो!" वह कहता।—"और अपनी आत्मा को रगड़-रगड़ कर तुमने इतना चमका लिया है कि क्या कोई समोवर को चमकाएगा। इस तरह सब जगह घूमते हो, मानो इस दुनिया में तुम्हीं से उजाला हो। लेकिन सच बात यह है कि तुम्हारी आत्मा पीतल की है और तुम तुरत ऊबा देने वाले व्यक्ति हो।"

सितानोव ज़रा भी टस से मस न होता। वह सीधे अपना काम करता या नोटबुक में लेर्मन्तोव की कविताएँ उतारता। अपना सारा खाली समय वह कविताएँ उतारने में ही बिताता। एक दिन मैंने उससे पूछा:

"तुम्हारे पास पैसे की कमी नहीं। अपने लिए पुस्तक क्यों नहीं खरीद लाते?"

"नहीं, अपने हाथ की लिखावट में नकल उतारना कहीं ज़्यादा अच्छा है," वह जवाब देता।

वह बहुत ही सँभाल कर अक्षर बनाता। पन्ना भर जाने पर वह स्याही सूखने का इन्तज़ार करता, और धीमे स्वर में गुनगुनाता हुआ पढ़ता:

> तुम बग़ैर किसी रंज और पछतावे के
> इस ज़मीन से अपना मुँह मोड़ लोगी
> जहाँ सारी मसर्रत एक साब है
> जिसका हुसन बस एक दिन का है।

"इस में सचाई है," आँखों को सिकोड़ते हुए वह कहता,—"देखो न, कितने अच्छे ढंग से कवि ने सत्य को उभार कर रखा है!"

कापेन्दियूखिन की सभी हरकतों के बावजूद सितानोव उसके साथ इतनी भलमनसी से पेश आता कि देख कर अचरज होता। नशे में बेसुध, आते ही जब वह सितानोव से लड़ने के लिए झपटता तो सितानोव बहुत ही ठंडे हृदय से उसे रोकने की कोशिश करता :

"भले आदमी, ऊपर क्यों गिरे पड़ते हो। ज़रा दूर रहो!"

लेकिन वह बाज़ न आता, और अन्त में सितानोव इतनी बेरहमी से उसकी मरम्मत करता कि सारा नशा झड़ जाता, यहाँ तक कि अन्य कारीगर, झड़प देखने का प्रबल मोह होने पर भी, आगे बढ़ कर दोनों को खींच कर एक-दूसरे से अलग कर देते।

"यह तो कहो कि हमने ऐन मौके पर उसे छुड़ा लिया,"— वे कहते,— "नहीं तो सितानोव उसे मार ही डालता और इस बात की ज़रा भी परवाह न करता कि बाद में उसका क्या होता है।"

नशे की हालत में ही नहीं, बल्कि होश-हवास ठीक होने पर भी कापेन्दियूखिन सितानोव को एक घड़ी चैन न लेने देता, उसके कविता प्रेम तथा हरजाई स्त्री से उसके लगाव की दुःखद घटना की खिल्ली उड़ाता, और ईर्ष्या की आग में उसे झुलसाने के लिए गंदी-से-गंदी, मगर बेकार हरकतें करने से न चूकता। उसके चिढ़ाने और खिल्ली उड़ाने का सितानोव कभी जवाब न देता, न ही कभी उत्तेजित होता, बल्कि कभी-कभी तो कापेन्दियूखिन के साथ-साथ खुद भी अपनी खिल्ली उड़ाने में शामिल हो जाता, और खूब हँसता।

वे पास-पास ही सोते, और गई रात तक न जाने क्या-क्या फुसफुसाते रहते।

रात के सन्नाटे में उन्हें इस तरह फुसफुसा कर बातें करते देख मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। मेरी समझ में न आता कि एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकृति के ये दो आदमी, आखिर किस चीज़ के बारे में इतना घुल मिल कर बातें कर रहे हैं! जब कभी भी मैं उनके निकट पहुँचने की कोशिश करता, कापेन्दियूखिन तुरत टोकता :

"यहाँ क्यों आए हो?"

और सितानोव तो मेरी ओर नज़र तक उठा कर न देखता।

लेकिन एक बार खुद उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया।

"मक्सिमोविच," कापेन्दियूखिन ने कहा,—"अगर तुम्हारे पास ढेर सारा धन हो तो तुम क्या करोगे?"

"पुस्तकें खरीदूँगा।"

"और क्या करोगे?"

"और क्या करूंगा, यह तो मैं भी नहीं जानता।"

कापेन्दियूखिन ने एक लम्बी साँस खींची और निराशा से मुँह फेर लिया।

"देखा तुमने!" अब सितानोव का शान्त स्वर सुनाई दिया।—"यह कोई नहीं बता सकता—चाहे किसी बूढ़े आदमी से पूछ देखो, चाहे जवान से। मैं तुमसे कहता न था कि धन का अपने-आप में कोई महत्व नहीं है। अपने-आप में वह बेकार है। महत्व की चीज़ धन नहीं, बल्कि वह है जो धन से पैदा होती है, या जिसके लिए धन का उपयोग किया जाता है।"

"तुम लोग किस चीज़ के बारे में बातें कर रहे थे?" मैंने पूछा।

"किसी खास चीज़ के बारे में नहीं। नींद आ नहीं रही थी, इसलिए समय काट रहे थे!" कापेन्दियूखिन ने कहा।

इसके बाद मुझे उनकी बातें सुनने की छूट मिल गई। और मैंने देखा कि रात में भी वे उन्हीं चीज़ों के बारे में बातें करते थे, जिनके बारे में लोग दिन में बातें करते हैं: खुदा, न्याय, खुशहाली, स्त्रियों की मूर्खता और उनकी चालाकी, धनी लोगों की लालसा और लोलुपता, और यह कि जीवन ने मोटे तौर से एक ऐसे गड़बड़झाले का रूप धारण कर लिया है, जिससे कोई पार नहीं पा सकता!

मैं बड़े चाव से सुनता और उनकी बातचीत मेरे हृदय में गहरी हलचल का संचार करती। मुझे यह देख कर खुशी होती कि मेरी तरह वे भी इस जीवन को बुरा मानते और उसे बदलने की इच्छा रखते हैं। लेकिन इसी के साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि जीवन को बदलने की यह इच्छा निरी इच्छा ही थी, और इस इच्छा के फलस्वरूप किसी पर कोई ज़िम्मेदारी आयद नहीं होती थी, और न ही इस इच्छा से कारखाने के जीवन में तथा कारीगरों के बीच उनके आपसी सम्बंधों में कोई अन्तर पड़ता था। यह सारी बातचीत जीवन को देखने-समझने का इतना अवसर प्रदान नहीं करती जितना कि एक प्रकार के भयावह शून्य और खोखलेपन को प्रकट करती जिसमें लोग, पोखर की सतह पर पड़े सूखे पत्तों की भांति, बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य के, तेज़ हवा के झोंके खाकर इधर से उधर तैरते, घूमते तथा चक्कर खाते हैं। खुद अपने ही मुंह से जीवन की इस लक्ष्य तथा उद्देश्य हीनता की वे शिकायत करते, उसे लेकर रोते और झींकते।

कारीगर हमेशा या तो शेखी बघारते दिखाई देते, या पश्चाताप करते अथवा किसी के सिर दोष मढ़ते नजर आते। ज़रा-ज़रा-सी बातों को लेकर वे बुरी तरह झगड़ते, खून-खराबी तक पर उतर आते। उन्हें चिन्ता थी तो यह कि मर जाने के बाद उनका क्या

होगा। और यहाँ, दरवाज़े के पास रखे गंदे पानी के डोल के निकट, फ़र्श का एक तख़्ता गलसड़ कर ख़त्म हो गया था और उसकी जगह एक भंभाकड़ा खुल गया था जिसमें से सीलन और सड़ी हुई मिट्टी की गंध से भरी ठंडी हवा आती थी और हमारे पाँव एकदम सुन्न हो जाते थे। पावेल और मैंने घासफूस और चिथड़ों से भंभाकड़ा बंद कर दिया। नया तख़्ता लगाने की बात तो सब करते, लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकलता, और भंभाकड़ा दिन-दिन बड़ा होता जाता। आंधी-पानी के दिनों में ठंडी हवा का जैसे नल्का-सा खुल जाता और सब खांसी-जुकाम में जकड़ जाते। रोशनदान की खिड़की की पंखी इतने बेहुदा ढंग से चींची करती कि लोग गंदी-से-गंदी गालियों की उसपर बौछार करते। लेकिन जब मैं उसमें तेल डालता तो जिखरेव के कान चौकन्ने हो जाते, और मुँह बिचका कर वह कहता:

"चींची की आवाज़ का अभाव तो और भी उदास मालूम होता है!"

हम्माम से लौट कर वे अपने गंदे बिस्तरों पर पड़े रहते। गंदगी और सड़ांध की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। इसी तरह अन्य कितनी ही छोटी-मोटी चीज़ें थीं जो जीवन की कटुता को बढ़ाती थीं और जिन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता था। लेकिन कोई हाथ न हिलाता। वे अक्सर कहते:

"लोगों के लिए किसी के हृदय में तरस नहीं है। नहीं, खुदा तक उनपर तरस नहीं खाता!"

लेकिन जब पावेल और मैं गंदगी तथा जुंओं से परेशान दम-तोड़ते दावीदोव की सफाई-धुलाई करते तो वे हमारा मज़ाक उड़ाते, 'तेल मालिश' की आवाज़ लगा कर हमें चिढ़ाते, जुंवें मारने के लिए अपनी गंदी कमीज़ें उतार कर हमारे सामने डाल देते और,

मोटे तौर से, इस तरह हमें उल्लू बनाते मानो हम कोई शर्मनाक और बहुत ही हास्यस्पद काम कर रहे हों।

बड़े दिन से लेकर चालीस दिन के व्रत तक अपने तख़्ते पर लेटा दावीदोव बराबर खांसता और खून तथा बलगम की कुल्लियाँ करता रहा। कूड़े की बाल्टी का निशाना साध कर वह थूकता, लेकिन अक्सर चूक जाता और बलगम तथा खून के थक्के फ़र्श पर आ गिरते। रात को जब वह चीख़ता-चिल्लाता तो हमारी आँखें खुल जातीं।

क़रीब-क़रीब हर रोज़, बिला नागा, वे कहते:

"इसे अस्पताल ले जाए बिना काम नहीं चलेगा।"

लेकिन वह कभी अस्पताल नहीं पहुँच सका। सब से पहले तो यह हुआ कि उसके पासपोर्ट की तारीख़ बीत चुकी थी और उसे नया कराने की ज़रूरत थी। जब तक यह न होगा, अस्पताल वाले उसे भर्ती न करेंगे। इसके बाद उसकी तबीयत कुछ ठीक मालूम हुई, और अस्पताल जाने की बात फिर टल गई। अन्त में उन्होंने कहा:

"अस्पताल ले जाकर ही क्या होगा? दो दिन का यह मेहमान है। चाहे यहाँ मरे, चाहे अस्पताल में, बात एक ही है।"

"हां भाई, टिकट कटने में अब देर नहीं है," खुद मरीज़ भी उनकी बात की पुष्टि करता।

वह एक बहुत ही खामोश किस्म का हंसोड़ व्यक्ति था, और कारख़ाने की उदासी को तितर-बितर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ता था। अपने काले और अत्यन्त क्षीण चेहरे को तख़्ते से नीचे लटका कर भरभरी आवाज़ में वह घोषणा करता:

"भले लोगो, अब इस आदमी की भी आवाज़ सुनो जिसे खुदा ने इतने ऊँचे सिंहासन पर पहुँचा दिया है।"

इसके बाद, भारी-भरकम अन्दाज़ में, वह इस तरह की कोई वीभत्स तुकबन्दी सुनाना शुरू करता:

मैं यहाँ हूँ अपने तख़्ते पर पड़ा
और कोई गड़बड़ नहीं करता
अगरचे मैं सोता हूँ और जागता हूँ
तिलचट्टे मेरा गोश्त चाटते रहते हैं।

"यह कभी अपना जी छोटा नहीं करता," उसके श्रोता मुग्ध भाव से कहते।

कभी-कभी पावेल और मैं उसके तख़्ते पर चढ़ जाते, और वह जबरन ख़ुशी से कहता:

"तुम्हारी क्या ख़ातिर करूँ, मेरे भले दोस्तो! अगर पसंद हो तो बढ़िया, एक दम तर व ताज़ी, मकड़ी पेश कर सकता हूँ।"

बहुत ही धीरे-धीरे, तिल-तिल करके, मृत्यु उसे दबोच रही थी, और इससे वह और भी उकता जाता था।

"मौत भी मेरे पास फटकना नहीं चाहती!" तंग आकर वह कहता, और अपनी परेशानी को छिपाने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं करता।

मौत की वह इस तरह याद करता, मानो वह उसकी गहरी मित्र हो। उसे ज़रा भी डर न मालूम होता। मौत के प्रति उसके इस निडर रवैये से पावेल का हृदय दहल जाता। रात को वह चौंक उठता, और मुझे जगाते हुए फुसफुसा कर कहता:

"मक्सिमोविच, कहीं वह मर तो नहीं गया... मुझे लगता है कि ऐसे ही किसी दिन रात में वह मर जाएगा, और नींद में हमें पता तक नहीं चलेगा। हे भगवान, मरे हुए आदमियों से मुझे कितना डर लगता है!"

या फिर कहता:

"आख़िर इसने जन्म ही क्यों लिया? बीस वर्ष का भी न हो पाया कि अब विदा ले रहा है!.."

एक रात, जब कि चांदनी खिली हुई थी, उसने मुझे जगाया। उसकी आँखें भय से फटी हुई थीं। फुसफुसा कर बोला:

"कुछ सुनाई देता है?"

ऊपर तख़्ते पर दावीदोव की साँस भरभरा रही थी, और जल्दी-जल्दी, साफ़ सुन पड़ने वाले शब्दों में वह बड़बड़ा रहा था:

"इधर, यहाँ ले आओ, यह देखो इधर...।"

इसके बाद खांसी का दौरा शुरू हो गया।

"वह मर रहा है। सच कहता हूँ, वह मर रहा है।" पावेल ने विचलित स्वर में फुसफुसा कर कहा।

हमारा अहाता बर्फ़ से अटा था। उसे हटाना और बाहर खेतों में ले जाकर डालना था। आज दिन-भर बर्फ़ की लदाई-ढुवाई करनी पड़ी थी। मैं बुरी तरह थक गया था, और आँखों में नींद उमड़ी आ रही थी।

"तुम्हें मेरी कसम, सोओ नहीं," पावेल ने अनुरोध किया, —"मुझपर दया करो, और सोओ नहीं।"

सहसा वह उछल कर खड़ा हो गया, और वहशियाना अन्दाज़ में चिल्ला उठा:

"उठो, उठो, दावीदोव मर गया!"

उसकी आवाज़ सुनकर कितने ही कारीगरों की नींद उचट गई। कुछ बिस्तरा छोड़ कर खड़े हो गए, और चिड़चिड़ा कर पूछने लगे कि बात क्या है। कापेन्दियूखिन तख़्तों पर चढ़ गया, और चकित स्वर में बोला:

"सचमुच, लगता तो ऐसा ही है मानो यह मर गया,—हालांकि बदन में अभी भी कुछ गरमाई मालूम होती है।"

सब पर एक सन्नाटा-सा छा गया। जिखरेव ने क्रास का चिन्ह बनाया, और कम्बल को और भी कस कर तानते हुए बोला:

"भगवान इसकी आत्मा को शान्ति दे!"

"अच्छा हो कि इसे यहाँ से उठा कर फाटक के गलियारे में ले जाएँ," किसी ने सुझाव दिया।

कापेन्यूखिन नीचे उतर आया, और खिड़की में से झांकते हुए बोला:

"नहीं, सुबह तक इसे यहीं रहने दो, जीते-जी इसने किसी का रास्ता नहीं छेका। मरने के बाद फाटक के गलियारे में ले जाकर डालना ठीक न होगा।"

पावेल तकिये में मुँह छिपा कर सुबकियाँ भरने लगा।

सितानोव बेसुध सोता रहा, वह मसका तक नहीं।

१५

नीचे खेतों में जमी बर्फ़ और ऊपर आकाश में सर्दी के बादल गल रहे थे, और भीगी हुई बर्फ़ तथा बारिश के छींटे धरती पर गिर रहे थे। सूरज की गति धीमी हो गई थी, और दिन की यात्रा पूरी करने में अब उसे काफ़ी समय लगता था। हवा में उतनी ठिठुरन नहीं रही थी। ऐसा मालूम होता था मानो वसन्त आ तो गया है, लेकिन अभी नगर से बाहर खेतों में छिपा हुआ आँख-मिचौनी का खेल खेल रहा है। किलकारियाँ मारता और चौकड़ियाँ भरता किसी समय भी वह नगर में दाखिल हो जाएगा। बाज़ारों में लाल मटियाली कीचड़ छाई थी। फुटपाथों पर पानी की छोटी-छोटी धाराएँ छलछल करती बह रही थीं। आरेस्तानत्स्काया चौक में बर्फ़-पिघले खण्डों के ऊपर चिड़े-चिड़ियाँ खुशी से चहक

और फुदक रहे थे। चिड़े-चिड़ियों की भांति लोग भी उमंग से भरे थे। चारों ओर वसन्त की सुहावनी भनभनाहट सुनाई देती और गिरजे की घंटियाँ, सुबह से साँझ तक जो करीब-करीब हर घड़ी बजती रहतीं, हृदय को हल्के-हल्के झंकोले देतीं। उनकी टुनटुनाहट में, बूढ़े लोगों की आवाज़ की भांति, टीस छिपी होती। उनकी ठंडी उदास ध्वनि में उन दिनों की गूँज सुनाई देती जो पीछे, बहुत पीछे, छूट गए थे और जिनके लौटने की अब कोई उम्मीद नहीं थी।

मेरे जन्म दिन के अवसर पर कारीगरों ने मुझे खुदा के प्यारे सन्त अलेक्सी की एक छोटी-सी और बहुत सी सुन्दर रंगी-चुनी प्रतिमा भेंट की। जिखरेव ने, गम्भीर मुद्रा में, एक लम्बा भाषण दिया जिसके शब्द सदा के लिए मेरी स्मृति में अंकित हो गए।

"अभी तुम क्या हो," भौंहों को चढ़ाते और अपनी उँगलियों से मेज़ को ठकठकाते हुए उसने कहा,—"कुल तेरह बरस की तुम्हारी उम्र है, न तुम्हारे माँ है और न बाप। फिर भी मैं, उम्र में तुमसे चार गुना बड़ा होने पर भी, तुम्हारी सिफ़ारिश और तारीफ़ करता हूँ। जानते हो क्यों? इस लिए कि इतनी कच्ची उम्र होते हुए भी तुमने जीवन से मुँह नहीं मोड़ा, सीधे तन कर उसका सामना किया। और ऐसा ही होना भी चाहिए,—हमेशा आँखें खोल कर जीवन का सामना करो!"

उसने खुदा के दासों और खुदा के सेवकों का ज़िक्र किया, लेकिन दास और सेवकों में क्या भेद है, यह मेरी समझ में कभी नहीं आया, और मेरा खयाल है कि इस भेद को वह खुद भी नहीं समझता होगा। उसका भाषण बोझिल और उबा देने वाला था, और सब उसका मज़ाक उड़ा रहे थे। लेकिन प्रतिमा हाथ में लिए मैं गुम-सुम खड़ा था, मेरे हृदय में उथल-पुथल मची थी और

परेशानी में कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था कि क्या करूँ, क्या न करूँ। आखिर कापेन्दियूखिन से नहीं रहा गया। झुंझला कर चिल्ला उठा:

"मालूम पड़ता है किसी मुर्दे के सिरहाने फ़ातिहा पढ़ा जा रहा है। बन्द करो अब इसे, सुनते-सुनते कान पक गए!"

इसके बाद मेरी पीठ थपथपाते हुए, खुद उसने भी राग अलापना शुरू कर दिया।

"तुममें सब से अच्छी बात यह है कि सभी से घुल-मिलकर रहते हो। तुम्हारी यह बात मुझे पसंद है, लेकिन इसकी वजह से तुम्हें पीटना या डांटना मुश्किल हो जाता है — उस समय भी जब तुम सचमुच कसूर करते हो!"

सब के सब, आँखों में चमक भरे, मेरी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे खिले हुए थे और मुझे गुम-सुम खड़ा देख मुस्करा रहे थे। मेरा हृदय, भीतर-ही-भीतर, उमड़-घुमड़ रहा था। अगर यह सिलसिला कुछ देर और चलता तो मैं अपने को रोक न पाता, मेरी आँखों से आँसू बहने लगते — निरे आनन्द के आँसू। इस भावना से कि ये लोग इस हद तक मुझे अपना समझते हैं, मेरा हृदय भर आया था।

लेकिन उसी दिन सबेरे ही, मेरी ओर सिर हिलाते हुए दुकान-मुंशी ने प्योत्र वसीलीयेविच से कहा था:

"यह पूरा बदमाश। काम करते उसकी जान निकलती है।"

सदा की भांति उस दिन भी, तड़के ही मैं दुकान पर काम करने गया था। लेकिन अभी दोपहर हो भी न पाई थी कि मुंशी ने कहा:

"घर जाओ और बाड़े की छत पर से बर्फ़ बटोर कर कोल्ड-स्टोरेज़ वाले तहख़ाने में जमा दो।"

उसे मालूम नहीं था कि आज मेरा जन्म दिन है, और मेरा

खयाल था अन्य सब भी यह नहीं जानते। कारख़ाने में जब बधाइयों का सिलसिला ख़त्म हो गया तो मैंने कपड़े बदले, भाग कर अहाते में पहुँचा, और बर्फ़ बटोरने के लिए बाड़े की छत पर चढ़ गया। इस बार जाड़ों में ख़ूब जम कर बर्फ़ पड़ी थी। लेकिन उतावली में मैं तहख़ाने का दरवाज़ा खोलना भूल गया और मशीन की भांति फ़ावड़े से खोद कर बर्फ़ डालता रहा। नतीजा यह कि तहख़ाना बर्फ़ के ढेर के नीचे छिप गया। जब मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई तो दरवाज़े का पता लगाने के लिए मैं तुरन्त इस ढेर को खोदने में जुट गया। लेकिन बर्फ़ नम थी और ख़ूब कड़ी जम गई थी, और फ़ावड़ा लोहे का न हो कर लकड़ी का था, जैसे ही ज़्यादा दबाव पड़ा, वह टूट गया। इसी समय फाटक पर दुकान का मुंशी दिखाई दिया और मुझे यह रूसी कहावत याद हो आई कि "ख़ुशी के साथ हमेशा दुःख का पुछल्ला लगा रहता है"।

"यह बात है!" दुकान का मुंशी मेरे निकट आया और गुस्से में भनभनाते हुए बोला।—"क्या इसी तरह काम किया जाता है, शैतान के पिल्ले! खोपड़ी पर ऐसा हाथ जमाऊँगा कि भेजा बाहर निकल आएगा...।"

उसने फ़ावड़े का टूटा हुआ हत्था उठा लिया और कस कर हाथ घुमाया। लेकिन मैं डुबकी लगा गया और गुस्से में उफनकर बोला:

"अहाता साफ़ करना मेरी नौकरी में कतई शामिल नहीं है, समझे!"

लकड़ी का हत्था उसने मेरे पाँवों में फेंक कर मारा। लपक कर मैंने बर्फ़ का एक ढेला उठाया और पूरे ज़ोर से ऐन उसके मुँह पर दे मारा। सिटपिटा कर वह भाग खड़ा हुआ। मैं भी अधबीच में ही काम को छोड़ कर कारख़ाने में लौट आया। इसके कुछ मिनट बाद दुकान के मुंशी की मंगेतर सीढ़ियों से उतर कर

भागती हुई आई। वह एक काजूबाजू युवती स्त्री थी और उसका बेरंग मुँह मुँहासों से भरा था। आते ही बोली:

"मक्सिमोविच, तुम्हें ऊपर बुलाया है।"

"जाकर कह दो कि वह नहीं आता," मैंने कहा।

तभी लारिओनोविच ने शान्त स्वर में, चकित भाव से पूछा:

"यह क्या,—ऊपर जाने से इन्कार क्यों करते हो?"

मैंने उसे सारा किस्सा बता दिया। मेरी जगह वह खुद ऊपर गया। उसकी भौंहें परेशानी में कुछ तन गई थीं। जाते समय दबे स्वर में बोला:

"तुम कुछ ज़्यादा आगे बढ़ गए, मेरे लड़के!"

कारख़ाना मुंशी के खिलाफ़ ताने-तिश्नों से गूँज उठा।

"तुम्हें अब वे छोड़ेंगे नहीं। निश्चय ही निकाल बाहर करेंगे!" कापेन्दियूखिन ने कहा।

लेकिन इसका मुझे डर नहीं था। मुंशी से मेरी तनातनी काफ़ी दिनों से चल रही थी और सभी सीमाएँ पार कर चुकी थी। उसकी घृणा ने ज़िद्द का रूप धारण कर लिया था जो दिनों-दिन बढ़ती जाती थी। मेरी घृणा भी उतनी ही हठीली और ज़ोरदार थी जो कम होने का नाम न लेती थी। लेकिन जिस तरह की हरकतें वह मेरे साथ करता था, वे इतनी बेतुकी होती थी कि मैं चकरा जाता था।

वह जान-बूझ कर कुछ रेज़गारी फ़र्श पर गिरा देता जिससे फ़र्श साफ़ करते समय उसपर मेरी नजर पड़े। मैं उसे उठाता और हमेशा काउण्टर पर रखे भिखारियों वाले प्याले में डाल देता। अन्त में इस तरह रेज़गारी बिखरने का रहस्य जब मेरी समझ में आया तो मैंने उससे कहा:

"रेज़गारी का जाल बिछा कर तुम मुझे नहीं फाँस सकते। तुम्हारी सारी कोशिशें बेकार जाएँगी।"

उसका चेहरा लाल हो गया और एकाएक चिल्लाते हुए बोला:

"मुझे ज़्यादा सबक पढ़ाने की कोशिश न करो! मैं क्या करता हूँ और क्या नहीं, यह मैं तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ!"

फिर कुछ संभल कर बोला:

"क्या तुम समझते हो मैं रेज़गारी जान-बूझ कर फ़र्श पर गिराता हूँ। नहीं भाई, इस तरह की बात तो अनजाने में ही होती है।"

उसने मुझपर रोक लगा दी कि दुकान में पुस्तकें न पढ़ूँ। कहने लगा:

"ये पुस्तकें तुम्हारे लिए नहीं हैं। क्या धर्मशास्त्री बनने का शौक चर्राया है, परोपजीवी कहीं का।"

मुझे रेज़गारी-चोर बनाने की अपनी कोशिशों में उसने ढील नहीं डाली। मुझे लगा कि अगर किसी दिन बुहारते समय कोई सिक्का लुढ़क कर किसी दराज़ में चला गया तो उसे चोरी का इलज़ाम लगाते ज़रा भी देर नहीं लगेगी। एक बार फिर मैंने उसे टोका कि मेरे साथ इस तरह का खेल न खेले। लेकिन वह क्यों बाज़ आने लगा। उसी दिन जब मैं कहवेख़ाने से उबलते हुए पानी से भरी केतली लेकर लौटा तो मेरे कानों में उसकी आवाज़ की भनक पड़ी। पड़ौसी दुकानदार के नये मुंशी से वह कह रहा था:

"तुम उससे सांठ-गांठ करके धर्मगीतों की पुस्तक चोरी करने के लिए कहो। आजकल में ही एकदम नयी तीन पेटी पुस्तकें हमारे यहाँ आने वाली हैं।"

मुझे यह भाँपने में देर न लगी कि वे मेरे ही बारे में बातें कर रहे थे। कारण कि मेरे आते ही दोनों सकपका से गए।

पड़ौसी दुकानदार का मुंशी चालाक आँखों और दुबले-पतले तथा सूखे हुए कमज़ोर शरीर का जीव था। वह ऐसे ही, थोड़े-थोड़े

दिनों के लिए काम करता था। दुकान के काम में वह होशियार था, लेकिन पूरा पियक्कड़ था जब कभी पीने का भूत उसके सिर पर सवार होता तो मालिक उसे नौकरी से अलग कर देता, और इसके बाद फिर रख लेता। यों देखने में वह काफ़ी विनम्र और अपने मालिक के हल्के से इशारे को भी माननेवाला मालूम होता था, लेकिन अपने मुँह के कोने में सदा एक व्यंगपूर्ण मुसकराहट छिपाए रहता और तीखे छींटे कसने में रस लेता। उसके मुँह से गंध आती, ठीक वैसी ही जैसी कि गंदे दाँतों वाले लोगों के मुँह से आती है, हालांकि उसके दाँत भले-चंगे और सफेद थे।

हाल ही में उसके साथ हुए कुछ अनुभवों ने मेरा यह सन्देह और भी ज़्यादा पुष्ट कर दिया कि हमारी दुकान के मुंशी से मिल कर वह मेरे खिलाफ़ जाल रच रहा है।

एक दिन बहुत ही प्यार-भरी मुसकराहट के साथ वह मेरे पास आया और इसके बाद, एकाएक, उसने मेरी टोपी उतार कर दूर फेंक दी और मेरे बालों को अपने हाथों में दबोच लिया। फिर क्या था हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गए। गलियारे से धकेलता हुआ वह मुझे दुकान में ले आया और धक्का देकर मुझे कुछ बड़ी प्रतिमाओं पर गिराने की कोशिश करने लगा जो फ़र्श पर रखी थीं। अगर वह सफल हो जाता तो इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिमाओं का काँच टूट जाता, उनके बेल बूटे झड़ जाते और कीमती चित्रकारी चौपट हो जाती। लेकिन वह कुछ ताकतवर नहीं था। शीघ्र ही मैंने उसे अपने काबू में कर लिया। इसके बाद फ़र्श पर वह पसर गया और अपनी आहत नाक को सहलाते हुए फुक्का मार कर रोने लगा। इस दाढ़ीवाले आदमी को रोता देख कर मैं हक्का-बक्का-सा रह गया।

अगले दिन, सुबह के समय जब हमारे मालिक कहीं चले गए थे और हम दोनों अकेले थे, एक आँख के नीचे नाक के सूजे

हुए हिस्से को सहलाते हुए उसने बड़े ही मित्र भाव से कहा :

"क्या तुम समझते हो मैं अपनी मर्ज़ी से तुम्हारे ऊपर झपटा था? नहीं, मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ। मैं जानता था कि तुम मुझसे जबर हो और शीघ्र ही मुझे दबोच लोगे। मुझमें ताकत कहाँ है, नशे की लत ने मुझे खोखला बना दिया है। असल में खुद मालिक के आदेश से मैंने वह हरकत की थी। मालिक ने कहा: 'जाकर उससे लिपट जाओ और इस तरह लड़ो कि उससे दुकान में ज़्यादा-से-ज्यादा तोड़-फोड़ हो जाय और भारी नुकसान पहुँचे।' अगर मालिक ने मुझे मजबूर न किया होता तो अपने-आप मैं कभी ऐसी हरकत न करता। देखो न, तुमने मेरे तोबड़े का क्या हाल बना दिया है!"

मुझे उसकी बात सच मालूम हुई और मेरा हृदय तरस की भावना से भर गया। यह मैं जानता था कि उसे बहुत कम पैसा मिलता है जिसमें उसकी गुज़र नहीं होती। तिस पर उसकी पत्नी इतनी जबर थी कि बराबर उसे पीटती रहती थी। फिर भी मैंने उससे पूछा :

" अगर वे तुमसे किसी को ज़हर देने के लिए कहें, तो क्या तुम सचमुच ज़हर दे दोगे?"

"वे कुछ भी करा सकते हैं," उसने दयनीय मुसकराहट के साथ धीमे स्वर में कहा,—"वे मुझसे कुछ भी करा सकते हैं।"

ऐसे ही एक दिन, मौका देख कर, वह मुझसे कहने लगा :

"मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है, घर का चूल्हा ठंडा पड़ा है —खाने के लिये एक दाना तक नहीं है, और मेरी बूढ़ी स्त्री एक क्षण के लिये चैन नहीं लेने देती। अगर तुम अपने स्टोर रूम में से एक प्रतिमा चुपचाप उठा कर दे दो तो मैं उसे बेच कर कुछ

पैसे खड़े कर लूँगा। बोलो मुझपर इतनी दया करोगे न? प्रतिमा उठाना सम्भव न हो तो फिर धर्मगीतों की पुस्तक ही सही। क्यों ठीक कहता हूँ न?"

मुझे जूतों की दुकान और गिरजे के चौकीदार की बात याद हो आई और ऐसा लगा कि निश्चय ही यह आदमी भेदिया है। लेकिन मुझसे इन्कार करते नहीं बना। मैंने उसे एक प्रतिमा उठा कर दे दी। धर्मगीतों की पुस्तक काफ़ी कीमती थी और मुझे लगा कि उसे उठा कर देना ज़्यादा बड़ा पाप होगा। कीमत के कम व अधिक होने के हिसाब से पाप के बड़े या छोटे होने की यह भावना भी अजीब थी। असल में यह उसी व्यापारिक गणना का नतीजा थी जो, जाने या अनजाने, हम सभी में प्रवेश कर गई थी। कोई भी उससे अछूता नहीं बचा था। हमारे समूचे "दण्ड-विधान" का वट वृक्ष, न्याय और धर्म की चादर में लिपटा होने पर भी, अपने हृदय में इसी गणना का नन्हा बीज छिपाए था,—व्यक्तिगत सम्पत्ति का दानव उसके पीछे अट्टहास कर रहा था।

पड़ोस की दुकान के इस दयनीय मुंशी से जब मैंने अपनी दुकान के मुंशी को यह कहते सुना कि वह मुझे धर्मगीतों की पुस्तक चुराने के लिए बहकाये तो मेरा हृदय सहम गया। यह साफ़ था कि हमारी दुकान के मुंशी से मेरी उस उदारता की बात भी नहीं छिपी है जिससे प्रेरित होकर मैंने दुकान से प्रतिमा की चोरी की थी। दूसरे शब्दों में यह कि पड़ोसी दुकान का मुंशी सचमुच में भेदिया था।

दूसरों की जेब काट कर उदारता दिखाने के सस्तेपन तथा उनके षड्यंत्र के कमीनेपन ने मेरे हृदय को कचोटना शुरू किया, और विक्षोभ तथा घृणा के भावों से मैं भर गया। मुझे अपने ऊपर भी गुस्सा आता और दूसरों के ऊपर भी। कई दिन तक मैं एक

अजीब झंझलाहट में फंसा रहा। नयी पुस्तकों के आने तक मेरी बुरी हालत हो गई। आखिर पुस्तकें आईं। स्टोररूम में जाकर मैंने उन्हें खोलना शुरू किया। तभी पड़ोस की दुकान का मुंशी मेरे पास आया और धर्मगीतों की पुस्तक मांगने लगा।

"क्या तुमने देवप्रतिमा चुराने की बात मालिक से कही थी?" मैंने उससे पूछा।

"हाँ," गरदन लटकाते हुए उसने स्वीकार किया, — "क्या करूँ, मेरे पेट में बात पचती नहीं।"

सुन कर मैं सन्न रह गया। पुस्तकों की पेटी खोलना छोड़ मैं फ़र्श पर बैठ गया और उसके चेहरे की ओर ताकने लगा। अस्तव्यस्त और अत्यन्त दयनीय मुद्रा में वह जल्दी-जल्दी बड़बड़ा रहा था:

"तुम्हारे मालिक ने भांप लिया, या यह कहो कि मेरे मालिक ने भांप लिया, और तुम्हारे मालिक से...।"

मुझे लगा कि अब खैर नहीं है। इन लोगों के जाल में मैं फंस गया हूँ और अब, निश्चय ही, बाल-अपराधियों के किसी जेल में मुझे बंद कर दिया जाएगा। लेकिन जहाँ सेर, वहाँ सवा सेर, जब यही सब होना है तो फिर अन्य किसी चीज की चिन्ता क्यों की जाए। चुल्लू-भर पानी में डूब कर मरने से तो यह कहीं अच्छा है कि गहरे पानी में डूब कर मरा जाए। सो मैंने धर्मगीतों की एक पुस्तक उठाई और मुंशी को दे दी। उसने उसे कोट के भीतर छिपा दिया और वहाँ से चल दिया। कुछ भी देर न हुई होगी कि वह फिर लौट आया और पुस्तक मेरे पाँवों के पास आ गिरी।

"मैं इसे नहीं ले सकता। तुम मुझे कहीं का न छोड़ोगे!" कहते हुए वह चला गया।

मैं उसकी बात समझ नहीं सका। यह क्या बात हुई कि मैं उसे कहीं का न छोड़ूँगा? जो हो, यह जानकर मुझे भारी खुशी

हुई कि उसने पुस्तक लौटा दी। इसके बाद हमारी दुकान का कोताक़द मुंशी मुझे और भी ज़्यादा दुश्मनी तथा सन्देह की नज़र से देखने लगा।

मालकिन के बुलाने पर भी जब मैं नहीं गया और मेरी जगह लारिओनोविच ने ज़ीने से ऊपर जाना शुरू किया तो ये सब बातें मेरे दिमाग़ में घूम गईं। वह जल्दी ही ऊपर से लौट आया, पहले से भी ज़्यादा उदास और एकदम गुमसुम। उस समय उसने कुछ नहीं कहा। लेकिन साँझ के भोजन से ठीक पहले, उस समय जब कि मैं और वह अकेले थे, वह मुझसे बोला:

"मैंने बहुत कोशिश की कि दुकान के काम से छुड़ा कर तुम्हें केवल कारख़ाने में काम करने दें। लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली। कुज़मा कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। न जाने तुमसे क्या खार खाए बैठा है...।"

इस घर में मेरा एक दुश्मन और था—दुकान के मुंशी की मंगेतर, एक खिलाड़िन युवती। कारख़ाने के सभी युवक उससे खेलते और छेड़छाड़ करते। वे फाटक के गलियारे में खड़े होकर उसका इन्तज़ार करते और जब वह आती तो खूब छीना-झपटी करते। वह ज़रा भी बुरा न मानती, पिल्ले की भांति दबे स्वर में केवल कू-काँ करती रहती। सुबह से लेकर सोने के समय तक उसका मुँह चलता रहता—मिठाई खाती या लैमनजूस चूसती जो उसकी जेबों में सदा भरी रहतीं। भूरी आँखों से युक्त उसका बेरंग चेहरा देखने में बड़ा बुरा मालूम होता। वह अपनी आँखों को बराबर टेरती रहती। जब भी वह आती, पावेल और मुझसे ऐसी पहेलियाँ बूझती जिनके जवाब गंदे होते या ऐसी ध्वनियों और शब्दों का जल्दी-जल्दी एक साँस में उच्चारण करने के लिए कहती जिनके मिलने से कोई न कोई गंदा अर्थ निकलता।

बूढ़े कारीगरों में से एक ने उससे कहा:

"क्यों, तुम्हें लाज नहीं आती?"

वह खिलखिला कर हँसी और जवाब में एक गंदे गीत की यह पंक्तियाँ गुनगुनाने लगी:

रंगीली शरमा जायेगी,
तो हाथ मलती रह जायेगी!

इस तरह की लड़की मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह मुझे बड़ी घिनौनी मालूम होती, और उसके भोंडे तौर-तरीक़ों को देख कर मैं सहम जाता। जब उसने देखा कि मैं उससे कतराता और बचता हूँ तो वह और भी जोरों से मेरे पीछे पड़ गयी।

एक दिन नीचे तहख़ाने में वह अचार के मर्तबानों को भाप दे रही थी। पावेल और मैं भी उसकी मदद के लिए वहाँ मौजूद थे। तभी उसने कहा:

"लड़को, क्या तुम्हें मालूम है कि चुम्बन किस तरह लिया जाता है? चाहो तो मैं तुम्हें सिखा सकती हूँ।"

"तुम क्या सिखाओगी, मैं तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ?" हल्की हँसी हँसते हुए पावेल ने कहा और शराफ़त को थोड़ा ताक पर रख, मैंने उसे सलाह दी कि यह कला अपने उस युवक को सिखाए जिससे उसकी मंगनी हो चुकी है। मेरी बात सुन वह झुँझला उठी। गुस्से में बोली:

"तुम निरे सूअर हो! यह तक नहीं जानते कि एक लड़की से किस तरह पेश आना चाहिए। मैं तो इतनी मेहरबानी से पेश आती हूँ, लेकिन तुम मेरा अपमान करने पर तुले हो!"

इसके बाद उँगली हिलाते हुए बोली:

"तुम्हें इसका भुगतान करना पड़ेगा। मैं आसानी से छोड़ने वाली नहीं हूँ।"

पावेल ने मेरा पक्ष लिया। बोला:

"अगर तुम्हारे उस युवक को इन हरकतों का पता चल गया तो फिर देखना, किस तरह तुम्हारे गाल लाल करता है।"

मुँहासे भरे अपने मुँह को उसने घृणा से सिकोड़ा और फनफनाते हुए बोली:

"मुझे उसका ज़रा भी डर नहीं है। इतने भारी दहेज के साथ एक नहीं बीस पति मुझे मिल जाएंगे, उससे लाख दर्जे अच्छे! जब तक विवाह का जुवा गरदन पर नहीं लदता तभी तक लड़की को दो घड़ी मौज करने का मौका मिलता है।"

इसके बाद वह पावेल से खेल करने लगी और मुझसे ऐसी कुढ़ी कि फिर सीधी न हुई। जब भी मौका मिलता, मेरे खिलाफ़ इधर-की-उधर लगाती।

दुकान पर काम करना मेरे लिए एक मुसीबत हो गया, और जैसे-जैसे दिन बीतते मेरी मुसीबत बढ़ती जाती। मैं बुरी तरह ऊब चला। कितने भी धर्मग्रंथ वहाँ थे, सभी मैंने पढ़ डाले और धर्मशास्त्रियों के तर्क-कुतर्क सुनते-सुनते मैं तंग आ गया। उनकी बातों में कभी कोई नवीनता नहीं होती, हमेशा और हर बार उन्हीं घिसी-पिटी बातों को दोहराते। केवल प्योत्र वसीलीयेविच ही एक ऐसा थां जो अभी भी मुझे कुछ आकर्षक मालूम होता था। मानव-जीवन की धारा के काले पक्ष का उसे गहरा अनुभव था और बहुत ही दिलचस्प तथा उत्साहपूर्ण ढंग से वह अपनी बातों को व्यक्त करता था। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो पैगंबर येलिसी ने भी, इसी प्रकार एकदम एकाकी, हृदय में गहरी जलन और बदले की भावना लिए, इस धरती का चप्पा-चप्पा छाना होगा।

लेकिन जब कभी मैं उसे लोगों के बारे में अपने अनुभव या विचार बताता तो वह बड़ी तत्परता से सुनता और इसके बाद सारी बातें दुकान के मुंशी के सामने दोहरा देता जो या तो मुझे झिड़कता अथवा मेरा मज़ाक उड़ाता।

एक दिन वृद्ध के सामने मैंने अपना यह भेद प्रकट कर दिया कि उसकी कही हुई बातों को भी मैं अपनी उसी नोटबुक में दर्ज करता जाता हूँ जिसमें कि मैंने कविताएँ और पुस्तकों के अंश उतार रखे हैं। यह सुन कर उसकी सिट्टी गुम हो गई, तेज़ी से वह मेरी ओर झुका और भयभीत-सा होकर मुझसे पूछने लगा:

"तुम ऐसा क्यों करते हो! यह ठीक नहीं है, मेरे लड़के! क्या तुम उनका रोज़नामचा रखना चाहते हो! अरे नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, मेरे नन्हे शैतान! देखो, अपनी वह नोटबुक मुझे दे दो। क्यों, दोगे न?"

बहुत देर तक और जम कर वह इस बात पर ज़ोर देता रहा कि मैं नोटबुक उसके हवाले कर दूँ, या कम-से-कम उसे जला दूँ। इसके बाद, विचलित स्वर में, वह दुकान के मुंशी से फुसफुसाता रहा।

घर लौटते समय दुकान के मुंशी ने मुझसे कहा:

"मुझे पता चला है कि तुम कोई रोज़नामचा रखते हो। मैं तुमसे कहे देता हूँ कि अपनी यह हरकत बंद करो। सुन रहे हो न? केवल भेदिया और खुफ़िया पुलिस के लोग ऐसा काम करते है!"

और सितानोव?" अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया,—"उसके बारे में तुम क्या कहोगे? वह भी तो रोज़नामचा रखता है।"

"क्या वह भी रखता है? बेवकूफ़ नहीं तो!"

कुछ देर वह चुप रहा। फिर कुत्सित नरमाई से दोहरा हो भेद-भरे अन्दाज़ में बोला:

"एक बात सुनो। मुझे अपनी नोटबुक दिखा दो, और सितानोव की भी। मैं तुम्हें आधा रूबल दूँगा। लेकिन देखो, यह काम चुपचाप करना। किसी के कान में भनक तक न पड़े, सितानोव के भी नहीं!"

उसे जैसे पक्का विश्वास था कि उसकी बात मैं टालूँगा नहीं। उसने अपना सुझाव रखा और इसके बाद, बिना किसी दुविधा या झिझक के, अपनी छोटी टाँगों से दुलकी चाल चलता हुआ गायब हो गया।

घर पहुंचते ही मुंशी ने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सितानोव को बता दिया। सुन कर उसकी भौंहों में बल पड़ गए।

"तुमने उससे कहा ही क्यों? अब वह किसी-न-किसी तरह हमारी नोटबुकें उड़ा लेगा,—मेरी भी और तुम्हारी भी। लेकिन ठहरो, अपनी नोटबुक तुम मुझे दे दो। मैं उसे कहीं छिपा दूँगा। वह तुम्हारे पीछे पड़ा है। देख लेना, वह तुम्हें निकाल कर ही दम लेगा!"

मुझे भी इसमें सन्देह नहीं था, और मैंने निश्चय कर लिया कि नानी के घर लौटते ही मैं यह नौकरी छोड़ दूँगा। नानी बलाखना में थी। सारे जाड़े वहीं रही, किसीने अपनी लड़कियों को बेल-बूटों की कढ़ाई सिखाने के लिए बुला लिया था। नाना अब फिर कुनाविनो में ही आ बसे थे। मैं कभी उनसे मिलने नहीं जाता, और भूले-भटके अगर कभी उनका नगर आना होता तो वह खुद भी मुझसे नहीं मिलते। एक दिन अनायास ही बाज़ार में उनसे मुलाक़ात हो गई। रैकून का भारी-भरकम कोट पहने रौब के साथ सामने से वह आ रहे थे, मानो कोई पादरी चला आ रहा हो। जब मैंने अभिवादन किया तो ठिठक गए, एक हाथ उठा कर अपनी आँखों पर साया किया और खोए हुए से अन्दाज़ में बोले:

"ओह, तुम हो ... सुना है कि आजकल देव-प्रतिमाएँ बनाते हो। ठीक है ठीक है... किए जाओ।"

इसके बाद, मुझे एक ओर धकियाते हुए, अपने उसी रौबीले अन्दाज़ और ठाठ के साथ आगे बढ़ गए।

नानी से भी इन दिनों बिरले ही भेंट होती। वह दिन-रात, बिना साँस लिए, काम करती थीं। नाना का बोझ भी अब वहीं संभालती थी। आयु के साथ नाना का चिड़चिड़ापन काफ़ी हो गया था। नाना के अलावा अपने बेटों के बच्चों का लालन-पालन भी नानी के ही ज़िम्मे था। मिखाइल के लड़के साशा के लिए जो एक ख़ूबसूरत, सपनों में खोया और पुस्तकों का प्रेमी युवक था, नानी ख़ास तौर से परेशान रहतीं। वह रंगसाज़ी का काम जानता था और किसी एक जगह जम कर काम नहीं करता था। जब-तब नौकरी छोड़ कर घर पर बैठ जाता और नानी उसका दोज़ख ही नहीं भरती, बल्कि उसके लिए अगली नौकरी भी खोजती। साशा की बहिन का बोझ भी कुछ कम नहीं था। गलत विवाह कर के उसने एक मुसीबत और मोल ले ली थी। उसका पति, जो एक मिल में काम करता था, शराबी था। वह उसे बुरी तरह मारता और घर से बाहर निकाल देता था।

नानी से जब भी मैं मिलता, उनकी आत्मा के सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो जाता। लेकिन मुझे ऐसा लगता कि नानी की अद्‌भुत आत्मा परियों की दुनिया में निवास करती है। नतीजा यह कि वह चारों ओर की कटु वास्तविकता को नहीं देख पाती। उन आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं से जो मुझे घेरे रहतीं, नानी सर्वथा मुक्त और परे थीं।

"यह सब कुछ नहीं, आल्योशा, हममें सहने की क्षमता होनी चाहिए।"

जीवन की कुरूपता और दमघोट भयानकता का, लोगों की मुसीबतों और हर उस चीज़ का जिसके विरुद्ध मेरा हृदय इतने ज़ोरों से उबाल खाता था, जब मैं नानी से ज़िक्र करता तो उनके मुँह से सिवा इसके और कुछ न निकलता कि हममें सहने की क्षमता होनी चाहिए।

लेकिन सहना मेरी प्रकृति के विरुद्ध था और अगर ढोर-डंगरों, काठ और पत्थरों के इस गुण का कभी-कभी मैं प्रदर्शन करता भी था तो केवल अपने-आपको जाँचने-परखने के लिए, अपनी उस शक्ति और दृढ़ता का अन्दाज़ लगाने के लिए जिसके सहारे इस धरती पर मेरे पाँव जमे थे। ठीक वैसे ही जैसे कि अपनी बचकानी मूर्खता के जोश अथवा अपने से बड़ों की शक्ति से ईर्ष्या के चक्कर में पड़ कर युवक अपने हाड़-माँस और पुट्ठों की सकत से भी भारी बोझा उठाने की कोशिश करते और कभी-कभी इसमें सफल भी हो जाते हैं, जैसे कि शेखी में वे नामी पहलवानों की भांति मन-मन-भर का वज़न उठाने की कोशिश करते हैं।

मैं भी ऐसा ही करता—शाब्दिक अर्थ में भी, और भावनात्मक अर्थ में भी। शारीरिक और आत्मिक, दोनों रूपों में मैं अपनी शक्ति की जाँच करता और इसे मेरा सौभाग्य ही समझिए जो इस जाँच के दौरान में घातक चोट खाने या जन्मभर के लिए पंगु होने से बच गया। और अगर सच पूछो तो दुनिया में अन्य कोई चीज़ आदमी को इतने भयानक रूप में पंगु नहीं बनाती जितने भयानक रूप में कि सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना आदमी को पंगु बनाता है।

अपनी कोशिशों के फलस्वरूप अगर अन्त में पंगु होकर मुझे धरती माता की शरण लेनी पड़ती तो, जायज़ गर्व के साथ, कम से कम यह तो मेरे पास कहने के लिए होता कि करीब चालीस

वर्ष तक मैंने परिस्थितियों के ख़िलाफ़ अडिग संघर्ष किया, उन भले लोगों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया जो सहन करने की ज़ंजीरों से बरबस मुझे जकड़ कर मेरी आत्मा को कुंठित कर देना चाहते थे।

कोई न कोई तमाशा करने, लोगों का जी बहलाने और उन्हें हंसाने की मेरी इच्छा रह-रह कर ज़ोर पकड़ती। और यह काम भी मैं पूरी सफलता के साथ करता। लोअर मार्केट के सौदागरों का वर्णन करने और उनकी नकल उतारने में मैं बेजोड़ था। मैं दिखाता कि दहकान और उनकी स्त्रियाँ किस तरह देव-प्रतिमाएँ ख़रीदते और बेचते हैं, किस सफ़ाई से दुकान का मुंशी उन्हें ठगता और धोखा देता है, और किस तरह धर्मशास्त्री बहसें करते हैं।

कारख़ाने के लोग हँसते-हँसते दोहरे हो जाते, हाथ का काम छोड़ कर मुझे नकलें उतारता हुआ देखते। जब तमाशा ख़त्म हो जाता तो लारिओनोविच कहता:

"यह सब तमाशा साँझ के भोजन के बाद किया करो, जिससे काम में हर्ज न हो।"

इस तरह के प्रदर्शनों के बाद मैं सदा बहुत हल्का अनुभव करता, ऐसा मालूम होता मानो मेरे सीने पर से कोई भारी बोझ उतर गया हो। घंटे डेढ़ घंटे तक मेरा दिमाग़ इतने अद्भुत रूप में रीता और स्वच्छ मालूम होता जैसे उसका सारा कूड़ा-कबाड़ साफ़ हो गया हो, लेकिन कुछ देर बाद वह फिर कील-काँटों से भर जाता और उनकी दुःखद चुभन का मैं अनुभव करता।

मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मेरे चारों ओर सड़ा हुआ दलिया फफद रहा हो और उसकी सड़ांध, धीरे-धीरे, मुझे भी अपने चंगुल में दबोच रही हो।

"क्या मेरा समूचा जीवन इसी तरह बीतेगा?" मैं सोचता।—"और क्या मैं भी, इन्हीं लोगों की भांति, कुछ देखे और जाने बिना, अच्छे जीवन की झलक पाए बिना, इसी तरह शेष हो जाऊँगा?"

जिखरेव जो मुझे ध्यान से देख रहा था, बोला:

"क्या बात है, मक्सिमोविच, तुम इधर कुछ चिड़चिड़े होते जा रहे हो?"

सितानोव भी अक्सर पूछता:

"क्यों, क्या हुआ है तुम्हें?"

मेरी समझ में न आता कि उन्हें क्या जवाब दूँ।

जीवन के औधड़पन ने, हठीली बेरहमी के साथ, अपने ही डाले हुए श्रेष्ठतम चिन्हों को मेरे हृदय से मिटा दिया और उनकी जगह, मानो खीज कर, कुत्सित और निकम्मे कीरम-कांटे डाल दिए। गुस्से में भर कर मैं हाथ-पाँव पटकता, अडिग रूप से जीवन की हिंसा का विरोध करता। अन्य सब की भांति मैं भी उसी नदी में बह रहा था, लेकिन उसका पानी मुझे अधिक सुन्न करता, मेरी सारी स्फूर्ति हर लेता और कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो मैं उसकी अतल गहराई में डूबा जा रहा हूँ।

फिर भी लोगों का मेरे साथ अच्छा बरताव था। वे मुझपर कभी नहीं चिल्लाते, जैसा कि वे पावेल के साथ करते थे, न ही वे मुझपर रौब झाड़ते या मनमाना हुक्म चलाते। मेरे नाम के साथ वे कोई खिलवाड़ नहीं करते और अपना सम्मान दिखाने के लिए पूरा नाम लेकर मुझे पुकारते। यह सब मुझे अच्छा लगता, लेकिन यह देख कर मुझे दुःख होता कि किस हद तक और कितनी बड़ी मात्रा में वे वोडका पीते हैं, पीने के बाद वे कितने घिनौने हो जाते हैं, और कितने गिरे हुए तथा विकृत सम्बंध स्त्रियों के साथ रखते हैं। यह जानते हुए भी कि वोडका और स्त्री के सिवा मन बहलाने का अन्य कोई साधन इस जीवन ने उनके पास नहीं छोड़ा है, मेरा जी भारी हो जाता।

उदास भाव से नतालिया कोज़लोवस्काया की मैं याद करता। अपने आप में वह काफ़ी समझदार और साहसी स्त्री थी। लेकिन वह भी स्त्रियों को निरे मन बहलाव की चीज़ समझती थी।

फिर नानी का मुझे खयाल आता, रानी मारगोट की मैं याद करता।

रानी मारगोट की याद करते समय मेरा हृदय सहम-सा जाता। अन्य सब से, चारों ओर की हर चीज़ से, वह इतनी भिन्न और अलग थी कि लगता जैसे मैंने उसे सपने में देखा हो।

स्त्रियों के बारे में मैं ज़रूरत से ज़्यादा सोचने और यहाँ तक मन्सूबे बांधने लगा कि अन्य सब की भांति अगली छुट्टी का दिन मैं भी किसी स्त्री के साथ आनन्द से बिताऊँगा। किसी शारीरिक आकांक्षा से प्रेरित होकर मैं ऐसा नहीं सोचता था। मैं स्वस्थ और बेहद स्वच्छता पसन्द था। लेकिन कभी-कभी किसी कोमल और सहानुभूतिशील स्त्री को हृदय से लगाने और उसके सामने अपनी समूची वेदना उँडेलने के लिए मैं बुरी तरह बेचैन हो उठता। मेरी यह कामना बहुत कुछ वैसी ही थी जैसे कि एक बच्चा अपनी माँ की गोद में जाकर कुनमुनाने के लिए ललक उठता है।

पावेल पर मुझे ईर्ष्या होती। एक रात जब कि हम दोनों पास-पास लेटे हुए थे, उसने मुझसे अपने उस प्रेम का ज़िक्र किया जो कि सड़क के उस पार रहने वाली नौकरानी से चल रहा था।

"क्या बताऊँ, भाई, महीना-भर पहले तक मैं उसे बर्फ़ की गेंदों से मार-मार कर दूर भगा देता था और उसकी ओर आँख तक उठा कर नहीं देखता था। लेकिन अब जब वह बाहरवाले बेंच पर मुझसे सट कर बैठती है तो उसका स्पर्श ऐसा लगता है मानो दुनिया में उस जैसा और कोई नहीं है।"

"तुम उससे क्या बातें करते हो?"

"सभी तरह की बातें होती हैं। वह मुझे अपने बारे में बताती है, और मैं उसे अपने बारे में बताता हूँ। और फिर हम चुम्बन करते हैं... केवल वह... बस, हाथ नहीं रखने देती... वह इतनी भली है कि तुम कल्पना तक नहीं कर सकते... तुम आदमी हो या इंजन, हर वक्त धुवाँ उड़ाते रहते हो!"

धुवाँ तो मैं बेहद उड़ाता था। तम्बाकू का नशा मेरे दिमाग़ पर छा जाता, और मेरी परेशानी को कुछ कम कर देता। इसके साथ-साथ अगर मुझे वोडका का भी चस्का पड़ जाता तो मैं कहीं का न रहता। लेकिन उसके ज़ायके और गंध से मैं दूर भागता था। पावेल अलबत्ता खूब पीता था। नशे में धुत्त होने के बाद वह सुबकियाँ-सी भरता और रोनी आवाज़ में रट लगा देता:

"मैं घर जाना चाहता हूँ, मुझे घर भेज दो!"

वह अनाथ था। उसके माँ और बाप एक मुद्दत हुई मर गए थे। उसके घर पर न कोई बहन थी, और न भाई। आठ वर्ष की आयु से ही वह अजनबियों के बीच जीवन बिताने लगा था।

मेरा हृदय रह-रह कर ऊब उठता और कहीं भाग जाने को जी चाहता। वसन्त के आगमन ने मेरी इस भावना को और भी मुँह ज़ोर बना दिया। आखिर मैंने एक बार फिर जहाज़ पर काम करने का निश्चय किया जिससे, अस्त्राखान पहुँचने के बाद वहाँ से फ़ारस के लिए तिड़ी हो जाऊँ।

याद नहीं पड़ता कि फारस जाने की यह बात मेरे मन में कैसे समा गई। इसका कारण शायद यह था कि निजनी नोवगोरोद के मेले में फ़ारस के सौदागरों को मैंने देखा था और वे मुझे बहुत अच्छे लगे थे। धूप में बैठे हुए वे हुक्का गुड़गुड़ाते रहते — पत्थर के बुतों की भांति। उन्होंने अपनी दाढ़ियाँ रंग रखी थीं, और ऐसा

मालूम होता मानो उनकी बड़ी-बड़ी काली आँखें सभी कुछ जानती हैं, उनसे कुछ भी छिपा नहीं है।

भागने का मैंने सचमुच निश्चय कर लिया था और शायद मैं भाग भी जाता, अगर बीच में एक घटना न हो जाती। ईस्टर सप्ताह के दौरान में जब कुछ कारीगर अपने-अपने गाँव चले गए थे और बाक़ी पीने-पिलाने में मगन थे, अपने भूतपूर्व मालिक—नानी की बहन के लड़के—से मेरी भेंट हो गई। ओका नदी के चढ़ाव की एक ओर एक खेत में वह घूमने निकला था। धूप खिली हुई थी और वह सामने से चला आ रहा था: भूरे रंग का हल्का कोट पहने, हाथ पतलून की जेबों में डाले, दाँतों में सिगरेट दबाए और अपनी टोपी को, बांके अन्दाज़ से, पीछे खिसका कर गुद्दी पर जमाए। निकट पहुँचने पर मित्रतापूर्ण मुसकराहट से उसने मेरा अभिवादन किया। उसका यह मौजी और आज़ादी पसन्द रूप देख कर मैं मुग्ध हो गया। खेत में उसके और मेरे सिवा अन्य कोई नहीं था।

"आह पेश्कोव! प्रभु ईसा तुम्हें खुश रखे!"

ईस्टर के उपलक्ष्य में एक-दूसरे का मुँह चूमने के बाद उसने मुझसे पूछा कि कहो, कैसी गुज़र रही है। मैंने उसे साफ़-साफ़ बता दिया कि कारख़ाने से, इस नगर से, और हर चीज़ से मैं बुरी तरह ऊब उठा हूँ और फ़ारस जाने का मैंने निश्चय कर लिया है।

"अपने इस निश्चय को धता बताओ!" उसने गम्भीर स्वर में कहा।—"फ़ारस जाकर कौन स्वर्ग में पहुँच जाओगे। मैं कहता हूँ, उसे जहन्नुम रसीद करो। समझे भाई, तुम्हारी उम्र में मैं खुद भी इसी तरह भागने के लिए बेचैन रहता था, जिधर भी शैतान खींच ले जाए।"

शैतान को वह इस बेफिक्री के साथ उछालता जैसे लड़के खेल में गेंद को इधर-से-उधर उछालते हैं। उसका यह अन्दाज़ मुझे बड़ा अच्छा लगा। बहुत ही उन्मुक्त और वसन्त की उमंग में पगा हुआ। उसकी हर चीज़ से एक अजीब उमंग और बेफिक्री फूटी पड़ती थी।

"सिगरेट पिओगे?" मोटी सिगरेटों से भरा चाँदी का केस मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने पूछा।

उसकी इस बात ने मुझे अब पूरी तरह वश में कर लिया।

"सुनो, पेश्कोव, मेरे साथ फिर काम करने के बारे में तुम्हारी क्या राय है? इस साल मेले के लिए मैंने कोई चालीस हज़ार के ठेके लिए हैं। मैं तुम्हें बाहर, मेले के मैदान में ही, काम दूँगा। एक तरह से तुम ओवरसीयर का काम करोगे। जो निर्माण-सामग्री आए उसे संभालना, इस बात की निगरानी रखना कि हर चीज़ ठीक समय पर सही जगह पहुँच जाए, और यह कि मजदूर चोरी-चकारी न करें। क्यों, यह ठीक रहेगा न? वेतन—पाँच रूबल महीना, और पाँच कोपेक भोजन के लिए। घर की स्त्रियों से तुम्हारा कोई वास्ता नहीं पड़ेगा। सुबह ही तुम काम पर निकल जाओगे, और रात को लौटोगे। स्त्रियों से कोई मतलब नहीं। लेकिन इतना करना कि इस भेंट के बारे में उनसे भूल कर भी ज़िक्र न करना। बस, सन्त थौमसवाले रविवार के दिन चुपचाप चले आना,—मानो तुम आकाश से टपक पड़े हो। क्यों, ठीक है न?"

गहरे मित्रों की भांति हमने एक-दूसरे से विदा ली। उसने मुझसे हाथ मिलाया और दूर पहुँच जाने के बाद भी काफ़ी देर तक टोपी हिलाता रहा।

जब मैंने कारीगरों के सामने नौकरी छोड़ने का ऐलान किया तो क़रीब-क़रीब सभी ने दुःख प्रकट किया। अपने प्रति उनका यह

लगाव मुझे बड़ा प्रिय मालूम हुआ और मैं ख़ुशी से फूल गया। पावेल ख़ास तौर से अस्तव्यस्त हो उठा। शिकायत के स्वर में बोला:

"भला सोचो तो, हम लोगों को छोड़ कर उन दहकानों के बीच तुम रहोगे? वहाँ बढ़ई होंगे, रंग साज़ होंगे... पूह, इसी को कहते हैं आसमान से गिर कर ताड़ में अटक जाना!"

जिखरेव बड़बड़ाया:

"जवानी में आदमी वैसे ही मुसीबत खोजता है जैसे मछली पानी में गहराई खोजती है।"

कारीगरों ने मुझे विदाई दी जो बहुत ही बेरस और बुरी तरह उबा देने वाली थी।

नशे में धुत्त जिखरेव ने कहा:

"निश्चय ही जीवन में कभी तुम यह करोगे और कभी वह, लेकिन अच्छा यही है कि एक चीज़ को पकड़ लो और शुरू से आख़िर तक उसी से चिपके रहो!"

"मतलब यह कि सब कुछ भूलकर उसी के साथ दफ़न हो जाओ!" शान्त भाव से लारिआनोविच ने भी अपना स्वर छेड़ा।

मुझे लगा कि इस तरह की बातें वे बेमन से कर रहे हैं, मानो किसी रिवाज की पूर्ति कर रहे हों। वह धागा जो हमें रीति-रिवाजों से बांधे था, चाहे जैसे भी हो, गल चुका था और उसे टूटने में देर नहीं लगी।

नशे में धुत्त गोगोलेव ऊपर तख़्ते पर पड़ा हाथ-पाँव पटक रहा था। बैठे हुए गले से वह बड़बड़ा उठा:

"अगर मैं चाहूँ तो तुम सब को जेल में बन्द करा सकता हूँ। मुझे एक भेद मालूम है: यह कि तुम इश्वर में विश्वास नहीं करते। अहा-हा-हा!"

आकृतिविहीन अधूरी देव-प्रतिमाएँ अभी भी दीवार के सहारे टिकी थीं और काँच की गेंदें छत से चिपकी थीं। इधर कुछ दिनों से बिना कृत्रिम रोशनी के हम काम कर रहे थे, इसलिए गेंदों की ज़रूरत नहीं होती थी और उनपर धूल तथा कारिख की भूरी तह चढ़ गई थी। हर चीज़ मेरे स्मृति-पट पर इतनी गहराई से नक्श थी कि आज दिन भी, केवल आँख बन्द करते ही, वह अंधेरा कमरा और उसकी मेज़ें, खिड़कियों की ओटक पर रखे रंग के डब्बे, रंग करने के ब्रुश, देव-प्रतिमाएँ, हाथ-मुँह धोने के ताम्बे के बरतन के नीचे कोने में रखी गंदे पानी की बाल्टी जो आग बुझाने वालों की टोपी की भांति दिखती थी और तख़्ते के ऊपर से नीचे लटकी गोगोलेव की टाँग जो लाश की भांति नीली पड़ गई थी, मेरी कल्पना में मूर्त हो उठती हैं।

मेरा बस चलता तो विदाई के बीच में ही उठ कर मैं भाग जाता। लेकिन यह सम्भव नहीं था—उदास क्षणों को लम्बा खींचने का रूसियों को कुछ चाव होता है। नतीजा यह कि विदाई का जल्सा बाक़ायदा मातमी सर्विस—तेरहीं आदि का—रूप धारण कर लेता है।

जिखरेव ने, भौंहें चढ़ा कर, मुझसे कहा :

"मैं तुम्हें वह पुस्तक—"राक्षस"—नहीं लौटा सकता। अगर तुम चाहो तो इसके लिए बीस कोपेक ले सकते हो।"

लेर्मन्तोव की पुस्तक को अपने से अलग करना कठिन था, ख़ास तौर से इसलिए भी कि उसे मुझे आग बुझाने वालों के वृद्ध मुखिया ने भेंट किया था। लेकिन जब मैंने, कुछ विरोध सा दिखाते हुए पैसे लेने से इन्कार कर दिया तो जिखरेव ने उन्हें चुपचाप अपने बटुवे में रख लिया और निश्चल अन्दाज़ में बोला :

"जैसी तुम्हारी मर्ज़ी। लेकिन यह जान रखो कि मैं पुस्तक

नहीं लौटाऊँगा। वह तुम्हारे लिए नहीं है। उस तरह की पुस्तक रख कर तुम किसी समय भी मुसीबत में फंस सकते हो।"

"लेकिन वह तो बाज़ार में बिकती है। मैंने खुद अपनी आँखों से उसे पुस्तकों की दुकान पर देखा है।"

"इससे क्या हुआ? बाज़ार में तो पिस्तौल भी बिकते हैं!" उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

और उसने पुस्तक कभी नहीं लौटाई।

मालकिन से विदा लेने जब मैं ऊपर गया तो रास्ते में उसकी भतीजी से भेंट हो गई।

"सुना है कि तुम हमें छोड़ कर जा रहे हो," उसने कहा।

"हाँ, जा तो रहा हूँ।"

"अच्छा है कि तुम अपने-आप जा रहे हो, नहीं तो वे खुद तुम्हें निकाल देते," कुछ उद्धत लेकिन सच्चे हृदय से उसने कहा।

सदा नशे में धुत्त रहनेवाली मेरी मालकिन बोली:

"अच्छी बात है, जाओ! खुदा तुम्हारा भला करे। तुम बहुत बुरे और मुँहफट लड़के हो। हालांकि मैंने तुम्हारा बुरा पक्ष कभी नहीं देखा, लेकिन सब यही कहते हैं कि तुम अच्छे नहीं हो!"

एकाएक उसने रोना शुरू कर दिया और आँसुओं के बीच बुदबुदाते हुए कहने लगी:

"अगर मेरा पति—भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे—आज जीवित होता तो वह तुम्हारे कान लाल करता और मार-मार कर सिर का सारा कचूमर निकाल देता, लेकिन तुम्हें यहीं रखता और इस तरह भागने न देता। अब तो सभी कुछ बदल गया है। ज़रा-सी बात हुई और तुम बिस्तरा गोल करके चल दिए! दइया रे! इस ढंग से तो पता नहीं तुम कहाँ-कहाँ की धूल छानोगे!"

मेले के मैदान में वसन्त की बाढ़ का पानी भरा था। पत्थर की बनी मेले की दुकानों और इमारतों के दूसरे तल्ले तक पानी चढ़ आया था। मैं अपने मालिक के साथ नाव में बैठा था। नाव मेले की इमारतों के बीच से गुज़र रही थी। मैं डाँड चला रहा था और मालिक, नाव के पिछले हिस्से में बैठा, एक डाँड से पंखे का काम लेते हुए पानी काट रहा था। हमारी नाव नाक उठाए, बन्द और तरंगविहीन, उनींदे से मटमैले पानी में हिचकोले खाती इस बाज़ार से उस बाज़ार में चक्कर लगा रही थी।

"इस साल वसन्त में कितनी भारी बाढ़ आई है, शैतान चट कर जाए इसे! यह हमें अपना काम भी वक्त पर पूरा करने नहीं देगी!" मालिक ने बड़बड़ाते हुए अपना सिगार जलाया, जिसके धुवें से चिथड़े जलने ऐसी गंध आती थी।

एकाएक वह भय से चीख उठा:

"अरे बचना, नाव रोशनी के खम्बे से टकराना चाहती है!"

लेकिन नाव टकराई नहीं। उसे संभालने के बाद बोला:

"कम्बख़्तों ने नाव भी हमें छाँट कर दी है! हरामी कहीं के!"

फिर हाथ से इशारा करते हुए उसने वह जगह दिखाई जहाँ से, बाढ़ का पानी कम होते ही, दुकानों की मरम्मत का काम शुरू किया जाएगा। सफ़ाचट चेहरा, छंटी हुई मूंछें और दाँतों के बीच सिगार, कोई यह नहीं कह सकता था कि वह ठेकेदार है। उसके बदन पर चमड़े की जाकेट, पावों में घुटनों तक के जूते, कंधे पर शिकारियों वाला थैला और सामने पावों के पास लेबेल मार्का छर्रे वाली कीमती बन्दूक पड़ी थी। सिर पर चमड़े की टोपी

रखी थी जिसे, होठों को भींचते हुए आगे की ओर खींच कर कभी वह आँखों पर झुका लेता और चौकन्ना सा होकर अपने चारों ओर देखता, कभी खिसका कर पीछे गुद्दी की ओर कर लेता। एकाएक उसके चेहरे पर युवकों ऐसी चपलता झलक उठती और मूछों में इस तरह मुसकराता मानो कोई मज़ेदार कल्पना उसके दिमाग़ में आ गई हो। मन की मौज और तरंगों में उसे इस तरह बहता देख कर एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं लगता कि वह कोई व्यापारी आदमी है, काम-काज के बोझ और बाढ़ के कम न होने की चिन्ता में डूबा हुआ।

और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध था, अचरज की निश्चल भावना का बोझ मेरे हृदय पर लदा था। मुझे बड़ा अजीब मालूम होता जब मैं जीवन की चहल-पहल से शून्य इस मेला-नगर पर नज़र डालता। चारों ओर पानी ही पानी, सूनी खिड़कियों वाली इमारतों की पाँतें, और कब्रिस्तान जैसी शान्ति। ऐसा मालूम होता मानो समूचा नगर पानी में तैरता हुआ हमारी नाव के पास से गुज़र रहा हो।

आसमान में बादल छाए थे। सूरज बादलों की भूलभुलैयाँ में उलझा था। कभी-कभी, उड़ती हुई सी नज़र डाल कर, वह नीचे की ओर देखता और फिर बादलों में खो जाता: चांदी के बड़े थाल की भांति शीतल और ठंडा।

पानी भी, आसमान की ही भांति, मैला और ठंडा था। एकदम थिर और गतिविहीन। ऐसा मालूम होता मानो वह वहीं एक जगह जाम हो गया है और सूनी इमारतों तथा दुकानों की पीली मटमैली पाँतों के साथ-साथ नींद ने उसे भी अपने चंगुल में दबोच लिया है। जब कभी रुपहला सूरज बादलों के पीछे से झाँक कर देखता तो हर चीज़ पर एक धुंधली सी चमक छा जाती,

पानी में बादलों का अक्स उभर आता और ऐसा मालूम होता मानो हमारी नाव दो आसमानों के बीच अधर लटकी हो। पत्थर की इमारतें भी सिर उभारतीं और बे-मालूम से अन्दाज़ में वोल्गा तथा ओका नदी की ओर बहने लगतीं। टूटे हुए पीपे, बक्सें और टोकरे-टोकरियाँ, लकड़ी के छोटे-मोटे टुकड़े और घास-फूस के तिनके पानी की सतह पर डूबते-उतराते, और कभी-कभी लकड़ी के लट्ठे और बाँस, मुर्दा साँपों की भांति तैरते हुए निकल जाते।

भूले-भटके, कहीं-कहीं इक्की-दुक्की खिड़कियाँ खुली थीं। दुकानों के वराण्डों की छतों पर कपड़े सूख रहे थे और रेलिंग के सरियों के बीच कपड़े के जूते रक्खे हुए थे। एक खिड़की में से कोई स्त्री गरदन निकाले बाहर गंदे पानी की ओर ताक रही थी। वराण्डा लोहे के खम्बों पर टिका था और एक खम्बे के सिरे से एक नाव बंधी थी। उसके लाल रंग का तिरमिरेदार अक्स पानी में ऐसा मालूम होता मानो माँस का लोथड़ा तैर रहा हो।

जीवन के इन चिन्हों को देख कर मेरा मालिक सिर हिलाता और मुझे बताना शुरू करता:

"देखा तुमने, यहाँ मेले का चौकीदार रहता है। खिड़की में से रेंग कर वह छत पर चढ़ जाता है, फिर अपनी किश्ती में बैठ कर चोरों की ताक में किश्ती को इधर-से-उधर खेता रहता है। अगर अन्य कोई चोर नजर नहीं आता, तो वह खुद चोरी करने लगता है।"

वह अलस और निस्संग भाव से बोल रहा था, और उसका दिमाग़ कहीं और उलझा था। हर चीज़ सन्नाटे में डूबी, सूनी और सपने की भांति अजीब मालूम होती थी। वोल्गा और ओका नदी के पानी ने मिल कर एक भीमाकार झील का रूप धारण कर लिया था। उधर, टेढ़े-मेढ़े पहाड़ पर नगर का रंग-बिरंग दृश्य

नज़र आता था। बाग-बगीचे इसकी शोभा बढ़ाते थे। बगीचों की कोख अभी सूनी थी,—एक भी फल कहीं नजर नहीं आता था। लेकिन उनकी टहनियाँ बौरों से लदी थीं और घर तथा गिरजे सब हरयाली में लिपटे मालूम होते थे। ईस्टर की घंटियों की समृद्ध ध्वनि पानी पर से तैरती हुई आ रही थी और, इतनी दूर होने पर भी, नगर के हृदय की धड़कन का हम अनुभव कर सकते थे, लेकिन यहाँ हर चीज़ उस उजाड़ गिरजे की भांति सन्नाटे में डूबी थी जिसे लोगों ने भुला दिया हो।

काले पेड़ों की दो पाँतों के बीच मुख्य रास्ते से हमारी नाव पुराने गिरजे की ओर जा रही थी। मालिक के मुँह में लगे सिगार का धुआँ उसकी आँखों को कड़ुवा रहा था और नाव पेड़ों के तनों से टकरा कर जब गेंद की भांति उछलती थी तो खीज कर वह चिल्ला उठता था:

"क्या वाहियात नाव है!"

"पानी काटना बंद कर दो।"

"यह कैसे हो सकता है?" वह भुनभुनाता,—"जब नाव में दो आदमी होते हैं तो एक खेता और दूसरा पतवार संभालता है। अरे वह देखो, उधर चीना बाज़ार है।

मेले के मैदान के चप्पे-चप्पे से मैं परिचित था, और दुकानों की वह पाँत मेरी खूब जानी-पहचानी थी जिसकी छतें अजीब-व-गरीब थीं और जिनके कोनों पर पलास्तर की बनी चीनी लोगों की मूर्तियाँ पालथी मारे बैठी थीं। एक बार मेरे साथी खिलाड़ियों और मैंने उनपर पत्थरों से निशानेबाज़ी की थी और मेरे कुछ निशाने इतने सधे हुए और सही बैठे थे कि उनमें से कई के सिर और हाथ गायब हो गए थे। लेकिन अब मुझे अपनी इस हरकत पर गर्व का अनुभव नहीं होता था।

"देखा इन दड़बों को!" इमारतों की ओर संकेत करते हुए उसने कहा।—"अगर मेरे पास इनका ठेका होता...।"

सीटी बजाते हुए उसने अपनी टोपी को पीछे खिसका कर गुद्दी की ओर कर लिया।

लेकिन, न जाने क्यों, मुझे लगा कि अगर उसे इन इमारतों का ठेका मिला होता तो वह भी इन्हें बनवाने में उतनी ही बेगार काटता, और इनके लिए जगह भी यही चुनता जो, नीची होने के कारण, वसन्त के दिनों में दो नदियों की बाढ़ में आए साल डूब जाती थी। इस तरह उसके दिमाग़ की टकसाल से भी जो चीज़ निकलती, वह चीना बाज़ार से कुछ कम भयानक न होती।

अपने सिगार को उसने पानी में फेंक दिया और खीज में भर कर पानी में थूक की पिचकारी छोड़ते हुए बोला:

"अब तुम्हीं बताओ पेश्कोव, इसे भी क्या तुम जीवन कहोगे—एकदम बेरस और बेरंग! पढ़े-लिखे लोगों का यहाँ अकाल है। दो घड़ी बात करने के लिए भी कोई नहीं मिलता। कभी-कभी रौब झाड़ने के लिए मन ललक उठता है, लेकिन तुम्हीं बताओ, अगर कोई रौब झाड़े भी तो किसके सामने? कोई है ऐसा? नहीं, कोई नहीं। यहाँ तो केवल बढ़ई हैं, रंगसाज़ हैं, दहकान हैं, चोर और उचक्के हैं...।"

दाहिनी ओर, पानी में डूबी पहाड़ी के ढलुवान पर, खिलौने की भांति सुन्दर एक मसजिद थी। मालिक ने कनखियों से उसकी ओर देखा, और इस तरह बोलता रहा मानो किसी भूली हुई बात को याद कर रहा हो:

"एक जर्मन की भांति मैं भी बीयर पीने और सिगार का धुआँ उड़ाने लगा। जर्मन पक्के व्यापारी होते हैं—एकदम कुड़क मुर्ग़! बीयर पीना तो ख़ैर एक अच्छा शगल है, लेकिन सिगार से

पटरी बैठती नहीं मालूम होती। सिगार मुंह से लगाया नहीं कि बीवी जान खाने लगती है: आज यह चमड़े जैसी गंध कहाँ से आ रही है? उसे क्या पता कि जीवन को थोड़ा सरस बनाने के लिए क्या कुछ करना पड़ता है... लेकिन यह लो, अपनी पतवार अब तुम खुद संभालो!"

उसने डाँड उठाकर नाव के एक बाजू रख दिया, अपनी बन्दूक उठाई और छत पर पालथी मारे बैठी प्रतिमाओं में से एक को अपना निशाना बनाया। चीनामैन की प्रतिमा को कोई नुकसान नहीं पहुंचा, छर्रे दीवार और छत पर बिखर कर रह गये। धूल का एक बादल सा उठा, और हवा में विलीन हो गया।

"निशाना चूक गया!" बन्दूक में फिर से छर्रे भरते हुए उसने लापर्वाही से कहा।

"लड़कियों से तुम्हारी कैसी पटती है? अभी तक तुम्हारा रोज़ा टूटा या नहीं? नहीं? अरे, मैं तो तेरह वर्ष की उम्र से ही प्रेम की नदी में गोते लगाने लगा था।"

उसने अपनी पहली प्रेमिका के बारे में इस तरह बताना शुरू किया मानो वह किसी सपने की याद कर रहा हो। वह एक नौकरानी थी। जिस नक्शा-नवीस के यहाँ वह खुद काम करता था, उसी के घर पर वह भी काम करती थी।

वह अपने प्रथम प्रेम की कहानी सुना रहा था और उसकी आवाज़ के साथ-साथ इमारतों के कोनों से पानी के टकराने की धीमी छपछप भी सुनाई पड़ रही थी। गिरजे के उस पार, दूर-दूर तक, पानी ही पानी झिलमिला रहा था जिसमें जहाँ-तहाँ, बेंत वृक्ष की काली टहनियाँ और सरकंडे सिर उठाए थे।

देव-प्रतिमाओं के कारखाने में कारीगर अक्सर छात्रों का एक गीत गाया करते थे:

नीला सागर, नीली लहरें, नीला उसका पानी नीला
अम्बर उसका साथी खेले खेल तूफानी!

चारों ओर फैले इस छोटे सागर का जब यह हाल था, तो नीले रंग में डूबा वह सागर कितना बेरस और बोझिल होता होगा!

"रात को मुझे नींद न आती," मेरे मालिक ने कहा,—"बिस्तरे से उठ कर मैं उसके दरवाज़े पर जा खड़ा होता और पिल्ले की भांति काँपता रहता। उसका घर क्या था, पूरा बर्फ़ख़ाना था। उसके मालिक को भी उससे सांठ-गांठ थी और अक्सर रात को वह भी उसके पास जाता था। इस बात का पूरा अन्देशा था कि कहीं वह मुझे उसके घर पर रंगे हाथ न पकड़ ले। लेकिन मैं उससे डरता नहीं था...।"

वह कुछ सोचता हुआ सा बोल रहा था, मानो किन्हीं पुराने कपड़ों को निकाल कर उनकी जाँच कर रहा हो कि इन्हें अब फिर पहना जा सकता है या नहीं।

"वह मुझे दरवाज़े के बाहर खड़ा देखती और उसे तरस आ जाता। दरवाज़ा खोल कर कहती: 'भीतर चले आओ, नटखट लड़के!'"

इस तरह की इतनी कहानियाँ मैंने सुनी थीं कि मेरा मन उनसे पूरी तरह ऊब चुका था। इन सब कहानियों में, समान रूप से, अगर कोई अच्छी बात थी तो यह कि लोग अपने प्रथम प्रेम का किस्सा बयान करते समय डींग नहीं मारते थे, अश्लीलता और गंदगी से उसे बचाते थे और एक कसक के साथ बड़े चाव से उसकी याद करते थे। ऐसा मालूम होता मानो अपने जीवन के श्रेष्ठतम क्षणों की वे याद कर रहे हों। और इसमें कोई शक नहीं कि कितने ही लोग इस तरह प्रथम प्रेम का ज़िक्र करते मानो सिवा उसके अपने जीवन में अन्य किसी अच्छी चीज़ से उनका वास्ता नहीं पड़ा।

हँसते और अपने सिर को हिलाते हुए मालिक ने अचरज में भर कर कहा:

"अरे बाप रे, मेरी जान भले ही चली जाए, लेकिन पत्नी के सामने इसका कभी ज़िक्र नहीं कर सकता। नहीं, कभी नहीं! यों मैं इसे पाप या बुरा नहीं समझता। फिर भी उसके सामने जाते ही जैसे मुँह बंद हो जाता है, ज़बान खोलने का साहस नहीं होता। मतलब यह...।"

मुझसे नहीं मानो अपने-आपसे वह यह सब कह रहा था। अगर वह चुप रहता तो मैं बोलता होता। उस निस्तब्धता और शून्य में बातचीत करना, गाना और हरमोनियम बजाना, कुछ न कुछ करना ज़रूरी था। नहीं तो डर था कि वह मुर्दा नगर कहीं हमें भी अपनी चिर निद्रा में न खींच ले, उस ठंडे और मैले पानी की समाधि में कहीं हम भी डूब कर न रह जाएँ।

"सब से पहली बात तो यह कि कभी कम उम्र में विवाह न करना!" उसने मुझे सीख देनी शुरू की।—"विवाह, मेरे भाई, अत्यन्त महत्वपूर्ण मंज़िल है! चाहे जहाँ और चाहे जिस रूप में भी तुम क्यों न रहते हो,—चाहे तुम फारस के मुसलमान हो अथवा मास्को के पुलिसमैन, तुम बुनकर का काम करते हो, चाहे चोरी-चकारी, हर जगह और हर रूप में चीज़ों को तुम्हें बदलना पड़ता है जो तुम्हारी रुचि की नहीं होती। लेकिन अपनी पत्नी को तुम नहीं बदल सकते। पत्नी, भाई मेरे, ऋतु की भांति है, जिससे बदलना संभव नहीं। उसे तुम, पाँव की जूती की भांति, जब मन में आए उतार कर रख या फेंक नहीं सकते!"

उसके चेहरे पर से एक छाया सी गुज़र गई। भौंहों में बल डाले वह एकटक मैले पानी की ओर ताकते और अपनी कुबड़ी नाक को उँगली से खुजलाते हुए बुदबुदाता रहा:

"हाँ, भाई... यह काफ़ी नाज़ुक मामला है। हो सकता है कि हवा के थपेड़े आएँ और तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकें। फिर भी, कौन जाने, किस के लिए कहाँ और किस रूप में जाल बिछा है। ज़रा चूके नहीं कि गए...।"

हमारी नाव मेश्चेस्कोंए झील में उगी झाड़ियों के बीच से गुज़र रही थी जिसका पानी अब वोल्गा से गले मिल रहा था।

"ज़रा धीरे डाँड चलाओ!" मेरे मालिक ने फुसफुसाकर कहा और बन्दूक उठा कर झाड़ियों की ओर निशाना साधा।

मरियल सी दो-चार मुर्गाबियों का शिकार करने के बाद बोला:

"अब सीधे कुनाविनो चलो। आज साँझ वहीं रंग रहेगा। तुम घर हो आना। मेरे बारे में पूछें तो कहना कि मुझे एक ठेकेदार से काम था सो मैं वहीं फंस गया।"

बस्ती की एक सड़क पर मैंने उसे छोड़ दिया। यहाँ भी बाढ़ का पानी भरा था। इसके बाद, मेले के मैदान को पार कर, मैं स्त्रेल्का लौट आया। नाव को एक जगह बाँध कर मैं दोनों नदियों के संगम का, नगर का, छोटे-मोटे जहाज़ों और आसमान का, नज़ारा देखने लगा। आसमान में अब सफ़ेद बादल छितरे थे और ऐसा मालूम होता था मानो वह किसी भीमाकार पक्षी का पंख हो। बादलों के बीच नीली झिरियों में से सुनहरा सूरज झलक रहा था जिसकी एक किरण समूची दुनिया का रंग बदलने के लिए काफ़ी थी। चारों ओर ख़ूब चहल-पहल थी, हर चीज़ में अब गति और जीवन का स्पन्दन दिखाई देता था। डोंगों की अन्तहीन पाँतें, तेज़ गति से बहाव की ओर लपक रही थीं। डोंगों पर दाढ़ीवाले दहकान खड़े थे और लम्बे बाँसों से डाँड और चप्पुओं का काम ले रहे थे। वे अपास में चुहलें कर रहे थे, एक-दूसरे को ज़ोरों से पुकार रहे थे और पास से गुज़रने वाले जहाज़ों पर आवाज़ें कस

रहे थे। एक छोटा-सा जहाज़ चढ़ाव की ओर एक खाली बजरे को खींच रहा था। नदी का पानी उसे उछालता, पटकनी देकर गिरा देना चाहता और वह, मछली की भांति बल खाकर, फिर सीधा हो जाता। उसकी साँस फूल जाती, वह हाँफता और भभकारे लेता, लेकिन पीछे न हटता, पानी को चीरता और उसके निर्मम थपेड़ों से जूझता आगे बढ़ चलता। बजरे पर कंधे-से-कंधा सटाए चार दह-कान बैठे थे, और अपनी टाँगों को नीचे पानी में लटकाए थे। उनमें से एक लाल कमीज़ पहने था और वे, सब के सब, गा रहे थे। गीत के बोल पकड़ में नहीं आते थे, लेकिन उसकी धुन जानी-पहचानी थी।

मुझे लगा कि यहाँ, नदी के इस वातावरण में, एक भी चीज़ ऐसी नहीं है जो अजनबी हो, जिससे मेरा लगाव न हो और जो मुझे अनजान तथा अनबूझ मालूम होती हो। लेकिन बाढ़ में डूबा वह नगर जिसे मैं छोड़ आया था, मानो एक दुःस्वप्न था, मेरे मालिक के दिमाग़ की उपज, खुद उसी की भांति अनबूझ।

नदी के दृश्य से खूब तृप्त और भरा-पूरा होने के बाद मैंने नाव खोली और घर लौट आया। पूरी शक्ति का मैंने अनुभव किया और मुझे लगा कि कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसे मैं न कर सकूँ। रास्ते में क्रेमलिन पहाड़ी पड़ती थी। वहाँ रुक कर मैंने एक बार फिर वोल्गा का नज़ारा देखा। ऊँचाई से धरती का विस्तार और भी सीमाहीन तथा आशा और उमंगों से और भी भरा-पूरा मालूम हुआ।

घर लौटने पर खूब पुस्तकें पढ़ता। रानी मारगोट वाले फ़्लैट में अब एक बड़ा परिवार रहता था। पाँच लड़कियाँ, एक से एक सुन्दर, इस परिवार की शोभा बढ़ाती थीं। दो लड़के थे जो जिम-नाशियम में पढ़ते थे। ये सब पुस्तकों के शौकीन थे, और पढ़ने

के लिए मुझे खूब पुस्तकें देते थे। तुर्गेनेव को तो जैसे मैं एक साँस में पढ़ गया। उसके लिखने का ढंग अद्‌भुत था: एकदम सादगी लिए, हर बात साफ़-साफ़ समझ में आनेवाली, शरद की हवी की भांति स्वच्छ और पारदर्शी। ऐसे ही उसके पात्र थे, छूते डर लगता कि कहीं मैले न हो जाएँ, निर्मल और पवित्र। उसकी हर चीज़, जिसे वह अत्यन्त विनम्र भाव से प्रतिपादित करता, सुन्दर थी—सुन्दर और अद्‌भुत। मैं पढ़ता और चकित रह जाता।

मैंने पोम्यलोव्स्की कृत "सेमिनारी" उपन्यास पढ़ा। उसके पन्नों में देव-प्रतिमाओं के कारख़ाने जैसा जीवन इतने सजीव और हू-बहू रूप में चित्रित था कि मैं दंग रह गया। यह एक ऐसा जीवन है जिसमें मैं खुद डूब-उतरा चुका था, जिसकी जान-लेवा ऊब और घुटन से जो क्रूर हरकतों में फूट कर जी हल्का करती थी, मैं बुरी तरह परिचित था।

रूसी पुस्तकें बड़ी अच्छी मालूम होतीं, बड़े चाव से मैं उन्हें पढ़ता। उनमें मुझे सदा अपनत्व और एक ख़ास तरह की उदासी का अनुभव होता, मानो ईस्टर से पहले व्रत-उपवासों के दिनों में बजनेवाली गिरजे की घंटियों की ध्वनि उनमें बंद हो। पन्ने खोले नहीं कि उनका धुंधला संगीत प्रवाहित होने लगा।

गोगोल कृत "मुर्दा आत्माएँ" मैंने पढ़ी, लेकिन बेमन से। इसी तरह "मुर्दा घर के पत्र" पढ़ने में भी मेरा जी नहीं लगा। "मुर्दा आत्माएँ", "मुर्दा घर", "मौत", "तीन मौतें", "ज़िन्दा लाश"—ये सब पुस्तकें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मालूम होतीं और उनके नामों को देख कर ही मेरा मन उनकी ओर से फिर जाता। "ज़माने की करतूत", "क़दम-ब-क़दम", "क्या करें", "स्मूरिन गांव की कहानी" तथा इसी ठप्पे की अन्य पुस्तकें भी मुझे अच्छी नहीं लगीं।

लेकिन डिकेन्स और वाल्टर स्काट के उपन्यास मैं बड़े चाव से पढ़ता। उनकी पुस्तकों को मैं दो-दो और तीन-तीन बार पढ़ता और हर बार खुशी से छलछला उठता। वाल्टर स्काट की पुस्तकें पढ़ कर छुट्टी या उत्सव के दिन किसी शानदार गिरजे में प्रार्थना के लिए जमा लोगों की भीड़ याद हो आती। प्रार्थना ज़रूर कुछ लम्बी और उकता देने वाली मालूम होती, लेकिन गिरजे का वातावरण सदा छुट्टी या उत्सव के उछाह में डूबा रहता। और डिकेन्स के प्रति मेरा गहरा लगाव तो आज दिन तक बना है, जब भी उसे पढ़ता हूँ, मुग्ध हो उठता हूँ। वह एक ऐसा लेखक था जो कठिनतम कला में—जनता से प्रेम करने की कला में—अत्यन्त दक्ष था, और जिसने इस कला को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया था।

हम लोगों का एक बड़ा सा दल साँझ होते ही बरांडे में जमा हो जाता: रानी मारगोट के फ़्लैट में रहनेवाले भाई और पाँचों बहनें, व्याचेस्लाव सेमाश्को नामक एक पिचकी हुई नाक वाला छात्र और कई अन्य। कभी-कभी एक बड़े अफ़सर की लड़की भी हमारे साथ आ बैठती। इस अफ़सर का नाम प्तित्सिन था। पुस्तकों और कविताओं के बारे में, जो मुझे अत्यन्त प्रिय थीं और जिनमें मेरी अच्छी गति थी, वे बातें करते। मैं इन सब से ज़्यादा पुस्तकें पढ़ चुका था। लेकिन अक्सर वे स्कूल की बातें करते, अपने शिक्षकों का रोना रोते। मैं उनकी बातें सुनता और मुझे लगता कि मेरा जीवन उनसे ज़्यादा उन्मुक्त है। मुझे अचरज होता कि वे यह सब कैसे बरदाश्त कर लेते हैं। लेकिन, यह सब होने पर भी, मैं उनसे ईर्ष्या करता: यह क्या कम बड़ी बात थी कि वे अध्ययन कर रहे थे!

मेरे संगी-साथी उम्र में मुझसे बड़े थे लेकिन मुझे लगता कि मैं उनसे ज़्यादा परिपक्व और अनुभवी हूँ। यह भावना मुझे भीतर

ही भीतर कचोटती और उनके तथा मेरे बीच एक दीवार सी खड़ी कर देती। इस दीवार को तोड़ने के लिए मैं बेचैन हो उठता और उनके साथ घुल-मिल कर रहना चाहता। दिन-भर मैं काम करता और काफ़ी साँझ बीते, धूल और गर्द से लथपथ हृदय में सर्वथा भिन्न दुनिया की गहरी और विविधतापूर्ण छाप लिए, घर लौटता। इसके प्रतिकूल मेरे संगी-साथियों के अनुभव, कुल मिला कर, सदा एक से होते। लड़कियों के बारे में खूब बातें करते, पहले एक से प्रेम चलता फिर दूसरी से। वे कविताएँ लिखना चाहते, और इसके लिए अक्सर मेरे पास आते। मैं बड़े चाव से तुकबन्दियों पर हाथ आजमाता। मैं तुक जोड़ने में दक्ष था, गीत की कड़ियाँ अपने-आप गुंथ जातीं, लेकिन जाने क्यों मेरी कविताएं हमेशा हास्य रस की रचनाएँ बन जातीं। ज़्यादातर कविताएँ प्तितसिन की लड़की को लक्ष्य कर लिखी या लिखवाई जातीं और मैं, अदबदा कर, किसी सब्ज़ी से— आम तौर से प्याज़ से — उसकी तुलना करता।

सेमाश्को कहता:

"इन पंक्तियों को तुम कविता कहते हो? ये कीलें हैं, कीलें, जिन्हें चमार जूतों में ठोकते हैं!"

अन्य किसी से पीछे न रहने की होड़ में मैं भी प्तितसिन की लड़की से प्रेम करने लगा। यह तो याद नहीं पड़ता कि मैं अपने प्रेम को किस तरह उसके सामने व्यक्त करता था, लेकिन इस प्रेमचक्र का अन्त दुःखद ढंग से हुआ। एक दिन मैंने उससे कहा कि चलो, ज़्वेज़्दिन कुंड चलें। कुंड के बंद और गंदे पानी पर एक तख़्ता तैर रहा था। तय किया कि उसी पर बैठ कर कुंड की सैर की जाएगी। वह इसके लिए तैयार हो गई। तख़्ते को खींच कर मैं किनारे पर ले आया और उसपर खड़ा हो गया। तख़्ता काफ़ी मज़बूत था और मज़े में मेरा बोझ संभाल सकता था। लेकिन

लड़की ने जो बेल-बूटों और फ़ीतों से सजी बिल्कुल गुड़िया बनी हुई थी, सैकड़ों बल खाते हुए जब तख़्ते के दूसरे सिरे पर पाँव रखा तो कम्बख़्त तख़्ता धचका खा गया और वह कुंड में जा गिरी। मैं भी सच्चे प्रेमी की भांति उसके साथ ही साथ कूदा और पलक झपकते उसे पानी से बाहर निकाल लाया। लेकिन भय और पानी की हरी काई ने लिपट कर उसे बिल्कुल चोंचों का मुरब्बा बना दिया था, और उसके सारे सौन्दर्य को बिगाड़ डाला था।

कीचड़ में लथपथ उसने अपना घूंसा ताना और दाँत पीसते हुए बोली:

"तुमने जान-बूझ कर मुझे पानी में धक्का दिया!"

मैंने बहुतेरी माफ़ी मांगी, लेकिन उसपर कोई असर नहीं हुआ और वह मेरी पक्की दुश्मन बन गई।

नगर का जीवन कुछ ज़्यादा दिलचस्प नहीं था। बूढ़ी मालकिन अभी भी मुझसे कुढ़ती और छोटी सन्देह की नज़र से देखती। वीक्तर के चेहरे पर भूरे धब्बों की झालर अब और भी घनी हो गई थी, जो भी उसके सामने पड़ता उसीपर फनफना उठता, मानो सभी से खार खाए बैठा हो।

मालिक के पास नक़्शा बनाने का इतना अधिक काम था कि वह और उसका भाई दोनों मिल कर भी उसे नहीं निबटा पाते थे। इसलिए उसने मेरे सौतेले पिता को भी हाथ बंटाने के लिए बुला लिया।

एक दिन, मेले के मैदान से, मैं कुछ ज़रूरत से ज़्यादा जल्दी लौट आया। भोजन के कमरे में पाँव रखा ही था कि एक ऐसे आदमी पर मेरी नज़र पड़ी जिसे मैं, बहुत पहले ही, अपने दिमाग़ से ख़ारिज कर चुका था। मेरे मालिक के साथ वह चाय की मेज़ पर बैठा था। मुझे देखते ही उसने अपना हाथ बढ़ाया। बोला:

"कहो, कैसी तबीयत है?"

उसे देख कर मैं सन्न रह गया। मुझे सपने में भी आशा नहीं थी कि उससे कभी भेंट होगी। अतीत की याद आग की लपट की भांति मेरे हृदय को झुलसाती हुई कौंद गई।

"तुम्हें देख कर सहम गया है," मेरे मालिक ने कहा।

मेरा सौतेला पिता अपने जर्जर चेहरे पर मुस्कराहट लिए मेरी ओर देख रहा था। उसकी आँखें अब और भी ज़्यादा बड़ी मालूम होती थीं, और वह बेहद घिसा-पिटा तथा रौंदा हुआ नज़र आता था। मैंने अपना हाथ उसकी पतली, गरम उँगलियों से मिलाया।

"तो हम दोनों फिर मिल ही गए!" उसने खांसते हुए कहा।

मैं वहाँ से खिसक गया, कुछ इतना निढाल सा होकर मानो मुझपर मार पड़ी हो!

हम दोनों एक-दूसरे से चौकन्ने और खिंचे खिंचे से रहते। वह मुझे मेरा पूरा नाम लेकर बुलाता और बराबर के आदमी की भांति सम्बोधित करता।

" अगर बाज़ार जाना हो तो मेरे लिए आधा पाव लाफेर्म तम्बाकू, सिगरेट बनाने के विक्टर्सन मार्का सौ कागज़ों का पैकट और आधा सेर उबले हुए सौसेज लेते आना। कृतज्ञ हूँगा।"

सौदा लाने के लिए जब भी वह रोज़गारी देता तो वह हमेशा गर्म होती। साफ़ मालूम होता कि दिक़ ने उसे जकड़ लिया है और ज़्यादा दिनों तक नहीं चलेगा। वह ख़ुद भी यह जानता था और बकरेनुमा अपनी काली दाढ़ी को उमेठता हुआ शान्त तथा गहरी आवाज़ में कहता था:

"असल में मेरे इस रोग का कोई इलाज नहीं है। अगर आदमी भरपूर माँस खाए तो संभल जाता है। कौन जाने, मुझे भी इससे कुछ फ़ायदा हो जाए।"

उसका पेट क्या था, पूरा अंधा कुवाँ था। इतना अधिक वह खाता था कि देख कर अचरज होता था। वह दिन भर चरता और सिगरेट पीता था। उसके मुँह से सिगरेट उसी समय अलग होती थी जब कोई चीज़ उसे अपने मुँह में डालनी होती थी। उसके लिए बाज़ार से मैं रोज़ सौसेज, माँस और मछलियाँ लाता था। लेकिन नानी की बहन एक अनबूझ सन्तोष के साथ, मानो उसके भाग्य का आखिरी फ़ैसला देते हुए, कहती:

"मौत को बढ़िया माल खिला कर फुसलाया नहीं जा सकता। तुम सब कुछ कर सकते हो, लेकिन मौत को नहीं भरमा सकते। सच, कभी भी नहीं!"

स्त्रियाँ सौतेले पिता के चारों ओर इस हद तक मंडरातीं कि देख कर झुंझलाहट होती। वे हमेशा और हर वक़्त कोई न कोई नयी दवा तजवीज़ करती रहतीं, और पीठ के पीछे उसका ख़ूब मज़ाक उड़ातीं।

"आदमी क्या है, भद्रपुरुष," छोटी मालकिन कहती,—"हर जगह उसे गंदगी ही दिखाई देती है। कहता है कि हम मेज़ की झूठन साफ़ नहीं करतीं जिससे मक्खियों की फ़ौज जमा हो जाती हैं!"

"हाँ सचमुच नवाब है", बड़ी मालकिन स्वर में स्वर मिलाती,—"देखती नहीं वह अपना कोट किस तरह साफ़ करता है। धूल के साथ-साथ उसने सारा रोवां भी झाड़ दिया है और वह भिन्ना हो गया है,—दो-चार दिन में इतना भी नहीं रहेगा। लेकिन इससे क्या, धूल तो साफ़ हो जाती है!"

"तुम कोट की बात कहती हो, कुड़क मुर्गियो! थोड़ा धीरज धरो, कुछ दिनों में वह ख़ुद ही साफ़ हो जाएगा," मेरा मालिक मरहम लगाता।

मुझसे यह सहन नहीं होता। नगर के अपढ़ और जाहिल निवासी जिस बुरी तरह बुद्धिजीवियों की टाँग खींचते और उन्हें नाहक कोंचते थे, उसने मुझे अपने सौतेले पिता का पक्ष लेने के लिए मजबूर कर दिया। इन लोगों से तो टोडस्टलू कुकुरमुत्ते ही अच्छे। ज़हरीले ज़रूर होते हैं, लेकिन कम से कम देखने में ख़ूबसूरत तो लगते हैं!

इन लोगों की दमघोट संगत में मेरे सौतेले पिता की क़रीब-क़रीब वैसी ही हालत थी जैसी कि मुर्गियों के दड़बे में फंसी मछली की। कहाँ मुर्गियों का दड़बा और कहाँ मछली, — लेकिन यह तुलना भी उतनी ही बेजोड़ और बेढंगी थी, जितना बेजोड़ और बेढंगा जीवन हम बिता रहे थे।

मुझे लगा कि मेरे सौतेले पिता में भी वैसे ही गुण मौजूद हैं जो कि मैंने कभी 'वाह भाई ख़ूब' में देखे थे, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। 'वाह भाई ख़ूब' और रानी मारगोट मेरी नज़र में मानो उस समूचे सौन्दर्य के मूर्तिमान रूप थे जो मैंने पुस्तकों से प्राप्त किया था। अपने हृदय के श्रेष्ठतम तत्वों और सुन्दरतम कल्पनाओं से मैंने उन्हें सजाया था। पुस्तकें पढ़ने पर एक से एक सुन्दर चित्र मेरे दिमाग़ में उभरते और सब जैसे उनके साथ सम्बद्ध हो जाते। मेरा सौतेला पिता भी 'वाह भाई ख़ूब' की भांति उतना ही अकेला और उतना ही अनचाहा था। घर में हरेक के साथ वह समानता का व्यवहार करता, अपनी ओर से कभी किसी बात में टाँग नहीं अड़ाता और संक्षेप में तथा विनम्रता के साथ सभी सवालों के जवाब देता। जब वह मेरे मालिक को सीख देता तो उसकी बातें सुनने में बड़ा मज़ा आता। मेज़ के पास खड़ा हुआ वह क़रीब-क़रीब दोहरा हो जाता दबीज़ और भारी कागज़ को उंगली के लम्बे नाख़ून से ठकठकाता और शान्त स्वर में समझाना शुरू करता:

"देखो, इस जगह शहतीर में एक डाट डालने की ज़रूरत है, जिससे कि सारा दबाव इसीपर न पड़े। अगर ऐसा न किया तो शहतीर मय दीवार के भरभरा कर गिर पड़ेगा।"

"बात तो ठीक है, लेकिन कौन मगज़ मारे!" मालिक बड़बड़ाता।

जब सौतेला पिता चला जाता तो उसकी पत्नी उसे कोंचती:

"तुम भी कैसे आदमी हो? जो भी आता है, वही कान पकड़ कर सबक़ पढ़ाना शुरू कर देता है।"

साँझ के भोजन के बाद सौतेला पिता बिला नागा अपने दाँत माँजता और सिर पीछे की ओर फेंक कर इस तरह गरारे करता कि उसका टेंटुवा निकल आता। मालकिन, न जाने क्यों, यह देखकर जल-भुन कर कलाबत्तू हो जाती। जब नहीं रहा जाता तो कहती:

"मेरी समझ में इस तरह गरदन उठा कर गरारे करना तुम्हारे लिए घातक हो सकता है, येवगेनी वसीलीयेविच!"

वह केवल मुसकराता और विनम्र स्वर में पूछता:

"क्यों, तुम ऐसा क्यों सोचती हो?"

"इसलिए कि... मुझे कुछ ऐसा ही मालूम होता है।"

इसके बाद हड्डी की एक छोटी-सी कनी लेकर वह अपनी उँगलियों के नीले-नीले नाखून साफ़ करता और उसकी पीठ फिरते ही मालकिन चहक उठती:

"देखो न, यह अपने नाखून तक साफ़ करता है। एक पाँव कब्र में लटका है, लेकिन फिर भी...।"

"अरी कुड़क मुर्गियो!" मालिक लम्बी साँस खींचते हुए कहता।—"क्या सारी बेवकूफ़ी तुम्हारे ही हिस्से में आई है!"

उसकी पत्नी पाँव पटकती:

"ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हारी ज़बान गल कर नहीं गिर जाती!"

रात को बूढ़ी मालकिन ख़ुदा के कान खाती:

"मेरी छाती पर मूंग दलने के लिए अब वे इस मरदुए को घर में ले आए हैं, भगवान! मेरे वीक्तर को कोई नहीं पूछता।"

वीक्तर ने भी मेरे सौतेले पिता का रंग-ढंग अपनाना शुरू कर दिया, वैसे ही धीमे अन्दाज़ में वह चलता, उसकी भांति ही रईसाना और सुनिश्चित अन्दाज़ में हाथों को हरकत देता, उसी की भांति अपनी टाई में गांठ लगाता और वैसे ही बिना चटख़ारे लिए और चपाचप की आवाज़ किए, खाना खाने की कोशिश करता। फिर, अकखड़ अन्दाज़ में, पूछता:

"मक्सिमोव, फ़्रान्सीसी भाषा में 'घुटने' को क्या कहते हैं?"

"मेरा नाम येवगेनी वसीलीयेविच है," मेरे पिता शान्त भाव से उसकी भूल सुधारते।

"कोई बात नहीं। और 'छाती' के लिए फ़्रान्सीसी भाषा में क्या शब्द है?"

साँझ को जब खाने बैठता तो अपनी माँ पर उलटे-सीधे फ़्रेंच शब्दों की झड़ी लगा देता:

"मा मेर, दोन्ने मुअज़न्कोर सूअर का गोश्त!"

बड़ी मालकिन की बाछें खिल जातीं। कहती:

"अरे ओ, फ़्रांस की दुम!"

मेरा सौतेला पिता, बिना किसी परेशानी के गूंगे और बहरे आदमी की भांति अपना माँस चबाता रहता। न वह किसीकी बात सुनता, न मुँह से बोलता, न किसीकी ओर आँख उठा कर देखता।

एक दिन बड़ा भाई छोटे भाई से बोला:

"वीक्तर, फ्रेंच भाषा बोलना तो तुम सीख गए, अब कोई छोकरी भी ले आओ तो अच्छा हो।"

मेरे सौतेले पिता ने जब यह सुना तो उसके चेहरे पर शान्त मुसकराहट खेल गई। इससे पहले और बाद में भी, मैंने उसे मुसकराते नहीं देखा।

लेकिन मेरे मालिक की पत्नी यह सुनकर आग-बगूला हो गई। चम्मच को मेज़ पर पटकते हुए झुंझला कर चिल्लाई:

"तुम तो सारी हया-शर्म घोंट कर पी गए हो! घर की स्त्रियों के सामने इस तरह की बातें करते तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं आती!"

पिछले दरवाज़े के पास, तिदरी के ज़ीने के नीचे, मैं सोता था। ज़ीने में एक खिड़की थी जहाँ बैठ कर मैं पुस्तकें पढ़ता था। कभी-कभी मेरे सौतेले पिता घूमते हुए उधर आ निकलते।

"क्यों, पढ़ रहे हो?" एक दिन उसने पूछा और इतने ज़ोरों से सिगरेट का कश खींचा कि उसके सीने के भीतर जलती हुई लकड़ी के चटखने जैसी आवाज़ सुनाई दी। फिर बोला: "कौनसी पुस्तक है?"

मैंने उसे पुस्तक दिखा दी।

"ओह!" उसने पुस्तक के शीर्षक पर नज़र डाली और बोला: "इसे तो शायद मैं भी पढ़ चुका हूँ। सिगरेट पियोगे?"

हम दोनों सिगरेट का धुवाँ उड़ाते और खिड़की में से गंदे अहाते की ओर देखते रहे।

"कितनी बुरी बात है कि तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का कोई डौल नहीं है," उसने कहा,—"मुझे तो तुम काफ़ी होशियार मालूम होते हो।"

"लेकिन पढ़ता तो हूँ। देखो न...।"

"यह काफ़ी नहीं है। तुम्हें स्कूली शिक्षा की ज़रूरत है, जिसका एक ढंग और क़ायदा होता है।"

मेरे मन में हुआ कि उससे कहूँ:

"तुमने तो बाक़ायदा स्कूली शिक्षा पाई थी, भले आदमी। लेकिन देखो न, क्या हाल हो गया है तुम्हारा!"

उसने मानो मेरे मन की बात भांप ली। बोला:

"अगर हृदय में किसी अच्छे लक्ष्य और उद्देश्य का बल हो तो स्कूली शिक्षा बड़ी मदद देती है। केवल पढ़े-लिखे लोग ही इस जीवन का चोला बदल सकते हैं।"

वह अक्सर सलाह देता:

"अच्छा हो कि तुम यह जगह छोड़ दो। यहाँ पड़े रहने में कोई तुक या लाभ नहीं हैं।"

"लेकिन मज़दूर और कारीगर मुझे अच्छे लगते हैं।"

"किस मानी में?"

"वे दिलचस्प होते हैं।"

"हो सकता है...।"

एक दिन कहने लगा:

"जो हो, हमारे ये मालिक दरिन्दे हैं, पूरे दरिन्दे।"

मुझे उन क्षणों और परिस्थितियों की याद हो आई जब कि मेरी माँ ने सौतेले पिता के विरुद्ध, ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया था। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरा पाँव अंगारे पर पड़ गया हो।

"क्यों, क्या तुम मुझसे सहमत नहीं हो?" मुस्कराते हुए उसने पूछा।

"पूरी तरह सहमत हूँ।"

"ठीक है, तुमसे मैं इसीकी आशा करता था।"

"लेकिन मुझे अपना मालिक फिर भी पसन्द है।"

"यों तो मुझे भी वह अच्छे हृदय का आदमी मालूम होता है। लेकिन बेवकूफ़ है।"

मैं उससे पुस्तकों के बारे में बातें करना चाहता था, लेकिन इस ओर उसमें कोई ख़ास लगाव नहीं दिखाई दिया।

"पुस्तकों में इतना ज़्यादा दिमाग़ खपाने की ज़रूरत नहीं," वह अक्सर कहता, — "तिल का ताड़ बनाना पुस्तकों की विशेषता है। कोई चीज़ों की लम्बाई के रुख खींचतान करता है, और कोई चौड़ाई के रुख। लेखक भी, ज़्यादातर, हमारे इन मालिकों की भांति हैं... ओछे लोग!"

जब वह इस तरह की बातें करता तो मुझे लगता कि वह कोई बहुत ही साहसपूर्ण कार्य कर रहा है, और मुँह बाये मैं उसकी ओर देखता रहता।

"क्या तुमने गोंचारोव के उपन्यास पढ़े हैं?" एक दिन उसने पूछा।

" "फ्राइगेट पल्लादा" पढ़ा है," मैंने जवाब दिया।

" "पल्लादा" तो उबा देने वाला उपन्यास है। लेकिन मोटे तौर से गोंचारोव रूस के अत्यन्त समझदार लेखकों में से है। तुम उसका "ओबलोमोव" उपन्यास ज़रूर पढ़ना। यह एक अत्यन्त साहसपूर्ण और सचाई से भरा उपन्यास है। और कुल मिला कर रूसी साहित्य में इसका श्रेष्ठतम स्थान है।"

डिकेन्स के बारे में वह कहता:

"एकदम कूड़ा... मेरी यह राय सोलहों आने सही है। लेकिन आजकल "न्यु टाइम्स" के सप्लीमैण्ट में एक बहुत ही दिलचस्प चीज़ छप रही है। इसका नाम है: "सन्त एन्थोनी का कामना-चक्र"। तुम ज़रूर पढ़ना। गिरजे और दीन-धर्म की बातों

में तुम्हारी दिलचस्पी तो काफ़ी मालूम होती है। "कामना-चक्र" से तुम्हें काफ़ी लाभ पहुँचेगा।"

सप्लीमैण्टों का एक अच्छा-खासा ढेर खुद उसने लाकर मेरे सामने रख दिया और फ्लाबर्ट की इस दैवी कृति को मैं पढ़ गया। उसे देख कर मुझे उन अनगिनती सन्तों की जीवनियाँ याद हो आईं जिन्हें मैं पढ़ चुका था। धर्मशास्त्री के मुँह से भी उस तरह के अनेक क़िस्से और कहानियाँ सुन चुका था। जो भी हो, उसका मेरे हृदय पर कोई गहरा असर नहीं पड़ा। उससे ज़्यादा आनन्द तो मुझे उपिलियो फैमाली नामक एक पशु-पालक के संस्मरण पढ़ने में आया जो इन्हीं सप्लीमैण्टों में छपे थे।

अपने सौतेले पिता के सामने जब मैंने यह बात स्वीकार की तो शान्त स्वर में उसने कहा:

"इसका मतलब यह कि अभी तुम्हारी उम्र इस तरह की पुस्तकें पढ़ने लायक नहीं है। जो हो, उस पुस्तक को भूलना नहीं।"

कभी-कभी वह मेरे पास घंटों बैठा रहता, मुँह से एक शब्द न कहता, केवल जब-तब खाँसता, और सिगरेट के धुवें के बादल उड़ाता रहता। उसकी सुन्दर आँखों में कुछ ऐसी चमक थी कि देख कर डर लगता। चुप-चाप बैठा हुआ मैं उसकी ओर देखता रहता, और इस बात का मुझे ज़रा भी ध्यान नहीं रहता कि यह आदमी जो इतनी ख़ामोशी के साथ तिल-तिल करके गल रहा है और जिसके मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकलता, किसी ज़माने में मेरी माँ के तन-मन का स्वामी था, और माँ के साथ क्रूरता से पेश आता था। मैं जानता था कि आजकल किसी दरज़िन से उसकी आशनाई है, और जब कभी उस दरज़िन का मुझे ख़याल आता तो तरस और अचरज की भावना से मेरा हृदय भर जाता था। मैं यह सोच कर स्तब्ध रह जाता कि

उसकी लम्बी हड्डियों के आलिंगन में बंधना और उसका मुँह चूमना जिसमें से हर घड़ी सड़ांध निकलती थी, वह कैसे बरदाश्त करती होगी।

'वाह भाई खूब' की भांति मेरा सौतेला पिता भी एकाएक ऐसी टिप्पणियाँ कसता जो अपनी मौलिकता में बेजोड़ होतीं।

"शिकारी कुत्ते मुझे बेहद पसंद हैं; वे बेवकूफ़ होते हैं, लेकिन फिर भी मुझे अच्छे लगते हैं। वे बहुत ही सुन्दर होते हैं। सुन्दर स्त्रियाँ भी अक्सर बेवकूफ़ होती हैं।"

कुछ गर्व का अनुभव करते हुए मैं मन-ही-मन सोचता:

"रानी मारगोट को अगर तुमने देखा होता तो कभी इस तरह की बात न करते!"

एक दिन उसने कहा:

"जो लम्बे अर्से तक एक साथ रहते हैं, धीरे-धीरे शक्ल में भी एक से हो जाते हैं।"

उसका यह कथन मुझे इतना अच्छा लगा कि मैंने उसे अपनी नोटबुक में दर्ज कर लिया।

मैं उसकी ओर ताकता और उसके मुँह से निकलने वाले शब्दों और वाक्यों की इस तरह प्रतीक्षा करता मानो शीघ्र ही सौन्दर्य की कोई मूर्तिमान प्रतिमा प्रकट होने वाली हो। इस घर में जहाँ लोग, एक सिरे से, बेरंग और बेरस, घिसी-पिटी और जंगखाई भाषा में बातें करते उसके मुँह से मौलिक शब्दों और वाक्यों को सुन कर हृदय खुशी से नाच उठता।

मेरा सौतेला पिता माँ के बारे में मुझसे कभी बात नहीं करता। बात करना तो दूर, मेरे सामने उसने माँ का एक बार भी नाम तक नहीं लिया। यह अच्छा ही था। एक तरह से कृतज्ञता और आदर के भाव का मैंने उसके प्रति अनुभव किया।

एक दिन, यह तो याद नहीं पड़ता कि किस सिलसिले में, मैंने उससे ख़ुदा के बारे में सवाल किया। उसने एक नज़र मुझे देखा और फिर बहुत ही निश्चल अन्दाज़ में बोला:

"मुझे नहीं मालूम। मैं ख़ुदा में विश्वास नहीं करता।"

मुझे सितानोव का ध्यान हो आया। अपने सौतेले पिता से मैंने उसका ज़िक्र किया। जब मैं अपनी बात पूरी कर चुका तो सौतेले पिता ने वैसे ही निश्चल अन्दाज़ में कहा:

"वह हर चीज़ को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसना और समझना चाहता है, और जो लोग ऐसा करते हैं वे हमेशा किसी-न-किसी चीज़ में विश्वास करते हैं। लेकिन मैं किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता।"

"लेकिन यह तो एक असम्भव बात है।"

"क्यों, असम्भव क्यों है? मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूँ, तुम अपनी आँखों से देख सकते हो कि मैं किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता।"

लेकिन मुझे केवल एक ही चीज़ दिखाई देती थी: यह कि वह तिल-तिल करके मौत का निवाला बन रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि मेरे हृदय में उसके प्रति तरस की भावना थी, लेकिन एक साथी-मानव की मौत ने, खुद मौत के रहस्य ने, पहली बार इतनी गहराई से मेरे हृदय का स्पर्श किया।

वह मेरे पास, एकदम बराबर में ही, बैठा था। उसका घुटना मेरे घुटने का स्पर्श कर रहा था। संवेदनशील और बुद्धिमान, लोगों को वह उस नाते की नज़र से देखता जिससे कि वह उनके साथ बंधा या नहीं बंधा था, हर चीज के बारे में वह इस विश्वास से बातें करता मानो उसे राय देने और नतीजे निकालने का अधिकार हो। मुझे ऐसा अनुभव होता मानो वह उन तत्वों को अपने भीतर

छिपाए हो जो मेरे लिए आवश्यक थे या जो कम से कम अनावश्यक चीज़ों को मुझसे दूर रखते थे। वह एक ऐसा जीव था जो शब्दों द्वारा व्यक्त न की जा सकने वाली पेचीदगी से भरा था, सही अर्थों में विचारों का ज्वालामुखी। उन तमाम भावों और विचारों के बावजूद जो मेरे हृदय में उसके लिए मौजूद थे, वह जैसे मेरा ही अंश था, एक ऐसा जीव जो मेरे अन्तर के किसी कोने में निवास करता था, मेरे चिन्तन का केन्द्र, मेरी आत्मा का सहज साथी। कल वह विलीन हो जाएगा... पूर्णतया विलीन हो जाएगा, मय उन सब बातों और भावनाओं के जो उसके हृदय और मस्तिष्क में छाई थीं और जिनकी एक झलक मुझे उसकी सुन्दर आँखों में दिखाई देती थी। जब वह विलीन हो जाएगा, कुछ भी उसका शेष नहीं रहेगा, तो जीवन के उन सूत्रों में से एक सूत्र खंडित हो जाएगा जो मुझे इस दुनिया से बांधे हुए है; उसकी केवल एक स्मृति-भर रह जाएगी, लेकिन यह स्मृति पूर्णतया मेरे ही अन्तर में रहेगी, परिवर्तनहीन और कभी न नष्ट होने वाली, जब कि जीवित और परिवर्तनशील, उसके मानवीय शरीर का, कुछ भी शेष नहीं रहेगा...।

लेकिन ये केवल भावनाएं और विचार मात्र हैं, इनसे भी परे वह अनबूझ चीज़ है जिसके गर्भ में विचार जन्म लेते, बढ़ते और पलते हैं, एक ऐसी चीज़ जिसका आदेश टाला नहीं जा सकता और जो हमें जीवन के घटनाक्रम पर सोचने के लिए बाध्य करती है, और इस सवाल का जवाब माँगती है कि क्यों, ऐसा क्यों है?

"ऐसा लगता है कि शीघ्र ही मुझे बिस्तर की शरण लेनी पड़ेगी," एक दिन जब कि बूंदा-बांदी हो रही थी मेरे सौतेले पिता ने कहा,—"और मेरी इस कमज़ोरी की लाटसाहबी तो देखो, कोई काम करने को जी नहीं चाहता।"

अगले दिन, चाय के समय, उसने मेज़ और अपने घुटनों पर से जूठन के कण साफ़ करने में कमाल कर दिया, और देर तक इस तरह हाथों को हरकत देता रहा मानो किसी अदृश्य गंदगी को भगाने और झाड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। बूढ़ी मालकिन ने पलकों के नीचे से उसकी ओर देखा, और अपनी बहू से फुसफुसा कर बोली:

"देखो न, किस तरह अपने परों और बालों को नोच और झाड़-पोंछ कर संवार रहा है...।"

इसके दो दिन बाद वह काम पर नहीं आया, और एक दिन बूढ़ी मालकिन ने मुझे एक बड़ा सा सफ़ेद लिफ़ाफ़ा देते हुए कहा:

"यह लो, कल दोपहर के क़रीब एक लड़की इसे लेकर आई थी, लेकिन मैं भूल गई और तुम्हें देना याद नहीं रहा। लड़की जवान और सुन्दर थी। मेरी समझ में न आया कि तुम्हारे नाम इस तरह खर्रे लिखने की उसे क्यों सूझी?"

लिफ़ाफ़े के भीतर, बड़े-बड़े अक्षरों में, अस्पताली कागज़ पर निम्न संदेश लिखा था:

"एकाध घंटे का समय मिल सके तो आना। मैं मारतीनोवस्काया अस्पताल में हूँ।—ये०म०।"

अगले दिन सवेरे ही मैं अस्पताल पहुँच गया और एक वार्ड में अपने सौतेले पिता के पायताने जाकर बैठ गया। वह बिस्तरे से भी लम्बा था, और उसके पाँव जिनमें वह भूरे रंग के फ़टे-पुराने मोज़े पहने थे, पलंग के पायताने से बाहर निकले थे। उसकी खूबसूरत आँखें पीली दीवारों का चक्कर लगातीं और मेरे चेहरे तथा उस लड़की के छोटे-छोटे नाज़ुक हाथों पर आकर टिक जातीं जो उसके सिरहाने एक स्टूल पर बैठी थी। जब कभी उसके तकिए पर वह अपने हाथ रखती तो मेरा सौतेला पिता, मुँह बाए, अपने

गाल से उन्हें सहलाता। लड़की गुदगुदे बदन की थी, और गहरे रंग की सादी पोशाक पहने थी। उसके अंडाकार चेहरे पर आँसुओं की झड़ी लगी थी और उसकी नीली आँखें सौतेले पिता के चेहरे पर, उसके गालों की बुरी तरह उभरी हड्डियों पर, पिचकी हुई नाक और बेरंग, मुर्दनी छाए मुँह पर, जमी थीं।

"अगर इस आख़िरी वक़्त ख़ुदा का नाम इसके कानों में पड़ जाता," एकाएक वह फुसफुसाई,—"लेकिन यह है कि पादरी का मुँह तक नहीं देखना चाहता। इसे कोई कैसे समझाए...।"

उसने तकिए से अपने हाथ उठा लिए और उन्हें इस तरह अपनी छातियों पर रखा मानो ख़ुदा की याद कर रही हो।

एक क्षण के लिए मेरे सौतेले पिता में कुछ चेतना का संचार हुआ। भौंहें चढ़ा कर उसने छत की ओर ताका मानो किसी चीज़ की याद कर रहा हो। इसके बाद उसने अपना क्षयग्रस्त हाथ मेरी ओर फैला दिया।

"ओह तुम... तुम आ गए... बहुत, बहुत शुक्रिया... देखो न... क्या बेवकूफ़ी की हालत है यह भी...।"

यह कहते-कहते वह थक गया और उसने अपनी आँखें मूंद लीं। नीले नाख़ून वाली उसकी लम्बी और सर्द उँगलियों को मैंने सहलाया, और लड़की ने धीमे स्वर में फिर अनुरोध किया:

"येवगेनी वसीलीयेविच, मेरी ख़ातिर मान जाओ। पादरी को...।"

सौतेले पिता ने आँखें खोलीं और उसकी ओर इशारा करते हुए मुझसे बोला:

"इसे जानते हो? यह बहुत प्यारी...।"

उसकी ज़ुबान रुक गई, मुँह और भी ज़्यादा खुल गया, और एकाएक भरभराई सी आवाज़ में कौवे की भांति चीख़ उठा। वह

बुरी तरह से छटपटाया, कम्बल उतर कर अलग हो गया और पलंग पर बिछे गद्दे को उसने अपने हाथों में दबोच लिया। लड़की के हृदय से भी एक चीख निकली और कुचले हुए उसके तकिए में सिर गड़ा कर सुबकियाँ भरने लगी।

सौतेले पिता को मरने में ज़रा भी देर नहीं लगी। बदन के ठंडा पड़ते ही उसके चेहरे पर एक अद्‌भुत शान्ति छा गई, और उसकी आकृति का समूचा सौन्दर्य लौट आया।

लड़की को अपनी बाँह का सहारा दिए मैं अस्पताल से चल दिया। वह रो रही थी और उसके पाँव इस तरह लड़खड़ा रहे थे मानो बहुत दिनों की बीमार हो। उसके हाथ में एक रूमाल था जिसे दबा-सिकोड़ कर उसने गेंद बना लिया था, और रह रह कर उससे पहले एक आँख के आँसू सोखती थी और फिर दूसरी के। रूमाल के इस गेंद को उसका हाथ बराबर कस और दबोच रहा था, और इस तरह वह उसे संभाले थी मानो वह उसकी आख़िरी और जान से भी ज़्यादा प्रिय निधि हो।

एकाएक वह ठिठक कर खड़ी हो गई और निढाल सी हो कर मेरे बदन से टिक गई। फिर वेदना और शिकायत में डूबे स्वर में बोली:

"जाड़ों तक भी तो वह जीवित नहीं रहा... आह मेरे भगवान, तूने यह क्या किया... क्यों तू इस तरह लोगों को मरने देता है, मेरे भगवान?"

इसके बाद, आँसुओं में भीगा अपना हाथ उसने मेरी ओर बढ़ाया और बोली:

"अच्छा तो मैं अब चलती हूँ। वह हमेशा तुम्हारी तारीफ़ करता था। कल उसकी मिट्टी...।"

"चलो, तुम्हें घर तक तो छोड़ आऊँ।"

उसने एक नज़र इधर-उधर देखा। फिर बोली:

"क्या ज़रूरत है? अभी काफ़ी उजाला है।"

एक नुक्कड़ पर खड़ा हुआ मैं देर तक उसे देखता रहा। उसके डग बहुत ही अनमने भाव से सड़क पर पड़ रहे थे। ऐसा मालूम होता था मानो जीवन में उसके लिए अब कोई सार न रहा हो, उसकी समूची दिलचस्पी और लगाव छिन्न-भिन्न हो गया हो।

वह अगस्त का महीना था। पेड़ों से पत्ते झड़-झड़ कर गिर और हवा में उड़ रहे थे।

अपने सौतेले पिता के आख़िरी क्रिया-कर्म में मैं शामिल नहीं हो सका, और न ही उस लड़की से फिर कभी मेरी भेंट हुई...।

१७

हर रोज़ सुबह के छ बजे ही मैं मेले के मैदान की ओर रवाना हो जाता, जहाँ मैं काम करता था। वहाँ काफ़ी दिलचस्प लोगों से मेरी मुठभेड़ होती। सफ़ेद बालों वाला बढ़ई ओसिप जिसकी ज़बान छुरी की धार की भांति तेज़ थी। वह बहुत ही होशियार कारीगर था और देखने में बिल्कुल सन्त निकोलाई मालूम होता था। कुबड़ा येफ़ीमुश्का जो छत छाने का काम करता था; रंगसाज़ प्योत्र जो पक्का भगत था, हमेशा कुछ न कुछ सोचता रहता था और देखने में किसी सन्त की भांति मालूम होता था। प्लास्तरसाज़ ग्रिगोरी शिशलिन जो देखने में ख़ूबसूरत था: सुनहरी दाढ़ी, नीली आँखें, और चेहरे पर शान्त तथा भले स्वभाव की चमक।

नक्शानवीस के यहाँ अपनी नौकरी के दूसरे दौर में ही मैं इन लोगों से परिचित हो गया था। हर इतवार को वे आते और बहुत ही रौबीले तथा ठाठदार अन्दाज़ में रसोईघर में प्रवेश करते। बहुत ही बढ़िया ढंग से वे बातें करते और रसीले तथा लच्छेदार

शब्दों की झड़ी लगा देते। उनकी बातों में मुझे एक नयापन और अजीब ताज़गी दिखाई देती। भारी-भरकम डीलडौल वाले ये दहकान मुझे सिर से पाँव तक भले मालूम होते। वे सभी, अपने-अपने ढंग से, दिलचस्प थे और कुल मिलाकर कुनाविनो के कमीने, नशेबाज़ तथा चोर व्यापारियों से लाख दर्जे अच्छे थे।

शिशलिन नामक प्लास्तरसाज़ से मेरी खूब पटती थी। वह मुझे बहुत अच्छा लगता। एक दिन तो मैंने उससे यह तक कहा कि काम सिखाने के लिए मुझे अपना शागिर्द बना ले। लेकिन उसने मंजूर नहीं किया। गोरी-चिट्टी उँगलियों से अपनी सुनहरी भौंहों को खुजलाते हुए नर्मी से बोला:

"अभी तुम्हारी उम्र बहुत कम है। हमारा धंधा आसान नहीं है, अभी एक-दो साल और ठहर जाओ।"

इसके बाद, अपने खूबसूरत सिर को ज़रा पीछे की ओर फेंकते हुए, बोला:

"क्यों, जीवन बहुत कठोर मालूम होता है, क्या? लेकिन कोई बात नहीं। बस डटे रहो, अपने पर ज़रा काबू रखो, सब ठीक हो जाएगा।"

यह तो नहीं कह सकता कि उसकी इस भली सीख से क्या कुछ लाभ मैंने उठाया, लेकिन मुझे अब तक वह सीख याद है और उसके प्रति कृतज्ञता से मेरा हृदय भरा है।

यह लोग हर रविवार की सुबह अब भी मेरे मालिक के घर जमा होते, रसोईघर में खाने की मेज़ के चारों ओर बेंच पर बैठ जाते और दिलचस्प बातें करते हुए मालिक के आने का इन्तज़ार करते। मेरा मालिक आता, जोरों से, खुश होकर उनका अभिवादन करता, उनके मज़बूत हाथों को अपने हाथ में लेकर हिलाता और देवमूर्ति वाले कोने की तरफ़ बेंच पर बैठ जाता। इसके बाद सप्ताह-भर का हिसाब-किताब शुरू हो जाता, दहकान अपने बिलों

और फटी-पुरानी बहियों को निकाल कर मेज़ पर फैला लेते, नोट की गड्डियों और रसीदों का आदान-प्रदान होता।

मेरा मालिक उन्हें और वे मेरे मालिक को धोखा देने के लिए जी भर कर कड़वी-मीठी बातों का सहारा लेते: कभी हँसते, कभी चुटकियाँ लेते और ताने कसते। कभी-कभी खूब झिक-झिक होती, गहरे झगड़े तक की नौबत आ जाती, लेकिन आम तौर से हँसी-खुशी और एक-दूसरे के साथ छेड़-छाड़ के वातावरण में ही वे सारा हिसाब निबटा लेते।

"वाह मित्र, मालूम होता है कि किसी बहुत ही चालाक दाई ने तुम्हें घुट्टी पिलाई थी," वे मेरे मालिक से कहते।

झेंपती सी हँसी हँसते हुए वह जवाब देता:

"तुम्हीं कौन कम हो — ज़रा आँख बची कि माल यारों का! क्यों, ठीक कहता हूँ न, कुड़क मुर्गो!"

येफ़ीमुश्का ताईद करता:

"ठीक कहते हो। इसके सिवा और हो भी क्या सकता है?"

हर घड़ी विचारों में डूबा रहने वाले भगत प्योत्र ने कहा:

"चोरी से कमाये-बचाये माल पर ही तो आजकल गुज़ारा है। ईमानदारी की सारी आमदनी तो ख़ुदा और ज़ार के चढ़ावे में चली जाती है।"

"तब तो तुम्हारी थोड़ी-बहुत हजामत बना लेना कोई पाप नहीं है," मेरा मालिक हँसते हुए कहता।

वे भी मज़ाक में ही जवाब देते:

"इसका मतलब कि हमको उल्लू बनाना चाहते हो?"

"हमसे चार सौ बीसी!"

ग्रिगोरी शिशलिन ने अपनी झाड़दार दाढ़ी पर हाथ फेरा जो नीचे पेट तक फैली हुई थी। फिर गुनगुनाते हुए बोला:

"क्यों भाइयो, अगर हम एक-दूसरे को धोखा दिए बिना अपना कारबार करें तो कैसा हो? एकदम ईमानदारी से। न कोई झंझट, न झगड़ा। सारा काम इतनी सहूलियत से हो कि पता तक न चले। बोलो, भले लोगो, तुम्हारी क्या राय है इस बारे में?"

यह कहते-कहते उसकी नीली आँखें तरल और गहरी हो उठीं। इस समय उसके चेहरे की चमक देखते ही बनती थी। उसके सुझाव ने सभी को उलझन में डाल दिया और एक-दूसरे से आँखें बचाते वे इधर-उधर देखने लगे।

रंगे-चुने ओसिप ने आखिर अपनी जुबान खोली और तरस-सा खाते हुए दहकानों की वक़ालत में बोला:

"दहकानों की बात छोड़ो, वे अगर चाहें तो भी लोगों को ज़्यादा धोखा नहीं दे सकते।"

काला और गोल कंधोंवाला रंगसाज़ झुक कर मेज़ पर दोहरा होते हुए बोला:

"गुनाह गहरी दलदल की भांति है, उसमें पाँव रखा नहीं कि आदमी धंसता ही जाता है।"

मालिक ने भी, उनके ही अन्दाज़ को अपनाते हुए, जवाब दिया:

"मैं तो अपनी सारंगी के स्वर तुम्हीं लोगों की आवाज़ के साथ फिट करता हूँ।"

कुछ देर तक वे इसी तरह दीन-दुनिया की बातें करते और इसके बाद फिर एक-दूसरे को चकमा देने पर उतर आते। हिसाब-किताब निबट जाने पर वे उठते, थके हुए से और पसीने में सराबोर, और चाय के लिए क़हवेखाने की ओर चल देते। साथ में मेरे मालिक को भी खींच ले जाते।

मेले के मैदान में मेरा काम इस बात की निगरानी रखना

था कि ये लोग कील-काँटे, ईंटें और इमारती लकड़ी चुरा कर न ले जाएँ। कारण कि मेरे मालिक के साथ काम करने के अलावा इन लोगों ने खुद भी ठेके ले रखे थे और जब भी उन्हें मौका मिलता, आँखों में धूल झोंक कर माल तिड़ी कर देते थे।

मेरे साथ वे खूब मिली-भगत दिखाते और बड़ी मित्रता से पेश आते। लेकिन शिशलिन कहता:

"क्यों, तुम्हें याद है न वह दिन जब तुमने काम सीखने के लिए मेरा शागिर्द बनने के लिए कहा था? आज मामला इतना उलट-पुलट गया है कि शागिर्द न होकर अब तुम मेरे ओवरसियर हो!"

"ओह, कोई मुज़ायका नहीं," ओसिप ने चुटकी ली,—"करे जी भर कर चौकसी और जासूसी।"

प्योत्र के स्वर में तीखापन था। बोला:

"सवाल यह है कि इस जवान सारस को बूढ़े चूहों की निगरानी पर क्यों रखा गया?"

बहुत ही टेढ़ा और बेरहमी से मेरा काम मेरे जिम्मे था। इन लोगों के सामने जाते मुझे शर्म मालूम होती, मेरा सिर नीचे झुक जाता। मैं इन लोगों को अपने से बड़ा और किसी ऐसे रहस्य और ज्ञान का धनी समझता था जो मेरे लिए दुर्लभ था। फिर भी मुझे उनकी इस तरह चौकसी करनी पड़ती मानो वे चोर और उचक्के हों। शुरू-शुरू में तो यह काम मुझे एक बहुत बड़ा बवाल मालूम होता। मेरी समझ में न आता कि कैसे क्या करूँ। तभी ओसिप ने, मेरी उलझन का अन्दाज़ लगाते हुए, मेरी बाँह पकड़ी और आँखों में आँखें डालते हुए बोला:

"सुनो लड़के, तुम्हारी यह थूथनी क्यों लटकी हुई है? इस तरह गुमसुम रहने से काम नहीं चलेगा,—समझे?"

लेकिन मेरी समझ में कुछ नहीं आया, सिवा इसके कि वृद्ध की दक्ष आँखें मेरी स्थिति के बेढंगेपन को समझती हैं। नतीजा इसका यह कि हम दोनों के बीच कोई पर्दा नहीं रहा, देखते न देखते हम एक-दूसरे से खूब खुल कर बातें करने लगे।

वह मुझे खींच कर सब से अलग किसी कोने में ले जाता और सीख देना शुरू करता:

"अगर तुम जानना ही चाहते हो तो सुनो, रंगसाज़ प्योत्र हम सब से बड़ा चोर है। एक तो वह लालची है, दूसरे उसके कंधों पर काफ़ी बड़े परिवार का बोझ है। उसपर कड़ी निगाह रखना। हर चीज़ पर वह हाथ साफ़ करता है—और कुछ न होगा तो मुट्ठी-भर कीलें जेब में डाल लेगा, दस-पाँच ईंटें खिसका देगा, पोटली में बाँध कर चूना-मिट्टी तिड़ी कर देगा। कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसे वह छोड़ता हो। वैसे आदमी बहुत भला है, भगतों ऐसा उसका स्वभाव है, पढ़ना और लिखना जानता है, लेकिन चोरी का कुछ ऐसा चस्का पड़ा है कि पीछा नहीं छोड़ता। वह भी क्या करे? अब अपने येफ़ीमुश्का को ही देखो,—वह स्त्रियों के सहारे जीता है। देखने में इतना सीधा कि जैसे बेसींग की गाय, भूल कर भी तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाएगा। दिमाग़ भी उसका तेज़ है। कुबड़ों की यह एक निजी विशेषता है। वे सब दिमाग़ के तेज़ और खूब चतुर होते हैं। और ग्रिगोरी शिशलिन,—वह कुछ सनकी दिमाग़ का है। दूसरों की चीज़ें लेना दूर, वह उन चीज़ों को भी अपने कब्ज़े में नहीं रख पाता जो उसकी अपनी हैं। उसे सब बेवकूफ़ बना सकते हैं, लेकिन वह किसी को बेवकूफ़ नहीं बना सकता। उसका हर काम बेतुका होता है।"

"क्या वह भला आदमी है?"

ओसिप ने आँखें सिकोड़ कर इस तरह मुझे देखा मानो बहुत दूर से देख रहा हो, और इसके बाद उसने ऐसे शब्द कहे जो कभी नहीं भूले जा सकते:

"हाँ, वह भला आदमी है। काहिल लोगों के लिए भला बनना सब से आसान काम है। समझे बचुआ, दिमाग़ी पूंजी का जब दिवाला निकल जाता है, तभी आदमी भला बनता है!"

"और अपने बारे में तुम क्या कहते हो?" मैंने उससे पूछा।

हल्की-सी हँसी के साथ उसने जवाब दिया:

"अभी तो मैं एक लड़की की भांति हूँ। सफ़ेद बाल और एकाध दरजन नाती-पोते हो जाने के बाद जब मैं नानी अम्माँ बन जाऊँगा, तब तुम्हें बताऊँगा कि मैं कैसा था। तब तक तुम्हें इन्तज़ार करना होगा। या फिर अपने दिमाग़ से काम लो और पता लगाओ कि मैं कैसा हूँ। मेरी ओर से तुम्हें पूरी छूट है।"

उसने मेरे उन तमाम अन्दाज़ों को उलट-पुलट कर दिया जो मैंने उसके और दूसरों के बारे में लगा रखे थे। उसने जो कुछ बताया था, उसमें सन्देह करने की गुंजायश नहीं थी। मैं नित्य देखता कि यफ़ीमुश्का, प्योत्र और ग्रिगोरी भी इस साफ़-सुथरे बूढ़े आदमी को अपने से ज़्यादा चतुर और दुनियावी मामलों का जानकार समझते हैं। वे हर बात और हर मामले में उससे सलाह लेते। उसकी बातों को ध्यान से सुनते और हर तरह से उसका मान करते।

"ज़रा बताओ तो सही कि इस मामले में हम क्या करें," वे उससे अक्सर कहते और वह अपनी सलाह देता। लेकिन ऐसे ही एक दिन अपनी सलाह देने के बाद जब ओसिप चला गया तो रंगसाज़ ने ग्रिगोरी से दबे स्वर में कहा:

"नास्तिक है, नास्तिक!"

इतने से सन्तुष्ट न होने पर ग्रिगोरी ने हँसते हुए कहा: "ढोंगी है, पूरा बहुरूपिया!"

प्लास्तरसाज़ ने, दोस्ती का भाव जताते हुए, मुझे चेताया: "मक्सिमोविच, कहीं इस बूढ़े के चक्कर में न फंस जाना। उससे बहुत होशियार रहने की ज़रूरत है। पलक झपकते अपनी कनकी उँगली में वह तुम्हें ऐसे लपेट लेगा जैसे चिथड़ा लपेटा जाता है। इन बूढ़े खूसटों से जिनके जबड़े हमेशा चलते रहते हैं, भगवान ही बचाए!"

उसकी बात का सिर-पाँव मेरी कुछ समझ में नहीं आया।

मुझे ऐसा मालूम होता कि रंगसाज़ इनमें सब से अधिक ईमानदार और नेक था। वह हमेशा थोड़े में बात करता और उसके शब्द सीधे हृदय में पैठ जाते। उसके विचार, बहुतकर, खुदा, मौत और नरक के चारों ओर मंडराते रहते।

"आह भाइयो, आदमी चाहे जितने हाथ-पाँव मारे और चाहे जितने मन्सूबे बाँधे, आख़िर डेढ़ हाथ कफ़न और इस धरती की मिट्टी की उसे शरण लेनी पड़ती है।"

वह पेट के किसी रोग का शिकार था। कभी-कभी तो ऐसा होता कि कई-कई दिन बीत जाते और वह मुँह में एक दाना तक न डालता, अगर ज़रा-सा कण भी उसके पेट में चला जाता तो दर्द के दौरों और मतलियों के मारे उसका बुरा हाल हो जाता।

कुबड़ा येफ़ीमुश्का भी भला और ईमानदार मालूम होता था, लेकिन था कुछ बेदाल का बूदम, और कभी-कभी अपने-आप को एकदम अल्लाह-मियाँ पर छोड़ कर इस तरह घूमता मानो उसने होश-हवास खो दिए हों। वह हमेशा किसी न किसी स्त्री के प्रेम में पागल रहता और इन स्त्रियों में से हरेक का समान शब्दों में वर्णन करता:

"मैं झूठ नहीं बोलता, वह स्त्री नहीं बल्कि मलाई के पौधे का फूल है, चिकना और मुलायम!"

जब कुनाविनो की मुँहज़ोर स्त्रियाँ दुकानों के फ़र्श धोने आतीं तो येफ़ीमुश्का छत से नीचे उतर आता और किसी कोने में खड़ा हो कर मगन भाव से मन ही मन गुर्राता। अपनी चमकदार आँखों को वह कस कर सिकोड़ लेता और उसका मुँह, प्रसन्नता में, इस कान से उस कान तक फैला जाता।

"आह, कितने रसीले निवाले खुदा ने मेरे मार्ग में छितरा दिए हैं! जीवन का सुख मानो अपने-आप उमड़ता हुआ मेरी ओर चला आ रहा है। ज़रा उसे देखो, कितना बेजोड़ फूल है। समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में मैं अपने इस भाग्य की सराहना करूँ जिसने इतना बढ़िया उपहार मुझे भेंट किया है। इसका सौन्दर्य क्या है मानो चिंगारी है जो जल्दी ही मुझे भस्म कर डालेगी।"

यह सुन स्त्रियाँ खिलखिला कर हँसतीं और एक-दूसरे को टहोका मारते हुए कहतीं:

"हाय राम, इस कुबड़े को तो देखो, क्या गलगल हुआ जा रहा है!"

उनकी इस छेड़छाड़ का उसपर कोई असर न होता। उभरे हुए जबड़ेवाला उसका चेहरा धीरे-धीरे उनींदा-सा हो जाता, अपनी आवाज़ पर जैसे उसका कुछ काबू न रहता और रसीले शब्दों की मदमत्त धारा उसके मुँह से प्रवाहित होने लगती। स्त्रियों पर एक नशा-सा छा जाता और अन्त में बड़ी आयु की कोई स्त्री अचरज में भर कर कह उठती:

"यह दहकान तो बड़ा रंगीला मालूम होता है। देखो न क्या सुर अलाप रहा है!"

"मानो कोई पक्षी चहचहा रहा हो!"

यह सुन बड़ी आयु वाली स्त्री तीखे स्वर में कहती:

"या कोई भिखारी गिरजे के दरवाज़े पर भीख माँग रहा हो!"

लेकिन बात कुछ जमती नहीं। येफ़ीमुश्का भिखारी ज़रा भी नहीं मालूम होता। हट्टे-कट्टे तने की भांति उसके पाँव मज़बूती से धरती पर जमे होते, उसकी आवाज़ का जादू हर घड़ी फैलता और बढ़ता जाता और उसके शब्दों का मोहिनी मंत्र अपना पूरा ज़ोर दिखाता। स्त्रियों का बोलना बंद हो जाता और वे ध्यान से सुनतीं। ऐसा मालूम होता मानो शहद में लिपटे अपने शब्दों से वह कोई मोहक जाल बुन रहा हो।

और परिणाम होता कि रात के भोजन के समय या सोमवार की सुबह को वह लौटता, अपना भीमाकार चौकोर सिर हिलाते हुए और अचरज में भर कर अपने साथियों से कहता:

"आह कितनी प्यारी कितनी मधुर स्त्री थी वह... एकदम शहद! जीवन में पहली बार मैंने इतनी मिठास देखी!"

स्त्रियों को अपने वश में करने के किस्से जब वह सुनाता तो अन्य लोगों की भांति न तो वह शेखी बघारता और न उन स्त्रियों का मज़ाक उड़ाता। वह केवल हँस देता और उसकी आँखें प्रसन्नता तथा कृतज्ञता-पूर्ण अचरज के भाव से खुली-की-खुली रह जातीं।

सिर हिलाते हुए ओसिप कहता:

"वाह, आदम की औलाद, ज़रा एक बार फिर तो बताओ कि तुम्हारी उम्र कितनी है?"

"चार ऊपर चालीस। लेकिन उम्र से क्या होता है? आज मुझे ऐसा मालूम होता है मानो मेरी उम्र पाँच साल घट गई। आज मैं ने वैतरणी में गोता लगाया है और जीता-जागता तुम्हारे सामने

मौजूद हूँ। मेरा हृदय फूल की भांति खिला है। और भगवान ने स्त्रियों को भी ख़ूब बनाया है!"

रंगसाज़ ने कड़े स्वर में कहा:

"मेरी बात गांठ-बांध लो,—अभी भले ही तुम्हें हरियाली दिखाई दे, लेकिन पचास की रेखा पार करते ही तुम्हारी यह हरकतें तुम्हें ख़ून के आँसू रुलाएंगी!"

ग्रिगोरी शिशलिन ने भी लम्बी साँस खींची:

"तुमने तो बेशर्मी की हद कर दी, येफ़ीमुश्का!"

शशिलिन ख़ूबसूरत और जवान था। मुझे लगा कि अपने मुकाबिले में कुबड़े को बाज़ी मारते देख वह अब अपने जी की जलन मिटा रहा था।

ओसिप ने अपनी मुड़ी हुई रुपहली भौंहों के नीचे से झांक कर सब पर एक नज़र डाली। हँसते हुए बोला:

"तुम्हारी सभी लड़कियाँ कोई न कोई चारा चाहती हैं, बिना लासे के जाल में नहीं फंसती। कोई मिठाई के पीछे लपकती है तो कोई मोती के। लेकिन इससे क्या, वे मिठाई खाएँ या मोती चुगें, देखते न देखते वे सब नानी-अम्माँ बन जाएंगी!"

शिशलिन विवाहित था। लेकिन उसकी पत्नी देहात में रहती थी। फ़र्श साफ़ करने वाली स्त्रियों को देख कर उसका मन भी ललक उठता। उन्हें पाना कुछ मुश्किल न था। कारण कि उनमें से प्रत्येक, कुछ फालतू आय की खातिर, खिलौना बनने के लिए तैयार थी। गरीबी में जकड़े इस समाज में आमदनी का यह तरीका भी उसी तरह चालू था जैसे कि अन्य। लेकिन वह ख़ूबसूरत दहकान स्त्रियों के हाथ नहीं लगता था, चेहरे पर एक अजीब भाव लिए वह उन्हें दूर से ही देखता रहता था। ऐसा मालूम होता मानो उसे उनपर, या अपने पर, तरस आ रहा हो। और जब वे ख़ुद

उससे छेड़छाड़ करतीं या उसे उकसाना शुरू करतीं तो वह परेशान-सा हो जाता और हँसकर टालता हुआ अपना पीछा छुड़ाता:

"अरे यह क्या, देखो न...।"

येफ़ीमुश्का को उसकी इस हरकत पर एकाएक विश्वास न होता। उसे कोंचता हुआ कहता:

"तुम आदमी हो या घनचक्कर? इतना अच्छा मौका भी भला कोई अपने हाथ से जाने देता है?"

ग्रिगोरी अपनी सफ़ाई देता:

"भाई मेरे, मैं विवाहित आदमी हूँ।"

"तो इससे क्या हुआ? उसे सपने में भी इसका पता नहीं चलेगा।"

"पत्नी को धोखा नहीं दिया जा सकता, भाई! अगर पति इधर-उधर मुँह मारता है तो पत्नी इसका हमेशा पता लगा लेती है।"

"सो कैसे?"

"यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन अगर खुद उसके आँचल में कोई दाग नहीं लगा है तो वह ज़रूर पता लगा लेगी। इसी तरह अगर मैं पाक-साफ़ रहता हूँ और मेरी पत्नी बदकारी पर उतर आती है, तो मुझे इसका पता लग जाएगा।"

"सो कैसे?" येफ़ीमुश्का फिर चिल्ला कर पूछता।

ग्रिगोरी शान्त स्वर में बोला:

"यह मैं नहीं जानता।"

येफ़ीमुश्का ऊब उठता। हाथ हिलाते हुए कहता:

"भला यह भी कोई बात हुई ...पाक-साफ़ ...नहीं जानता... तुम आदमी हो या घनचक्कर!"

शिशलिन की देखरेख में कुल मिलाकर सात मज़दूर काम करते थे। वे खूब मौज़ करते, उन्हें मालूम तक न होता कि वह उनका

मालिक है। लेकिन पीठ-पीछे वे उसे बछिया का ताऊ कहते। जब वह आता और देखता कि उसके आदमी हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं तो वह करनी उठाता और बेसुध सा हो कर काम में जुट जाता, साथ ही मुलायम आवाज़ में कहता जाता:

"बहुत सुस्ता लिए, साथियो, अब काम पर आ जाओ। आओ, चले आओ, अब देर न करो!"

एक दिन, अपने मालिक के उतावलेपन और कोंचने से मजबूर हो कर, मैंने ग्रिगोरी से कहा:

"तुम्हारे ये मज़दूर बिल्कुल निठल्ले हैं!"

यह सुन वह कुछ इस तरह अचरज में पड़ गया मानो कोई बहुत ही अजीब बात उसने सुनी हो। आँखें फाड़ कर बोला:

"क्या सचमुच?"

"हाँ, यह काम कल दोपहर तक ख़त्म हो जाना चाहिए था, लेकिन मालूम होता है कि आज भी पूरा नहीं होगा।"

"यह बात तो ठीक है। वे इसे आज भी पूरा नहीं कर सकेंगे," उसने सहमति प्रकट की और फिर, कुछ रुक कर, हिचकिचाते हुए बोला:

"मेरे क्या आँखें नहीं हैं? मैं भी सब देखता और जानता हूँ। लेकिन मैं उन्हें डंडे से नहीं हाँक पाता। मुझे शर्म मालूम होती है। ये सब अपने ही तो लड़के हैं, और अपने ही गाँव के। प्रभु ने आदम से कहा था: जा, अपनी एड़ी-चोटी का पसीना बहा और अपना पेट भर! हम सभी के लिए प्रभु ने यह आदेश दिया था। क्यों ठीक है न? कोई भी इस आदेश से बरी नहीं है,—न तुम, न मैं। लेकिन तुम और मैं उनके मुकाबिले कम मेहनत करते हैं। इसी लिए मुझे शर्म मालूम होती है। मैं उन्हें डंडे से नहीं हाँक सकता।"

वह हर घड़ी कुछ न कुछ सोचता रहता। कभी-कभी ऐसा होता कि उसे पता तक न चलता और मेले के मैदान की सूनी सड़कों में से किसी एक को पार करता हुआ वह ओबवोदनी नहर के पुल पर पहुँच जाता और वहाँ बाड़े पर झुका हुआ घंटों पानी की ओर ताकता, आकाश अथवा ओका नदी के पार खेत-खलिहानों की थाह लेता। संयोग से अगर कोई उस समय वहाँ पहुँच जाता और उसे देख कर टोकता — "यहाँ क्या कर रहे हो? तो वह चौंक उठता और परेशानी में मुसकरा कर कहता:

"अरे, कोई ख़ास बात नहीं। यों ही ज़रा सुस्ताने और इधर-उधर का दृश्य देखने के लिए खड़ा हो गया था।"

वह अक्सर कहता:

"ख़ुदा ने भी हर चीज़ क्या ठीक-ठिकाने से बनाई है। आसमान और यह धरती जिसपर नदियाँ बहती हैं और नदियों में डोंगे, नाव और बजरे तैरते हैं। उनमें बैठ कर चाहे जहाँ चले जाओ — रियाज़ान, रिबिन्स्क, पेर्म या अस्त्राखान। एक बार मैं रियाज़ान गया था। नगर बुरा नहीं है, लेकिन उदासी में डूबा हुआ, — निजनी नोवगोरोद से भी ज़्यादा उदास। हमारा निजनी तो फिर भी मज़े की जगह है। और अस्त्राखान? वह और भी मनहूस है। कल्मिक जाति के लोग वहाँ इस तरह भरे हैं जैसे सिर में जुंवें भरी रहती हैं। मुझे वे ज़रा भी अच्छे नहीं लगते। कल्मिक हों, चाहे मोरदोवियन, तुर्क हों चाहे जर्मन, गैर देशों में जन्मे सभी लोग मुझे बेकार की बला मालूम होते हैं।"

वह बहुत धीरे-धीरे बोलता। ऐसा मालूम होता मानो उसके शब्द सावधानी से डग रखते, किसी ऐसे आदमी को ढूंढ़ रहे हों जो उससे सहमत हो सके। रंगसाज प्योत्र ऐसा ही आदमी था जो, आम तौर से, उसीके स्वर में स्वर मिलाता था।

"ग़ैर देशों में जन्मे नहीं, हवा में जन्मे कहो," प्योत्र और भी नमक छिड़कता,—"जिनका न कोई देश होता है, न धर्म, न ईमान।"

ग्रिगोरी का चेहरा खिल उठता:

"कुछ भी कहो, मुझे तो भाई, खालिस रूसी ख़ून पसन्द है, सीधा और सच्चा, मिलावट का जिसमें नाम नहीं। यहूदी भी मुझे बेकार लगते हैं। मैंने तो बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि ख़ुदा ने इन ग़ैर जातियों को क्यों पैदा किया? ज़रूर इसमें कोई गहरा राज़ है।"

रंगसाज़ भुनभुनाता:

"हो सकता है कि इसमें कोई गहरा राज़ हो, लेकिन दुनिया में ऐसी चीज़ों की कमी नहीं है जिनके बिना भी हमारा काम चल सकता है।"

ओसिप चुपचाप बैठा था। अब उससे नहीं रहा गया। तीखे शब्दों में धज्जियाँ बखेरता हुआ बोला:

"इस दुनिया में और किसी चीज़ की ज़रूरत हो चाहे न हो, लेकिन एक कोड़े की ज़रूरत अवश्य है जिससे तुम्हारी बोलती बंद की जा सके। हमेशा बेतुकी बातें तुम्हारे मुँह से निकलती हैं, बिना सिर-पाँव की और विरोधों से भरी हुई!"

ओसिप सब से अलग रहता, और कभी यह ज़ाहिर न होने देता कि उसका किससे विरोध है। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता कि वह हर चीज़ और हर आदमी से सहमत है। लेकिन अक्सर वह हर चीज़ से तंग और उकताया हुआ नज़र आता और सभी को, एक सिरे से, मूर्ख समझता।

"तुम... एह तुम... तुम सूअर की औलाद हो!" वह प्योत्र, ग्रिगोरी और येफ़ीमुश्का, सभी को एक ही पेटे में लपेटता।

सुन कर वे एक लघु हँसी हँसते, न तो बहुत प्रसन्नता से और न बहुत उछाह से, लेकिन हँसते ज़रूर।

मेरा मालिक खुराक के लिए मुझे पाँच कोपेक रोज़ देता था। इसमें पूरा न पड़ता और मैं अक्सर भूखा रह जाता। यह देख कर कारीगर दोपहर और साँझ का भोजन करते समय मुझे भी बुला लेते और कभी-कभी ठेकेदार चाय पीने के लिए मुझे अपने साथ कहवेखाने ले जाते। मैं उनके बुलावों को खुशी से मंजूर कर लेता, और उनके बीच बैठ कर उनकी अलस बातों और अनोखे क़िस्सों को मज़े से सुनता। धार्मिक पुस्तकों की मेरी जानकारी सुनकर वे बहुत खुश होते।

"कोई रोटी खाता है और तुम पुस्तकें खाते हो,—बल्कि हड़प कर जाते हो। पुस्तकों से तुम्हारा पेट गले तक अटा है और अब फटा ही चाहता है!" अपनी नीली आँखों से मुझे बींधते हुए ओसिप कहता। उसकी आँखें एक अजीब-सा रूप धारण कर लेतीं, ऐसा मालूम होता मानों उसकी पुतलियाँ पिघल कर आँखों की सफ़ेदी के साथ एकाकार होती जा रही हों।

"जो हो, अपने ज्ञान को बटोर और संजों कर रखना, उसे ज़ाया न होने देना। वक़्त पर काम आएगा। बड़े होने पर तुम पादरी बन सकते हो। लोगों को सान्त्वना देना और उनके दुःखते हृदयों पर मधुर शब्दों से मरहम लगाना। या फिर तुम धनपति बन जाना!"

"धनपति नहीं, धर्मपति!" रंगसाज़ ने चोट खाई हुई सी आवाज़ में कहा।

"क्या?" ओसिप ने पूछा।

"धनपति नहीं, उन्हें धर्मपति कहते हैं। तुम इसे जानते हो और बहरे भी नहीं हो।"

"अच्छी बात है, धर्मपति बन कर नास्तिकों और धर्मद्रोहियों की दुम उखाड़ना। या फिर ख़ुद धर्मद्रोहियों की पाँत में शामिल हो जाना। यह भी बुरा नहीं रहेगा। असल चीज़ तो दिमाग़ है। अगर तुम उससे काम लोगे तो धर्मद्रोह से भी बहुत कुछ पैदा कर लोगे और मज़े से जीवन बिता सकोगे।"

ग्रिगोरी अचकचा कर खिसियानी-सी हँसी हँसता और प्योत्र अपनी दाढ़ी में बुदबुदाता:

"लालबुझक्कड़ और झाड़-फूंक करने वाले भी तो मज़े में रहते हैं। इसी तरह और भी कितने ही धर्मद्रोही लोग हैं।"

"लेकिन लालबुझक्कड़ और ओझा पढ़े-लिखे नहीं होते,—ज्ञान से उनका भला क्या वास्ता?" ओसिप जवाब देता और फिर मेरी ओर मुँह करते हुए कहता:

"सुनो, मैं तुम्हें एक किस्सा सुनाता हूँ। किसी ज़माने में हमारे गाँव में एक अकेला आदमी रहता था। तुश्किनोव उसका नाम था। यों ही बेकार-सा आदमी था, जिसे कोई नहीं पूछता था। जिधर हवा ले जाती, सूखे पत्ते की भांति उधर ही उड़ कर जा गिरता। न तो वह मज़दूर था, और न आवारा। एक दिन, जब और कुछ नहीं समझ में आया तो, तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा। पूरे दो साल तक उसकी शक्ल नहीं दिखाई दी। इसके बाद एकाएक जब वह लौटा तो उसका हुलिया ही एकदम बदला हुआ था—कंधों तक लटके बाल, पादरियों जैसी गोल टोपी चिन्दिया से चिपकी हुई, बदन पर झूल की भांति लटका हुआ दोसूती का लबादा। चिंगारियाँ छोड़ती नज़र से वह लोगों को बींधता और चीख कर बार-बार कहता—'तोबा करो लोगो, तोबा करो!' और तोबा करने वाले लोगों की, ख़ास तौर से स्त्रियों की, बाढ़ उमड़ पड़ती। इस बाढ़ को भला कौन रोकता? उसने दोनों हाथों से चाँदी बटोरी। तुश्किनोब

को खाना मिला। तुश्किनोव को शराब मिली। तुश्किनोव को स्त्रियाँ मिलीं, जिसपर नज़र डालता, वही उसके सामने बिछ जाती...।"

"भोजन और शराब से कुछ नहीं आता-जाता," रंगसाज़ ने बीच में ही झुंझलाकर टोका।

"तो फिर किस चीज़ से आता-जाता है?"

"असल चीज़ है शब्द—वाणी!"

"उसके शब्दों को तो मैंने उलट-पुलट कर नहीं देखा। यों शब्द तो मेरे दिमाग़ की पिटारी में भी इतने हैं कि मैं भूलभुलैयाँ में पड़ जाता हूँ। समझ में नहीं आता कि उनका क्या करूँ।"

"उस तुश्किनोव दिमित्री वसीलीयेविच को मैं जानता हूँ," आहत स्वर में प्योत्र ने कहा।

ग्रिगोरी ने चुपचाप अपनी आँखें झुका लीं, और मेज़ पर रखे चाय के गिलास की ओर देखता रहा। ओसिप बात बढ़ाने के पक्ष में नहीं था। समझौते के स्वर में बोला:

"बहस में पड़ने का मेरा इरादा नहीं है। मैं तो एक मिसाल देकर मक्सिमोविच को केवल रोटी-रोज़ी कमाने के रास्ते बता रहा था।"

"जिनमें से कुछ सीधे जेल की हवा खिलाते हैं!"

"कुछ क्यों, बल्कि ज़्यादातर," ओसिप ने सहमति प्रकट की।—सन्तपन की ओर ले जाने वाले रास्ते तो चिराग लेकर ढूंढ़ने पर गिनती के दो-चार ही मिलेंगे। असल चीज़ है पकड़ाई में न आना। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अपना दामन किस तरह बचाया जा सकता है।"

प्लास्तरसाज़ या रंगसाज़ जैसे भगत लोगों के प्रति उसके व्यवहार में व्यंग का कुछ पुट मिला रहता। शायद वह उन्हें पसंद नहीं करता था, लेकिन वह इतना चौकस था कि अपने भावों को

प्रकट नहीं होने देता था। मोटे तौर से यह कि लोगों के प्रति उसके रवैये का पता लगाना कठिन था।

येफ़ीमुश्का के साथ वह ज़्यादा नर्मी और मुलामियत से पेश आता जो, अपने अन्य साथियों की भांति सामवीय जीवन के अभिशापों, पाप-पुण्य, खुदा और विभिन्न पंथों से सम्बंधित बहसों में हिस्सा नहीं लेता था। वह कुर्सी को बाजू के रुख आड़ी कर के बैठ जाता ताकि उसका कूब कुर्सी की पीठ से रगड़ न खाए, और एक के बाद एक चाय के गिलास खाली करता रहता। न वह किसी से बोलता, न चालता, बस चुपचाप चाय पीता रहता। फिर, एकाएक चेतन और चौकन्ना होकर, वह अपनी आँखें उठाता और सिगरेट का धुवाँ-भरे कमरे में इधर-उधर देख कर कुछ खोजता हुआ सा नज़र आता। उसके कान खड़े हो जाते और भांति-भांति की आवाज़ों के बीच वह कुछ सुनने का प्रयत्न करता। अन्त में वह उछल कर खड़ा होता और तेज़ी से गायब हो जाता। यह इस बात का सूचक था कि कहवेखाने में किसी ऐसे आदमी का आगमन हो गया है जिससे येफ़ीमुश्का ने कर्ज़ ले रखा था, और उनमें से कुछ तो ऐसे थे जो मारपीट के ज़रिये अपना कर्ज़ वसूल करने के आदी थे। नतीजा यह कि वह निश्चल होकर नहीं बैठ सकता था, हमेशा भागता नज़र आता था।

"देखो न कम्बख़्तों को, किस मज़े से आस्तीनें चढ़ा कर मेरे पीछे पड़े हैं," वह अचरज से भर कर कहता,—"वे इतना भी नहीं समझते कि अगर मेरे पास पैसा होता तो मैं अपने-आप खुशी से अदा कर देता!"

"पूह कुत्ते की दुम!" ओसिप ढेला-सा फेंक कर मारता।

कभी-कभी येफ़ीमुश्का विचारों में खोया बैठा रहता। न वह कुछ देखता, न सुनता। उसका चौड़ा चेहरा ढीला पड़ जाता और उसकी भली आँखें और भी भली हो उठतीं।

"किस सोच में पड़े हो, मित्र?" वे उससे पूछते।

"मैं सोच रहा हूँ कि अगर मैं धनी होता तो असली, सचमुच में भली, किसी कर्नल की लड़की या ऊँचे कुल की ऐसी ही किसी अन्य स्त्री से विवाह करता जिसका दामन भी उतना ही पाक-साफ़ होता जितना कि मेरा। और सच, मैं उससे इतना प्रेम करता कि तुम सोच तक नहीं सकते। भगवान जाने, उसका स्पर्श पाकर उसके प्रेम की आग में मैं वैसे ही जलता जैसे कि मोमबत्ती जलती है। यक़ीन न हो तो सुनो। एक बार देहात में किसी कर्नल ने घर बनवाया और इस घर पर नयी छत डालने का काम उसने मुझे सौंपा। इस कर्नल की एक...।"

"बस-बस, रहने दो!" प्योत्र ने झुंझला कर बीच में ही टोका।—"इस कर्नल और उसकी विधवा लड़की का सारा क़िस्सा हमें मालूम है। उसे सुनते-सुनते कान पक गए।"

लेकिन येफ़ीमुश्का पर इसका कोई असर न पड़ता। हथेलियों से अपने घुटनों को सहलाते और बदन को आगे-पीछे की ओर झकोले देते समय हवा को अपने कूब से छितराते हुए वह कर्नल की लड़की का क़िस्सा सुनाता:

"वह अक्सर बगीचे में निकल आती, एकदम सफ़ेद बुर्राक कपड़े पहने, गुदगुदी और मुलायम। मैं छत पर से उसे देखता और मन-ही-मन सोचता: यह सूरज, और यह सारी दुनिया, सब इसके सामने हेच हैं। अगर मैं कबूतर होता तो उड़कर उसके पास पहुँच जाता। वह फूल थी, जैसे नीला कमल,—कीचड़ में उगनेवाला कमल नहीं, मलाई के कुण्ड में उगने वाला प्यारा और मीठा कमल। आह, भाइयो, ऐसी स्त्री मिले तो समूचा जीवन एक लम्बी सुहाग रात बन जाए!"

"ठीक है। फिर खाने-पीने की भी कुछ जरूरत नहीं रहेगी?"

प्योत्र रूखे स्वर में कहता। लेकिन प्योत्र का यह वार भी खाली जाता। येफ़ीमुश्का अपने ही धुन में कहता:

"हे भगवान, लोग कुछ नहीं समझते। पेट भरने के लिए हमें क्या रोटियों के पहाड़ की ज़रूरत होगी? फिर, बड़े घर की लड़की के लिए धन की क्या कमी?"

ओसिप हँस कर कहता:

"अरे रसिक येफ़ीमुश्का! तुम्हारी इन्द्रियाँ कब जवाब दे देंगी?"

येफ़ीमुश्का स्त्रियों के सिवा अन्य किसी चीज़ के बारे में बात नहीं करता, और जम कर काम करना उसके लिए दूभर हो जाता। कभी वह फुर्ती से और अच्छा काम करता, और कभी एकदम बेगार काटता। उसके हाथ ढीले पड़ जाते, दिमाग़ किसी दूसरी दुनिया की सैर करता और अपनी लकड़ी की पटिया को इतने उल्टे-सीधे ढंग से चलाता कि छत में दराज़ें छूट जातीं। वह हमेशा बलबर-तेल से गंधाता, लेकिन उसकी एक अपनी प्रकृत गंध भी थी, सुहावनी और स्वस्थ गंध, बहुत कुछ वैसी ही जैसी कि ताज़े कटे हुए पेड़ की लकड़ी से आती है।

ओसिप हर चीज़ और विषय पर बातें करता था और उसकी बातें सुनने में बड़ा मजा आता। उसकी बातें मज़ेदार होतीं, लेकिन भली नहीं। उसके शब्द हमेशा कोई कुरेद पैदा करते और यह समझना कठिन हो जाता कि वह अपनी बात मज़ाक में कह रहा है अथवा गम्भीर होकर।

ग्रिगोरी ख़ुदा के बारे में बड़े चाव से बातें करता। यह उसका प्रिय विषय था। ख़ुदा से वह प्रेम करता था और उसमें उसका गहरा विश्वास था। एक दिन मैंने उससे पूछा:

"ग्रिगोरी, क्या तुम जानते हो कि इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो ख़ुदा में विश्वास नहीं करते?"

वह लघु हँसी हँसा:

"वे क्या करते हैं?"

"वे कहते हैं कि ख़ुदा ऐसी कोई चीज़ नहीं है।"

"ठीक, मैं जानता हूँ।"

उसने अपना हाथ इस तरह हिलाया मानो किसी अदृश्य मक्खी को उड़ा रहा हो। फिर बोला:

"क्या तुम्हें हज़रत डेविड का वह कथन याद है? उन्होंने कहा था: 'मूर्ख हैं वे जो अपने मन में कहते हैं कि ख़ुदा नहीं है'। देखा तुमने, इस तरह के जाहिल और पथ से भटके लोगों के बारे में हज़रत डेविड बहुत पहले ही फैसला कर गए हैं। ख़ुदा के बिना तुम एक डग भी आगे नहीं रख सकते!"

और ओसिप ने, अपने विचित्र अन्दाज़ में, उससे सहमति प्रकट करते हुए टिप्पणी जड़ी:

"हम तो तब जानें जब तुम प्योत्र को ख़ुदा में उसके विश्वास से डिगा कर दिखाओ। ज़रा कोशिश तो करो, फिर देखना कि तुम्हारी वह क्या गत बनाता है!"

शिशलिन का सुन्दर चेहरा गम्भीर हो गया, अपनी दाढ़ी को उसने उँगलियों से स्पर्श किया जिनके नाख़ूनों पर प्लास्तर परत चढ़ी थी। फिर रहस्यमय अन्दाज़ में बोला:

"हाड़-माँस के हर पुतले में ख़ुदा मौजूद है। आत्मा और अन्तर्मन ख़ुदा की देन है।"

"और गुनाह?..."

"गुनाह का सम्बंध सिर्फ हाड़-माँस से है। वह ख़ुदा की नहीं, शैतान की देन है। वह केवल ऊपरी, बाहर की चीज़ है, जैसे चेहरे पर चेचक के दाग। बस, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। वही सब से ज़्यादा गुनाह करता है जो गुनाह के बारे में सब

से ज़्यादा सोचता है। अगर दिमाग़ में गुनाह का ख़याल न हो तो गुनाह करने की कभी नौबत न आए। शैतान जो हाड़-माँस के हमारे बदन पर हावी होता है, हमारे दिमाग़ों में गुनाह के बीज बोता है।"

रंगसाज़ के मन में बात कुछ जमी नहीं। दुविधा प्रकट करते हुए बोला:

"पता नहीं क्यों, मुझे लगता है कि ठीक इसी तरह नहीं होता जैसे तुम...!"

"बिल्कुल इसी तरह, इसमें ज़रा भी सन्देह की गुंजायश नहीं। ख़ुदा गुनाहों से मुक्त है, उसने इन्सान को अपनी छवि में ढाला और उसे अपनी सादृश्यता प्रदान की है। हाड़-माँस से बनी यह छवि ही गुनाह करती है, सादृश्यता गुनाहों से मुक्त और अछूती है। सादृश्यता ही वह चीज़ है जिसे हम रूह या आत्मा कहते हैं।"

वह इस तरह मुसकराता मानो उसने बाज़ी जीत ली हो। लेकिन प्योत्र फिर बुदबुदा उठता:

"मुझे लगता है कि ठीक इसी तरह नहीं...।"

अब ओसिप जुबान खोलता। कहता:

"तुम्हारे हिसाब से अगर गुनाह नहीं तो तोबा करने की भी ज़रूरत नहीं, और जब तोबा नहीं तो मुक्ति का पचड़ा भी नहीं। क्यों, ठीक है न?"

"हाँ, ठीक है। एक पुरानी कहावत के अनुसार: 'शैतान नहीं तो ख़ुदा भी नहीं'। एक नज़र से ओझल हो जाए तो दूसरे का फिर ख़याल तक न आएगा!"

शिशलिन पीने का आदी नहीं था। दो घूंटों ने ही उसपर अपना रंग चढ़ा दिया। उसके चेहरे पर गुलाबी दमक छा गई,

आँखों में बचपन का भोलापन उभर आया, और आवाज़ हिलोरें लेने लगी :

"ओह मेरे भाइयो, कितना अद्भुत जीवन है हमारा। हमसे जो बनता है, थोड़ा-बहुत काम कर लेते हैं, और इतना भोजन मिल जाता है कि भूखों मरने की नौबत नहीं आती। ओह, शुक्र है उस भगवान का जिसकी बदौलत हम इतना अद्भुत जीवन बिताते हैं।"

और वह रोना शुरू कर देता। उसकी आँखों से आँसू निकलते और गालों पर से होते हुए उसकी रेशमी दाढ़ी में अटक जाते और मोतियों की भांति चमकते।

उसके इन पथराए हुए से आँसुओं और जिस ढंग से वह इस जीवन की भंडैती करता उससे मेरा हृदय भन्ना जाता, और मुझे बड़ी घिन मालूम होती। मेरी नानी भी इस जीवन के लिए ख़ुदा के दरबार में शुक्राना भेजती थीं, और इस जीवन की तारीफ़ के गीत गाती थीं, लेकिन उनके गीत और प्रशंसा कहीं अधिक विश्वसनीय और सीधे-सादे होते थे। वह इस तरह औंधे मुँह गिर कर भंडैती नहीं करती थीं।

उनकी ये बातें मेरे हृदय में बराबर खुदबुद मचाए रहतीं, कभी न ख़त्म होनेवाले तनाव का मैं अनुभव करता, और धुंधली तथा अज्ञात आशंकाएँ मुझे घेर लेतीं। दहकानों के बारे में अनेक कहानियाँ और क़िस्से मैं पढ़ चुका था और किताबों के दहकानों में तथा सचमुच के दहकानों में भारी अन्तर मुझे दिखाई देता था। किताबों के दहकान, सब के सब, दुःख और मुसीबतों में फंसे अभागे जीव थे जिनमें, वे भले हों चाहे बुरे, विचारों और वाणी की वह समृद्धता एक सिरे से गायब थी जो कि सचमुच के जीवित दहकानों की एक ख़ास विशेषता थी। किताबों के दहकान ख़ुदा, विभिन्न पंथों और गिरजे के बारे में कम बातें करते थे और अपने

से ऊँचों, ज़मीन, जीवन के अन्याय और मुसीबतों के बारे में ज़्यादा। किताबों के दहकान स्त्रियों के बारे में भी कम बातें करते थे, और अगर उन्हें बातें करते दिखाया भी जाता था तो इस तरह मानो उनके हृदय में स्त्रियों के प्रति अधिक इज़्ज़त हो, और उनके लिए कभी भी गंदे या औघड़ शब्दों का इस्तेमाल न करते हों। सचमुच के दहकानों के लिए स्त्री मन बहलाने का एक साधन थी, लेकिन एक ख़तरनाक साधन जिसके साथ काफ़ी चालाकी और चतुराई बरतने की ज़रूरत थी, अन्यथा वह उनपर हावी होकर उनके जीवन को नष्ट कर देती। किताबों के दहकान या तो बुरे होते या भले, और इन दोनों ही सूरतों में उन्हें काफ़ी सिधाई के साथ किताबों में पेश किया जाता, लेकिन सचमुच के दहकान न भले होते और न बुरे, बल्कि दिलचस्प होते हैं। उनकी तमाम बातें सुनने के बाद भी यह भावना बनी रहती कि कुछ है जो अनकहा रह गया है, जिसे उन्होंने अपने हृदय में छिपा कर रख छोड़ा है, और कौन जाने कि ठीक वह अंश ही जो अनकहा रह गया है, उनके व्यक्तित्व का असली तत्व हो!

किताबों के दहकानों में मुझे प्योत्र नाम का बढ़ई सब से ज़्यादा पसंद था। "कार्पेण्टर्स आर्टेल" नामक पुस्तक में उसका क़िस्सा दिया हुआ था। वह मुझे इतना अच्छा लगा कि मैं उसे अपने साथियों को पढ़ कर सुनाने के लिए बेचैन हो उठा। एक दिन, मेले के मैदान में काम पर जाते समय, उस पुस्तक को भी मैं अपने साथ लेता गया। अक्सर ऐसा होता कि दिन-भर काम करते-करते मैं बुरी तरह थक जाता और घर लौटने की हिम्मत न होती। ऐसी हालत में मैं कारीगरों के किसी एक बाड़े में चला जाता और रात उनके साथ बिताता। इस तरह मेरी ज़्यादातर रातें उन्हीं के साथ बीततीं।

मैंने जब उन्हें यह बताया कि मेरे पास बढ़ई लोगों के बारे में एक किताब है तो उनकी, और ख़ास तौर से ओसिप की, दिलचस्पी का वारपार नहीं रहा। उसने मेरे हाथ से किताब ले ली और अपने सन्तनुमा सिर को हिलाते हुए इस तरह उसके पन्ने पलटने लगा, मानो उसे यक़ीन न आ रहा हो। बोला:

"तो यह हमारे बारे में लिखी गई है। कुछ सुना तुमने, हमारे बारे में! किसने लिखा है इसे?—क्या कहा, किसी रईसज़ादे ने? ठीक, मैं भी ऐसा ही समझता था। रईसज़ादे और सरकारी अफ़सरों के क़दम जहाँ न पहुँचे, थोड़ा है। ख़ुदा से जो कसर रह जाती है, उसे यही लोग पूरा करते हैं। ख़ुदा ने मानो इसीलिए इन्हें इस दुनिया में भेजा है।"

"ख़ुदा के बारे में बातें करते समय तुम कुछ सम्मान का भाव नहीं दिखाते," प्योत्र ने टोका।

"ठीक है, ठीक है। मेरे शब्दों से ख़ुदा का उतनी ही दूर का नाता है जितना कि मेरा वर्फ़ के उस कण से जो आसमान से गिर कर मेरी गंजी चिन्दियों पर आ विराजता है। घबराओ नहीं, हम-तुम जैसे लोगों की ख़ुदा तक कोई रसाई नहीं है।"

उसे तमतमाते और गर्म लोहे की भांति चिंगारियाँ छोड़ते देर नहीं लगती। एकाएक वह भभक उठता और तेज़ तथा तीखे शब्दों की बौछार करने लगता। हर वह चीज़ जो उसे नापसंद होती थी, जिससे वह घृणा करता, उसके शब्दों से झुलस कर रह जाती। दिन में कई बार उसने मुझसे पूछा:

"क्यों, मक्सिमोविच, कुछ पढ़कर सुनाओगे न? ठीक, बहुत ठीक। तुमने बहुत ही बढ़िया प्रोग्राम बनाया है।"

जब काम समाप्त हो गया तो साँझ का खाना उसी के बाड़े में हुआ। खाने के बाद प्योत्र भी आ गया। उसके साथ एक कारीगर

और आया जिसका नाम अरदालियोन था। फ़ोमा नामक एक लड़के को साथ लिए शिशलिन भी आ गया। सायबान के नीचे, जहाँ कारीगर सोते थे, एक लैम्प जला कर रख दिया गया और मैंने पढ़ना शुरू किया। विना हिले-डुले या मुँह से एक शब्द कहे वे सुनते रहे। एकाएक अरदालियोन खीज कर बोला:

"मैं तो चलता हूँ। सुनते-सुनते ऊब गया।"

वह चला गया। सोनेवालों में ग्रिगोरी सब से पहले चित्त हो गया। वह मुँह बाये सो रहा था, और ऐसा मालूम होता था मानो उसका मुँह अचरज के मारे खुला का खुला रह गया हो। उसके बाद अन्य बढ़ई भी चित्त हो गए। लेकिन प्योत्र, ओसिप और फ़ोमा मेरे और निकट खिसक आए तथा गहरे ध्यान और उत्सुकता से सुनते रहे।

जब मैं ख़त्म कर चुका तो ओसिप ने तुरत लैम्प बुझा दिया। तारे आधी रात बीत जाने की सूचना दे रहे थे।

प्योत्र ने अंधेरे में पूछा:

"इस किताब में नुक्ते की बात क्या है? यह किनके ख़िलाफ़ लिखी गई है?"

ओसिप जूते उतार रहा था। बोला:

"बातें न करो। अब सो जाओ।"

फ़ोमा चुपचाप खिसक कर एक ओर लेट गया।

"मेरी बात का जवाब दो न,—यह किनके खिलाफ़ लिखी गई है?" प्योत्र ने फिर बल देकर पूछा।

एक माँची पर अपना बिस्तरा लगाते हुए ओसिप ने कहा:

"यह लिखनेवाले जानें। हमें माथापच्ची करने से क्या फ़ायदा?"

"क्या यह सौतेली माताओं के ख़िलाफ़ लिखी गई है? नहीं, इसमें ऐसी कोई बात नहीं है। इस तरह की किताब सौतेली

माताओं का सुधार नहीं कर सकती," रंगसाज़ ने ज़ोर देते हुए कहा।—"या फिर यह प्योत्र के खिलाफ़ लिखी गई है जो इसका हीरो है,—प्योत्र बढ़ई। लेकिन यह उसे भी अधर में ही लटका रहने देती है। आखिर उसका हश्र क्या होता है? वह हत्या करता है, और उसे काले पानी की सज़ा देकर साइबेरिया भेज दिया जाता है। बस, क़िस्सा ख़त्म! यह किताब उसे भी कोई मदद नहीं देती——दे भी नहीं सकती, नहीं, बिल्कुल नहीं। इसीलिए तो मैं पूछता हूँ, यह किसके लिए लिखी गई है?"

ओसिप चुप रहा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। रंगसाज़ ने अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा:

"इन लेखकों के पास अपना कुछ काम तो है नहीं, सो दूसरों की आँख में उँगली डालते फिरते हैं, बैठकबाज निठल्ली स्त्रियों की भांति जिनका काम ही पास-पड़ोस के क़िस्से बखान करना होता है। अच्छा तो अब सोओ, काफ़ी देर हो गई।"

दरवाज़े के बाहर चौक में, नीली चाँदनी छिटकी हुई थी। एक क्षण के लिए वह ठिठक कर खड़ा हो गया और बोला:

"क्यों ओसिप, तुम्हारा क्या ख़याल है?"

ओसिप अधसोया सा कुनमुना कर रह गया।

"ओह, नींद आ रही है। अच्छा तो सोओ।"

शिशलिन जिस जगह बैठा था, वहीं फ़र्श पर पसर गया। फ़ोमा मेरे पास ही पुआल पर लेट गया। समूची बस्ती पर सोता छाया था। कहीं दूर से इंजन की सीटियों के बजने, लोहे के भारी पहियों के गड़गड़ाने और गाड़ियों को जोड़ने वाले काँटों के खड़खड़ाने की आवाज़ आ रही थी। सायबान हल्के-भारी और मद्धिम—सभी प्रकार के घर्राटों की आवाज़ से गूँज रहा था। मेरा हृदय बड़ा सूना-सा हो रहा था। मैं आशा करता था कि पुस्तक ख़त्म

होने के बाद कोई दिलचस्प बहस होगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

एकाएक ओसिप ने धीमी किन्तु साफ़ सुन पड़ने वाली आवाज़ में कहा:

"उसकी बातों को मन में बैठाने की ज़रूरत नहीं। तुम अभी कम-उम्र हो, और सारा जीवन तुम्हें पार करना है। दिमाग़ का कोठा ख़ुद अपने विचारों से भरते जाओ। उधार लिए सौ विचारों से अपना एक विचार कहीं ज्यादा कीमती होता है। क्यों फ़ोमा, क्या तुम सो गए?"

"नहीं," फ़ोमा ने तत्परता से कहा।

"तुम दोनों पढ़ना जानते हो, सो बराबर पढ़ते रहना। लेकिन इतना नहीं कि पुस्तकों में ही डूब कर रह जाओ और उनकी हर बात पर भरोसा करने लगो। आज उनका बोलबाला है, ताकत उनके हाथ में है, सो जो मन में आता है छाप डालते है।"

उसने माँची पर से अपनी टाँगें नीचे लटका लीं और दोनों हाथों से उसकी बाँह दबोच कर हमारी ओर झुकते हुए बोला:

"किताब — आख़िर किताब होती क्या है? भेदिया की भांति वह सब का भेद खोलती है। सच, किताब भेदिये का काम करती है। आदमी मामूली हो चाहे बड़ा, वह सभी का भेद बताती है। वह कहती है — देखो, बढ़ई ऐसा होता है। या फिर वह किसी रईसज़ादे को सामने खड़ा कर कहती है — देखो, रईसज़ादा ऐसा होता है। मानो ये अन्य सब से भिन्न, अनोखे और निराले हों। और किताबें योंही, बेमतलब, नहीं लिखी जातीं। हर किताब किसी न किसी की हिमायत करती है।"

"प्योत्र ने ठीक किया जो उस ठेकेदार को मार डाला," फ़ोमा ने भारी आवाज़ में कहा।

"ऐसी बात मुँह से नहीं निकालते। आदमी की हत्या करना क्या कभी ठीक कहा जा सकता है? मैं जानता हूँ कि ग्रिगोरी से तुम्हारी नहीं बनती, तुम उससे नफ़रत करते हो। लेकिन यह ठीक नहीं। हममें कोई भी धन्ना सेठ नहीं है। आज मैं मुखिया कारीगर हूँ, लेकिन कल मुझे अन्य सभी मज़दूरों की भांति काम करना पड़ सकता है।"

"मैं तुम्हारे बारे में थोड़े ही कह रहा था, चचा ओसिप।"

"इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बात तो वही है।"

"तुम तो सच्चा आदमी हो।"

"ठहरो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह किताब किसके लिए लिखी गई है," ओसिप ने फ़ोमा के क्षोभ भरे शब्दों को अनसुना करते हुए कहा।—"इस पुस्तक में पूरी चालाकी भरी है। इसमें एक रईस बिना दहकान के है और एक दहकान बिना रईस के। तिस पर मज़ा यह कि न तो रईस के साथ अच्छी बीतती है, न दहकान के साथ। रईस के लिए उसका जीवन भार हो जाता है और वह दुबला पड़ता जाता है, दहकान शराब में डूब जाता है और हृदय में शिकायत लिए अंट-संट बकता रहता है। यही सारी कहानी का निचोड़ है। वह यह दिखाती है कि ज़मींदार के यहाँ अर्धदास बन कर रहना अच्छा है। रईस दहकान को अपनी ओट में लेता और दहकान रईस को ओट प्रदान करता है। दोनों मज़े से एक गोल चक्कर में घूमते और आँख-मिचौनी का खेल खेलते। दोनों के पेट भरे और दोनों खुश। ओह, मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि अर्ध-दास-प्रथा के अन्तर्गत जीवन में इतना खटराग नहीं था। ज़मींदारों को ग़रीब दहकानों की ज़रूरत न थी। उन्हें तो ऐसे दहकानों से फ़ायदा था जिनके शरीर भरे-पूरे और दिमाग़ खाली होते थे। अपनी आँखों-देखी, खुद-भुगती बात मैं कहता हूँ।

कौन नहीं जानता कि चालीस साल तक मैं ज़मीनदारों का बन्धक रहा हूँ? कोड़ों की मार ने मेरी चमड़ी पर जो लिखावट लिखी है, वह क्या किसी किताब से कम है?"

मुझे उस बूढ़े गाड़ीवान की याद हो आई जिसका नाम प्योत्र था और जिसने अपना गला काट डाला था। खानदानी रईसों और कुलीनों के बारे में वह भी इसी तरह की बातें करता था। ओसिप की तथा उस कुत्सित बूढ़े की बातों में यह सादृश्य मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

ओसिप का हाथ मेरे घुटने पर रखा था और वह कह रहा था:

"किताबों और दूसरी लिखावटों के आर-पार देखना और उनका भीतरी मतलब समझना ज़रूरी है। तुममें इसकी योग्यता होनी चाहिए। बिना मतलब कोई कुछ नहीं करता। चाहे कोई कितना ही छिपाए, लेकिन मतलब सब के पीछे होता है। और किताबें लिखने का मतलव होता है दिमाग़ को चक्कर में डालना, उसे गड़बड़ाना। और दिमाग़ एक ऐसी चीज़ है जो लकड़ी काटने से लेकर जूते चमकाने तक, हर जगह काम देता है...।"

वह बहुत देर तक बातें करता रहा। कभी वह बिस्तरे पर सीधा लेट जाता और कभी उछल कर बैठ जाता, और रात की निस्तब्धता तथा अंधेरे में अपने साफ़-सुथरे शब्दों को मुलायमियत से बिखेरता जाता।

"कहते हैं कि ज़मीनदार और दहकान में भारी अन्तर और भेद है। लेकिन यह बात सच नहीं है। हम दोनों एक हैं, सिवा इसके कि वह ऊँचाई पर है। यह सही है कि वह अपनी किताबों से सीखता है, और मैं अपनी कमर पर पड़े नीले निशानों से। उसकी कमर पर कोई निशान नहीं होते। लेकिन उजली कमर उसे कोई

ज़्यादा उजला नहीं बनाती, ओह नहीं, मेरे नन्हे साथी, इससे वह उजला नहीं बन जाता। ज़रूरत इस बात की है कि नये सांचे में इस दुनिया को ढाला जाए। किताबों को गोली मारो, उन्हें दूर फेंको, और अपने से पूछो: आखिर मैं क्या हूँ?—एक इन्सान। और जमींदार क्या है?—वह भी एक इन्सान है। फिर दोनों में भेद क्या है? क्या खुदा ने यह कह कर उसे दुनिया में भेजा है कि मैं तुमसे पाँच कोपेक ज़्यादा वसूल करूँगा, जाकर किसी ज़मीन-दार के घर में जन्म लो, या जैसे बने जमींदार बन जाओ। लेकिन नहीं, खुदा के दरबार में सब एक हैं, सब को एक सा भुगतान करना पड़ता है...!"

अन्त में जब रात का अंधेरा छंट चला, और तारों की रौशनी मद्धिम पड़ गई तो ओसिप ने कहा:

"आज तो मैंने हद कर दी। न जाने क्या-क्या कह गया। ऐसी-ऐसी बातें दिमाग़ में आईं कि जिनके बारे में इस जीवन में मैंने पहले कभी सोचा तक नहीं था। लेकिन मेरी बातों पर ज़्यादा ध्यान न देना। नींद आ नहीं रही थी, सो जो मन में आया, उल्टा-सीधा कहता गया। जब आँख नहीं लगती तो अजीब-अजीब बातें सूझती हैं और दिमाग़ बातों का कारखाना बन जाता है, और मनमानी बातें गढ़ता रहता है। बहुत पहले की बात है। एक कौवा था। मैदानों से उड़कर वह पहाड़ों की ख़बर लाता, कभी इस खेत का चक्कर लगाता तो कभी उस खेत पर जा बैठता, और इस तरह उड़ते-उड़ते उसके सारे पर झड़ गए, शरीर सूख चला, और एक दिन वह ख़त्म हो गया। अब तुम्हीं बताओ, कौवे की इस कहानी में क्या तुक है? है न, बिल्कुल बेमानी और बेतुकी कहानी? हाँ तो अब सो जाओ। जल्दी उठ कर काम पर भी तो जाना है...।"

१८

बीते दिनों में जिस तरह कोयला झोंकने वाला जहाज़ी याकोव मेरे हृदय पर छा गया था, उसी तरह ओसिप भी मेरी आँखों में समाता, फैलता और बढ़ता गया और अन्य सभी को उसने ओझल कर दिया। उसमें और जहाज़ी याकोव में बहुत कुछ समानता थी, इसके अलावा उसे देख कर मुझे अपने नाना, धर्मशास्त्री प्योत्र वसीलीयेविच और बावर्ची स्मूरी की भी याद हो आती थी जो सब मेरी स्मृति में अत्यन्त गहराई से अंकित थे। लेकिन ओसिप की अलग गहरी छाप रही। जिस तरह तेजाब पीतल को काटता हुआ उसे आत्मसात करता जाता है, वैसे ही वह भी मेरे अन्तर्मन की गहराइयों में प्रवेश करता और मेरे रोम-रोम में समाता जा रहा था। ओसिप के दो रूप साफ़ नज़र आते थे। दिन का रात के ओसिप से भिन्न होता था। दिन में काम करते समय उसके दिमाग़ में फ़ुर्ती आ जाती, दो टूक और अधिक व्यावहारिक ढंग से वह सोचता और उसकी बात समझने में अधिक दिक्कत न होती। लेकिन रात को जब उसे नींद न आती या साँझ को मुझे साथ लेकर जब वह मालपूवे बेचनेवाली अपनी परिचिता से मुलाक़ात करने नगर जाता, वह दूसरा ही रूप धारण कर लेता। रात को वह विशेष ढंग से सोचता और उसके विचार लालटेन की लौ की भांति अंधेरे में खूब उज्ज्वल तथा चारों ओर से खूब चमकते दिखाई देते, और यह पता लगाना कठिन हो जाता कि उनका सीधा पक्ष कौन सा है और उलटा कौन सा, या यह कि उनमें से किसे वह पसंद करता है और किसे नहीं।

अब तक जितने भी लोगों से मिला था, मुझे वह उन सब से ज़्यादा फितरती और चतुर मालूम होता। उसे पकड़ने और

समझने की व्यग्रता हृदय में लिए मैं उसके चारों ओर भी उसी तरह मंडराता जैसे कि जहाज़ी याकोव के चारों ओर, लेकिन वह सपक सुई की भांति वल खाकर निकल भागता और पकड़ में न

ऐसा मालूम होता जैसे वह छलावा हो। मैं मुँह बाये उसे देखता रहता और समझ न पाता कि अपने असली और सच्चे रूप को वह कहाँ छिपाए है? उसका वह पहलू कौन सा है जिसे सच्चा समझ कर ग्रहण किया जा सके?

मुझे उसका यह कथन रह-रह कर याद आता:

"या फिर अपने दिमाग़ से काम लो और पता लगाओ कि मैं क्या हूँ। तुम्हें इसकी पूरी छूट है।"

यह मेरे मान पर चोट थी, मान से अधिक मेरे आत्मविश्वास पर चोट थी। मुझे ऐसा मालूम होता कि इस बूढ़े आदमी के रहस्य का उद्‌घाटन किए बिना मैं जीवन में एक डग भी आगे नहीं बढ़ सकूँगा। उसे समझना मेरे लिए जीवन का आधारभूत प्रश्न बन गया।

छलावे की भांति वह दिखाई देता, जैसे ही मैं उसे पकड़ने की कोशिश करता, वह गायब हो जाता। लेकिन, इस छलावेपन के बावजूद, वह एक थिर व्यक्तित्व का आदमी था। मुझे ऐसा मालूम होता कि अगर वह सौ साल और जीवित रहे तो भी उसका रंग-रूप ऐसा ही बना रहेगा, गिरगिट की भांति सौ-सौ रंग बदलने में अत्यन्त दक्ष लोगों के बीच रहते हुए भी अडिग और अपरिवर्तनशील। धर्मशास्त्री प्योत्र ने भी मेरे हृदय में थिरता के कुछ ऐसे ही भावों का संचार किया था, लेकिन उसकी यह थिरता मुझे अच्छी नहीं मालूम होती थी। ओसिप की थिरता दूसरे प्रकार की थी, एक तरह की ताज़गी और सुहावनापन लिए हुए।

यह थिरता मानव-जीवन से बराबर गायब होती जा रही थी, और उसके गायब होने के चिन्ह हर क़दम पर दिखाई देते

थे। लोग इतनी आसानी और आकस्मिकता से चोला बदलते और मेंढ़क की भांति उछल कर इस बाज़ू से उस बाज़ू पहुँच जाते कि देखकर बड़ा अटपटा मालूम होता। उनकी यह चोला-बदलौवल, जिसे मैं पहले कौतुक और अचरज से देखा करता और दंग रह जाता था, अब ऊब और झुंझलाहट पैदा करती थी। नतीजा इसका यह कि पहले जिस उछाह से मैं लोगों में दिलचस्पी लेता था, धीरे-धीरे उसे पाला मार गया, लोगों के प्रति मेरा प्रेम एक अजीब दबसट में पड़ गया।

जूलाई के शुरू में एक दिन एक घोड़ागाड़ी जिसके अंजर-पंजर ढीले हो चुके थे, खड़खड़ करती आई और जहाँ हम काम कर रहे थे, वहाँ आकर रुक गई। कोचवान की गद्दी पर नशे में धुत्त एक दाढ़ीवाला इज़वोज़चिक बैठा था। वह उदासी से हिचकियाँ भरता था। उसका सिर नंगा था, होठों से ख़ून बह रहा था, पीछे की सीट पर नशे में मदहोश ग्रिगोरी शिशलिन लुढ़क रहा था, और डबलरोटी सी मोटी लाल कल्लों वाली एक लड़की उसे अपनी बाँहों में थामे थी। वह सींकों का हैट पहने थी। हैट गुलाबी फ़ीतों और छोटे-छोटे चमकदार कुमकुमों की झालर से सजा था। जूतों की जगह पावों में ख़ाली गालोश पहने थी। वह गाड़ी के धचकोलों से लरज रही थी, और ख़ाली हाथ में छतरी हिलाते हुए हँस-हँस कर चिल्ला रही थी:

"शैतान, चकमा देने के लिए क्या मैं ही मिली थी? सारी दुकानें बंद पड़ी हैं। न कोई मेला है, न ठेला। मेरी मिट्टी पलीद करने के लिए नाहक मुझे यहाँ खींच लाया!"

ग्रिगोरी की बुरी हालत थी। वह उस लत्ते की भांति मालूम होता था जिसे ख़ूब झंझोड़ा और नोंचा-खरोंचा गया हो। रेंग कर

वह गाड़ी से बाहर निकला और ज़मीन पर पसर कर बैठ गया। फिर, आँखों में आँसू भरे, बोला:

"यह देखो, मैं तुम्हारे सामने घुटनों के बल पड़ा हूँ। मुझे माफ़ करना, मैंने गुनाह किया है, तिसपर मज़ा यह कि भूल कर या अनजान में नहीं, बल्कि सोच-समझ कर और पूरी तैयारी के साथ। येफ़ीमुश्का ने मुझे उकसाया: ग्रिगोरी, ग्रिगोरी... और उसका उकसाना भी ग़लत नहीं था। कहने लगा... लेकिन मुझे माफ़ करना... मैं इसका प्रायश्चित करना चाहता हूँ... यानी, तुम सबकी दावत मेरे ज़िम्मे... येफ़ीमुश्का की बात ग़लत नहीं थी। उसने ठीक ही कहा था: हम केवल एक बार जीते हैं... केवल एक ही बार, अधिक नहीं, केवल एक ही बार...।"

लड़की हँसते-हँसते दोहरी हो गई और फिरकी सी घूमने लगी। उसके गालोश पाँव से निकल कर दूर जा गिरे। इज़वोज़चिक ने भी शोर मचाना शुरू किया:

"चलो, जल्दी करो! आओ, जल्दी आओ! देखते नहीं, घोड़ा रास तुड़ा कर भागना चाहता है!"

लेकिन बूढ़ा और मरियल घोड़ा, जिसके मुँह से झाग निकल रहे थे, रास तुड़ा कर भागना तो दूर अड़ियल टट्टू की भांति वहीं जाम हो गया था और टस-से-मस नहीं होना चाहता था। समूचा दृश्य कुछ इतना बेढंगा और औघड़ था कि हँसी रोके न रुकती थी। अपने मालिक, उसकी छैल-छबीली प्रेमिका तथा हक्के-बक्के से कोचवान को देख कर ग्रिगोरी के मज़दूरों के पेट में बल पड़ गए।

लेकिन फ़ोमा इस हँसी में शामिल नहीं हुआ। वही एक ऐसा था जो हँस नहीं रहा था, और दुकान के फाटक पर मेरे पास खड़ा बड़बड़ा रहा था:

"कम्बख़्त उल्टांग हो गया! और मज़ा यह कि घर पर बीवी मौजूद है,—सच, इतनी सुन्दर कि लाखों में एक!"

इज़वोज़चिक जल्दी मचाता रहा। अन्त में लड़की नीचे उतरी, और ग्रिगोरी को खींच कर उसने गाड़ी में डाल दिया जहाँ वह, सीट से नीचे उसके पाँवों के पास ही ढह गया। फिर अपना छाता फहराते हुए बोली:

"अच्छा, हम तो चले!"

फ़ोमा ने कारीगरों को ज़ोर से झिड़का। मालिक को ख़ुद अपने हाथों सबके सामने इस तरह उल्लू बनते देख वह आहत हो उठा था। सकपका कर और अपने मालिक पर दो-चार भले से छींटे कसते हुए कारीगर फिर अपने काम में जुट गए। साफ़ मालूम होता था कि अपने मालिक के प्रति उनके हृदय में घृणा से अधिक ईर्ष्या के भाव थे।

"मालिक क्या ऐसे होते हैं?" फ़ोमा बड़बड़ाया। —"पन्द्रह-बीस दिन की ही तो बात थी। अपना काम ख़त्म कर हम सब गाँव पहुँच जाते। लेकिन कम्बख़्त से इतने दिन भी नहीं रुका गया...।"

झुंझलाहट तो मुझे भी कुछ कम नहीं आ रही थी। कहाँ ग्रिगोरी और कहाँ कुमकुमों की झालरवाली वह गावदुम लड़की!

मैं अक्सर सोचता और उलझन में पड़ जाता कि ग्रिगोरी शिशलिन में ऐसी क्या बात है जो वह तो मालिक है, और फ़ोमा तुचकोव एक साधारण मज़दूर।

फ़ोमा घुंघराले बालों वाला हट्टा-कट्टा युवक था। चाँदी जैसा उसका रंग था, हुकदार नाक, कंजी आँखें, और गोल चेहरा। उसकी आँखों में बुद्धि की चमक थी। उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह दहकान है। यदि उसके कपड़े अच्छे होते तो वह

किसी बड़े कुल के व्यापारी का लड़का मालूम होता। गम्भीर और चुप्पा स्वभाव, केवल मतलब की बात करता। पढ़ना-लिखना जानता था, इसलिए ठेकेदार ने हिसाब-किताब रखने और तख़मीने बनाने का काम उसे सौंप रखा था। वह अपने साथी मज़दूरों से काम लेने में दक्ष था, हालांकि ख़ुद काम से जी चुराता था।

"एक जीवन में सब काम नहीं किए जा सकते," वह शान्त भाव से कहता। पुस्तकों से उसे चिढ़ थी। वह अपनी खीज प्रकट करता:

"हर अलाय-बलाय छापे में आ जाती है। चाहो तो मैं तुम्हें अभी हाथ-के-हाथ कहानी गढ़ कर सुना सकता हूँ। यह ज़रा भी मुश्किल काम नहीं है।"

लेकिन जब कोई बात कही जाती तो वह बड़े ध्यान से सुनता, और अगर वह उसे अच्छी लगती तो उस समय तक चैन न लेता जब तक कि उसका सारा ब्योरा न बटोर लेता। इसके बाद वह ख़ुद अपने नतीजे निकालता, अपने निजी माप से उन्हें जाँचता परखता।

एक बार मैंने फ़ोमा से कहा कि तुम्हें तो ठेकेदार होना चाहिए था। उसने अलस भाव से जवाब दिया:

"अगर एकदम शुरू से ही खनखनाते हुए हज़ार रूबल की आय हो तो यह सौदा कुछ बुरा नहीं, लेकिन दो-चार ठीकरों के लिए ढेर सारे कारीगरों को डंडे से हाँकने की जहमत कौन उठाए? मुझे तो इसमें कोई तुक नहीं दिखाई देती। नहीं, भाई, मुझे तो समय काटना है। इसके बाद मैं ओरान्की मठ का रास्ता नापूँगा। इतना हट्टा-कट्टा मेरा शरीर है, देखने में भी ख़ूबसूरत हूँ। अगर किसी धनी सौदागर की विधवा मुझपर लट्टू हो गई तो सारे पाप कट जाएंगे। ऐसा अक्सर होता है। सेरगाची के एक निवासी

को मठ में भर्ती हुए मुश्किल से दो साल ही बीते होंगे कि उसकी जोड़ बैठ गई। और सोने में सुहागा यह कि वह शहर की लड़की थी। वह उस दल में था जो मरियम की प्रतिमा को घर-घर ले जाता है। तभी दोनों की नज़रें एक दूसरे से मिलीं और वह उसपर लट्टू हो गई...।"

उसने ऐसा ही मन्सूबा बाँध रखा था। इस तरह की अनेक कहानियाँ वह सुन चुका था जिनमें लोग नव-दीक्षित साधु के रूप में मठ में भर्ती होने के बाद किसी धनी स्त्री के नज़र-हिंडोले पर चढ़ कर मज़े का जीवन बिताते थे। मुझे ऐसी कहानियों से चिढ़ थी और फ़ोमा के दृष्टिकोण से भी। लेकिन यह बात मेरे मन में जम गई कि फ़ोमा एक दिन निश्चय ही किसी मठ का रास्ता पकड़ेगा।

और जब मेला शुरू हुआ तो फ़ोमा ने सभी को चकित कर दिया — क़हवेख़ाने में वेटर का काम उसने शुरू कर दिया। उसकी इस कलाबाज़ी ने उसके साथियों को भी चकित किया, यह कहना तो कठिन है , लेकिन वे उसका ख़ूब मज़ाक बनाते। रविवार या छुट्टी के दिन जब कभी चाय का प्रोग्राम बनता तो वे आपस में हँसते हुए कहते:

"चलो, चाय पीने चलें। फ़ोमा की आमदनी का कुछ डौल हो जाएगा।"

और क़हवेख़ाने में पाँव रखते ही रौब के साथ वे आवाज़ लगाते:

"ऐ वेटर, क्या सुनता नहीं, ओ घुंघराले बाल वाले, लपक कर इधर आ!"

ठोड़ी को ऊपर उठाए वह निकट आता और पूछता:

"कहिए, क्या लेंगे?"

"क्या तुम पुराने साथियों को नहीं पहचानते?"

"नहीं, मुझे इतनी फ़ुरसत नहीं है...।"

उससे यह छिपा नहीं था कि उसके साथी उसे नीची नज़र से देखते हैं, और उनका एकमात्र लक्ष्य उसे चिढ़ाना है। इसलिए वह उन्हें पथराई सी आँखों से देखता और उसका चेहरा एक ख़ास मुद्रा में जाम हो जाता। वह जैसे कहता प्रतीत होता:

"जल्दी कहो जो कहना हो, और फिर दफ़ा हो जाओ यहाँ से!"

"अरे, तुम्हें बख़्शीश देना तो भूल ही गए!" वे कहते और अपने बटुवे निकाल कर देर तक उन्हें टटोलते, ओने-कोने दाब कर देखते और अन्त में बिना कुछ दिए ही गायब हो जाते।

एक दिन मैंने फ़ोमा से पूछा कि तुम तो मठ में भर्ती हो कर साधु बनना चाहते थे, वेटर कैसे बन गए।

"ग़लत बात है। मैं कभी साधु बनना नहीं चाहता था," उसने जवाब दिया,—"और यह वेटरी भी कुछ दिनों की मेहमान है।"

लेकिन इसके चार साल बाद, ज़ारित्सीन में जब मेरी उससे मुलाक़ात हुई तो उस समय भी वह वेटर का ही काम कर रहा था, और अन्त में समाचारपत्र में यह ख़बर पढ़ी कि फ़ोमा तुचकोव किसी घर में सेंध लगाते पकड़ा गया।

रंगसाज़ अरदालियोन ने मुझे ख़ास तौर से प्रभावित किया। प्योत्र के कारीगरों में वह सब से पुराना और सब से अच्छा मज़दूर था। हँसमुख और काली दाढ़ी वाले चालीस वर्षीय इस दहकान को देख कर भी मैं उसी उलझन में पड़ जाता कि मालिक उसे होना चाहिए था, न कि प्योत्र को। वह विरले ही शराब पीता था, और जब पीता था तो कभी मदहोश नहीं होता था।

अपने धंधे का वह उस्ताद था, और लगन के साथ काम करता था। उसके हाथों का स्पर्श पाते ही ईंटों में जैसे जान पड़ जाती थी और कबूतर की भांति सर्र से उड़ कर ठीक-ठिकाने पर जा बैठती थीं। उसके सामने मरियल और सदा रोगी प्योत्र की कोई गिनती नहीं थी। प्योत्र बड़े चाव से कहता :

"मैं दूसरों के लिए ईंटों के घर बनाता हूँ जिससे अपने लिए एक लकड़ी का घर—ताबूत—बना सकूँ।"

अरदालियोन आह्लादपूर्ण उत्साह से ईंटें चुनता जाता और चिल्ला कर कहता :

"आओ साथियो, आओ! खुदा की इस सृष्टि को सुन्दर बनाने में हाथ बंटाओ!"

और वह उन्हें, अपने साथी कारीगरों को, बताता कि अगले बसंत में उसका इरादा तोम्स्क जाने का है। वहाँ उसके साले ने एक गिरजा बनाने का ठेका लिया है और उसे न्योता दिया है कि तोम्स्क आकर निर्माण-कार्य के मुखिया का काम संभाले।

"सब कुछ तय हो चुका है। गिरजों का निर्माण करना—सच, यह मेरा प्रिय कार्य है," वह कहता और इसके बाद मुझे सम्बोधित करता : "चलो, तुम भी मेरे साथ चलो। साइबेरिया अच्छी जगह है, खास तौर से उनके लिए जो पढ़ना-लिखना जानते हैं। मज़े से कटेगी। पढ़े-लिखे लोगों की दर वहाँ काफ़ी ऊँची है।"

मैं उसके साथ चलने को राज़ी हो गया। अरदालियोन खुशी से उछल पड़ा। बोला :

"तुमने तबीयत खुश कर दी। लेकिन सचमुच चल रहे हो न, कहीं मज़ाक तो नहीं कर रहे?"

ग्रिगोरी और प्योत्र के साथ उसके रवैये में एक तरह की

सहनशील उपेक्षा का भाव रहता, कुछ-कुछ वैसा ही जैसा कि बड़े लोगों में बच्चों की तरफ़ होता है। ओसिप से वह कहता :

"बातों के शेर! अपने दिमाग़ के हर फितूर को ताश के पत्तों की भांति एक-दूसरे के सामने फटकारते हैं। एक कहता है: देखो, कितने बढ़िया पत्ते हैं! दूसरा कहता है: लेकिन मेरे पत्ते देखोगे तो कलाबाज़ी खा जाओगे!"

"मुझे तो इसमें कोई बुराई नहीं मालूम होती," ओसिप रहस्यमय रूप में जवाब देता,—"शेखी बघारना मानव का स्वभाव है। कौन लड़की ऐसी है जो अपना सीना उभार कर नहीं चलना चाहती?"

लेकिन अरदालियोन इतने पर ही बस न करता। हृदय की खुजली मिटाते हुए कहता :

"उठते-बैठते, खाते-पीते, वे ख़ुदा की रट लगाते हैं; लेकिन एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ने और माया जोड़ने में इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।"

"ग्रिगोरी के पास तो मुझे कभी फूटी कौड़ी भी नज़र नहीं आती। माया वह कहाँ से जोड़ेगा?"

"मैं दूसरे की बात कर रहा हूँ। माया-मोह छोड़ कर इस बुढ़ापे में वह जंगल की शरण क्यों नहीं लेता जहाँ केवल वह होगा और उसका ख़ुदा, न किसी का झगड़ा न झंझट। सच कहता हूँ, मैं तो यहाँ की हर चीज़ से उकता गया हूँ। वसन्त आते ही साइबेरिया के लिए चल दूँगा!"

अन्य कारीगर ईर्ष्या की नज़र से अरदालियोन की ओर देखते। फिर कहते :

"तुम्हारे साले की भांति अगर हमारा भी वहाँ कोई खूंटा होता तो साइबेरिया क्या, हम जहन्नुम में भी पहुँच जाते!"

इसके बाद, एकाएक, अरदालियोन गायब हो गया। रविवार के दिन वह कारख़ाने से गया और तीन दिन तक कुछ पता नहीं चला कि वह कहाँ लोप गया, या उसका क्या हुआ।

उन्होंने भय और आशंका से भरी अटकलें लगानी शुरू कीं:

"कहीं किसीने मार तो नहीं डाला?"

"हो सकता है कि नदी में तैरते-तैरते डूब गया हो?"

अन्त में येफ़ीमुश्का आया और कुछ सकपकाता-सा बोला:

"अरदालियोन नशे में गड़गच्च पड़ा है।"

"यह झूठ है!" प्योत्र अविश्वास से चिल्लाया।

"नशे में गड़गच्च, बेसुध और बेख़बर। भुस में आग लगने पर जिस तेज़ी से चिंगारियाँ ऊपर उठती हैं, ठीक वैसे ही फुर्र हो गया। आँखें बंद कर शराब के प्याले में ऐसा कूदा, मानो उसकी बीवी मर गई हो और उसका ग़म ग़लत करने के लिए...।"

"उसकी बीवी क्या आज मरी है? उसे रंडुवा हुए तो एक मुद्दत हो गई। लेकिन वह है कहाँ?"

प्योत्र झुंझला कर उठा, अरदायिओन को उबारने के लिए चल दिया, और उसके हाथों ख़ूब पिट कर लौटा।

इसके बाद ओसिप ने होंठ भींचे, अपनी जेबों में हाथ डाल उन्हें तान लिया और बोला:

"मैं जाता हूँ, और ख़ुद अपनी आँखों से देख कर पता चलाता हूँ कि आख़िर मामला क्या है। ज़रूर कोई अनहोनी बात हुई है।"

मैं भी उसके साथ हो लिया।

"देखा तुमने, आदमी भी कितना अजीब जन्तु है," उसने रास्ते में कहा,—"अभी कल तक इतना भला था, कि क्या मजाल जो कोई उँगली भी उठा सके, बिल्कुल देवता की भांति। लेकिन

एकाएक जाने क्या बुखार चढ़ा कि दुम उठा कर कूड़े के ढेर में मुँह मारने लगा। अपनी आँखें खुली रखो, मक्सिमोविच, और जीवन से सबक लो।"

कुनाविनो की 'इन्द्रपुरी' में—टकियल बेसवाओं के काठ-बाज़ार में—हम पहुँचे। वहाँ एक खूसट स्त्री हमारे सामने आ खड़ी हुई जो देखने में चोट्टी मालूम होती थी। ओसिप ने उसके कान में कुछ फुसफुसा कर कहा और वह हमें एक छोटी-सी खाली कोठरी में ले गई। कोठरी में अंधेरा था और खूब गंदगी फैली थी। लगता था जैसे यहाँ जानवर बंधते हों। कोने में एक खटिया पड़ी थी जिसपर एक मोटी स्त्री नींद में ऐंड रही थी। बूढ़ी स्त्री उसे झंझोड़ते और कोहनियाते हुए बोली:

"निकल यहाँ से,—सुनती नहीं चुड़ैल, निकल यहाँ से!"

स्त्री घबरा कर उछल खड़ी हुई और आँखों को मलते हुए मिमियाई:

"हाय भगवान, यह क्या मुसीबत है? लोग दो घड़ी भी पलक नहीं झपकने देते!"

"खुफ़िया पुलिस वाले धावा बोल रहे हैं!" ओसिप ने गम्भीरता से कहा।

स्त्री, मुँह बाये, नौ-दो ग्यारह हो गई। ओसिप ने उसके पीछे घृणा से थूक की पिचकारी छोड़ी। फिर बोला:

"ये लोग शैतान का मुकाबिला कर सकती हैं, लेकिन खुफ़िया पुलिस का नहीं।"

दीवार पर एक छोटा-सा आईना लटका था। बुढ़िया ने उसे उतारा और छींटदार काग़ज़ का पर्दा उठाते हुए बोली:

"इधर देखो। क्या यही तो नहीं है?"

ओसिप ने 'खिड़की' में से देखा।

"हाँ, यही है। पहले उस लड़की को दफ़ा करो।"

मैंने झाँक कर देखा। यह कोठरी भी उतनी ही अंधेरी और गंदी थी जितनी कि यह जिसमें हम खड़े थे। खिड़की के दरवाज़े कस कर बंद थे और उसकी चौखट पर एक लैम्प जल रहा था। लैम्प के पास एक ऐंचीतानी नंगी तातार लड़की खड़ी थी। वह अपनी फटी हुई चोली में टाँके लगा रही थी। उसके पीछे दो तकियों पर अरदालियोन का सूजा हुआ चेहरा नज़र आ रहा था। उसकी काली और कड़े बालों वाली दाढ़ी बेतरतीबी से चौगिर्द बिखरी थी। आहट पाकर तातार लड़की चौकन्नी हो गई, अपनी चोली को खींच कर उसने ठीक किया, और बिस्तरे के पास से गुज़रते हुए एकाएक उस कोठरी में गई जहाँ हम खड़े थे।

ओसिप ने एक नज़र उसकी ओर देखा और फिर थूक की पिचकारी छोड़ी।

"पूह, बेशर्म कुतिया!"

"और तुम, — बूढ़े भगत!" खिलखिल करते हुए उसने जवाब दिया।

ओसिप भी कुछ हँसा और दूर से उँगली हिला कर उसे कोंचा।

हमने तातार लड़की के दड़बे में प्रवेश किया। बूढ़ा ओसिप अरदालियोन के पाँवों के पास जम गया और उसे चेताने के लिए देर तक उससे जूझता रहा। अरदालियोन रह-रह कर बड़बड़ाता:

"ओह क्या मुसीबत है... एक मिनट ठहरो, बस एक मिनट... अभी चलता हूँ...।

आख़िर वह उठा, वहशियाना आँखों से उसने ओसिप और मेरी ओर देखा और इसके बाद अपनी लाल अंगारा-सी आँखों को, जिनके पपोटे सूज आए थे बंद करते हुए बुदबुदाया:

"हाँ तो...।"

"तुम्हीं सुनाओ, तुम्हारे साथ क्या गुज़री?" ओसिप ने शान्त और रूखे, लेकिन शिकायत के भाव से मुक्त, स्वर में पूछा।

"दीन-दुनिया सब भूल गया," अरदालियोन ने बैठे हुए गले से खखार कर कहा।

"सो कैसे?"

"ख़ुद देख तो रहे हो।"

"तुम्हारा हुलिया तो काफ़ी बिगड़ा हुआ मालूम होता है।"

"मैं जानता हूँ...।"

अरदालियोन ने मेज़ से वोडका की एक कार्ग-खुली बोतल उठाई और उसे अपने गले में उँडेलना शुरू कर दिया। फिर ओसिप की ओर बोतल बढ़ाते हुए बोला:

"यह लो, तुम भी क्या कहोगे। और देखो, पेट में डालने के लिए भी उस रकाबी में कुछ होगा।"

बूढ़े ओसिप ने एक चुस्की ली, मुँह बिचकाते हुए तीखी वोडका को गले के नीचे उतारा और पाव रोटी का एक टुकड़ा लेकर उसे बड़े ध्यान से चबाने लगा। अरदालियोन लनतरानी के अन्दाज़ में कहे जा रहा था:

"यों हुआ... एक तातार लड़की के साथ उल्लू बन गया। यह सारी येफ़ीमुश्का की कारिस्तानी है। बोला, जवान लड़की है—कासीमोवो की रहने वाली—न उसके माँ है, न बाप, उसे मेले ले चलेंगे और...।"

दीवार की 'खिड़की' में से, टूटी-फूटी जुबान में, मुँहफट शब्द सुनाई दिए:

"तातार में जो मजा है वह और कहीं नहीं,—एकदम चूज़े की भांति। और यह बूढ़ा क्या तेरा बाप है जो यहाँ बैठा है। इसे निकाल बाहर कर!"

"यही वह लड़की है," चुंधी-सी आँखों से दीवार की ओर ताकते हुए अरदालियोन ने कहा।

"मैंने देखा है," ओसिप बोला।

फिर अरदालियोन मेरी ओर मुड़ा:

"देखो न भाई, मैंने अपनी क्या दुर्गत कर डाली है...।"

मेरा ख़याल था कि ओसिप अरदालियोन को ख़ूब झिड़केगा, या उसे लैक्चर पिलाएगा, और गुनाह पर तोबा करवाए बिना उसे नहीं छोड़ेगा। लेकिन उसने ऐसी कोई हरकत नहीं की। दोनों कंधे-से-कंधा सटाए लगे-बंधे अन्दाज़ में बातें करते रहे। उन्हें अंधेरे और गंदगी-भरे दड़बे में इस तरह बैठा देख मेरा जी भारी हो गया और मैं उदासी में डूबने-उतराने लगा। तातार लड़की अभी भी टूटी-फूटी जुबान में दीवार के पीछे से बक-झक रही थी। लेकिन उसकी आवाज़ उनपर कोई असर नहीं हो रहा था। ओसिप ने मेज़ पर से एक सूखी हुई मछली उठाई, अपने जूते से टकरा कर उसके अंजर-पंजर ढीले किए, और फिर उसके छिलके उतारने लगा।

"क्या तुम्हारे गाँठ में अब कुछ नहीं है?" उसने पूछा।

"प्योत्र को मैंने कुछ उधार दिया था। बस, वही अब बचा है।"

"तुम तोम्स्क जाने वाले थे न? अब कैसे जाओगे?"

"कह नहीं सकता। अभी कुछ निश्चित नहीं है।"

"क्यों, क्या इरादा बदल दिया?"

"बात यह है कि वे मेरे रिश्तेदार...।"

"क्या-आ-आ?"

"मेरी बहिन और उसका पति...।"

"तो इससे क्या हुआ?"

"नहीं, अपने रिश्तेदारों की चाकरी बजाने में कोई मज़ा नहीं है।"

"मालिक मालिक सब एक से, चाहे रिश्तेदार हों या ग़ैर रिश्ते-दार।"

"फिर भी...।"

वे इस हद तक घुल-मिल कर और गम्भीर भाव से बतिया रहे थे कि चिड़चिड़ाने और उन्हें चिढ़ाने में तातार लड़की को अब कोई तुक नहीं दिखाई दी और वह चुप हो गई। दबे पाँव वह कमरे में आई, खूंटी पर से चुपचाप उसने अपने कपड़े उतारे, और फिर गायब हो गई।

"लड़की जवान मालूम होती है," ओसिप ने कहा।

अरदालियोन ने उसकी ओर देखा और फिर सहज भाव से बोला:

"यह सब येफ़ीमुश्का की पसंद है। स्त्रियाँ ही उसका ओढ़ना और बिछौना हैं...वैसे यह तातार लड़की है मजेदार, खूब हँसमुख और बेतुकी बातों की पिटारी!"

"लेकिन ज़रा होशियार रहना, कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हें चेअपनी इस पिटारी में ही बंद करके रख ले!" ओसिप ने उसे चेताया और मच्छी का आख़िरी निवाला मुँह में रखने के बाद वहाँ से चल दिया।

लौटते समय मैंने उससे पूछा:

"आख़िर तुम आए किस लिए थे?"

"हाल-चाल देखने। वह मेरा पुराना मित्र है। एक-दो नहीं, इस तरह की अनेक घटनाएँ मैं देख चुका हूँ। आदमी भला-चंगा

जीवन बिताता है और फिर, एकाएक, इस तरह हवा हो जाता मानो जेल के सीखचे तोड़ कर भागा हो!" उसने अपनी पहली वाली बात को दोहराया और इसके बाद बोला: "तुम वोडका से दूर रहना।"

कुछ क्षण बाद उसकी आवाज़ फिर सुनाई दी:

"लेकिन इसके बिना जीवन सूना हो जाएगा।"

"वोडका के बिना?"

"हाँ, एक चुस्की लेते ही ऐसा मालूम होता है जैसे हम दूसरी दुनिया में पहुँच गए।"

और अरदालियोन पर वोडका और उस तातार लड़की का कुछ ऐसा रंग चढ़ा कि वह उबर कर न दिया। कई दिन बाद वह काम पर लौटा, लेकिन जल्दी ही वह फिर गायब हो गया और उसका कुछ पता नहीं चला। वसन्त में एकाएक उससे मेरी भेंट हो गई। कुछ अन्य आवारा लोगों के साथ वह एक बजरे के चौगिर्द जमा बर्फ़ काट रहा था। बड़े तपाक से हम मिले, एक-दूसरे को देख कर हमारे चेहरे खिल गए और चाय पीने के लिए एक कहवेखाने में हम पहुँचे।

"तुम्हें तो याद होगा कि मैं कितना बढ़िया कारीगर था," चाय की चुस्कियों के साथ उसने शेखी बघारना शुरू किया।—"इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मुझे अपने काम में कमाल हासिल था। अगर मैं चाहता तो वारे-न्यारे कर देता।"

"लेकिन तुम तो कोरे ही रहे।"

"हाँ, मैं कोरा ही रहा!" उसने गर्व से कहा।—"और यह इसलिए कि मैं किसी से बंध कर नहीं रह सकता—नहीं, अपने धंधे से भी नहीं!"

वह कुछ ऐसे ठाट से बोल रहा था कि कहवेखाने में बैठे कितने ही लोग उसकी ओर देखने लगे।

"चुप्पे चोर प्योत्र की बात तो तुम्हें याद है न? काम के बारे में वह कहा करता था: 'दूसरों के लिए ईंटों के पक्के घर, और अपने लिए फकत लकड़ी का एक ताबूत!' ऐसे धंधे के पीछे कोई क्यों जान दे!"

"प्योत्र तो रोगी आदमी है," मैंने कहा,—"मौत की बात सोच कर हर घड़ी काँपता रहता है।"

"रोगी तो मैं भी हूँ," वह चिल्ला कर बोला,—"मेरी आत्मा में घुन लगा है।"

रविवार के दिन शहरी चहल-पहल से दूर मैं 'लखपति बाज़ार' पहुँच जाता जहाँ भिख-मंगे और आवारा लोग रहते थे। मैंने देखा कि अरदालियोन तेज़ गति से नगर की इस तलछट का अंग बनता जा रहा है। एक साल पहले की ही तो बात है जब कि वह उछाह और उमंग से भरा एक समझदार कारीगर था। लेकिन अब उसने छिछले तौर-तरीके अपना लिए थे, झूमता और सब से टकराता हुआ चलता था, और आँखों में हर किसी को ठेंगे पर मारने तथा हर किसी से गुत्थमगुत्था होने का भाव खेलता रहता था।

"देखो न, लोग किस तरह कान लगा कर मेरी बातें सुनते हैं," वह शेखी बघारता।

जो भी वह कमाता, उसे अपने आवारा साथियों को खिलाने-पिलाने में उड़ा देता। जब वह किसी को जुवे हारता देखता तो आस्तीनें चढ़ा लेता और उसकी खातिर लड़ने-मरने को तैयार हो जाता। चिल्ला कर कहता:

"यह धोखा-धड़ी ठीक नहीं साथियो, तुम्हें ईमानदारी से काम लेना चाहिए!"

ईमानदारी की उसकी इस गुहार से उसके सभी संगी-साथी परिचित थे,—यहां तक कि उन्होंने उसका नाम 'ईमानदार' रख छोड़ा था। वह इस नाम को सुन कर बहुत खुश होता।

मैं इन लोगों को समझने की कोशिश करता जो ईंट-पत्थरों की इस खत्ती में—जर्जर और गंदे लखपति बाज़ार में—अटे पड़े थे। यहाँ जीवन की मुख्य धारा से छिटके हुए लोग बसते थे, और ऐसा मालूम होता मानो उन्होंने अपने जीवन की एक अलग धारा का निर्माण कर लिया था, एक ऐसी धारा का जो अपने-आप में स्वतंत्र थी और मौज-मज़े में छलछलाती हुई बहती थी। इन लोगों में साहस था, और स्वच्छन्दता थी। उन्हें देख कर मुझे नाना से सुनी वोल्गा के मल्लाहों की याद हो आती जिन्हें डाकू या साधु बनते देर नहीं लगती थी। जब उनके पास कोई काम-धंधा न होता तो वे बजरों और जहाजों पर हाथ साफ़ करते और जो भी छोटी-मोटी चीज़ हाथ लगती, उसे उड़ाने से न चूकते। उनकी यह हरकत मुझे ज़रा भी अटपटी या बुरी न मालूम होती। नित्य ही मैं देखता कि जीवन का सारा ताना-बाना ही चोरी के धागों से बुना है। लेकिन इसी के साथ-साथ मैं यह भी देखता कि कभी-कभी—जैसे आग लगने या नदी पर जमी बर्फ़ तोड़ने या लदाई का कोई फ़ौरी काम आ पड़ने पर—ये लोग भारी उत्साह से काम करते, अपनी जान तक की पर्वाह न कर आग की लपटों में कूद जाते, अपनी शक्ति का एक अणु-भर भी बचा कर न रखते। कुल मिला कर यह कि अन्य लोगों के मुक़ाबिले में ये कहीं ज़्यादा जिन्दादिली और मौजी जीव थे।

लेकिन जब ओसिप ने यह देखा कि मैं अरदालियोन से बहुत मिलता-जुलता हूँ तो उसने बुज़ुर्गों की भांति मुझे सीख देनी शुरू की :

"सुनो मेरे लड़के, क्या यह सच है कि आजकल तुम उन लखपतियों के पास ज़रूरत से ज़्यादा आते-जाते हो? मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि ज़रा अपने को बचाए रखना, ऐसा न हो कि तुम चौपट हो जाओ।"

मैंने उसे, जितना भी मुझसे हो सकता था, बताया कि ये लोग मुझे अच्छे लगते हैं—एकदम स्वच्छन्द और काम-धंधे की चिन्ता से मुक्त।

"हाँ, एकदम पक्षियों की भांति स्वच्छन्द!" उसने हंसते हुए बीच में ही टोका।—"यह इसलिए कि वे काहिल और निठल्ले हैं। उनके लिए काम करना मानो एक सज़ा है।"

"सज़ा नहीं तो क्या आनन्द की चीज़ है? पुरानी कहावत है: पसीने की कमाई से महल नहीं खड़े होते।"

इस कहावत को मैं इतनी बार सुन चुका था और इसमें मुझे कुछ इतनी सचाई मालूम होती थी कि बड़े चाव से मैं इसे दोहरा गया। लेकिन ओसिप इसे सुनकर भभक उठा और तेज़ी से चिल्लाया:

"इस तरह की बातें किसके मुंह से निकलती हैं? मूर्खों और कामचोरों के मुँह से। और तुम हो कि पिल्ले की भांति दुम हिलाते इस तरह की बातें रट लेते हो! इस तरह की बेतुकी बातें वही करते हैं जिनके हृदय में कीना होती है या जिन्हें जीवन में सफलता नहीं मिलती। उड़ने की कोशिश करने से पहले कुछ पर तो उग आने दो! और जहाँ तक 'लखपतियों' से तुम्हारी दोस्ती का सम्बंध है, उसके बारे में मैं तुम्हारे मालिक से कहूँगा, और इसका दोष खुद तुम्हारे ही सिर होगा।"

और उसने सचमुच मेरे मालिक से शिकायत की। मेरे मालिक ने—ओसिप भी उस समय मौजूद था—मुझ से कहा:

"लखपति बाज़ार के चक्कर लगाना बंद करो, पेश्कोव। वहाँ सब ऐसे ही लोग रहते बसते हैं — चोर-उचक्के और बेसवाएँ, और वहाँ जाने के बाद सीधे जेल या अस्पताल की हवा खानी पड़ती है। उनका पीछा छोड़ो!"

लखपति बाज़ार तो मैं अब भी जाता, लेकिन लुक-छिप कर। इसके कुछ ही समय बाद एक ऐसी घटना घटी जिससे मेरा वहाँ जाना बंद हो गया।

लखपति बाज़ार में एक बासा था जिसके अहाते में सायबान पड़ा था। एक दिन अरदालियोन, उसका साथी 'बच्चा' और मैं इस सायबान की छत पर चढ़े थे और बच्चा दोन नदी के किनारे स्थित नगर रोस्तोव से मास्को तक की अपनी पैदल यात्रा का मनोरंजक हाल सुना रहा था। वह भुतपूर्व सैनिक था, और इंजीनियरों की टुकड़ी में नियुक्त था। संत जार्ज पदक से वह विभूषित था और तुर्की के साथ युद्ध में उसका घुटना घायल हो गया था। इस चोट ने उसे जन्म-भर के लिए पंगु बना दिया था। नाटा और गठा हुआ उसका बदन था। उसके हाथ बहुत ही मज़बूत और शक्तिशाली थे, लेकिन उसका पंगु होना आड़े आता था और अपने हाथों की इस शक्ति का वह कोई उपयोग नहीं कर पाता था। किसी रोग की वजह से उसके सिर और दाढ़ी के बाल झड़ गए थे, और उसका सिर छोटे बच्चों के सिर की भांति साफ़ और चिकना बन गया था।

अपनी लाल आँखों को चमकाते हुए वह कह रहा था:

"इस तरह मैं सेरपुखोव पहुँचा। वहाँ एक पादरी पर मेरी नज़र पड़ी जो अपने घर के पिछवाड़े आँगन में बैठा था। मैं उसके पास पहुँचा और बोला: तुर्की युद्ध के इस वीर की कुछ मदद करो, बाबा...।"

अरदालियोन ने सिर हिलाया और बीच में ही बोल उठा:

"ओह, झूठों के सरदार...।"

"क्यों, इस में झूठ क्या है?" बच्चा ने, बुरा न मानते हुए, सहज भाव से पूछा। लेकिन अरदालियोन ने उसकी बात नहीं सुनी, और लनतरानी के अपने अन्दाज़ में बोला:

"तुम्हें ईमानदारी से काम लेना चाहिए। दुनिया में और भी तो लंगड़े हैं, या तुम अकेले ही लंगड़े हुए हो। उन सब की भांति तुम भी चौकीदारी-दरबानी का काम कर सकते थे। लेकिन नहीं, काम करने के बजाय तुम अपनी लंगड़ी टाँग लिए जाने कहाँ-कहाँ हाथ फैलाते और झूठ का तूमार बाँधते-घूमते हो।"

"यह सब तो मैं योंही मज़े में आकर करता हूँ—लोगों को हँसाने के लिए।"

"तुमको अपने पर हँसना चाहिये...।"

तभी अहाते में, जिसमें रुपहला मौसम होने के बावजूद अंधेरा था और खूब कूड़ा-कचरा फैला था, एक स्त्री आई और सिर से ऊपर अपना हाथ उठाकर कोई चीज़ हिलाते हुए चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी:

"लड़कियो, यह घाघरा बिकाऊ है। बोलो, कौन चाहता है।"

स्त्रियाँ अपने-अपने दड़बे में से रेंग कर बाहर निकल आईं, और घाघरा बेचनेवाली के चारों ओर जमा हो गईं। मैंने उसे तुरत पहचान लिया। यह नतालिया थी। छत से कूद कर मैं अभी नीचे पहुँचा ही था कि पहली बोली बोलनेवाली स्त्री के हाथ घाघरा बेच वह आँगन से बाहर निकलती दिखाई दी। मैं लपक कर आगे बढ़ा, और फाटक के बाहर उसके निकट पहुँचते हुए चिल्ला या:

"अरे, ज़रा सुनो तो!"

"क्यों क्या है?" कनखियों से देखते हुए वह बोली। फिर एकाएक ठिठक कर खड़ी हो गई, और नाराज़गी में भर कर चीख उठी :

"हाय भगवान, तुम यहाँ कैसे?"

उसके इस तरह चौंक कर चीख उठने ने मुझे बड़ा प्रभावित किया, और साथ ही एक अजीब परेशानी का भी मैंने अनुभव किया। उसके चेहरे की समझदारी से भरी रेखाओं में भय और अचरज के भाव साफ़ दिखाई देते थे। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि मुझे यहाँ, इस जगह में देख कर, वह आशंकित हो उठी है। मैंने तुरत सफ़ाई देनी शुरू की कि मैं यहाँ नहीं रहता, योंही कभी-कभी इधर चला आता हूँ।

"कभी-कभी चला आता हूँ!" उसने व्यंग से मेरी बात दोहराई और तीखे स्वर में बोली: "आख़िर किसलिए?...बोलो, राह-चलतों की जेब साफ़ करने के लिए या लड़कियों के जम्पर में हाथ डाल कर उनकी गुप्तनिधि की टोह लेने के लिए?"

उसका चेहरा मुरझा गया था, होठों की ताज़गी विदा हो चुकी थी, और आँखों के नीचे काले घेरे पड़े थे।

कहवेखाने के दरवाज़े पर वह रुकी और बोली :

"चलो, एक-एक गिलास चाय पी ली जाए। कपड़े तो तुम साफ़-सुथरे पहने हो, इस जगह में रहने वाले लोगों जैसे नहीं, फिर भी, जाने क्यों, तुम्हारी बात मानने को जी नहीं चाहता।"

कहवेखाने के भीतर पाँव रखते न रखते सन्देह और अविश्वास की वह दीवार मुझे ढहती मालूम हुई जो उसके हृदय में अनायास ही मेरे प्रति खड़ी हो गई थी। गिलास में चाय उँडेलने के बाद उसने कुछ बेरस और अनमने भाव से बताना शुरू किया कि मुश्किल

से एक घंटा पहले ही वह सो कर उठी थी, और यह कि उसके पेट में अभी तक कुछ भी नहीं पड़ा है।

"पिछली रात जब मैं सोने के लिए अपने बिस्तर पर गई तो पूरी मधुवा बनी हुई थी। लेकिन यह याद नहीं पड़ता कि मैंने कहाँ और किसके साथ पी।"

उसे देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ, और उसकी मौजूदगी में एक तरह की बेचैनी का मैं अनुभव करने लगा। उसकी लड़की का हाल जानने के लिए मैं बेहद उत्सुक था। चाय और वोडका से कुछ गरमाने के बाद उसने अपनी उसी सहज चपलता और ढंग से बोलना शुरू किया जो इस जगह में रहने वाली सभी स्त्रियों की खासियत थी। लेकिन जब मैंने उसकी लड़की के बारे में पूछा तो वह तुरत गम्भीर हो गई और बोली:

"तुम्हें उससे मतलब? लेकिन यह मैं बताए देती हूँ कि चाहे तुम ज़िन्दगी-भर एड़ियाँ रगड़ो, मेरी लड़की पर कभी डोरे नहीं डाल सकोगे,—समझे बचुवा!"

उसने एक और चुस्की ली, और फिर बोली:

"मेरी लड़की का अब मुझसे कोई वास्ता नहीं है, मेरी ओर आँख तक उठा कर नहीं देखती। और मेरी औकात भी क्या है? कपड़े धोने वाली, एक नीच धोबिन उस जैसी लड़की के लिए मैं भला कैसे माँ बन सकती हूँ? वह पढ़ी-लिखी और विद्वान है। और मेरे भाई, यह कोई मामूली बात नहीं है। सो उसने मुझे धता बताया और अपनी सहेली के पास चली गई। उसकी सहेली किसी बड़े घर की लड़की है, खूब पैसे वाली। मेरी लड़की उसके घर गवर्नरनी बन कर रहेगी।"

कुछ रुक कर उसने फिर धीमे स्वर में कहा:

"कपड़े धोने वाली धोबिन को कोई नहीं पूछता। हाँ चलती-फिरती बेसवा की लोगों को तलाश रहती मालूम होती है।"

उसने ऐसी बेसवा का धंधा अपना लिया है, यह मैं उसे देखते ही भांप गया था। इस बस्ती की सभी स्त्रियाँ यही धंधा करती थीं। लेकिन जब उसने खुद अपने मुँह से यह बात कही तो मेरे हृदय पर गहरा आघात लगा और मेरी आँखों में लज्जा तथा तरस के आँसू उमड़ आए। नतालिया के मुँह से उस नतालिया के मुंह से जो अभी पिछले दिनों तक एक साहसी, चतुर और अपने में आज़ाद स्त्री थी, यह सुन कर मैं स्तब्ध रह गया।

"मेरे नन्हे सैलानी," उसने एक लम्बी साँस भरी और एक नज़र मुझे देखते हुए बोली।—"यह बस्ती तुम्हारे लायक नहीं है। मेरी सलाह है,—मैं तुमसे विनती करती हूँ—भूल कर भी इस बस्ती में पाँव न रखना। नहीं तो यह तुम्हें चट कर जाएगी।"

इसके बाद मेज़ पर दोहरी होकर और अपनी उँगली से तश्तरी में रेखाएँ खींचते हुए, धीमे और असम्बद्ध स्वर में, मानों अपने-आप से ही वह कहने लगी:

"लेकिन मैं कौन होती हूँ तुम्हें सलाह देने वाली? जिस लड़की को मैंने अपनी छाती का दूध पिलाया, उसी ने जब मेरी एक नहीं सुनी तो तुम्हीं क्यों मानने लगे। मैं उससे कहती: 'अपनी सगी माँ को तुम धता नहीं बता सकती, नहीं, तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती।' लेकिन वह जवाब देती: 'मैं गले में फंदा डाल कर मर जाऊँगी।' वह नहीं मानी, और कज़ान चली गई। उसे नर्स बनने की धुन थी। वह तो खैर कज़ान चली गई, लेकिन मैं कहाँ जाती? मेरा जो हुआ, तुम्हारी आँखों के सामने है। सड़क पर मैं निकल आई, और राह चलते लोगों पर डोरे डालने लगी। उनके सिवा मेरा और कौन सहारा है?"

वह अब चुप बैठी थी, विचारों में खोई-सी। उसके होंठ हिल रहे थे, लेकिन कोई आवाज़ नहीं कर रहे थे। उसे किसी बात की सुध नहीं थी, मेरी भी नहीं जो उसके सामने बैठा था। उसके होठों के कोने झुक आए थे, और उसके मुँह की रेखा दूज के चाँद की भांति फैली थी, हंसिये जैसी गोलाई लिए। उसके हाथों में बल पड़ रहे थे, और उसके गालों की झुर्रियाँ थरथरा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो वे मूक भाषा में कुछ कह रही हों। देख कर मेरा हृदय कसमसा उठा। उसका चेहरा आहत् और बच्चों ऐसा भोलापन लिए था। बालों की एक लट शाल के नीचे निकल कर गाल पर उतर आई थी, और छल्ला-सा बनाती उसके नन्हे-मुन्ने कान के पीछे लौट गई थी। तभी आँख की कोर से ढुलक कर आँसू की एक बूंद ठंडी चाय के गिलास में आ गिरी। यह देख उसने गिलास दूर खिसका दिया, अपनी आँखों को कस कर भींचा और आँसू की बाकी दो बूंदें और निचोड़ते हुए शाल के छोर से उन्हें पोंछ लिया।

मेरा हृदय बुरी तरह उमड़-घुमड़ रहा था। मैं वहाँ और अधिक नहीं बैठा रह सका। चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा तो मैं अब...।"

"जाते हो? जाओ, तुम भी जहन्नुम में जाओ!" उसने कहा, और सिर उठाए बिना हाथ हिला-हिला कर मुझे दफ़ा करने लगी। शायद उसे अब यह भी सुध नहीं थी कि मैं कौन हूँ।

अरदालियोन की खोज में मैं फिर अहाते में लौट आया। उसके साथ तय हुआ था कि दोनों झींगा-मछली का शिकार करने चलेंगे। फिर मैं उसे नतालिया के बारे में भी बताना चाहता था। लेकिन वह और बच्चा दोनों छत पर नहीं थे। कूड़ा-कबाड़ छितरे अहाते में मैं उन्हें खोज ही रहा था कि तभी कुछ हल्ला-गुल्ला

सुनाई दिया। यहाँ के लोगों में, नित्य की भाँति, कोई झगड़ा उठ खड़ा हुआ था।

मैं लपक कर भागता हुआ फाटक के बाहर पहुँचा, और नतालिया से टकराते-टकराते बचा जो अंधों की भांति लुढ़कती-पुढ़कती पटरी पर चली आ रही थी। वह नाक से सुड़क रही थी और उसका चेहरा बुरी तरह नोंचा-खरोंचा हुआ था। एक हाथ में शाल का छोर थामे वह अपना चेहरा पोंछ रही थी, और दूसरे हाथ से अपने उलझे हुए बालों को पीछे की ओर खिसका रही थी। उसके पीछे-पीछे अरदालियोन और बच्चा चले आ रहे थे।

"अभी कसर रह गई," बच्चा चिल्ला कर कह रहा था, —"आओ, इसे थोड़ा मजा और चखा दें!"

अरदालियोन ने घूंसा ताना, और वह घूम गई। उसका चेहरा बल खा रहा था, और आँखों से घृणा की चिंगारियाँ निकल रही थीं। चिल्ला कर बोली:

"आओ, मारो मुझे!"

मैंने अरदालियोन का हाथ दबोच लिया। चकित नज़र से उसने मुझे देखा। बोला:

"क्यों, तुम्हारे सिर पर यह क्या भूत सवार हुआ?"

"इसे हाथ न लगाना," मैंने अस्फुट स्वर में कहा।

वह खिलखिला कर हँसा। बोला:

"क्या तुम इसपर लट्टू हो गए हो? ओह नतालिया, खुदा बचाए तेरे हरजाईपन से, तूने इस बाल-ब्रह्मचारी को भी अपने जाल में फंसा लिया!"

बच्चा भी फनफना कर खम ठोंक रहा था। दोनों ने मिल कर मुझे कोंचना और गालियाँ देना शुरू किया। नतालिया को मौका मिला, और वह खिसक गई। कुछ देर तक तो मैं उनकी गाली-गलौज

सुनता रहा। लेकिन जब बरदाश्त से बाहर हो गया तो बच्चा की छाती में मैंने इतने ज़ोर से सिर मारा कि वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मैं नौ-दो ग्यारह हो गया।

इसके बाद, एक लम्बे अर्से तक, मैंने लखपति बाज़ार का रुख नहीं किया। लेकिन अरदालियोन से मेरी एक बार फिर भेंट हो गई, इस बार एक डोंगे पर।

"कहो, क्या हाल है?" उसने प्रसन्न्ता से चिल्ला कर कहा। —"इतने दिनों तक कहाँ गायब रहे?"

मैंने उसे बताया कि जिस तरह उसने नतालिया को पीटा और मेरा अपमान किया, वह मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ और मेरा मन उससे फिर गया। यह सुन कर वह सहज प्रसन्नता से हँसा और बोला :

"क्या तुम समझते हो कि हम सचमुच में तुम्हारा अपमान करना चाहते थे? अरे नहीं, हम तो केवल तुम्हें चिढ़ा रहे थे। और जहाँ तक उसका सम्बंध है, उसे मारना क्या गुनाह है? एक टकियल हरजाई के लिए इतना दर्द क्यों? अगर इन्सान अपनी बीबी को पीट सकता है तो फिर उस जैसी छिनाल किस खेत की मूली है। लेकिन छोड़ो यह सब। हम तो केवल मज़ाक कर रहे थे। मार-पीट से कोई नहीं सुधरता, यह मैं भी खूब जानता हूँ।"

"लेकिन यह तो बताओ कि तुम उसका सुधार क्या करते? तुम खुद भी तो उससे अच्छे नहीं हो!"

उसने अपनी बाँह मेरे गले में डाल दी और चाव से मुझे झंझोड़ा।

"यही तो मुसीबत है," उसने सुड़कते हुए कहा,—"इस दुनिया में कोई किसी से अच्छा नहीं है। मेरे भी आँखें है, भाई, सभी कुछ मैं देखता हूँ। मुझे भीतर का भी सब हाल मालूम है, और बाहर का भी। मैं निरा कोल्हू का बैल नहीं हूँ।"

वह नशे की तरंग में था, और मेरी ओर प्रेमभरी सहनशीलता से देख रहा था। उसकी आँखों में कुछ वैसा ही भाव था जैसा कि किसी सहृदय शिक्षक की आँखों में अपने कूढ़-दिमाग़ शिष्य को पढ़ाते समय तैरता रहता है।

पावेल ओदिन्त्सोव से कभी-कभी मेरी मुलाक़ात हो जाती थी। हमेशा से ज़्यादा उछाह उसमें नज़र आता था, वह छैला बना घूमता था और बड़े-बूढ़े की तरह से मेरे साथ पेश आता। एक बार उसने शिक्षा-सी देते हुए कहा:

"मेरी समझ में नहीं आता तुमने वह धंधा कैसे पसंद किया? मेरी बात गाँठ बाँध लो कि उन दहकानों के साथ काम करके तुम्हारे पल्ले कभी कुछ नहीं पड़ेगा।"

इसके बाद उदास भाव से उसने वर्कशाप के समाचार सुनाए:

"जिखरेव अभी भी उस बुड़मुँही के चक्कर में फंसा है। सितानोव के हृदय में भी कोई घुन लग गया है,—वह अब ज़रूरत से ज़्यादा नशे में धुत्त रहता है। गोगोलेव को भेड़िये चट कर गए। युलेटाइड की छुट्टियों में वह घर गया था। वहाँ नशे में इतना उल्टांग हो गया कि भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए!"

अपनी इस कहानी पर पावेल ख़ूब खिलखिला कर हँसा, फिर कल्पना की रास ढीली छोड़ते हुए बोला:

"सच, भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए। लेकिन उसने इतनी पी रखी थी कि ख़ून की जगह उसकी नसों में शराब दौड़ रही थी। सो भेड़ियों को भी नशा हो गया और अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर सरकस के कुत्तों की भांति जंगल में नाचने तथा कुहराम मचाने लगे। वे इतने चीखे-चिल्लाए कि बेदम होकर गिर पड़े, और अगले दिन मरे हुए पाए गए!"

सुनता रहा। लेकिन जब बरदाश्त से बाहर हो गया तो बच्चा की छाती में मैंने इतने ज़ोर से सिर मारा कि वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मैं नौ-दो ग्यारह हो गया।

इसके बाद, एक लम्बे अर्से तक, मैंने लखपति बाज़ार का रुख नहीं किया। लेकिन अरदालियोन से मेरी एक बार फिर भेंट हो गई, इस बार एक डोंगे पर।

"कहो, क्या हाल है?" उसने प्रसन्न्ता से चिल्ला कर कहा। —"इतने दिनों तक कहाँ गायब रहे?"

मैंने उसे बताया कि जिस तरह उसने नतालिया को पीटा और मेरा अपमान किया, वह मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ और मेरा मन उससे फिर गया। यह सुन कर वह सहज प्रसन्नता से हँसा और बोला:

"क्या तुम समझते हो कि हम सचमुच में तुम्हारा अपमान करना चाहते थे? अरे नहीं, हम तो केवल तुम्हें चिढ़ा रहे थे। और जहाँ तक उसका सम्बंध है, उसे मारना क्या गुनाह है? एक टकियल हरजाई के लिए इतना दर्द क्यों? अगर इन्सान अपनी बीबी को पीट सकता है तो फिर उस जैसी छिनाल किस खेत की मूली है। लेकिन छोड़ो यह सब। हम तो केवल मज़ाक कर रहे थे। मार-पीट से कोई नहीं सुधरता, यह मैं भी खूब जानता हूँ।"

"लेकिन यह तो बताओ कि तुम उसका सुधार क्या करते? तुम खुद भी तो उससे अच्छे नहीं हो!"

उसने अपनी बाँह मेरे गले में डाल दी और चाव से मुझे झंझोड़ा।

"यही तो मुसीबत है," उसने सुड़कते हुए कहा,—"इस दुनिया में कोई किसी से अच्छा नहीं है। मेरे भी आँखें है, भाई, सभी कुछ मैं देखता हूँ। मुझे भीतर का भी सब हाल मालूम है, और बाहर का भी। मैं निरा कोल्हू का बैल नहीं हूँ।"

वह नशे की तरंग में था, और मेरी ओर प्रेमभरी सहनशीलता से देख रहा था। उसकी आँखों में कुछ वैसा ही भाव था जैसा कि किसी सहृदय शिक्षक की आँखों में अपने कूढ़-दिमाग़ शिष्य को पढ़ाते समय तैरता रहता है।

पावेल ओदिन्त्सोव से कभी-कभी मेरी मुलाक़ात हो जाती थी। हमेशा से ज़्यादा उछाह उसमें नज़र आता था, वह छैला बना घूमता था और बड़े-बूढ़े की तरह से मेरे साथ पेश आता। एक बार उसने शिक्षा-सी देते हुए कहा:

"मेरी समझ में नहीं आता तुमने वह धंधा कैसे पसंद किया? मेरी बात गाँठ बाँध लो कि उन दहकानों के साथ काम करके तुम्हारे पल्ले कभी कुछ नहीं पड़ेगा।"

इसके बाद उदास भाव से उसने वर्कशाप के समाचार सुनाए:

"जिखरेव अभी भी उस घुड़मुँही के चक्कर में फंसा है। सितानोव के हृदय में भी कोई घुन लग गया है,—वह अब ज़रूरत से ज़्यादा नशे में धुत्त रहता है। गोगोलेव को भेड़िये चट कर गए। युलेटाइड की छुट्टियों में वह घर गया था। वहाँ नशे में इतना उल्टांग हो गया कि भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए!"

अपनी इस कहानी पर पावेल ख़ूब खिलखिला कर हँसा, फिर कल्पना की रास ढीली छोड़ते हुए बोला:

"सच, भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए। लेकिन उसने इतनी पी रखी थी कि ख़ून की जगह उसकी नसों में शराब दौड़ रही थी। सो भेड़ियों को भी नशा हो गया और अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर सरकस के कुत्तों की भांति जंगल में नाचने तथा कुहराम मचाने लगे। वे इतने चीखे-चिल्लाए कि बेदम होकर गिर पड़े, और अगले दिन मरे हुए पाए गए!"

उसकी यह लनतरानी सुन कर मुझसे भी हँसे बिना न रहा गया, लेकिन मेरी यह हँसी उदासी में डूबी थी। उसकी बातों से साफ़ मालूम होता था और मुझे यह अनुभव करते देर नहीं लगी कि वर्कशाप पर और उससे सम्बद्ध मेरी सभी स्मृतियों पर अतीत का आवरण पड़ गया है, सदा के लिए वे मुझसे विदा हो गई हैं! और यह, निश्चय ही, उदासी का संचार करने वाली बात थी।

१६

जाड़ों के दिन थे। मेले के मैदान का काम क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुका था। मैं अब घर पर ही रहता था और काम का वही पुराना चक्कर फिर शुरू हो गया था। दिन-भर मैं उसी में फंसा रहता, लेकिन साँझ तक काम से छुट्टी मिल जाती। इसके बाद सारा घर जमा हो कर बैठता और मैं उन्हें, पहले की भांति, हृदय पर पत्थर रख, "नीवा" और "मास्को पत्रिका" में छपे टकियल उपन्यास पढ़ कर सुनाता। रात को मैं अच्छी पुस्तकें पढ़ता, और तुकबन्दियाँ जोड़ने की कोशिश करता।

एक दिन मेरी मालकिनें गिरजा गई हुई थीं। मेरे मालिक की तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए वह घर पर ही था। मुझे देख कर बोला:

"वीक्तर अक्सर मज़ाक उड़ाया करता है कि तुम कविताएँ लिखते हो,—क्या यह सच है, पेश्कोव? कुछ सुनाओ न? देखें तुमने क्या लिखा है!"

मुझसे इन्कार करते नहीं बना, और मैंने उसे अपनी कुछ कविताएँ सुनाईं। ऐसा मालूम होता था कि उसे कविताएँ पसंद नहीं आईं। लेकिन उसने कहा:

"ठीक है, ठीक है, लिखे जाओ। कौन जाने, लिखते-लिखते एक दिन तुम भी दूसरे पुश्किन बन जाओ। कभी पढ़ी हैं पुश्किन की कविताएँ? क्या देखा कभी—

डायनों को रचाते ब्याह
और भुतनों को मरते!

उसके ज़माने में लोग डायनों और भुतनों में विश्वास करते थे। लेकिन वह खुद भी विश्वास करता था, यह मैं नहीं मानता,—उसने ऐसे ही मज़ाक में ये पंक्तियाँ लिखी होंगी!"

इसके बाद, कुछ गुनगुनाती-सी मुद्रा में, उसने कहना शुरू किया:

"सच कहता हूँ, भाई, तुम्हारी शिक्षा का कोई बाक़ायदा प्रबंध होना चाहिए था। लेकिन अब तो बहुत देर हो गई। शैतान ही जानता है कि इस दुनिया में तुम्हारा क्या बनेगा? अपनी इस कापी को स्त्रियों से छिपा कर रखना। अगर उनकी नज़र पड़ गई तो तुम्हें चिढ़ाना और कोंचना शुरू कर देंगी। स्त्रियों को इसमें मज़ा मिलता है,—सच भाई, वे रस ले-लेकर मर्म-स्थल को कुरेदती हैं।"

इधर कुछ दिनों से मेरे मालिक का बोलना कम हो गया था, और वह सोच में डूबा रहता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद नज़र बचा कर वह इधर-उधर देखता, और दरवाज़े की घंटी की आवाज़ सुन कर हर बार चौंक उठता। कभी-कभी चिड़-चिड़ेपन का एक भूत-सा उसके दिमाग़ पर सवार हो जाता, ज़रा-ज़रा सी बात पर वह बौखला उठता, हर किसी पर चिल्लाता, अन्त में घर से गायब हो जाता और गई रात नशे में धुत्त होकर लौटता। साफ़ मालूम होता कि उसके हृदय पर कोई भारी बोझ रखा है, किसी ऐसी चीज़ से वह

त्रस्त है जिसे सिवा उसके और कोई नहीं जानता, और जिसने उसकी आत्मा को इस हद तक खण्डित कर दिया है कि उसका अपने में विश्वास नहीं रहा है, जीवन में उसकी दिलचस्पी ख़त्म हो गई है लेकिन फिर भी निरे अभ्यासवश जिये जा रहा है।

रविवार के दिन, दोपहर के खाने के बाद, मैं घूमने के लिए निकल जाता। रात के नौ बजे तक मैं घूमता और इसके बाद याम्स्काया स्ट्रीट के कहवाख़ाने में पहुँच जाता। कहवाख़ाने का मालिक एक गावदुम आदमी था जिसके बदन से हर घड़ी पसीना चूता रहता था। गानों का उसे बेहद शौक था। नतीजा इसका यह कि वोडका, बीयर और चाय के लालच में आस-पास के सभी गिरजों के गायकों का यहाँ जमघट लगा रहता। वे गाने सुनाते और बदले में वह उनके गलों को तर कर देता। गिरजों के ये गायक बहुत ही बेमज़ा और नशे पर जान देने वाले जीव थे। वे गाते क्या थे, मानो बेगार काटते थे, सो भी उस समय जब उन्हें वोडका का लालच दिया जाता था। तिस पर मज़ा यह कि वे हमेशा गिरजे के गीत ही गाते, यों अपवाद की दूसरी है। भगत किस्म के पियक्कड़ इसका विरोध करते। कहते कि कहाँ कहवाख़ाने और कहाँ गिरजे के गीत। नहीं, ये यहाँ नहीं चलेंगे! अन्त में कहवाख़ाने का मालिक उन्हें अपने निजी कमरे में बुला लेता, और वहाँ बैठ कर उनका गाना सुनता। दरवाज़े से कान सटा कर खड़े होने पर ही अब मैं उनकी आवाज़ सुन पाता। लेकिन अक्सर देहात के कारीगरों और दहकानों के भी गाने होते। कहवाख़ाने का मालिक उनकी खोज में रहता, और आसपास की सभी जगहों को छान डालता। हाट-बाज़ार के दिन देहातों से जो किसान आते, उनमें अगर कोई गायक होते तो वह उनका पता लगाता, और कहवाख़ाने में उन्हें बुलाता।

गायक को वह हमेशा उस जगह बैठाता जहाँ शराब बिकती थी। ठीक वोडका के गोल पीपे के सामने एक स्टूल पर गायक का आसन जमता। पीपे की तलहती गोल चौखटे का काम देती और ऐसा मालूम होता मानों गायक का सिर उसमें जड़ा हो।

क्लेश्चोव नामक नाटा ज़ीनसाज़ गायकों में सबसे अच्छा था। उसे एक से एक बढ़िया गाने याद थे। उसके बदन में मांस नहीं था, चमड़ी ही चमड़ी थी जिस पर लाल बालों की घनी झाड़ियाँ उगी हुई थीं। मसका और रौंदा हुआ-सा चुरमुरा चेहरा, लाश की भांति पथराई हुई चिकनी नाक और छोटी-छोटी सपनीली आँखें जो मानो उसके कोटरों में थिर जड़ी हुई थीं।

कभी-कभी वह अपनी आँखों को मूंद लेता, सिर वोडका के गोल पीपे की तलहटी पर टिका लेता, लम्बी साँस खींचकर अपनी धौंकनी में हवा भरता और धीमी लेकिन जादूभरी आवाज़ में गाना शुरू करता :

धुंध का पड़ा था पर्दा मैदानों-खेतों पर
न आता था नजर पथ कहीं . . .

इसके बाद वह खड़ा हो जाता, 'बार' के तख़्ते पर अपनी कोहनी टिका लेता और छत की ओर देखता हुआ भावोन्मेष में गाता :

छा जाती वह धुंध फिर मेरे दिमाग़ पर
सूझता न पथ, जाऊँ कैसे पिया के घर

उसकी आवाज़ ऊँची नहीं थी। धीमे और कभी न रीते होने वाले स्वरों में वह गाता। एक रुपहला तार प्रवाहित होता और कहवाख़ाने की अस्पष्ट तथा धुंधली भनभनाहट को बींधता हुआ चारों ओर फैल जाता, और गीत के उदास शब्दों तथा सुबकियाँ

भरे स्वरों के जादू से कोई भी अछूता न बचता। वे लोग भी जो नशे में सब से ज़्यादा हड़कम्प मचाते होते, एकाएक इतने गम्भीर हो जाते कि देख कर अचरज होता। वे एकटक, बिना पलक झपकाए, सामने मेज़ की ओर देखते रहते। मैं भी उमड़ता-घुमड़ता, हृदय की गहराइयों से भावों का एक सशक्त बगूला सा उठता और ऐसा मालूम होता कि बाँध तोड़ कर मुझे भी वह अपने साथ खींच ले जाएगा। उत्कृष्ट संगीत के स्वर जब आत्मा की गहराइयों को छूते हैं, तब हृदय इसी तरह शक्तिशाली भावों से छलछलाने और उमड़ने-घुमड़ने लगता है।

कहवाखाने में गिरजे जैसी निस्तब्धता छा जाती और गायक नेक हृदय पादरी की भांति मालूम होता। वह किसी धर्मग्रंथ का अंश पढ़कर नहीं सुनाता, बल्कि अपने रोम-रोम से समूची मानव-जाति के लिए प्रार्थना करता, निरीह मानव-जीवन की समूची वेदना को वाणी प्रदान करता। और हर ओर से, कहवाख़ाने के हर कोने से, बड़ी-बड़ी दाढ़ीवाले लोग उसे देखते रहते, जंगली जन्तुओं जैसे उनके चेहरों में बच्चों-ऐसी आँखें टिमटिमाती रहतीं। बीच-बीच में किसी के गहरी साँस भरने की आवाज़ आती और गीत के प्रभावशाली स्वरों के साथ घुल-मिल कर एकाकार हो जाती । उन क्षणों में मुझे ऐसा अनुभव होता मानो सभी लोग झूठे और कृत्रिम जीवन के जंजाल में फंसे हैं जबकि सच्चा जीवन यहाँ, इस कहवाख़ाने के भीतर हिलोरें ले रहा है!

दूर एक कोने में कचौरी-सा मुँह लिए बेलगाम और बेशर्मी की हद तक मनमौजी लिसूखा बैठी थी। मांसल कंधों के बीच अपना सिर दुबकाए वह रो रही थी और आँसू उसकी सपाट आँखों से ढुरक कर चुपचाप बह रहे थे। कुछ ही दूर एक मेज़ पर गिरजे का गम्भीर गायक मित्रोपोलस्की पसरा हुआ-सा बैठा था। भारी-

भरकम देव-ऐसा डील-डौल, गहरी और गूंजदार आवाज़, जिसकी थाह का कोई पता नहीं चलता था, सूजे हुए चेहरे में भट्टा-सी बड़ी-बड़ी आँखें,—उसके बदन पर अगर लबादा और होता तो वह अच्छा-खासा पादरी मालूम होता। उसके सामने मेज़ पर वोडका का गिलास रखा था। गिलास पर वह एक नज़र डालता, हाथ बढ़ा कर उसे उठाता, होठों तक ले जाता और फिर, सावधानी से, बिना कोई आवाज़ किए, जाने किस आवेश में अछूता ही उसे मेज़ पर रख देता।

और कहवाखाने में जितने भी लोग थे, सब के सब निश्चल बैठे रहते। ऐसा मालूम होता मानो वे सुदूर अतीत में खोई कोई रागिनी सुन रहे हों, मानो उनके हृदय की सब से प्रिय और सब से घनिष्ठ वस्तु उनकी आँखों के सामने आ मौजूद हुई हो।

गीत खत्म करने के बाद क्लेश्चोव निरीह भाव से अपने स्टूल पर ढह जाता, और कहवाखाने का मालिक वोडका से छलछलाता गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए संतोष भरी मुस्कराहट के साथ कहता :

"भई वाह, कमाल कर दिया, हालांकि तुम्हारा गीत, गीत न होकर एक अच्छी-खासी गाथा थी। लेकिन सच तो यह है कि तुम इस कला के मास्टर हो, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता!"

बिना किसी उतावली के, सहज भाव से, क्लेश्चोव वोडका का गिलास खाली कर देता, खखार कर अपना गला साफ़ करता और कहता :

"गाने को तो वे सभी गा सकते हैं जिनके पास गला है, लेकिन गीत की आत्मा को व्यक्त करने की कला केवल मैं ही जानता हूँ।"

"बस-बस, अब इतनी शेखी न बघारो!"

"अपने मुँह पर मोहर वह लगाए जिसके पास शेखी बघारने के लिए कुछ न हो!" बिना किसी परेशानी के, स्वर में कुछ ढीटपन का भाव लिए, गायक कहता।

कहवाख़ाने का मालिक खीज उठता। झुंझला कर कहता:

"क्यों, अपने को तुम बहुत ऊंचा समझते हो, क्लेश्चोव?"

"जितनी ऊँची मेरी आत्मा है, बस उतना ही। उससे ज़्यादा ऊँचा मैं नहीं जा सकता।"

तभी कोने में बैठा मित्रोपोलस्की गरज उठता:

"लोगो, तुम्हारी आत्मा मर गई है, तुम धरती पर रेंगने वाले कीड़े हो! अगर ऐसा न होता तो तुम इस घिनौने और कुटिल फरिश्ते के गाने पर कभी इस तरह सिर न धुनते!"

वह हमेशा अपने सींग ताने रहता। वह हर किसी से टकराता, उनके दोष निकालता और लड़ता-झगड़ता। नतीजा इसका यह कि वह हर रविवार को, करीब-करीब बिला नागा, गायकों के या अन्य किसी के हाथों मार खाता। वह ज़बान चलाता और लोगों में से जिसका भी हाथ चलता या जो भी ऐसा करना चाहता, सहज ही उसकी मरम्मत कर देता।

कहवाख़ाने का मालिक क्लेश्चोव के गीतों पर तो जान देता था, लेकिन खुद क्लेश्चोव से नफ़रत करता था। वह हर किसी से उसकी शिकायत करता और, प्रत्यक्षतः, उसे नीचा दिखाने या उसका मज़ाक उड़ाने के तौर-तरीकों की टोह में रहता कहवाख़ाने में आनेवाले सभी लोग, जिनमें खुद क्लेश्चोव भी शामिल था, उसकी इस हरकत से परिचित थे।

"माना कि वह अच्छा गायक है, लेकिन उसका दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। ज़रूरी है कि उसे थोड़ी धरती की खुशबू सुंघा दी जाए!" कहवाख़ाने का मालिक अपनी राय ज़ाहिर करता।

कुछ लोग उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते:

"सच कहते हो। है वह कुछ नकचढ़ा आदमी!"

कहवाख़ाने का मालिक और भी बल देता:

"समझ में नहीं आता कि वह इतना घमंड किस बात पर करता है। उसकी आवाज़ अच्छी है, लेकिन वह ख़ुदा की देन है, उसकी अपनी घरेलू ईजाद नहीं। और सच पूछो तो उसकी आवाज़ कुछ इतनी बढ़िया भी नहीं है!"

"ठीक बात है। उसकी आवाज़ में इतना दम नहीं है जितना कि उसे इस्तेमाल करने के उसके ढंग में!" स्वर-में-स्वर मिलाने वाले कहते।

एक दिन अपना गीत ख़त्म करने के बाद जब गायक कहवाख़ाने से चला गया तो मालिक ने लिसूखा पर ज़ोर डालना शुरू किया:

"क्लेश्चोव पर तुम्हीं अपना हाथ आज़मा कर देखो, मारिया येवदोकिमोवना,—बस, थोड़ी देर के लिए उसको उल्लू बना दो। क्यों, बनाओगी न? तुम्हारे लिए तो यह बाएँ हाथ का खेल है!"

"सो तो ठीक है। लेकिन इसके लिए किसी जवान औरत को पकड़ो तो अच्छा हो। मैं तो अब बुढ़ा चली!" उसने हँसते हुए कहा।

"जवान औरतों की बात छोड़ो!" उसने ज़ोर दिया।—"यह काम सिवा तुम्हारे और कोई नहीं कर सकता। सच, बड़ा मज़ा आएगा जब वह तुम्हारे तलुवे चाटता दिखाई देगा। बस, एक बार डोरे डालने की ज़रूरत है। फिर देखना, तुम्हारे प्रेम में पग कर वह कितने बढ़िया गीत गाता है। एक बार जरूर कोशिश करो, येवदोकिमोवना! मैं तुम्हारा अहसान मानूंगा कि तुमने मेरी बात रख ली!"

लेकिन उसने इन्कार कर दिया। वह बैठी रही—अपने बेहिसाब मोटापे में फूली, पलकों को झुकाए और अपनी शाल के फुन्दनों से खेल करती। उचाट मन से बोली:

"तुम्हें अब किसी जवान लड़की को यहाँ रखना चाहिए। अगर मैं जवान होती तो चाहे जिसकी नाक पकड़ कर घुमा देती!"

कहवाख़ाने के मालिक ने बारहा इस बात की कोशिश की कि क्लेश्चोव नशे में उल्टा हो जाए, और सब उसका मज़ाक बनाएँ। लेकिन वह था कि दो-तीन गीत गाने और हर गीत के बाद वोडका की परत चढ़ाने के बाद जतन से अपने गले में बुना हुआ रूमाल बाँधता, उलझे हुए बालों पर अपनी टोपी जमाता और कहवाख़ाने से चल देता।

कहवाख़ाने का मालिक क्लेश्चोव को पछाड़ने के लिए बहुधा किसी न किसी गायक का पता लगाता और मुकाबिले की महफ़िल जमाने का मौक़ा खोजता। ठीक उस समय जब क्लेश्चोव अपना गाना ख़त्म कर चुका होता और सब उसकी सराहना करते होते, अपने कौतुक को दबाते हुए वह क्लेश्चोव से कहता:

"सुनो भाई, आज रात एक अन्य गायक यहाँ आएगा। तुम भी चले आना—देखो, भूलना नहीं, ज़रूर आने की कृपा करना!"

कभी-कभी नये गायक की आवाज़ अच्छी होती, लेकिन जिस सादगी और तन्मयता से क्लेश्चोव गाता था, वह अन्य किसी में नहीं दिखाई देती। कहवाख़ाने के मालिक को भी, हार कर, यह बात स्वीकार करनी पड़ती। हृदय को मसोसते हुए नये गायक से वह कहता:

"इस में शक नहीं कि तुमने अच्छा गाया, तुम्हारी आवाज़ भी अच्छी है, लेकिन हृदय की धड़कन का जहाँ तक सवाल...।"

सब खिलखिला कर हँसते और कहवाखाने के मालिक की आवाज़ उनकी हँसी में डूब जाती।

"मालूम होता है कि यह जीनसाज़ किसी से मात नहीं खाएगा!"

क्लेश्चोव की लाल भौंहें थिरकती रहतीं। कनखियों से सब पर एक नज़र डालता और कहवाखाने के मालिक से अविचलित किन्तु नम्र स्वर में कहता :

"चाहे तुम कितनी कोशिश करो, मेरी जोड़ का गायक नहीं पा सकते। कारण कि मेरी प्रतिभा खुदा की देन है।"

"लेकिन इससे क्या, हम सब भी तो खुदा की देन हैं!"

"कह दिया मैंने, मेरी जोड़ का गायक तुम कभी नहीं पा सकोगे, चाहे तुम अपनी दुकान के सारे पीपे उँडेल कर वोडका की नदी ही क्यों न बहा दो।"

कहवाखाने के मालिक के चेहरे पर पानी सा फिर गया। मन-ही-मन बुदबुदाया :

"ज़रूरत होगी तो यह भी किया जाएगा। हमें भी देखना है, तुम्हारे सिर पर से कब तक पानी नहीं उतरता।"

क्लेश्चोव चुप नहीं होता। उसी निश्चल अन्दाज़ में कहता :

"गाना मुर्गों का दंगल नहीं है, यह तुम्हें मालूम होना चाहिए!"

"बस रहने दो। मुझे ज़्यादा सबक न पढ़ाओ।"

"मैं किसी को सबक नहीं पढ़ाता। मैं तो केवल तुम्हें बता रहा हूँ कि गीत आत्मा की चीज़ है।"

"छोड़ो यह सब। इससे कहीं अच्छा है कि कोई गीत सुनाओ।"

"गाने के लिए मैं कभी मना नहीं करता,—सपने तक में तैयार रहता हूँ।" क्लेश्चोव सहमति प्रकट करता, और हल्की-सी खखार लेकर गाना शुरू कर देता।

कहवाख़ाने का समूचा ओछापन, शब्दों और इरादों की समूची काई, वह सब कुछ जो छिछला और गंदगी में डूबा था, धुएँ की भांति अद्भुत ढंग से गायब हो जाता और एक सर्वथा भिन्न प्रकार के जीवन की ताज़गी कहवाख़ाने में छा जाती। ऐसा मालूम होता मानो हम सब एक नये जीवन में—अधिक निर्मल, अधिक विचारशील और प्रेम तथा संवेदन से पूर्ण जीवन में, साँस ले रहे हों।

मैं उसपर रश्क करता। मेरा रोम-रोम उसकी प्रतिभा और लोगों को अपने साथ बहा ले जाने वाली उसकी शक्ति को ललचाई हुई नज़रों से देखता और कुड़मुड़ाता। और अपनी इस शक्ति से कितने अद्भुत ढंग से वह काम लेता था। इस ज़ीनसाज़ के निकट पहुँचने और खूब घुल-मिल कर देर तक उससे बातें करने के लिए मेरा जी बुरी तरह ललका उठता। लेकिन उसकी पीली आँखों में कुछ ऐसा अजनबीपन था कि मैं उसके निकट जाने का साहस न बटोर पाता। उसकी नज़र, ऐसा मालूम होता, मानो किसी को नहीं देखती। इसके सिवा उसके समूचे अन्दाज़ में कुछ ऐसा घिनौनापन था कि मैं अचकचा कर रह जाता, हालांकि मैं उसे केवल गाने के समय ही नहीं बल्कि बाद में भी पसंद करना चाहता था। बहुत ही भोंडे ढंग से , बूढ़े आदमी की भांति, वह अपनी टोपी को आगे की ओर खींच लेता और गले के चारों ओर बड़े ही औघड़ ढंग से लाल रंग का बुना रूमाल लपेटते हुए कहता:

"यह रूमाल मेरी गुलाबी ने मेरे लिए बुना है। तुम उसे देखो तो दंग रह जाओ,—इतनी सुन्दर है वह।"

जब वह गाता नहीं होता तो लोटन कबूतर की भांति गर्व से अपने को फुला लेता, पाला-काटी अपनी नाक को रगड़ता और बेमन से, इक्के-दुक्के शब्दों में सवालों के जवाब देकर कन्नी-सी

काटता। एक दिन मैं उसके पास ही बैठा था। मैंने उससे कुछ पूछा। उसने मेरी ओर देखा तक नहीं, और बोला:

"कान न खाओ, लड़के!"

मित्रोपोलस्की मुझे ज़्यादा अच्छा लगता। वह कहवाख़ाने में आता और सिर पर भारी बोझ लदे आदमी की भांति आड़े-तिर्छे डग रखता कोने में पहुँच जाता। ठोकर मार कर वह एक कुर्सी खिसकाता और धम्म से उसपर बैठ जाता। अपनी कोहनियों को वह मेज़ पर टिका लेता, और उसका भालू ऐसा भारी-भरकम चेह-रा हथेलियों पर टिक जाता। वह मुँह से एक शब्द न निकालता और वोडका के दो या तीन गिलास चढ़ा कर इतने ज़ोरों से चट-ख़ारे लेता कि सब उसकी ओर देखने लगते। पलट कर वह भी उद्धत नज़र से उन्हें घूरता—ठोड़ी हथेलियों पर टिकी हुई, तमत-माए हुए गाल,और सिर की उलझी हुई लटें, घने अयाल की भांति, निहायत बेतर्तीबी से चेहरे पर छाई हुई।

एकाएक वह चीख उठता:

"इस तरह क्यों मेरी ओर घूर रहे हो? क्या दिखाई दे रहा है तुम्हें?"

"हमें एक भुतना दिखाई दे रहा!" कभी-कभी वे जवाब देते।

कई बार ऐसा होता कि वह गुमसुम आता, गुमसुम बैठ कर वोडका गिलास खाली करता और अपने भारी पाँवों को घसीटते हुए गुमसुम ही चला जाता। लेकिन अनेक बार उसकी आवाज़ से कहवा-ख़ाना गूँज उठता और वह, मसीहा के अन्दाज़ में, लोगों पर कहर बरपा करता:

"मैं प्रभु का सेवक हूँ—सच्चा और कभी न भ्रष्ट होने वा-ला सेवक, और इस नाते पुराने ज़माने के धर्मगुरुओं की भांति मैं तुम्हें शाप देता हूँ। नाश हो इस माया नगरी का जिसमें चोर-उचक्के

और कुटिल लोग घिनौनी लालसा के कुण्ड में किलबिलाते हैं। नाश हो इस धरती रूपी पोत का जो गुनाह और पाप का बोझ लादे ब्रह्माण्ड-सागर में तैर रहा है! क्या है वह गुनाह और पाप? वह गुनाह और पाप तुम हो,—तुम हो जो नशे में डूबे रहते हो, खाने की चीज़ों पर कुत्तों की भांति टूटते हो,—हाँ तुम, इस धरती की तलछट और मोरी के कीड़ो, तुम! अन्तहीन संख्या है, लेकिन तो भी, अरे अभिशप्तो, यह धरती तुम्हारे अवशेषों को ठुकरा देगी!"

उसकी आवाज़ इतने ज़ोरों से गूँजती कि खिड़कियों के शीशे तक झनझनाने लगते। यह देखकर उसके श्रोता खूब खुश होते, और उसकी तारीफ़ के खूब पुल बाँधते।

"बूढ़े शैतान के दमखम तो देखो!"

उससे जान-पहचान करना आसान था। बस, उसके गले को तर करने की ज़रूरत थी। बैठते ही वह वोडका से भरे मग और लाल मिर्च के साथ कलेजी का आर्डर देता। ये चीज़ें उसे पसंद थीं, और गला फाड़ने तथा पेट की आँतें उलट-पुलट करने का मेहनताना इन्हीं चीज़ों के रूप में वह वसूल करता था। जब मैंने उससे पूछा कि कौनसी पुस्तकें मुझे पढ़नी चाहिए तो उसने चाबुक-सा फटकारते हुए तुरत उत्तर दिया:

"फिज़ूल की बात न करो।"

यह सुन कर मैं स्तब्ध रह गया। उसने जब यह देखा तो कुछ मुलायम पड़ा और बुदबुदाते हुए बोला:

"कभी धर्मग्रंथ पढ़े हैं?"

"हाँ।"

"बस उन्हें ही पढ़ो। उनके बाद और कुछ पढ़ने की ज़रूरत नहीं। दुनिया का समूचा ज्ञान उनमें भरा है, दिक्कत केवल यह है

कि तुम उसे अपने दिमाग़ के चौखटे में नहीं समा सकते। एक तुम्हारे ही क्यों, वह किसी के भी चौखटे में नहीं समा सकता। लेकिन यह तो बताओ कि तुम करते क्या हो,—क्या तुम भी गायक हो?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं? तुम्हें गायक बनना चाहिए। इससे बढ़कर चुगद धंधा दूसरा नहीं मिलेगा।"

बराबर की मेज़ से किसी ने कहा:

"तब तुम क्या हुए,—तुम भी तो गायक हो न?"

"मैं?—मैं लोफर हूं। लेकिन तुम से मतलब?"

"कुछ नहीं।"

"वही तो। हर कोई जानता है कि तुम्हारा भेजा घास चरने गया है,—और देख लेना सदा घास ही चरता रहेगा।"

वह हरेक से—और निश्चय ही मुझसे भी—इसी अन्दाज़ में बातें करता, यह बात दूसरी है कि दो-तीन बार खिलाने-पिलाने के बाद मेरे प्रति उसका रवैया कुछ मुलायम पड़ गया था, यहाँ तक कि एक दिन कुछ अचरज में भरकर कहने लगा:

"जब भी मैं तुम्हें देखता हूँ तो यह जानने की तबियत होती है कि तुम कौन हो, क्या हो, और क्यों हो? यों चाहे तुम जहन्नुम में जाओ, मेरी बला से!"

क्लेश्चोव के बारे में मैं उसकी सच्ची राय मालूम करना चाहता था, लेकिन सफल नहीं हो सका। उसका गाना वह मुग्ध भाव से सुनता था। उसकी यह प्रसन्नता छिपी न रहती, और कभी-कभी तो मुग्ध मुसकराहट के रूप उसके चेहरे पर खेलने लगती। लेकिन उससे रब्त-ज़ब्त बढ़ाने की वह कभी कोशिश न करता, और भद्दे तथा घृणा से भरे अन्दाज़ में उसका ज़िक्र करता:

" वह मुंह-मटकना है। माना कि वह अपने गीतों में जान डालना जानता है और जो कुछ गाता है उसे समझता है, लेकिन इससे उसके गधा होने में कोई फ़र्क नहीं पड़ता!"

"क्यों?"

"इसलिए कि उसने जन्म ही इस रूप में लिया है।"

मेरा मन करता कि उससे उस समय बातें की जाएँ जब कि वह नशे में न हो। लेकिन ऐसे क्षणों में वह केवल कांख-कूंख कर रह जाता, और धुंध छाई अपनी निरीह आँखों से इधर-उधर देखता। किसी ने मुझे बताया था कि यह आदमी जो अब अपने जीवन के शेष दिनों को नशे में डुबाए था, कभी कज़ान विश्वविद्यालय में पढ़ता था और मुमकिन था कि पादरी बन जाता। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और इसे एक मनगढ़न्त कहानी समझकर ठुकरा दिया। लेकिन एक दिन उससे बातें करते समय मैंने कहीं बिशप क्रिसन्फ़ का ज़िक्र कर दिया। सुनते ही मित्रोपोलस्की ने अपना सिर हिलाया और बोला:

"क्रिसन्फ़?—अरे, उसे तो मैं जानता हूँ। वह मेरा शिक्षक और संरक्षक था। उन दिनों मैं कज़ान में था,—विश्वविद्यालय में। मुझे अच्छी तरह याद है। क्रिसन्फ़ का अर्थ है 'सुनहरा फूल'। पामवा बेरिन्दा ने झूठ नहीं लिखा था। तुम्हारा वह क्रिसन्फ़ सचमुच में सुनहरा था!"

"और पामवा बेरिन्दा कौन था?" मैंने उससे पूछा।

लेकिन मित्रोपोलस्की ने कन्नी काटी। बोला:

"यह सब तुम्हें जानने की ज़रूरत नहीं।"

घर लौटने पर मैंने अपनी नोटबुक निकाली और उसमें लिखा: "पामवा बेरिन्दा,—उसे ज़रूर पढ़ना है।" जाने क्यों, मेरे मन में

यह बात समा गई कि पामवा बेरिन्दा में मुझे उन सब सवालों के जवाब मिल जाएंगे जो मेरे हृदय को मथ रहे थे।

अफलातूनी नामों का प्रयोग करने तथा असाधारण शब्दों का जोड़-तोड़ बैठाने का उसे चस्का था। मैं सुनता और उलझकर रह जाता।

"जीवन अनीसिया नहीं है," वह कहता।

"यह अनीसिया क्या बला है?" मैं पूछता।

"यह एक एनीडोन है," वह जवाब देता और मुझे उलझन में पड़ा देख मन-ही-मन प्रसन्न होता।

उसके इस तरह के शब्दों को जब मैं सुनता और इसके साथ-साथ जब मैं यह सोचता कि वह कज़ान विश्वविद्यालय में अध्ययन कर चुका है, तो मुझपर उसका पूरा रौब छा जाता और ऐसा मालूम होता कि उसके पास ज्ञान का खज़ाना भरा है। मैं इस खज़ाने की कुंजी पाना चाहता, लेकिन वह इतने अनमने और रहस्यमय ढंग से बातें करता कि मैं खीज उठता। शायद मैं कच्चा था, और यह नहीं जानता था कि किस तरह उस तक पहुँचना चाहिए।

जो भी हो, मेरा हृदय उसकी छाप से अछूता नहीं बचा। नशे के अद्भुत जोश और मसीहा के अन्दाज़ में जब वह मानव-जाति को फटकारता और दबंग स्वर में अभिशाप देता तो मैं उसे देखता ही रह जाता।

"ओह, इस धरती की गंदगी और सड़ांध!" वह दहाड़ना शुरू करता।—"जहाँ कुटिल मौज करते हैं और नेक धूल चाटते हैं! जल्दी ही कयामत का दिन आएगा और तब तुम्हें कहीं शरण नहीं मिलेगी, कहीं शरण नहीं मिलेगी!"

गहरी निराशा से वह चीखता और मेरी आँखों के सामने "वाह भई खूब" और कपड़े धोने वाली स्त्री नतालिया का चित्र मूर्त

हो उठता जिनका रोम-रोम चोटों बिंधा था और जिन्हें अपने उबरने की कोई सूरत नज़र नहीं आती थी। साथ ही मुझे रानी मारगोट की भी याद आती जिसके चारों ओर कुत्सा के बगूले उड़ते थे। इतनी कम उम्र में ही क्या कुछ था जो मैंने नहीं देखा था...।

इस आदमी के साथ मेरी संक्षिप्त जान-पहचान का अन्त भी कुछ अजीब ढंग से हुआ।

वसन्त के दिन थे। सैनिकों की छावनी के पास खेतों की ओर मैं निकल गया था। वहीं उससे मेरी भेंट हो गई। अपने-आप में खूब भरमाया और फूला हुआ, ऊंट की भांति गरदन हिलाता, वह अकेला चला आ रहा था।

"क्या टहलने निकले हो?" उसने बैठे हुए गले से पूछा।— "चलो, एक से दो तो हुए। मैं भी घूमने निकला हूँ। सच कहता हूँ भाई, मैं रोगी आदमी हूँ,—मेरे हृदय में घुन लगा है।"

कुछ देर तक हम चुपचाप चलते रहे। सहसा एक गढ़े की तलहटी में एक आदमी पर नज़र पड़ी। वह गढ़े की दीवार से टिका दोहरा हो गया था, और उसके कोट का कालर ऊँचा उठ कर उसके एक कान को ढंके था। ऐसा मालूम होता था मानो उसने अपना कोट उतारने की कोशिश की हो।

"मुझे तो नशे में बेसुध मालूम होता है," गायक ने उसे देखने के लिए ठिठकते हुए कहा।

लेकिन कुछ ही दूर नयी उगी घास पर एक रिवाल्वर, उस आदमी की टोपी, और वोडका की एक आधी खाली बोतल पड़ी थी। घास के बीच केवल उसकी गरदन दिखाई दे रही थी। आदमी का चेहरा कोट के कालर में इस तरह छिपा था मानो वह शर्म से गड़ा जा रहा हो।

कुछ क्षण तक हम चुपचाप खड़े रहे। एक शब्द भी हमारे मुँह

से नहीं निकला। फिर, अपनी टाँगों को चौड़ा करके धरती पर जमाते हुए, मित्रोपोलस्की ने कहा:

"गोली मार ली है!"

मैंने तुरत ही भांप लिया था कि यह आदमी नशे में बेसुध न हो कर मरा हुआ है। लेकिन यह इतना अप्रत्याशित था कि अपने इस विचार को मैंने टिकने नहीं दिया। उसकी खोपड़ी काफ़ी बड़ी और चिकनी थी, और उसका एक कान जो नीला पड़ गया था, कोट के कालर के भीतर से झांक रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसे देखते समय न तो मैंने किसी तरह के भय का अनुभव किया, और न तरस का। मेरे लिए यह कल्पना तक करना कठिन था कि कोई ऐसा आदमी भी हो सकता है जो वसन्ती सांझ के इन सुहावने क्षणों में अपनी जान लेना चाहे!

मित्रोपोलस्की ने अपने बाल-बढ़े गालों को इस तरह तेज़ी से रगड़ा मानो वे ठंडा गए हों। फिर फुंकार सी छोड़ते हुए बोला:

"सठिया गया है। ज़रूर इसकी बीवी इसे छोड़ कर भाग गई होगी, या फिर धन-सम्बंधी मुसीबतों में फंस गया होगा!"

पुलिस को सूचना देने के लिए उसने मुझे तो नगर भेज दिया, और खुद गढ़े के किनारे बैठ गया। उसने अपनी टाँगें नीचे गढ़े में लटका लीं और अपने झिनझिने कोट को कंधों के इर्द-गिर्द कस कर खींच लिया। पुलिस को आत्महत्या की सूचना देने के बाद मैं लपक कर वापिस आ गया। तब तक गायक उस मरे हुए आदमी की बाकी बची हुई वोडका खत्म कर चुका था। मुझे देखते ही उसने वोडका की खाली बोतल हवा में हिलायी।

"इस कम्बख्त ने ही उसकी जान ली।" उसने चिल्ला कर कहा, और बोतल को इतने ज़ोरों से ज़मीन पर पटका कि वह चूर-चूर हो गई।

मेरे साथ-ही-साथ एक पुलिसमैन भी लपकता-झपकता आ गया। उसने गढ़े में झाँक कर देखा, अपने सिर से टोपी उतार कर मृतक के प्रति सम्मान प्रकट किया और अचकचाते हुए क्रास का चिन्ह बनाया। फिर गायक की ओर मुड़कर बोला:

"तुम कौन हो?"

"मैं कोई भी हूं, तुमसे मतलब?"

पुलिसमैन ने रुक कर कुछ सोचा, और फिर ज़रा विनम्र स्वर में बोला:

"एक आदमी यहाँ मरा हुआ पड़ा है, और दूसरा नशे में धुत है,—इसे तुम क्या कहोगे?"

"बीस साल हो गए मुझे वोडका पर न्योछावर हुए!" सीने पर हाथ मारते हुए उसने गर्व से कहा।

ऐसा मालूम होता था कि वोडका पीने के अपराध में वे निश्चय ही उसके हाथों में हथकड़ी डाल देंगे। नगर से कुछ और लोग भी वहाँ लपक आए थे। एक घोड़ा गाड़ी में पुलिस अफसर भी आ गया। वह गढ़े में उतरा और मृत आदमी का कोट हटा कर उसका चेहरा देखने लगा।

"इसे सबसे पहले किसने देखा था?"

"मैंने," मित्रोपोलस्की ने जवाब दिया।

पुलिस अफसर ने एक नज़र फेंक कर उसकी ओर देखा और फिर एकाएक, कंपा देनेवाले अन्दाज़ में बोला:

"वाह भई वाह, बहुत खुशी हुई तुम से मिल कर।"

तमाशा देखने वाले भी घिर आए। बीस-पच्चीस से कम न होंगे। वे हाँफ रहे थे और उनके हृदयों में उथल-पुथल मची थी। किनारे पर घेरा बनाए गढ़े में झाँक रहे थे। तभी किसी ने चि-ल्लाकर कहा:

"अरे, यह तो हमारे ही मोहल्ले का क्लर्क है। मैं इसे जानता हूँ।"

मित्रोपोलस्की पुलिसमैन के सामने खड़ा उचक रहा था, तू-तड़ाक में उलझा था और भर्राई हुई आवाज़ में चिल्ला रहा था। अफ़सर ने उसके सीने पर ऐसा आघात किया कि वह लहरा कर ज़मीन पर बैठ गया। पहले वाले पुलिसमैन ने, बिना किसी उतावली के, एक रस्सा निकाला और गायक के हाथ बाँध दिए जिन्हें उसने, बिना किसी विरोध के, कमर के पीछे कर लिया था। अफ़सर ने अब भीड़ की ओर रुख किया और चिल्ला कर बोला:

"यहाँ क्या तुम्हारी अम्माँ का नाच हो रहा है? भाग जाओ यहाँ से!"

इसी बीच पानी चूती लाल आँखों वाला एक और पुलिसमैन हाँफता और साँस लेने के लिए मुँह बाए भागता हुआ आया। उसने रस्से के छोरों को, जिससे गायक के हाथ कमर के पीछे बंधे थे, पकड़ा और उसे चुपचाप नगर की ओर ले चला।

पूर्णतया त्रस्त और खिन्न मैं भी वहाँ से चल दिया। मेरा बुरा हाल था और मेरे दिमाग़ में, हृदय को झनझना देने वाली कौवे की कड़ी चीख की भांति, ये शब्द रह-रह कर गूँज रहे थे:

"नाश हो इस माया नगरी का जिसमें चोर-उचक्के और कुटिल जन...।"

और उदासी से भरा वह चित्र भी मेरी कल्पना में जमकर बैठ गया जब कि पुलिसमैन ने, बिना किसी उतावली के, अपनी जेब से रस्सा निकाला और कहर बरपा करने वाले मसीहा ने भालू की भाँति बालदार अपने लाल हाथों को बिना किसी विरोध के चुपचाप इस तरह कमर के पीछे कर लिया मानो उसके लिए यह कोई नयी बात न हो, मानो इस क्रिया को हज़ारवीं बार वह दोहरा रहा हो...।

बाद में मुझे पता चला कि मसीहा को जलावतन कर दिया गया, और इसके बाद ज़्यादा दिन न बीते होंगे कि क्लेश्चोव भी गायब हो गया। कोई पैसेवाली स्त्री उसके हाथ लग गई, उससे उसने शादी की और देहात में जाकर रहने लगा जहाँ उसने ज़ीनसाज़ी की अपनी एक दुकान खोल ली।

लेकिन उसके जाने से पहले मेरे मालिक ने जिसके सामने ज़ीनसाज़ के गाने की मैं अक्सर तारीफ़ किया करता था, एक दिन मुझसे कहा:

"उसका गाना सुनने मैं भी कहवाख़ाने चलूँगा।"

और एक दिन हम दोनों कहवाख़ाने पहुंचे। वह मेज़ के दूसरी ओर, ठीक मेरे सामने, बैठा था। उसकी आँखें बरबट्टा-सी खुली थीं और भौंहें अचरज में कमान बनी थीं।

कहवाख़ाने आते समय, रास्ते-भर वह मुझे चिढ़ाता और कोंचता रहा, और कहवाख़ाने में पाँव रखने के बाद भी वह मेरा, वहाँ मौजूद दूसरे लोगों का और दमघोट गंध का मज़ाक उड़ाता रहा। ज़ीनसाज़ के गाना शुरू करते ही उसके चेहरे पर खिसियानी सी मुसकराहट खेल गई और वह अपने गिलास में बीयर उँडेलने लगा। अभी गिलास आधा भरा होगा कि वह बीच में ही रुक गया और बोला:

"ऊँह... कम्बख़्त जादूगर मालूम होता है!"

हौले से, और काँपते हाथ से उसने बोतल मेज़ पर वापिस रख दी और गाना सुनने में रम गया।

जब क्लेश्चोव अपना पहला गीत ख़त्म कर चुका तो बोला:

"तुम सच कहते थे भाई। कम्बख़्त गाने में जान डालना जानता है। देखो न, मेरा हृदय भी अभी तक धक-धक कर रहा है!"

जीनसाज़ ने एक बार फिर अपना सिर पीछे की ओर फेंका, आँखें उठा कर छत पर टिका दीं और गाना शुरू कर दिया:

देख कर धनियों के पट बंद
चली वह खेतों में मतिमंद

"सच, यह गाने में जान डालना जानता है," मेरे मालिक ने लघु हँसी हँसते और अपना सिर हिलाते हुए कहा।

और क्लेश्चोव बांसुरी बना हुआ, गा रहा था:

आर्द्र स्वरों में अनजाने से बोली नयन उघार,
मुझ अनाथ बेघर अबला से कौन करेगा प्यार!

"गाना क्या है, जादू बिखेरता है," नशे से लाल अपनी आँखों को मिचमिचाते हुए मेरा मालिक फुसफुसाया, "सच कहता हूँ, कम्बख़्त जादूगर है, जादूगर!"

मेरी आँखें उसपर टिकी थीं और मेरा हृदय खुशी से छल-छला रहा था। गीत के उदास बोल गूँज और विजयी अन्दाज़ में सभी पर छा रहे थे। उनके सामने कहवाख़ाने की अन्य सभी आवाज़ें मुरझा गई थीं और उनका आवेग हर घड़ी अधिक सशक्त अधिक सुन्दर अधिक जानदार बनता जा रहा था।

इस पूरी बस्ती में मेरा कोई न संगी न साथी,
सभी मनायें हँसी-खुशी, मैं अपने पर पछताती,
भला किसी को कैसे मेरा रूप खींच कर लायेगा,
फटे-पुराने चिथड़े मेरे, कौन मुझे अपनायेगा!
कोई अधबूढ़ा रँडुआ ही मुझे ब्याह ले जायेगा,
लेकिन यह दिन इस जीवन में कभी न आने पायेगा!

मेरा मालिक , बिना किसी झिझक या लाज के, रो रहा था। उसका सिर झुका था, नाक ज़ोरों से सुड़क रही थी और आँसू टपाटप आँखों से ढुरक कर घुटनों पर गिर रहे थे।

तीसरे गीत के ख़त्म होते न होते मालिक का हृदय बुरी तरह उमड़ने-घुमड़ने लगा। बोला :

"नहीं भाई, मैं अब यहाँ नहीं बैठ सकता। मेरा तो दम घुटता है। हवा का यहाँ नाम नहीं, और यहाँ की यह कम्बख़्त गंध,—चलो, घर चलें!"

लेकिन बाहर सड़क पर आते ही उसकी तबीयत ने पलटा खाया। बोला :

"शैतान उठा ले जाए इन सब को! चलो पेश्कोव, किसी होटल में चल कर कुछ पेट में डाल लें। घर जाने को जी नहीं चाहता!"

किराये के लिए कोई हील-हुज्जत किए बिना ही वह एक बर्फ़-गाड़ी में बैठ गया और जब तक होटल न आ गया, उसी तरह गुमसुम बैठा रहा। होटल में कोने की एक मेज़ उसने चुनी और कुर्सी पर बैठते ही धीमे स्वर में उसने तुरत बोलना शुरू कर दिया। रह-रहकर वह अपने चारों ओर देखता जाता था और ऐसा मालूम होता था मानो कोई गहरा घाव फिर से हरा हो गया हो।

"उस बूढ़ी बकरी ने मुझे बुरी तरह पंक्चर कर दिया,—सारी हवा ही निकाल डाली और मुझे मनहूसियत के अंधे गढ़े में डाल दिया। सुनो, तुम दुनिया-भर की चीज़ें पढ़ते और ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाते हो। तुम्हीं बताओ कि यह कैसे हुआ? कितना लम्बा जीवन बिताया है मैंने,—एक के बाद एक, पूरे चालीस साल मैंने पार किए हैं। मैं हूँ, मेरी बीवी है, और बच्चे हैं, फिर भी मैं अकेला हूँ,—इस दुनिया में ऐसा एक भी जीव नहीं है जिससे मैं खुल कर बातें कर सकूँ। जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब जी चाहता

है कि किसी के सामने अपना हृदय उँडेल कर रख दूँ,—जो मन में है, वह सब का सब कह डालूं,—लेकिन कहाँ, कौन है जिसके सामने हृदय उँडेला जाए, मन की एक-एक बात कही जाए? अगर उससे—अपनी बीवी से—कहूँ तो उसके कुछ पल्ले नहीं पड़ता, उसकी कुछ समझ में नहीं आता। और उसे समझने की गरज भी क्या है? उसके अपने बच्चे हैं, घर है, दुनिया-भर का खटराग है। मेरी आत्मा से उसकी पटरी नहीं बैठती। बीवी तभी तक तुम्हारी मित्र होती है जब तक पहला बच्चा जन्म नहीं लेता...समझे भाई, जीवन का कुछ ऐसा ही मामला है। तिस पर मेरी पत्नी,—अब तुमसे क्या कहूँ, तुम खुद अपनी आँखों से देख सकते हो...न ओढ़ने के काम आए, न बिछाने के...माँस का अच्छा-खासा दूह है, कम्बख़्त! आह भाई, यह मेरा ही गुर्दा है जो उसका बोझ संभाले हूँ।"

यंत्रवत उसने गिलास उठाया और ठंडी तथा कडुवी बीयर चुपचाप गले के नीचे उतार गया। फिर, कुछ देर, वह अपने लम्बे बालों को इधर-उधर करता रहा और अन्त में बोला:

"समझे भाई, मैं तो लोगों को—कुल मिला कर—हरामी कुत्ता समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम उन दहकानों से खूब बातें करते हो—कभी इस चीज़ के बारे में और कभी उस चीज़ के... लेकिन मैं उन्हें खूब पहचानता और जानता हूँ कि वे कितने गिरे हुए हैं, किस बुरी तरह उनका पतन हो गया है। मेरी बात एकदम सच है, भाई, एकदम सच। वे सब के सब चोर हैं। और क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी बातों का उनपर कोई असर होता होगा? बिल्कुल नहीं। प्योत्र और ओसिप को लो,—एक दम कमीने और गए बीते! वे रोज मेरे पास आते हैं और तुम्हारी एक-एक बात मुझे बता जाते हैं,—वे सब बातें भी जो तुम मेरे बारे में कहते हो। अब तुम्हीं बताओ, ऐसे लोगों के बारे में तुम क्या कहोगे?"

उसकी यह बात सुन कर मैं इतना सकपका गया कि मुझसे कोई जवाब देते न बना।

"देखा तुमने!" मेरे मालिक ने हल्की हँसी के साथ कहा।—"तुम्हारा फ़ारस जाने का वह इरादा कुछ बुरा नहीं था। कम से कम इतना तो होता ही कि लोग क्या कहते हैं, इसका तुम्हें पता न चलता। उनकी जुबान दूसरी है जो तुम्हारी समझ में न आती। हमारी अपनी जुबान में तो सिवाय गंदगी और कुत्सा के और कुछ सुनाई नहीं देता!"

"क्या ओसिप मेरी सभी बातें तुम्हें बता देता है?" मैंने पूछा।

"बिल्कुल। क्या तुम्हें अचरज होता है? चुगली खाने में वह सब से बढ़ा-चढ़ा है। समझे भाई, वह लोमड़ी से भी ज़्यादा काइयाँ है। यह धोखा है, पेश्कोव, निरा धोखा। तुम लोगों का सुधार करना चाहते हो, लेकिन तुम्हारी बातों का कोई असर नहीं होता। तुम सत्य की दुहाई देते हो। लेकिन सत्य सुनता कौन है? उनके सामने सत्य का राग अलापना ऐसा ही है जैसे शरद में बर्फ़,—जो दलदल में गिरती और पिघलती रहती है। सिवा इसके कि वह दलदल में वृद्धि करे, उससे और कोई लाभ नहीं होता। तुम्हारी भलाई इसी में है अपनी जुबान की लगाम ढीली न होने दो।"

बीयर का एक गिलास ख़त्म होता कि वह दूसरा मंगाता, फिर तीसरा, और फिर चौथा। गिलासों के साथ-साथ उसके शब्दों की रफ़्तार और तीखापन बढ़ता जाता, लेकिन नशे का कोई चिन्ह न दिखाई देता।

"कहावत है: जो बोलता नहीं, वह खोता नहीं और बात मुँह से निकली नहीं कि पराई हुई नहीं। सच भाई, यह जीवन भी कितना सूना और उदास है। उसका वह गीत कितनी सचाई से भरा था:'इस पूरी बस्ती में मेरा कोई न संगी न साथी'...।"

चौकन्ना-सा होकर उसने अपने इधर-उधर देखा और फिर आवाज़ को धीमी करते हुए बोला:

"सच भाई, अधिक दिन नहीं हुए जब मुझे एक मनचीती चिड़िया दिखाई दी थी। वह एक स्त्री थी—विधवा—मतलब यह कि उसके पति को जालसाज़ी के अपराध में साइबेरिया जलावतन करने की सज़ा दी गई थी। वह अभी भी यहाँ की जेल में बंद है। हाँ, तो उसकी पत्नी से मेरी जान-पहचान हो गई। पैसे के नाम उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। सो उसने निश्चय किया... बस, अपने आप समझ जाओ...जोड़े मिलवाने वाली एक बुढ़िया मुझे उसके पास ले गई। मैंने उसे एक नज़र देखा,—बहुत ही प्यारी चीज़ थी, जवान और खूब सुन्दर,—उसके रोम-रोम से सच्चा सौन्दर्य फूटा पड़ता था। सो मैंने उसके यहाँ के चक्कर लगाने शुरू किए,—एक बार, दो बार, तीन बार,—और इसके बाद एक दिन मैंने उससे बातें कीं। तुम अजब पहेली हो,—मैं बोला,—तुम्हारा पति जेल में पड़ा है और तुम सीधा और काँटों-भरा रास्ता न अपना कर गुलछर्रे उड़ा रही हो। और अगर तुम्हें यही करना है तो फिर उसके साथ साइबेरिया जाने की तुम्हारी धुन के क्या मानी है?—देखा तुमने, अपने पति के साथ वह खुद साइबेरिया जाने का भी जोड़-तोड़ बैठा रही थी। आखिर उसने मुँह खोला। जैसी भी वह है,—उसने कहा,—मेरे लिए बहुत है, क्योंकि मैं उससे प्यार करती हूँ। कौन जाने मेरे लिए ही यह मुसीबत मोल ली हो, और उसके लिए ही मैं तुम्हारे साथ इस तरह चटक-मटक रही हूँ। वह कुछ रुकी और फिर बोली: उसे धन की ज़रूरत है। वह भला आदमी है, ऊँचे समाज में उसने जन्म लिया है और वैसा ही जीवन बिताने का वह आदी है। अगर मैं अकेली होती,—वह बोली,—तो कभी अपने दामन में दाग न लगाती। तुम भी भले आदमी हो और मुझे

अच्छे भी लगते हो, — वह बोली, — लेकिन इस बात का आगे कभी ज़िक्र न करना... ओह, शैतान उठा ले जाए उसे... मेरे पास जो कुछ था, उसके हवाले कर दिया। और कुछ नहीं तो अस्सी से भी ऊपर रूबल ज़रूर होंगे। मैंने सब उसके सामने रख दिए। मुझे माफ़ करना, — मेरे मुँह से निकला, — अब तक जो हुआ सो हुआ, आगे मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकूँगा — अगर मैं आया भी तो मेरी आत्मा मुझे चैन नहीं लेने देगी। यह कह कर मैं चला आया, और बस...।"

उसके बाद वह कुछ देर रुक गया और इतनी ही देर में नशा उस पर हावी हो गया। ऐसा मालूम होता था मानो वह एक बारगी ही ढह जाएगा। उसने बुदबुदाना शुरू किया:

"मैं कोई छै बार उसके पास गया... उसके बदन में कुछ ऐसा चुम्बक था कि तुम कल्पना नहीं कर सकते। इसके बाद, अगर मैं गलती नहीं करता तो मैंने उसके घर के छै चक्कर और लगाए होंगे, लेकिन भीतर पाँव रखने का साहस नहीं कर सका। ऐसा मालूम होता जैसे किसी ने पाँव में बेड़ियाँ डाल दी हों। अब वह यहाँ नहीं है...।"

उसने मेज़ पर अपने हाथ रख लिये और उँगलियों से तबला-सा बजाने लगा।

"सच, भगवान से मेरी अब यही बिनती है कि फिर कभी उसका सामना न करना पड़े," उसने फुसफुसा कर कहा, — "मुझमें इतना साहस नहीं है कि उसकी आँखों की ताब ला सकूँ। लगता है, जैसे सभी कुछ ढेर हो जाएगा, मेरा कुछ भी बाकी नहीं बचेगा। लेकिन चलो, अब घर चलें...।"

हम बाहर निकल आए। उसके पाँव डगमगा रहे थे, और वह बुदबुदा रहा था:

"देखा भाई तुमने...।"

उसने जो कुछ बताया, उससे मुझे अचरज नहीं हुआ। इधर कुछ दिनों से मैं खुद यह अनुभव कर रहा था कि उसके साथ ज़रूर कोई असाधारण घटना घटी है जिसकी वजह से वह परेशान और खोया-खोया-सा रहता है।

लेकिन जीवन के बारे में उसके विचारों से, और खासतौर से ओसिप के बारे में उसने जो बताया था, उससे मेरा जी भारी हो गया और गहरी उदासी ने मुझे घेर लिया।

२०

जीवन की चहल-पहल से शून्य उस मुर्दा नगर में, खाली इमारतों और दूकानों की पाँतों के बीच, तीन गर्मियाँ बीत गईं और मैं मज़दूरों की निगरानी, उनकी ओवरसीयरी का, काम करता रहा। मेले के बाद प्रत्येक शरद में वे बदनुमा पक्की दुकानों को ढहा देते और मेले से पहले प्रत्येक वसन्त में वे उन्हें फिर खड़ा करते। तीन साल तक यही सिलसिला चला।

मालिक मुझे पाँच रूबल महीना देता और उनके बदले में मेरी जान तक निचोड़ने की ताक में रहता। जब किसी दुकान में नया फ़र्श बिछाना होता तो मुझे फ़र्श की करीब दो फुट गहरी मोटी तह खोदनी और मल्बे की ढुवाई-सफ़ाई करनी पड़ती। अन्य मज़दूर इस काम के लिए एक रूबल वसूल करते, लेकिन मुझे वह फूटी कौड़ी न देता। इसके सिवा फ़र्श की खुदाई-ढुवाई में फंसा रहने के कारण मैं मज़दूरों की निगरानी न कर पाता और वे इस मौके को गनीमत समझ दरवाज़ों के तालों और मूठों के पेच खोल उन्हें तिड़ी कर देते, और भी जो छोटी-मोटी चीज़ उनके हाथ में लगती, उड़ा ले जाते।

मज़दूर-कारीगर हों चाहे ठेकेदार, जब भी और जिस तरह भी मौका मिलता, मुझे धोखा देने से बाज़ न आते और करीब-करीब

खुले आम चोरी करते। चोरी करना उनके लिए ऐसा ही था जैसे साँस लेना, मानो इसके बिना वह जीवित नहीं रह सकते थे। पकड़ जाने पर वह कभी गुस्सा न होते, बल्कि अचरज में भर कर कहते:

"अरे बापरे, पाँच रूबल के पीछे तुम इतना हलकान होते हो मानो तुम्हें पचास रूबल मिलते हों। तुम-सा बुद्धू भी ढूंढे नहीं मिलेगा।"

एक दिन मैंने अपने मालिक से कहा कि खुदाई-ढुवाई के काम में मुझे फंसाने से बचत तो केवल एकाध रूबल की ही होती है, लेकिन इससे कहीं ज़्यादा का माल चोरी चला जाता है।

मालिक ने यह सुना और आँख सिकोड़ कर देखते हुए बोला:

"मुझे बेवकूफ़ बनाने की कोशिश न करो।"

यह ताड़ना कुछ कठिन नहीं था कि वह मुझे भी चोरों का ही मौसेरा भाई समझता है। जो हो, इससे मैंने अपमानित तो अनुभव नहीं किया, लेकिन उसके प्रति मेरी घृणा और भी बढ़ गई। ऐसा मालूम होता था मानो सारा आवा ही बिगड़ा हो। हर कोई चोरी करता, और खुद मेरा मालिक भी दूसरों की सम्पत्ति हड़पने में ज़रा आना-कानी नहीं करता।

मेला उठ जाने पर वह दुकानों का चक्कर लगा कर देखता कि कहीं किसी मरम्मत की तो ज़रूरत नहीं है। दुकानदार अक्सर अपनी चीजें भूल जाते और समोवर, तश्तरियाँ, कालीन, कैंचियाँ और कभी-कभी तो सामान से भरे डिब्बे और पेटियाँ तक छोड़ जाते। वह इन चीज़ों को देखता और लघु हँसी हँसते हुए कहता:

"इन चीज़ों की एक सूची तैयार करके इन्हें गोदाम में पहुँचा देना।"

गोदाम में से कितनी ही चीजें उठवा कर वह अपने घर ले जाता और मुझसे कहता कि एक नयी सूची तैयार कर लेना जिसमें इन चीज़ों के नाम न हों जो मैं ले जा रहा हूँ।

चीज़ें जमा करने और उन्हें अपनी मिल्कियत बनाने का मेरे मन में न कोई चाव था, न मोह। पुस्तकें तक मुझे बोझ मालूम होती थीं। मेरे पास केवल दो चीज़ें थीं—एक बेरान्गेर की कविताओं का छोटा-सा संग्रह, और दूसरा हाइने की कविताओं का संग्रह। पुश्किन की कविताओं का संग्रह भी मैं खरीदना चाहता था, लेकिन नगर में पुरानी किताबों की एक मात्र दुकान का मक्खीचूस और चिड़चिड़ा मालिक उसके बहुत ज़्यादा दाम माँगता था। मेज़-कुर्सियों, कालीनों, आइनों और ऐसी ही दूसरी चीज़ों से मुझे घृणा थी। लेकिन मेरा मालिक इनपर जान देता था और उसका घर इन चीज़ों से अटा पड़ा था। उनके भारी-भरकम आकार-प्रकार तथा दाग-धब्बों और वार्निश की गंध से मेरा जी भन्ना जाता और मैं उनसे दूर भागता। मालिक के कमरों में जब मैं जाता तो मेरा दम घुटने लगता और उन्हें देख कर मुझे दुनिया भर के कूड़ा-कबाड़ तथा लोहा-लंगड़ से भरे बक्सों की याद हो आती। लेकिन मेरा मालिक था कि उसका मन न भरता और दूसरों की चीज़ें ला ला कर अपने चारों ओर अच्छा खासा कबाड़ जमा करता रहता। यह मुझे और भी ज़्यादा घिनौना मालूम होता। यों तो रानी मारगोट के कमरों में भी फर्नीचर की भरमार थी, लेकिन वह कम से कम देखने में सुन्दर तो था और इतना बुरा नहीं मालूम होता था।

खुद जीवन भी मुझे ऐसा ही मालूम होता, — असम्बद्ध, बेडौल, बेतुकी और बेमानी चीज़ों से बुरी तरह अटा हुआ। दूर जाने की ज़रूरत नहीं। यहीं देखिये। दुकानों की मरम्मत हो रही है, उनकी तोड़-फोड़ ठीक की जा रही है। बसन्त में बाढ़ आएगी और सारी मेहनत पर पानी फेर देगी। फ़र्श उचक आएँगे, दरवाज़े गल-सड़ जाएँगे। बाढ़ उतरने तक कड़ियाँ और शहतीर भरभरा कर नीचे आ रहेंगे। वर्ष प्रति वर्ष, बीसियों साल से, यही सिलसिला चला आ रहा है। मेले

का मैदान बाढ़ के पानी से भर जाता है, इमारतों और दुकानों को चौपट कर देता है, पटरियाँ और रास्ते सब एकाकार हो जाते हैं। इन वार्षिक बाढ़ों से लाखों का नुकसान होता है और सभी जानते हैं कि ये बाढ़ें अपने-आप कभी बंद नहीं होंगी।

आए साल नदी का पानी जाड़ों में जम कर बर्फ हो जाता, वसन्त में यह बर्फ़ तड़कती और बजरों तथा बीसियों डोंगियों को चकनाचूर कर अपने साथ बहा ले जाती। लोग यह सब देखते, आहें भरते और कराहते, नयी डोंगियाँ बनाते जिन्हें अगले साल फिर इसी प्रकार नष्ट होना पड़ता। यह एक ऐसा कुत्सित चक्र था जो ख़त्म होने में न आता था, जिसे ख़त्म करने की बात तक कोई नहीं सोचता था।

जब ओसिप से मैंने इसका ज़िक्र किया तो उसने अचरज से मेरी ओर देखा, फिर खिल्ली सी उड़ाते हुए बोला:

"कौवे को देखो, क्या कायँ-कायँ करता है? लेकिन बेकार, उसकी कायँ-कायँ की परवाह कौन करता है?"

इसके बाद उसका स्वर कुछ गम्भीर हो गया, लेकिन उसकी आँखों में खिल्ली की चमक फिर भी बनी रही। उसकी आँखें नीली थीं, और इस उम्र में भी उनमें कुछ इतना निखार था कि देखकर अचरज होता था।

"लेकिन हो तुम होशियार," उसने कहा,—"इस तरह चीज़ों को देखना हर किसी के बस की बात नहीं। हो सकता है कि यह तुम्हारी एक बेकार की आदत सिद्ध हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि आगे चल कर वह तुम्हारे काम आए। अब तुम्हीं देखो...।"

और उसने, रूखे और तटस्थ अन्दाज़ में, छोटे छोटे शब्दों, टकसाली मुहाविरों और कहावतों, चकित कर देने वाली बेजोड़ बातों और चुटकियों की झड़ी लगा दी:

"कुछ लोग रोते-झींकते और तोबा-तिल्ला मचाते हैं कि हमारे पास जमीन नहीं है, वोल्गा है कि हर साल वसंत में फनफनाती और तटों को काट कर मानों मिट्टी बीच धारा में बहा ले जाती है। यह मिट्टी नीचे तलहटी में जम जाती है। तब दूसरी जगह के लोग चिल्लाते हैं कि वोल्गा छिछली हो गई। फिर बसन्त धरती को नया जीवन देता है, ग्रीष्म की वर्षा उसमें खाइयाँ बनाती और नालियाँ काटती है, और वोल्गा उसे फिर हड़प कर जाती है!"

वह एकदम निस्संग होकर बातें कर रहा था। उसके स्वर में न विक्षोभ का भाव था न, किसी प्रकार की शिकायत का। मानो उसका रोम-रोम जीवन के खिलाफ़ शिकवा-शिकायतों के बारे में अपनी इस जानकारी पर, गर्व और सन्तोष से छलछला रहा हो। उसके शब्दों में सचाई थी, मेरे विचारों से वे मेल खाते थे, फिर भी ऐसा मालूम होता जैसे वह अंगारे बरसा रहा हो।

"या फिर एक दूसरी चीज़ को लो—आग लगने को।"

मैं जानता था कि एक भी गर्मी ऐसी नहीं बीती जब वोल्गा पार के जंगलों में आग न लगती हो। आए साल, बिला नागा, हर जुलाई में आसमान सिन्दूरी धुएं से ढंक जाता और नीचे झुका हुआ किरनविहीन सूरज, दुखती हुई आँख की भांति, धरती की ओर देखता रहता।

"जंगल . . . उनकी बात छोड़ो!" ओसिप कहता।—"जंगलों पर या तो ज़ार का अधिकार होता है या कुलीनों का, दहकान जंगलों के मालिक नहीं होते। जब नगर जल कर राख हो जाते हैं तब क्या कुछ कम मुसीबत होती है? लेकिन नगरों में अमीर रहते हैं, और अमीरों पर तरस खाने में कोई तुक नहीं दिखाई देती। असल मुसीबत तो तब होती है जब कस्बों और गाँवों में आग लगती

है। हर साल, और भी कुछ नहीं तो सौ-एक गाँव जल जाते हैं, सभी कुछ राख का ढेर बन जाता है!"

वह एक खामोश हँसी हँसता और कहता:

"हमारे पास रोना धोना तो है, भेजा नहीं है। एक तुम और मैं यह देख पाते हैं कि इन्सान की मेहनत का लाभ न उसे मिलता है, न धरती को, पानी और आग उसे चट कर जाते हैं!"

उसके चेहरे पर अब भी वही खामोश हँसी खेलती रहती। मैं उससे पूछता:

"लेकिन इसमें हँसने की क्या बात है?"

"क्यों नहीं?" वह कहता।—"आँसुओं से तुम आग नहीं बुझा सकते, केवल बाढ़ में वृद्धि कर सकते हो!"

मेरे मन में यह बात जम कर बैठ गयी कि अब तक जितने भी लोगों से मैं मिला हूँ, उनमें यह साफ़ सुथरा बूढ़ा सबसे ज़्यादा समझदार और बुद्धि का धनी है। लेकिन, बहुत कोशिश करने पर भी, मैं यह नहीं पकड़ सका कि क्या उसे पसंद है, और क्या नहीं।

मैं इसी उधेड़-बुन में फंसा रहता और उसके शब्द, जलती आग में सूखी खपच्चियों की भांति, आ आकर गिरते रहते:

"देखो न, लोग किस तरह शक्ति बरबाद करते हैं,—अपनी भी, और दूसरों की भी। खुद अपने मालिक को ही लो जो घुन की भांति तुम्हारी शक्ति बरबाद करने में जुटा है। या फिर वोडका को लो। एक अकेली वोडका इतनी शक्ति बरबाद करती है कि बड़े-से-बड़े दिमाग़दार भी उसका हिसाब नहीं लगा सकते। अगर कोई झोंपड़ा जल जाए तो उसकी जगह तुम दूसरा बना सकते हो। लेकिन जब इन्सान धूल में मिलता है तो कोई पार नहीं बसाती। मिसाल के लिए अपने अरदालियोन या ग्रिगोरी को ही लो। कोई कल्पना

तक नहीं कर सकता था कि यह दहकान इस तरह धुवाँ बन कर उड़ जाएगा। माना कि वह—तुम्हारा वह ग्रिगोरी—कोई ज़्यादा बढ़िया दहकान नहीं था, लेकिन उसके पास हृदय था। वह एक ही लपक में उड़ गया, मानों हाड़ मांस का पुतला न होकर घास-फूस का ढेर हो,—चिंगारी पड़ी नहीं कि यह जा, वह जा। स्त्रियाँ उसे इस तरह चट कर गईं जैसे कीड़े लाश को चट कर जाते हैं।"

"लेकिन यह तो बताओ," बिना किसी कठोर भावना के, केवल कौतुकवश मैंने उससे पूछा,—"कि मेरी सारी बातें तुम मालिक के सामने जाकर क्यों उगल देते हो?"

और उसने बहुत ही सादगी से, बल्कि कहना चाहिए कि हार्दिकता से, जवाब दिया:

"वह तुम्हारा मालिक है। उसे सब मालूम होना चाहिए कि तुम्हारे दिमाग़ में क्या-क्या फितूर भरे हैं। अगर वह तुम्हें ठीक नहीं कर सकता तो और कौन करेगा? किसी बुरी नीयत से नहीं, तुम्हारे भले के लिए ही मैं सारी बातें उसे बताता था। वैसे तुम समझदार हो, लेकिन तुम्हारी खोपड़ी में शैतान बैठा है। वह तुम्हारे दिमाग़ में दुनिया भर की उल्टी-सीधी बातें फूंकता रहता है। अगर तुमने किसी चीज़ की चोरी की होती तो मैं एक शब्द भी उसके बारे में न कहता, अगर तुम लड़कियों के पीछे भागते, तब भी मैं न बोलता: और अगर तुम कहीं से नशे में धुत्त होकर आओ तब भी निश्चय जानो मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन तुम्हारे इन दिमाग़ी फितूरों को मैं नहीं बख्श सकता। उनके बारे में मैं ज़रूर कहूँगा। यह बात आज मैं तुमसे भी खोल कर कहे देता हूँ।"

"इसका मतलब यह कि आगे मैं तुमसे कभी बातें नहीं करूँगा!"

कुछ क्षण वह चुप रहा और अपनी हथेली में चिपके कोलतार को नोंच कर छुड़ाता रहा। इसके बाद चाव भरी नज़र से मेरी ओर देखते हुए बोला:

"यह निरी बकवास है। तुम मुझसे बातें करोगे, और ज़रूर करोगे। नहीं तो और कौन है जिससे तुम यहाँ बातें कर सकते हो? कोई नहीं!"

चौचक और खूब साफ़ सुथरा होने पर भी इस समय ओसिप कोयला झोंकनेवाले खलासी याकोव की भांति मालूम होता,—हर चीज़ और हर व्यक्ति से उतना ही अलग और बेपर्वाह।

कभी उसे देख कर मुझे धर्मशास्त्री प्योत्र वसीलीयेविच की याद हो आती, और कभी कोचवान प्योत्र की, और कभी कभी मुझे उसमें अपने नाना की हुनियार दिखाई देती,—किसी न किसी रूप में उसमें उन सभी वृद्ध लोगों का कोई न कोई अंश मालूम होता जिनसे कि अब तक मेरा वास्ता पड़ चुका था। ये वृद्ध लोग, सब-के-सब यों काफ़ी दिलचस्प थे, हालांकि उनके साथ रहना या जीवन बिताना मुझे कठिन और घिनौना मालूम होता था। भलाई-बुराई के बारे में उनकी मान्यताएँ, उनकी सारी समझदारी, ऐसा मालूम होता मानो मेरी आत्मा और हृदय में घुन की भांति प्रवेश करती जा रही हो। क्या ओसिप भला आदमी था?—नहीं। क्या वह बुरा आदमी था?—नहीं। लेकिन वह चतुर था, यह साफ़ मालूम होता था। उसकी चौमुखी सूझ-बूझ चकित कर देने वाली थी, लेकिन साथ ही मैं यह भी अनुभव करता कि उसके सोचने का ढंग मुझे सुन्न और निर्जीव बनाता है, और मेरा जो अपना सोचने का ढंग है, उसकी जड़ पर कुठाराघात करता है।

निराशा के अंधे कुवें में डाल देने वाले विचार, संपोलियों की भांति, मेरे हृदय में रेंगने लगते:

"सभी लोग एक-दूसरे के दुश्मन हैं, एक-दूसरे को देख कर उनका मुसकराना झूठ है, मीठे शब्दों की बौछार करना झूठ है। यह सब ऊपरी दिखावा है, लेकिन सच पूछो तो उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो प्रेम के दृढ़ नाते से जीवन के साथ बंधा हो, जो सचमुच में जीवन से प्रेम करता हो। नानी को छोड़ अन्य कोई सच्चे मानी में जीवन तथा लोगों से प्रेम नहीं करता। नानी, और रानी मारगोट—विधाता की वह अद्भुत रचना!"

कभी-कभी ये और इसी तरह के अन्य विचार काले बादलों का रूप धारण कर हृदय और मस्तिष्क पर छा जाते, जीवन को आह्लादविहीन और दमघोट बना देते। मैं इस जीवन से बच कर भागना चाहता, लेकिन भागने का रास्ता नहीं था, चारों ओर जीवन का यही एक रूप दिखाई देता,—दमघोट और आह्लादविहीन। यहाँ तक कि, एक ओसिप को छोड़, ऐसा अन्य कोई नहीं था जिससे मैं बातें कर सकता। घूम-फिर कर उसी के पास मैं जाता, रह-रह कर उसी की शरण मैं लेता!

मैं उसके सामने अपना हृदय उँडेल देता। मेरी व्यग्र बातों को वह मन लगा कर सुनता, बीच-बीच में सवाल पूछता और खोद-खोद कर सभी कुछ मालूम कर लेता। अन्त में शान्त भाव से कहता :

"खुटकबढ़ई पक्षी भी अपनी लगन का पक्का होता है,—एक-दम ज़िद्दी और ढीट। लेकिन वह भयानक नहीं होता, उसे देख कर किसी को डर नहीं लगता। अगर मेरी सच्ची सलाह मानो तो कि-सी मठ में भर्ती हो जाओ। वहीं रह कर अपने बाल पकाना और मीठे शब्दों से भक्तों के हृदयों पर मरहम लगाना। इससे तुम्हारे दिमाग़ को शान्ति मिलेगी, ईसाई पुरोहितों तथा साधुओं की जेब गर्म होगी। सच, अपने समूचे हृदय से मैं तुम्हें यह सलाह देता हूँ।

मुझे लगता है कि तुम इस दुनिया के चक्कर से लोहा नहीं ले सकोगे, — तुम उस धातु के नहीं बने हो जो आदमी को इस योग्य बनाती है!"

मठ में प्रवेश करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता मानो मैं किसी अंधी भूलभुलैयाँ में फंस गया हूँ। मेरा हृदय इससे छुटकारा पाने के लिए छटपटाता। जीवन मानो शरद ऋतु में कुकुरमुत्तों से विहीन जंगल के समान था, एक ऐसा शून्य जिसका हर मोड़ और कोना मेरा खूब जाना-पहचाना था और जिसमें भटकने या निश्चल पड़े रहने के सिवा अन्य कोई काम नज़र नहीं आता था।

मैं न तो वोडका पीता था, न लड़कियों पर डोरे डालता था। आत्मा और हृदय को मगन रखने के इन दो साधनों का स्थान मेरी पुस्तकों ने ले लिया था। लेकिन जितना ही अधिक मैं पढ़ता, उतना ही अधिक जीवन का यह सूनापन मुझे अखरता, जीवन की इस बेतुकी और बेमानी दलदल से उबरने के लिए मैं छटपटाता जिसमें कि अधिकाँश लोग फंसे हुए थे।

अभी पन्द्रहवें वर्ष में ही मैंने पाँव रखा था, लेकिन कभी-कभी मालूम ऐसा होता मानो मैं काफ़ी बूढ़ा गया हूँ। जीवन में इतना कुछ मैंने देखा और भुगता था और इतना कुछ मैंने पढ़ा और उद्भ्रान्त भाव से सोचा था कि मुझे अपना हृदय सूजा हुआ और भारी मालूम होता था। मेरे दिमाग़ का कोठा उस अंधे गोदाम की भांति था जिसमें दुनिया भर की चीज़ें भरी थीं जिन्हें छांटने और करीने से रखने की न तो मुझमें सकत ही थी, और न योग्यता ही।

जीवन की अनगिनती छापें मेरे हृदय और मस्तिष्क पर छाई थीं। इन छापों का बोझ और बहुलता थिरता प्रदान करने के बजाय

मुझे और भी विचलित कर देती और मैं उसी प्रकार डोलने तथा छपाके खाने लगता जैसे कि धचकोले लगने पर पात्र में पानी हिलता और छपछपाता है।

रोने-झींकने और शिकवा-शिकायत से दु:ख-दर्द और बीमारी चकारी से, मुझे नफ़रत थी और बर्बरता के—खून-खराबी, मार पीट, यहाँ तक कि ज़बानी गाली-गलौज के भी—दृश्य सहज ही मुझे भन्ना देते, हृदय में ठंडे गुस्से की एक आग भड़क उठती, जंगली जन्तु की भांति मरने-मारने के लिए मैं तैयार हो जाता और बाद में, अदबदा कर, अपने किए पर बुरी तरह पछताता, अपने हृदय को नोंचता और खरोंचता।

अनेक बार ऐसा होता कि जुल्म करने वाले की चमड़ी उधेड़ने की अदम्य इच्छा भूत की भांति मेरे सिर पर सवार हो जाती, आँखें बंद कर मैं बीच मंझधार में कूद पड़ता और अच्छी खासी लड़ाई में फंस जाता। गहरी और पंगु निराशा तथा खीज और झुंझलाहट से भरे अपने उन विस्फोटों को आज दिन भी जब मैं याद करता हूँ तो मेरा हृदय शर्म और शोक की भावना में डूबने-उतराने लगता है।

ऐसा मालूम होता मानो मेरे भीतर दो जीव निवास करते हों: एक वह जो ज़रूरत से ज़्यादा गंदगी और घिनौनेपन में से गुज़रने के बाद अब कुछ चौकस और चौकन्ना हो गया था। जीवन की भयानक घिसघिस ने उसे सनकी और अविश्वासी बना दिया था, सन्देह के घुन ने उसके हृदय में घर कर लिया था और सभी लोगों को—खुद अपने-आपको भी—निराशा भरे तरस की नज़र से वह देखता था। नगरों और लोगों से दूर वह एक शान्त और अवकाश-प्राप्त जीवन बिताना चाहता। कभी वह फ़ारस जाने के सपने देखता, कभी मठ में शरण लेने की बात सोचता, कभी वह जंगलों

के चौकीदार या रेल्वे के संतरी की झोंपड़ी में जा कर रहने अथवा नगर से बाहर किसी उपबस्ती में जाकर रात का पहरेदार बनना चाहता। लोगों से कम से कम मिलना और उनसे अधिक दूर रहना जैसे उसके जीवन का लक्ष्य था।

दूसरा जीव जो मुझमें निवास करता था, वह इससे भिन्न था। समझ और सचाई से भरी पुस्तकों की पवित्र भावना उसके रोम-रोम में बसी थी। वह जानता और हर क्षण अनुभव करता था कि जीवन की यह भयानक घिसघिस पूरी निर्ममता से या तो उसका सिर धड़ से अलग कर देगी या अपने भयानक पाँवों से उसे कुचल कर रख देगी। इससे बचने के लिए वह अपनी समूची शक्ति बटोरता, दाँतों को पैनाता, मुट्ठियों को कसता, और घूंसों या बातों की लड़ाई में कूदने के लिए सदा तैयार रहता। अपने प्रेम और तरस का भावना को वह अमल में व्यक्त करता और फ़ान्सीसी उपन्यासों के वीर नायकों की भांति, ज़रा सा भी उकसावा मिलने पर, अपनी तलवार म्यान से बाहर निकालता और टूट पड़ने की मुद्रा में तन कर खड़ा हो जाता।

उन दिनों एक आदमी से मेरी कट्टर दुश्मनी थी। वह मालया पोक्रोवस्काया स्ट्रीट के एक बेसवाघर का पोर्टर था। एक दिन, अनायास ही, पहली बार मेरी उससे मुठभेड़ हो गई। सुबह का वक़्त था। मैं मेले के मैदान की ओर अपने काम पर जा रहा था और वह नशे में बेहाल एक लड़को को गाड़ी में से खींच कर बाहर निकाल रहा था। वह उसकी टाँगें पकड़े था और बहुत ही गंदे ढंग से झटके दे रहा था। झटकों से लड़की की टाँगों के मोज़े खिसक आए थे, घाघरा उलट गया था और वह कमर तक नंगी दिखाई दे रही थी। हर झटके के साथ वह मुँह से बेहूदा -आवाज़ करता था हँसता था और उसके बदन पर थूकता जाता था। बेसुध और

लस्तपस्त लड़की, होठों को लटकाए, हर झटके के साथ नीचे खिस-कती आती थी। उसकी ढीली और बेजान बाँहें, जो अपने कोटरों से बाहर निकल आई मालूम होती थीं, सिर के ऊपर सीधी फैली थीं और बदन के साथ साथ नीचे खिसकती जाती थीं। आखिर उसका सिर झटका खाकर गाड़ी की सीट से आटकराया, इसके बाद पायदान पर और फिर फर्श पर आ गिरा।

इज़वोज़चिक ने अपना हण्टर फटकारा और उसका घोड़ा गाड़ी को लेकर हवा हो गया। पोर्टर ने लड़की की टाँगों को उठाया और उसे ठेला गाड़ी की भांति खींचता हुआ ले चला। गुस्से में पागल हो मैं उसपर झपटा। गनीमत यही थी कि फर्श का लैवल मापने की सात-फुटी पटिया, जिसे मैं अपने हाथ में लिया था, या तो संयोगवश छूट कर गिर पड़ी थी या सुध न रहने के कारण खुद मैंने ही उसे फेंक दिया था। नहीं तो वह शायद जीवित न बचता और बाद में मैं भी फंसा-फंसा फिरता। खाली हाथों ही मैं तेज़ी से लपका, और टक्कर मार कर मैंने उसे गिरा दिया। इसके बाद उछल कर मैं पोर्च पर चढ़ गया और घबराहट में खूब ज़ोरों से मैंने घंटी बजाई। घंटी की आवाज़ सुन जंगली शक्ल-सूरत वाले कुछ लोग भागे हुए चले आए। मैं उन्हें कुछ समझा नहीं सका, जैसे-तैसे मैंने लैवल मापने की अपनी सात-फुटी पटिया उठाई और नौ-दो ग्यारह हो गया।

नदी वाली सड़क पर जब मैं पहुँचा तो वह इज़वोज़चिक मुझे दिखायी दिया जिसकी गाड़ी में लड़की पड़ी हुई थी। कोचवान की अपनी ऊँची सीट से उसने मेरी ओर देखा, और सराहना के भाव में गरदन हिलाते हुए बोला:

"तुमने खूब उसकी मरम्मत की!"

झुंझलाहट में भर कर मैंने उससे पूछा:

"लेकिन तुम अपनी कहो। लड़की तुम्हारी गाड़ी में सवार थी। लड़की के साथ इतनी बेशर्मी का सलूक करने पर तुमने पोर्टर को रोका क्यों नहीं ?"

"लड़की के साथ चाहे जैसा सलूक हो, मेरी बला से!" उसने अविचलित उपेक्षा से कहा,—"अच्छे-खासे शरीफज़ादे थे वे। चिथड़ा हुई लड़की को वे मेरी गाड़ी में डाल गए और किराया दे गए। मुझे अपने किराये से मतलब। बाक़ी दुनिया जहन्नुम में गिरती हो तो गिरे, मेरी बला से।"

"अगर वह उसे मार डालता तो?"

"नहीं, उस जैसी लड़कियों की जान इतनी कच्ची नहीं होती!" उसने कुछ इतने विश्वास और जानकारी से जवाब दिया मानो वह इस धंधे का पक्का मास्टर हो, मानो वह पूरी तौर से जानता हो कि उस जैसी हरजाई लड़कियों में से किनके जीवन का बताशा जल्दी फूटता है, और किनका देर में।

इसके बाद करीब-करीब रोज़ ही सुबह के वक्त पोर्टर से मेरी मुठभेड़ होती। जब मैं बाज़ार में से गुजरता तो वह पटरी पर झाड़ू देता या सीढ़ियों पर इस तरह बैठा हुआ दिखाई देता मानो मेरा ही इन्तज़ार कर रहा हो। मुझे निकट आता देख वह अपनी आस्तीनें चढ़ा लेता और घूंसा दिखाते हुए कहता:

"अगर तेरा तोबड़ा सीधा न कर दिया तो मेरा नाम नहीं!"

उसकी उम्र चालीस से कुछ ऊपर होगी। नाटा कद, टाँगें कमान की भांति बाहर की ओर निकली हुई, और गर्भवती स्त्रियों की भांति मटका-सा पेट। दूर खड़ा होकर वह मेरी खिल्ली उड़ाता, और उसकी आँखों में कुछ इतनी मस्ती और हार्दिकतापूर्ण चमक टिमटिमाती कि मैं अचकचा जाता। लड़ने में वह दक्ष नहीं था, और उसकी बाँहें मेरे मुक़ाबिले में काफ़ी छोटी थीं। दो या तीन धौल

के बाद ही उसके छक्के छूट जाते, बाड़े से वह जा टकराता और अचरज में मुँह वाएं हाँफता हुआ कहता:

"ज़रा ठहर, अभी तुझे ठिकाने लगाता हूँ।"

उसके साथ लड़ने में कोई मज़ा नहीं था। जल्दी ही मैं उकता गया, और एक दिन मैंने उससे कहा:

"मेरे पीछे पड़ कर तुम रोज़ मार खाते हो। मेरी बात मानो, और अपनी इस बेवकूफ़ी को छोड़ दो!"

"लेकिन लड़ाई तो तुम्हींने शुरू की थी।" उसने शिकायत भरे स्वर में कहा।

मैंने लड़की के साथ उसकी बदसलूकी का ज़िक्र किया। सुन कर बोला:

"तो इससे क्या? क्या तुम्हें उसपर तरस आता है?"

"बेशक!"

एक क्षण के लिए वह रुका, अपने होठों को उसने साफ़ किया, और बोला:

"क्या तुम्हें बिल्लियों पर भी तरस आता है?"

"हाँ।"

"तब तुम निरे बुद्धू हो, और साथ ही झूठे भी। एक मिनट ठहरो, मैं तुम्हें अभी दिखाता हूँ!"

लम्बे चक्कर से बचने के लिए मैं इस बाज़ार में से होकर अपने काम पर जाता था। पोर्टर से मुठभेड़ न हो, इस लिए मैं अब जल्दी उठता और अपने काम पर चल देता। लेकिन, मेरी इन कोशिशों के बावजूद, कुछ दिन बाद ही वह मुझे फिर दिखाई दे गया। वह सीढ़ियों पर बैठा था और अपनी गोद में एक बिल्ली लिए उसे थपथपा रहा था। जब मैं उससे तीन डग दूर रह गया तो वह उछल कर खड़ा हो गया, पिछली टाँगों से पकड़ कर

बिल्ली को उसने उठाया, और पत्थर के एक खम्बे पर इतने ज़ोरों से उसका सिर दे मारा कि उसके गर्म खून के छींटों से मैं लथपथ हो गया। इसके बाद चिथड़ा हुई बिल्ली को उसने मेरे पाँवों पर पटक दिया और फिर फाटक पर खड़ा होकर कहने लगा:

"अब बोलो, क्या कहते हो?"

मैं क्या कहता। कुत्तों की भांति हम दोनों एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो गए और अहाते में लुढ़कने-पुढ़कने लगे। बाद में, दु:ख और वेदना से सन्न हो, सड़क के किनारे उगे सरकंडों के बीच मैंने अपना मुँह छिपा लिया और रोने की आवाज़ तथा सुबकियों को रोकने के लिए अपने होंठ काटने लगा। इस घटना की याद करते हुए मेरा हृदय आज भी घृणा से काँप उठता है और अचरज होता है यह कि मैं पागल क्यों नहीं हो गया, या मैंने किसी की हत्या क्यों नहीं कर डाली।

क्या यह ज़रूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाए? हाँ, यह ज़रूरी है। यह इसलिए ज़रूरी है कि तुम धोखे में न रहो, कहीं यह न समझने लगो कि इस तरह की बातें केवल बीते ज़माने में हुआ करती थीं। आज दिन भी तुम मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते हो, भयानक कहानियाँ और किस्से पढ़ने में तुम्हें आनंद आता है। रोंगटे खड़े कर देने वाली कल्पनाओं से अपने हृदय को सनसनाने तथा गुदगुदाने से तुम ज़रा भी परहेज़ नहीं करते। लेकिन मैं सच्ची भयानकताओं से परिचित हूँ,—आए दिन के जीवन की भयानकताओं से, और यह मेरा अधिकार है कि इनका वर्णन करके तुम्हारे हृदयों को मैं कुरेदूँ, उनमें चुभन पैदा करूँ ताकि तुम भुलावे में न रहो और ठीक-ठीक तुम्हें पता चल जाए कि किस दुनिया में और किस तरह का तुम जीवन बिताते हो।

कमीना और गंदगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता!

मानव-जाति से प्रेम करते और हर उस बात से दूर भागते हुए भी जो उसे दुःख पहुँचाने वाली होती है, मैं यह देखता और अनुभव करता हूँ कि न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिए और न ही चमकीले शब्द-जाल और खूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिए। ज़रूरी है कि जीवन में हम प्रवेश करें। निकट से, अधिकाधिक निकट से, हम उसे देखें और उससे अपना नाता जोड़ें। और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उँडेल दें।

...स्त्रियों के साथ जिस तरह का व्यवहार लोग करते थे, उसे देख कर मैं खासतौर से विक्षुब्ध हो उठता और मेरा हृदय तिलमिलाने लगता। पुस्तकों ने मुझे सिखाया था कि जीवन की सब से सुन्दर या अर्थपूर्ण देन अगर कोई है तो स्त्री। माँ मरियम और बुद्धि की देवी वसिलीसा के सम्बंध में जो कहानियाँ मैंने नानी से सुनी थीं, वे भी इसकी पुष्टि करती थीं। कपड़े धोने वाली अभागी नतालिया का जीवन उसकी एक सजीव मिसाल था। इसके अलावा उन सैकड़ों और हज़ारों मुसकराहटों तथा कनखियों में भी एक इसी सत्य की झाँकी मिलती थी जिनसे कि स्त्रियाँ, जीवन को जन्म देने वाली माताएँ, आह्लाद और प्रेम से बुरी तरह शून्य इस धरती पर आए दिन स्वर्ग और सौन्दर्य की अवतारणा करती हैं।

तुर्गनेव की पुस्तकों के पन्ने स्त्रियों के गौरव की लालिमा से रंगे थे, और मेरे हृदय तथा मस्तिष्क में बसी रानी मारगोट तो मानो नारी जाति की उन सभी अच्छाइयों का मूर्तिमान रूप

और खान थी जिनसे कि मैं परिचित था,—ज्ञान की एक ऐसी निधि जिसे समृद्ध तथा सम्पन्न बनाने में तुर्गेनेव और हाइने की रचनाओं ने खुले हृदय से योग दिया था।

मेले के मैदान से घर लौटते समय क्रेमलिन दीवार के पास-वाली पहाड़ी पर मैं अक्सर खड़ा हो जाता और साँझ के सूरज को आकाश से नीचे उतर कर वोल्गा की गोद में लीन होते देखता। ऐसा मालूम होता मानो आकाश में तरल अग्नि की नदियाँ और सोते फूट निकले हों, और लपलपाते हुए इस धरती की प्यारी नदी वोल्गा की ओर प्रवाहित हो रहे हों। वोल्गा का पानी गहरी गुलाबी आभा से दमकता जिसपर छाया के परत चढ़ते जाते। ऐसे क्षणों में कभी-कभी मुझे लगता मानो यह धरती एक भीमाकार पोत हो जो जलावतनी की सज़ा पाए बन्दियों को लिए किसी अज्ञात दिशा में जा रहा हो,—या फिर वह कोई भीमाकार सुअर हो जो किसी अदृश्य रस्से से बंधा घिसट रहा हो।

लेकिन अक्सर मेरी कल्पना में धरती की व्यापकता का चित्र मूर्त हो उठता, उन दूसरे नगरों और शहरों का मुझे खयाल आता जिनके बारे में मैं पुस्तकों में पढ़ चुका था, और उन अजन-बी देशों के बारे में मैं सोचता जिनके निवासी भिन्न प्रकार का जीवन बिताते थे। विदेशी लेखकों की पुस्तकों में जीवन का जो चित्र मैं देखता था वह कहीं ज़्यादा साफ़-सुथरा और रमणीय तथा उस जीवन से कहीं कम बोझिल और कम दमघोट था जिसे मैं अपने चारों ओर अलस और एक-रस गति से मंडराता देखता था। इससे मेरी आशंकाओं को अपने पंजे फैलाने का मौका न मिलता और रह-रह कर यह अदम्य आकांक्षा मेरे हृदय में सिर उभारती कि अथ और इति यही नहीं है, जीवन का इससे भी अच्छा ढंग और ढब हो सकता है।

और मैं नित्य यह सोचता कि एक दिन किसी ऐसे बुद्धिमान और सीधे-सादे व्यक्ति का मेरे जीवन में प्रवेश होगा जो मुझे इस दलदल से उबार कर प्रशस्त और उज्ज्वल राजपथ की राह दिखाएगा।

एक दिन क्रेमलिन-दीवार के पास मैं एक बेंच पर बैठा था। तभी चचा याकोव भी वहाँ आ गए। मैं कुछ अपने ही ध्यान में मगन था। न मैंने उन्हें आते देखा, और न मैं उन्हें तुरत पहचान ही सका। हालांकि एक ही नगर में हम कई साल से रह रहे थे, लेकिन हम बिरले ही मिलते थे, सो भी थोड़ी-देर के लिए, योंही भूले-भटके, निरे संयोगवश।

"अरे, तुम्हारे तो अब खूब बाल-पर निकल आए हैं!" उसने हँसी में मुझे कोहनियाते हुए कहा और दोनों इस तरह घुल-मिलकर बातें करने लगे मानो हम चचा-भतीजे न होकर पुराने जान-पहचानी हों।

नानी से मुझे पता चला था कि चचा याकोव ने अपनी सारी पूंजी फूंक-फांक कर बराबर कर दी है। कुछ दिनों तक उसने जेल में वार्डर के नायब की जगह पर काम किया, लेकिन यह नौकरी चली नहीं और एक दुःखद घटना के साथ उसका अन्त हो गया। हुआ यह कि वार्डर बीमार पड़ गया और उसकी गैर हाज़िरी में चचा याकोव को खुल कर खेलने का मौका मिला। अपने घर पर वह बन्दियों को जमा करते, पीते-पिलाते और खूब हड़दंग मचाते। जब इसका पता चला तो उन्हें बरखास्त कर दिया गया, इसके साथ ही उनके खिलाफ़ यह अभियोग भी लगाया गया कि वह बन्दियों को रात के समय छुट्टा छोड़ देते थे। बन्दियों में से भागा तो कोई नहीं, लेकिन उनमें से एक ने किसी पादरी का गला ज़रूर दबोच लिया था। एक लम्बे अर्से तक मामले की जाँच-पड़ताल

चलती रही, लेकिन अदालत तक पहुंचने की नौबत नहीं आई। जेल के बन्दियों और पहरुवों ने नेक हृदय चचा याकोव को इस अपमान में फंसने से बचा लिया। अब वह बेकार था और अपने बेटे के टुकड़ों पर जीवन बिताता था। उसका बेटा उन दिनों प्रसिद्ध रुकाविश्निकोव गिरजे के कोरस-दल में गायक का काम करता था। अपने बेटे के बारे में उसकी राय विचित्र थी। कहने लगा :

"इधर वह बहुत बड़ा और गम्भीर आदमी बन गया है। गिरजे में गाता है। अगर समोवर गर्म करने या उसके कपड़ों को झाड़ने में मुझे कुछ देर हो जाती है तो भौंहें चढ़ा लेता है। बहुत ही साफ़-सुथरा लड़का है...आदतें भी अच्छी हैं।"

खुद चचा याकोव जो अब बूढ़ा गया था, गंदा था और आँखों को अखरता था। उसके छैल-छबीले घुंघराले बाल अब पतले पड़ गए थे, कान छाज-से निकल आए थे, आँखों की सफ़ेदी और उसके दाढ़ी विहीन गालों की रेशमी खाल में लाल शिराओं का जाल-सा बिछा था। वह हँसकर, मज़ाक का पुट मिलाते हुए बातें करता था, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो उसके मुँह में कोई चीज अटकी हो जो उसकी आवाज़ को साफ़-साफ़ नहीं निकलने देती और कुछ शब्द फुसफुसा कर रह जाते हैं। यों उसके सभी दाँत अच्छी हालत में थे।

मुझे इस बात की खुशी थी कि उससे,—एक ऐसे आदमी से जो प्रसन्न रहना जानता था, जिसने बहुत कुछ देखा था और जिसे बहुत सी बातें मालूम थीं,—मिलने और बातें करने का मौका मिला। उसके दबंग और हास्यपूर्ण गीत मैं भूला नहीं था, और मेरे नाना ने उसके बारे में जो कुछ कहा था, वह भी मुझे याद था। नाना ने कहा था :

"वह गाता है हज़रत डेविड की भांति, और काम करता है अबूसलम की भांति!"

नगर के बड़े और अधिक शरीफ़ लोग—अफसर और पदाधिकारी, और रंगी-चुनी स्त्रियाँ—छायादार पटरी पर से गुज़र रहे थे। चचा याकोव एक फटा-पुराना कोट पहने थे, उनकी टोपी भी चिथड़ा हो गई थी, और लाल-खाकी रंग के फटे से जूते अलग अपनी धजा बता रहे थे। बैंच पर, पीछे की ओर खिसक कर, वह कुछ इस तरह सिकुड़े-सिमटे से बैठे थे मानो उन्हें अपने इस रूप पर शर्म आ रही हो। अन्त में हम यहां से उठे और पोचाएन्स्की गली वाले कहवाखाने में खिड़की के पास एक मेज़ पर बैठ गए। खिड़की बाज़ार की ओर खुलती थी।

"याद है तुम्हें वह गीत जिसे तुम गाया करते थे:

सूखने के लिए खुली धूप में
अपनी एक मात्र और प्रियतम पतलून
लटका रखी थी किसी भिखारी ने
कि पड़ी उस पर नज़र
किसी दूसरे भिखारी की
दबे पाँव आया वह और उड़ा कर ले गया उसे!"

गीत के इन शब्दों के व्यंग और चुभन का, पहली बार मैंने अनुभव किया और मुझे लगा कि प्रसन्नता के आवरण में लिपटा चचा याकोव का अन्तर असल में काफ़ी तीखा और काँटों से भरा है।

चचा याकोव के स्वर में बीते दिनों की याद में डूबी एक सहज उदासी का पुट था। गिलास में वोडका उँडेलते हुए बोले:

"हाँ भाई, मेरे दिन पूरे हुए और मौज भी मैंने की, लेकिन काफ़ी नहीं। वह गीत मेरा नहीं था। सेमिनारी के एक शिक्षक ने उसे बनाया था,—भला, क्या नाम था उसका? ओह, याद से उतर गया। हम दोनों, वह और मैं, गहरे मित्र थे। वोडका ने उसकी जान ले ली,—या कहो कि वोडका के पीछे उसने अपनी जान दे दी। पीकर एक दिन बाहर निकला और वहीं बर्फ़ में जाम हो गया। एक वही क्यों, न जाने कितने लोगों को मैंने वोडका के पीछे जान गंवाते देखा है। उनकी गिनती तक करना मुश्किल है। क्या तुम पीते हो? ठीक, इसे मुँह न लगाना ही अच्छा। फिर तुम्हारी उम्र भी क्या है? अपने नाना से तो अक्सर मिलते रहते हो न? बूढ़े को देख कर जी भारी हो जाता है। ऐसा मालूम होता है जैसे उसका दिमाग़ कमज़ोर हो गया हो।"

वोडका के एक या दो दौर के बाद वह कुछ चेतन हो गया, अपने कंधों को उसने सीधा किया, जवानी की एक हिलोर-सी उसके चेहरे पर दौड़ गई और उसने अधिक ज़िन्दादिली से बोलना शुरू किया।

मैंने उससे पूछा कि जेलवाले मामले का ऊँट फिर किस करवट बैठा।

"सो तुम्हें भी उस मामले की खबर है?" उसने पूछा और फिर अपनी आवाज़ को धीमा करते तथा चौकन्नी नज़र से इधर-उधर देखते हुए बोला:

"वे बन्दी थे तो इससे क्या? मैं कोई उनका मुन्सिफ़ तो था नहीं। मुझे तो वे वैसे ही इन्सान दिखाई देते थे जैसे कि अन्य सब। सो मैंने उनसे कहा: आओ भाईयो, हम सब साथ मिल-

जुल कर रहें, दो घड़ी जी बहलाएँ, जैसा कि किसी ने गीत में कहा है:

चाहे लाख मुसीबत आये, पर
तू हँसता चल, तू हँसता चल,
जब तक मंज़िल तू सर न करे,
तू हँसता चल, तू हँसता चल,
रोने दे रोने वालों को,
आफ़त का बढ़ के सर तू कुचल,
जब तक तू ज़िन्दा है प्यारे,
तू हँसता चल, तू हँसता चल।"

हँसते हुए उसने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा। सड़क पर अंधेरा छा रहा था और निचले छोर पर दुकानों की पांतें दिखाई दे रही थीं।

"जेल में सिवा उदासी के और क्या था? दो घड़ी मन बहलाने की बात सुन वे निश्चय ही खुश हुए," अपनी मूँछों को सहलाते हुए उसने कहा। —"सो रात की हाज़िरी होते ही वे मेरे यहाँ चले आते। खूब खाते और पीते। कभी मैं उन्हें खिलाता-पिलाता, और कभी वे, और हम उतने ही स्वच्छन्द और उन्मुक्त हो जाते जितनी कि हमारी मातृभूमि रूस। गीत और नाच का मैं प्रेमी हूँ, और उनमें से कई बहुत बढ़िया गाते और नाचते थे। सच, बहुत ही बढ़िया। इतने कि तुम एकाएक यकीन नहीं करोगे। उनमें आधे तो ऐसे थे जिनके पाँवों में बेड़ियाँ पड़ी थीं। अब तुम्हीं सोचो, बेड़ियाँ पहन कर क्या कोई नाच सकता है? सो मैं कहता: बेड़ियाँ उतार लो। यह बात सच है। इसके लिए उन्हें लोहार की ज़रूरत नहीं थी। वे खुद ही यह काम कर लेते। ऐसे-वैसे नहीं, वे होशियार लोग

थे। सच, बहुत ही होशियार। लेकिन यह सब बकवास है कि मैं उन्हें मुक्त करके नगर में चोरियाँ करने भेजता था, इसे कोई साबित नहीं कर सकता...।"

वह चुप हो गया और खिड़की में से पुराना माल बेचने वाले कबाड़ियों को देखने लगा जो अपनी दुकानें बंद कर रहे थे। सांकल तथा कुन्दों की खड़खड़, तालों की चींचीं और तख़्तों की धमक सुनाई दे रही थी। कुछ देर तक वह यही सब देखता और सुनता रहा। फिर, खुशी से आँखें चमकाते हुए, कहने लगा:

"अगर सच पूछो तो उनमें एक ही ऐसा था जो सचमुच रात का पंछी था और नगर के चक्कर लगाता था। लेकिन उसके पाँव में बेड़ियाँ नहीं थीं,—वह निजनी नोवगोरोद का एक मामूली-सा चोर था। पास ही, पेचोरका नदी के किनारे, उसकी एक प्रेमिका रहती थी। और वह पादरी तो योंही भूल से लपेट में आ गया। गलती से उसने पादरी को सौदागर समझ लिया। जाड़ों की रात थी। बर्फ़ीली आंधी चल रही थी। जिसे देखो वही बड़ा कोट पहने था। ऐसे में क्या पता चलता कि पादरी कौन है और सौदागर कौन?"

यह सुन कर मुझे हँसी आ गई। वह भी हंसा। कहने लगा:

"सच, ऐसे में वह कैसे पता लगाता कि कौन क्या है?"

इसके बाद, एकाएक, चचा याकोव के दिमाग़ ने कुछ इतनी आसानी से पलटा खाया कि मैं स्तब्ध रह गया। वह अनायास ही झुंझला उठा। मेज़ पर रखी रकाबी को उसने सामने से हटा दिया, होठों और भौंहों में बल डाला और सिगरेट जलाते हुए गुस्से में बुदबुदाया:

"कम्बख़्त आपस में एक-दूसरे को लूटते हैं, फिर एक दूसरे को पकड़ते और हाड़-तोड़ मेहनत की सज़ा देकर जेल या साइबेरिया में एक-दूसरे को जहन्नुम रसीद करते हैं। लेकिन मुझे बीच में

घसीटने में क्या तुक है? गोली मारो उन्हें। मेरी अपनी आत्मा का बोझ क्या कुछ कम है जो मैं इन सब की अलाय-बलाय के साथ घिसटा-घिसटा फिरूँ?"

उसकी बातें सुन मेरी कल्पना में कोयला झोंकने वाले बेडौल खलासी का चित्र मूर्त हो उठा। उसे भी, बात-बात में, 'गोली मारो' कहने का शौक था और उसका नाम भी याकोव ही था।

"क्यों, तुम क्या सोचने लगे?" चचा याकोव ने धीमे स्वर में पूछा।

"क्या तुम्हें उन बन्दियों पर तरस आता था?"

"तरस न आता तो और क्या होता? बहुत बढ़िया आदमी थे वे — सच, बहुत ही बढ़िया। कभी-कभी जब मैं उनकी ओर देखता तो मन में सोचता: मैं तुम लोगों के पाँव की धूल भी नहीं हूँ, तिस पर मज़ा यह कि मैं तुम्हारा रखवारा हूँ! सच, वे बहुत ही चुस्त और चतुर थे — लोमड़ी की भांति चालाक। शैतान भी उन्हें देखता तो चकित रह जाता!"

वोडका और पुरानी यादों ने उसमें जैसे जान डाल दी और उसकी जिन्दादिली फिर से चेतन हो उठी। उसने अपनी कोहनियों को चौखट पर टिका दिया और उंगलियों में सिगरेट थामे अपने पीले हाथ को हिलाते हुए उमंग भरे स्वर में कहने लगा:

"अब तुमसे मैं क्या बताऊँ, उन बंदियों में एक इतनी बढ़िया बातें करता था कि तुम सुनते तो दंग रह जाते। एक आँख से वह काना था, और ठप्पे तथा घड़ियाँ बनाने का काम करता था। वह नकली सिक्के ढालने के अपराध में पकड़ कर आया था। एक बार उसने जेल से भागने की भी कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सका। आदमी क्या था, पूरा फितना था। बात में मशाल की भांति भड़क उठता। गाता इतना अच्छा था कि पक्षियों को मात करता

था। एक दिन बोला: अब तुम्हीं बताओ कि ऐसा क्यों है? टकसाल को तो सिक्के ढालने की छूट है, लेकिन मुझे नहीं,— आखिर क्यों? बताओ, तुम्हीं बताओ कि ऐसा क्यों है? लेकिन कोई भी यह नहीं बता सका,— यहाँ तक कि मैं भी नहीं बता सका। तिस पर मज़ा यह कि मैं उसका निगहबान था। इसी तरह मास्को का एक प्रसिद्ध चोर था — शान्त और साफ-सुथरा। ऐसा मालूम होता जैसे किसी बड़े घर का छैल चिकनिया हो। हमेशा कायदे से बोलता, — सच, बहुत ही कायदे से। कहता: लोग काम करते-करते मर जाते हैं, लेकिन बेकार। मुझे इस तरह एड़ियाँ रगड़ना पसंद नहीं। एक बार मैंने भी कोशिश की। काम करते-करते मैंने अपनी उँगलियाँ घिस डालीं, लेकिन मिला क्या? समझ लो कि न कुछ के बराबर। गिनती के दो-चार घूंट पी लो, एक-दो हाथ ताश में गंवा दो और दो घड़ी किसी लड़की से खेल कर लो, — बस इतने में ही सब ख़त्म, और फिर वही भिखारी के भिखारी। नहीं बाबा, मुझे यह चक्कर पसंद नहीं।"

चचा याकोव मेज़ के ऊपर झुक गया। उसका चेहरा तमतमा रहा था, उसके बालों की जड़ें तक लाल हो गई थीं, और उसकी विह्वलता का यह हाल था कि उसके कान थिरक रहे थे। वह कह रहा था:

"सच कहता हूँ भाई, वे मूर्ख नहीं थे। दीन-दुनिया को वे जानते थे। और बहुत पते की बातें करते थे। ओह, गोली मारो, यह जीवन भी कम्बख़्त एक जंजाल है। मिसाल के लिए मुझे ही लो। बोलो, क्या कहते हो मेरे जीवन के बारे में? उसपर नज़र डालते भी शर्म मालूम होती है। एक-एक करके सारी अच्छाइयाँ लोगों ने नोंच-खसोट लीं। कुछ बाकी न रहा। रंज और दु:ख की कमाई की, खुशी भी पाई — लेकिन चोरी से, लुक-छिप कर। बाप चिल्लाता

—यह न करो, और बीवी चिल्लाती—वह न करो, और मैं खुद था कि एक-एक कौड़ी के लिए जान खपाता। और इसी घिसघिस में सारा जीवन हाथ से निकल गया। और यह तुम देख ही रहे हो कि अब मैं क्या हूं—एक बूढ़ा और जर्जर आदमी, अपने ही बेटे का चाकर। जो सच है, उसे छिपाने से क्या फ़ायदा? मैं अपने बेटे का चाकर हूँ। भाई, नाक रगड़ता हूँ और दुम दबा कर उसकी चाकरी करता हूँ। और असली नवाब की भांति वह मुझपर चीख़ता-चिल्लाता है। कहने को वह मुझे अब भी 'पिता' कहता है, लेकिन आवाज़ कुछ ऐसी आती है मानो कह रहा हो—'टुकड़खोर'। क्या इसीलिए मैंने जन्म लिया था? क्या इसी लिए मैं इतने दिनों तक मरता-खपता रहा? जीवन का क्या यही फल मुझे मिलना था कि जाओ, अपने बेटे के टुकड़े तोड़ो, और उसके सामने दुम हिलाओ! लेकिन अगर ऐसा न होता, तब भी क्या मेरे जीवन में चार चाँद लग जाते? तुम्हीं बताओ, इतने बड़े जीवन में मैंने इस जीवन क्या किया,—कितना और क्या सुख मैंने पाया?"

मेरा ध्यान बंट गया था और उसकी सभी बातें मेरे कानों में नहीं पड़ रही थीं। अचकचा कर और जवाब देने का कोई खास प्रयास न करते हुए योंही मैंने कह दिया:

"जीने का ढंग और ढब मैं भी नहीं जानता...।"

वह भनभना उठा:

"एक तुम्हीं क्या, कोई भी नहीं जानता। मैंने तो आज दिन तक एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा जो यह जानता हो। ढब और ढंग की बात भली चलाई। लोग बस जीते हैं, इस लिए कि उन्हें जीना होता है, मानो वह कोई पुरानी आदत हो जिससे पीछा नहीं छूटता...।"

झुंझलाहट और गुस्से का एक बार फिर झोंका आया और चोट खाई सी आवाज़ में वह बोला:

"बन्दियों में एक आदमी था,—ओरेल का रहने वाला। वह बलात्कार के अपराध में जेल आया था। किसी कुलीन घर में उसने जन्म लिया था और बेहद अच्छा नाचता था। वान्का के बारे में उसे एक गीत याद था जिसे सुन कर सब हँसते और खूब खुश होते थे:

मुँह लटकाये वान्का घूमे,
मरघट के चहुँ ओर;
वान्का, वान्का, वहाँ धरा क्या?
और से अच्छा ठौर?

लेकिन सच पूछो तो इस गीत में हँसने लायक कोई बात नहीं थी। गीत क्या था, जीवित सत्य था। चाहे जितना गिलगिलाओ और बल खाओ, निकल भागने की चाहे जितनी कोशिश करो, लेकिन कब्रिस्तान से छुटकारा नहीं मिलता। और एक बार जब वहाँ पहुँच गए तो सारी छकड़ी भूल जाती है,—वहाँ न कोई वार्डर रहता है, न कोई बन्दी।"

बोलते-बोलते वह थक गया। गिलास उठा कर उसने वोडका से अपना गला तर किया। फिर गरदन को तिर्छी कर के और बटेर की भांति खाली गिलास पर नज़र जमाए चुपचाप सिगरेट से धुवाँ छोड़ने लगा। धुवाँ मुंह से बाहर आता, सरसराकर मूछों के बालों में प्रवेश करता, और बल खाता हुआ मंडराने लगता।

रंगसाज़ प्योत्र जो चचा याकोव से ज़रा भी नहीं मिलता था, बड़े चाव से कहा करता था: "चाहे आदमी कितने ही हाथ-पाँव मारे और चाहे कितने ही वह मन्सूबे बाँधे, लेकिन अन्त में पल्ले क्या पड़ता है,—वही डेढ़ गज कफ़न और मुट्ठी भर मिट्टी!" और अगर

कोई छान-बीन करे तो इस तरह का भाव व्यक्त करनेवाली कहावतों और मुहाविरों का एक अच्छा-खासा अम्बार लग जाए!

चचा याकोव से और कुछ पूछने के लिए मेरा मन नहीं चाहा। उसे देखकर मुझे उसपर तरस आया, मेरा जी भारी हो गया और उसके साथ बैठे रहना मुझे मुश्किल मालूम होने लगा। निराशा के तानेबाने में आह्लाद का रंग भरनेवाले उसके रसीले गीतों और गितार की ध्वनि बरबस मेरे दिमाग में गूँजने लगी। त्सिगानोक का खुशी से छलछलाता चेहरा भी मेरी आँखों की ओट करना आसान नहीं था। चचा याकोव के रौंदे-मसले चेहरे की ओर देखते समय बरबस मुझे उसकी भी याद हो आई और यह सोच कर मैं अचरज करने लगा कि कौन जाने, चचा याकोव को त्सिगानोक की याद है या नहीं जिसे उसने क्रास के नीचे कुचल कर मार डाला था।

लेकिन मैंने उससे पूछा नहीं।

मैंने खिड़की में से सड़क की ओर देखा। अगस्त का महीना था और धुंध घनी होती जा रही थी। धुंध की गहराइयों में से सेब और तरबूजों की महक आ रही थी। नगर की ओर जाने वाली संकरी सड़क के किनारे लालटेनें टिमटिमा रही थीं और चारों ओर की हर चीज़ किसी न किसी चिर परिचित तीखी स्मृति को ताज़ा करती थी: यह रिबिन्स्क जानेवाले स्टीमर की सीटी की आवाज़ थी, और वह पेर्म जाने वाले...।"

"अच्छा तो मैं अब चलता हूँ," चचा याकोव ने उठते हुए कहा।

दरवाज़े पर पहुँच कर उसने मुझसे हाथ मिलाया और हँसते हुए कहने लगा:

"तुमने अपनी थूथनी क्यों लटका रखी है? मैं कहता हूँ, उदासी का यह छींका अपनी थूथनी पर से उतार डालो। तुम्हारी

उम्र ही क्या है, हँसो-खेलो और मगन रहो। वह गीत याद रखना: 'चाहे लाख मुसीबत आवें, तू हँसता चल, तू हँसता चल!' अच्छा तो अब बिदा दो। मैं उधर, उस्पेन्स्की गिरजे के पास वाले रास्ते से जाऊँगा।"

मौजी चचा याकोव चला गया और अपनी बातों से मुझे और भी ज़्यादा अस्तव्यस्त कर गया।

नगर वाली पहाड़ी पर चढ़ कर खेतों में से होता हुआ मैं चल दिया। आकाश में पूरा चाँद तैर रहा था और बादल, खूब नीचे, झुके हुए, हवा के साथ बह रहे थे। उनकी परछाईं में, रह-रह कर, मेरी परछाई खो जाती थी। खेतों ही खेतों में नगर का चक्कर लगाता हुआ मैं ओत्कोस के निकट वोल्गा के किनारे पहुँच गया और मटमैली घास पर लेट कर देर तक कभी नदी, कभी चरागाहों, और कभी निश्चल धरती की ओर देखता रहा। बादलों की परछाइयाँ धीमी गति से वोल्गा को पार करतीं और चरागाहों में पहुँचने पर और भी उजली दिखाई देतीं—ऐसा मालूम होता मानो वोल्गा के पानी में स्नान कर के वे निखर उठी हों। चारों ओर की हर चीज़ दबी हुई, उनींदी और ऊंघती-सी मालूम होती, हर चीज़ इस तरह हरकत करती मानो उसमें चलने की सकत न हो, फिर भी उसे चलना पड़ रहा हो,—उस गहरी उमंग और गति से सर्वथा शून्य जिसमें जीवन और जीवित रहने की अदम्य आकांक्षा हिलोरें लेती है।

और मेरे मन में यह भावना ज़ोरों से उमड़ने-घुमड़ने लगी कि इस धरती को और खुद अपने-आप को भी ऐसी ठोकर दूँ कि जिससे हर चीज़—जिसमें मैं भी शामिल था—बगूले की भांति खुशी से झूम उठे और सभी लोग, आपस में एक-दूसरे के प्रति और जीवन के प्रेम में पगे एक ऐसे अद्भुत नृत्य की रचना करें जिसमें सभी कुछ डूब जाए—न ईर्ष्या बाक़ी रहे, न द्वेष, और न कुत्सा—

और यह जीवन जिसके गर्भ में से एक नये जीवन का उदय होना हैं, अधिक खरा, अधिक साहसपूर्ण और अधिक सुन्दर हो उठे...।

और मैंने अपने-आप से कहा:

"अगर मैं कुछ नहीं करता तो ख़त्म हो जाऊँगा — मेरा कुछ भी शेष नहीं रहेगा!"

शरद के बोझिल और उदास दिनों में मैं अक्सर जंगल की गहराइयों में भटकता और ऐसी जगहों में पहुँच जाता जहाँ कुछ सुझाई न देता, ठीक दोपहरी में भी सूरज का आभास तक न मिलता और मैं पूर्णतया भूल जाता कि सूरज नाम की भी कोई चीज़ होती है। जब रास्ता न मिलता और मैं हर पदचिन्ह तथा पगडंडी के पीछे दौड़ता, तिनके के सहारे की भांति उन्हें पकड़ना चाहता और भूलभुलैयों में खोज करते-करते थक जाता तो इधर-उधर भटकने के बजाय मैं कस कर अपने दाँत भींचता और दोनों मुट्ठियों में साहस बटोर ठीक जंगल के हृदय में प्रवेश करता, एक-दूसरे में गुंथी कंटीली झाड़ियों और भयानक दलदलों को पार कर आगे बढ़ता जाता। नतीजा इसका यह कि अन्त में, हमेशा और अदबदा कर, मैं सड़क पर निकल आता।

और मैं इस निश्चय पर पहुँच गया।

उसी साल शरद के दिनों में मैं कज़ान के लिए रवाना हो गया, — हृदय में यह गुप्त आशा लिए कि वहाँ पहुँच कर अध्ययन करने के कोई न कोई साधन निकल ही आएंगे।